श्री

प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणी.

और

अठारह दूषणनिवारक.

(शुद्ध-सरल-हिंदि भाषा टीका समलंकृत.)

प्रबन्धकर्त्ता.

भरुचबंदर निवासि शेठ अनूपचंद मलूकचंद.

आत्मार्थि जीवोंके हितार्थ.

प्रकाशक.

मकसूदाबाद वासि रायबहादुर बाबु श्री बुद्धासिंघजी

प्रथमावृत्ति—प्रत ५००

अहमदाबाद.

पानकोरके नाके घांचीकी वाडीमें नथुभाइ रतनचंद मारफतियेने स्वकीय
" अँग्लोवर्नाक्यूलर " मुद्रालयमें मुद्रित की.

मूल्य—अमूल्य.

प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिका उपोद्घात.

विदित हो कि इस ग्रन्थमें प्रथम, जैनी किस सबबसें कहेजाते हैं? और जैनी होय उन्होंकों क्या क्या करना चाहियें? वो अधिकार है. उसपीछे मार्गानुसारीका, समकितका, श्रावकके बारह व्रत और साधुके मार्गका अधिकार, चौदह गुणस्थानकका स्वरूप, कर्म कितने हैं उन्होंकी संख्या, कर्मकी प्रकृति कितनी है? कर्म किसतरहसें आते हैं? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म क्या फल देते हैं? कर्म क्या करनेसें नाश होते हैं? कर्म नाश करनेका क्या उपाय है? गृहस्थ धर्म, पूजा भक्ति और प्रभुजीका किस प्रकार बहुतमान करना? किस तरह गुणग्राम करना? क्या क्या भावनाएं भावनी? किंवा देवद्रव्य भक्षणसें, ज्ञानद्रव्य भक्षणसें और साधारणद्रव्य भक्षणसें क्या नुकसान होता है? वो और उसी मतलबकी कथाएं, धर्मप्रवृत्तिमें शास्त्रके आधार और उसके पत्रांक सहित विविध प्रकारके प्रश्नोत्तर, ध्यानके स्वरूप, प्रतिक्रमणके हेतु, और आत्माशुद्धि किस प्रकार की जाय? विसीके चिंतवन इत्यादि दर्शायें हैं. तदनंतर मरनके वक्त क्या क्या करकें संथारा करना? उसका स्वरूप, और रात्रिमें सोनेके समयका विधि, प्रतिष्ठा, दिक्षादिके मुहूर्त्त वगैरः वस्तुओंके स्वरूप बतलाया है कि जो आत्माके हितकर्त्ता हैं वो अनुक्रमणिका अवलोकन करनेसें विदित हो जायगा.

प्रिय पाठक महाशय! इस ग्रंथकी रचना करनेमें पेस्तर मेरा दिल प्रवृत्त न हुवा थाः लेकिन मेरे परमप्रिय मित्र रायचंदभाइ उदेचंदजी आदिनें मुझकों बहुतसी प्रेरणा कीः जिससें मेरे दिलमें आया कि-मेरेमें शास्त्र रचनेकी सामर्थ्यता तो नहीं हैः तथापि जैसें बालक पढनेके शुरूमें कक्का घूंटते हैं और पीछे अभ्याससें करकें वे सुंदर हुरूफ निकाल शकते हैं, वैसें मैंभी इन हेतु भाइयोंकी प्रेरणा है तो थोडा बहुत लिखकर जो जो शास्त्रमें जो चर्चा जिस पत्रमें होय उस नोंधके साथ जाहिर करुं तो पाठक महाशयोंकों समजमें लेना सुगम हो पडेगा, और मुजकोंभी यह किताब लिखनेका प्रयास करनेसें प्रमादका संग छूट जायगाः फिर शास्त्रकी पढी हुइ बातेंभी पुनः स्मृतिमें आ जायगी-ऐसा बिचार करकें जिस जिस समय जो जो प्रश्न मुझकों याद आये, या मेरे पास मेरे धर्मस्नेही बैठते थे उन्होंने जो जो प्रश्न किये वे सभी मैंनें इस पुस्तकमें दाखिल किये हैं, इसी सबबके लिये इस पुस्तकमें क्रमका नियम नहीं रहा है.

इस ग्रन्थकी, मुख्यतासें तो जैनबान्धवोंके हितार्थ रचना है; तदपि इस ग्रन्थमें अन्य धर्मकी निंदाके शब्द किसी जगहपर नहीं है; किन्तु इस पुस्तकमें मार्गानुसारीके गुण वगैरः कितनीक आत्मिक बातें है कि जो कुछ धर्मवालोंको पसंद पडें और उपयोगी होवै वैसी सामिल रक्खी गइ हैं; इसीसें अन्य धर्मवालोंको भी मध्यस्थ दृष्टि रखकर सच्चा क्या है ? और झूँठा क्या है ? वो ध्यानमें लिया जावै. और इस बाबतका सोच विचार करकें यह किताव पढी जावे, या वे पढ लेवें तो उन्होंकोंभी जरूर अत्यंत लाभ-फायदा प्राप्त होवैगा. अगर तो कोइ कोइ बात या बाबत समजमें न आ सके तो उस संबंधमें मुझको प्रश्न लिखें भेजे जायेंगे तो वेशक मैं उन्का योग्य खुलासा विदित करुंगा.

शुरूमें यह पुस्तक बनानेके वक्त मेरा छपावानेका ईरादा बिलकुल न था; परन्तु मेरे प्रिय स्वदर्शनी और अन्यदर्शनी मित्रोंकी प्रेरणासें छपवाकर प्रसिद्ध करनेका समय सानुकूल हुवा.

इस पुस्तकके बहुतसें खरीददार हैं और दूसरेभी बहुत खरीदनेवाले उत्सुक होनेका संभव है, उसीके लिये बहुत नकल छपवानेके खर्चमें पेस्तरसेंही पैसेकी मदद देकर आज तक गुजराती भाषामें तीन आवृत्ति छपकर बिक चुकी हैं और यह हिंदीभाषामेंभी इसीतरह छपवानेकी उत्सुकतासें मकसुदावादवाले रायबहादुर बुधसिंघजी साहबकी भव्य जीवके हितार्थ छपवानेकी इच्छा हुइ और बाबु साहबने मुझकुं फरमाया उससें मेने बाबुसाहबकी तर्फसें यह किताब छपवाइ.

मेरी लिखी हुइ गुजराती किताब छपवानेमें मेरे मित्र कुंवरजी आणंदजी भावनगर निवासीने बहुतसी मदद दीथी, कितनीक जगह मेरे लेखके हस्तदोषका भी वे सुधारा करकें छपवानेके लिये भेजा करते थे और [उन्होंने] उसके लिये प्रशंसनीय महेनत लीथी; वास्ते मैं उन्ह महाशयका उपकार मानता हुं; क्या कि गुजराती भाषाका [यह] पुस्तक सुधारा गयाथा तो उसपरसें यह हिंदिभाषाका ठीक बनानेमें आया.

पुनः यह पुस्तक बनानेमें मेरी शक्ति प्रफुल्लित करनेवाले मेरे सबसें पेस्तर उपकारी पुरुष थे कि जिनका मैं कुछ वर्णन करता हुंः-मैं जब आठ वर्षकी उमरका हुवा तब अहमदाबादवाले शाह ठाकरसी पुंजाभाई कि जो भरुचमें दफतरदार थे. उन्होंका मेरेपर बडा प्यार था और उन्होंने मुजको हमेशः नियम धारण करनेका शिखाय

और पोषध वगैरः करनेका अभ्यास करवाया. उस दिनसें मेरी स्वधर्मपर विशेष अभिरुचि–प्रीति उत्पन्न हुइ.

पीछे मेरी चौदह वर्षकी उंमर हुइ उस वक्त श्री हुकम मुनिजीका समागम हुआ, तो उन्होंनें मुझकों आगम सार नवतत्वके छुटे बोल शिखाये, कितनीक अध्यात्मिक बातें भी एकान्तमें समजा दी, और सूत्र पढने–वांचनेकी छुट्टी बतलाइ, जिस्सें मैंनें बहुतसें ग्रंथ बहुत वक्त वांच लिये उससें मुझको स्याद्वाद मार्गकी श्रद्धा हुइ.

कुछ समयके बाद श्रावककों सूत्र पढने मुनासिब ही नहीं है ऐसा मुझकों विदित हुआ, और श्री हुकम मुनिजीका बताया हुआ एकांत मार्ग जैनशैलीके आगमोंसें विरूद्ध कथनवाला समजनेमें आया, उससें संवत १९२१ की सालमें मैंने श्री हुकममुनीजीका प्रसंग छोड दिया.

तत्पश्चात् पंजाबी तपश्वीजी साहब श्री मोहनलालजी और मुनिमहाराजजी साहब बुटेरायजी महाराजका प्रसंग हुवा, जिससें उन्होंके पाससें मैंनें स्याद्वाद मार्ग समज लिया, और श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कियें, और कितनीक बातोंका बोधभी हुआ.

उस बाद संवत १९४२ की सालमें मुनीमहाराजजी श्री आत्मारामजी साहबजीकी मुझकों भेट हुइं और उन्होंके प्रसंगसें ज्यादे बोध प्राप्त हुआ.

संवत १९२८ की सालके बाद मैंने व्यापारकी उपाधि कमती कर डाली, उससें शास्त्रावलोकनकी उत्तम तक हाथ लगी, उसमें श्री कलिकालसर्वज्ञ हेमाचार्यजी महाराज, श्री हरीभद्रसूरीजी और न्यायशास्त्रपारंगत श्रीमद् यशोविजयजी वगैरः अनेक आचार्यजी और महोपाध्यायजी आदिके बनाये हुवे ग्रंथ वांच लिये, जिससें अच्छा बोध हुवा. कहनेका तात्पर्य यही है कि मेरेमें यह पुस्तक बनानेकी जो कुछ शक्ति प्राप्त हुइ सो सब उपकार उक्तं महान् पुरुषोंकाही है, और उन्हीकाही आभारी–ऋणी हुं कि जिसका बदला देनाभी दुर्लभ है.

इस पुस्तककी गुजराती प्रतके ३०५ पत्र तक आचार्य महाराजजी श्री आत्मारामजी महाराजजीने तपासकर शुद्ध कर लिये थे, और पीछेके विभागके पत्र उन्ही महात्मनजीकों मैं भेजनेवाला था; मगर अफशोषका मुकाम है कि उतने वक्तमें उन्ह आचार्यजीका स्वर्गवास हो गया; उससें मनका संकल्प मनहीमें रहगया. बस इतनी बात मेरे उपकारी महाशयोंकों निवेदन करके मैं नमस्कार करता हुं.

अब इस पुस्तकके पढनेवाले साहबोंसे मेरी अंतिम प्रार्थना है कि यह पुस्तक मैंने बालखेलके जैसा बनाया है, उसमें कुछ भी भूल चूक हो गइ हो तो उसें आप कृपालुजन सुधारकर पढनेकी तस्दी लेवें और वो भूल मुझको विदित होनेके लिये दयालुतासें लिख भेजें कि जिससें वो भूल सुधर जाय. अलम्.

भरुचबंदर
संवत १९६५
प्रथम श्रावण वद बीज

आप स्वधर्मियोंका कृपाभिलाषि.
अनूपचंद मलुकचंद.

प्रश्नोत्तररत्नचिन्तामणिकी अनुक्रमणिका.

अठाहर दूषण निवारककी अनुक्रमणिका.

श्री विश्वेश्वरवन्दे.

श्री प्रश्नोत्तर–रत्नचिन्तामणि.

---

१ प्रश्नः—जैनी किस लिये कहे जाते हैं?

उत्तरः—जिनराजके सेवक अर्थात् श्री जिनेंद्र महाराजके वचनरुपी अमृतका पान करनेवाले हैं उस सववसें जैनी कहे जाते हैं?

२ प्रश्नः—जिन वो कौन हैं?

उत्तरः—राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम अज्ञान, रति, अराति, शोक, हास्य, जुगुप्सा इत्यादि भावशत्रुओंकों जीतनेवाले हो सोही जिन है.

३ प्रश्नः—पूर्वोक्त रागद्वेषादि किसने जित लिये हैं?

उत्तरः—तीर्थंकर और सामान्य केवलीओंने.

४ प्रश्नः—तीर्थंकर वो कौन हैं?

उत्तरः—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारुप चतुरविध संघकी स्थापना करके धर्म-तीर्थ प्रवर्त्ताकर अनेक भव्य जीवोंको संसार समुद्रसें पार करते हैं वोही तीर्थंकर कहेजाते हैं

५ प्रश्नः—तीर्थंकर और सामान्य केवलीमें क्या तफावत है?

उत्तरः—स्वयमेव बोध पा कर सर्व जीवोंको धर्मोपदेश देकें तार दें वो तीर्थंकर, ओर पूर्वोक्त तीर्थंकरका धर्मोपदेश अंगीकार करकें केवलज्ञान प्राप्त करें वो सामान्य केवली.

६ प्रश्न—सिद्ध हुवे सामान्य केवली और तीर्थंकरमें क्या तफावत है?

उत्तरः—सिद्धमें तो दोनू समान हैं, कुच्छ तफावत नहीं, उनकों किसी दिन पुनः संसारमें आनेका नहीं और शरीरसें राहित हैं?

७ प्रश्नः—वर्त्तमान समयमें कोइ तीर्थंकर हैं?

उत्तरः—वर्त्तमान कालमें इस क्षेत्रकी अंदर कोइ तीर्थंकर नहीं हैं. महाविदेह क्षेत्रमें हैं; मगर वहां जानेकी अपनेमें शक्ति ताकत नहीं है.

८ प्रश्नः—तीर्थरक्षक देवताओंकी मददसें वहां जा सके या नहीं ? कोइ आगेके वक्त में जाकर आया हो तो उनके नाम जाहिर करो.

उत्तरः—स्थुलीभद्रजीकी भगिनी यक्षानें अपने भाइ श्रेयकको पर्युषण पर्वमें शक्ति रहित होनेपरभी पोरसी, साढपोरसी, आदि पच्चख्खाण करार्के दिनभर उपवास कराया, श्रेयक क्षुधाकी पीडा भुक्तकर उसी दिन मर गया यक्षाकों खेद प्राप्त हुवा. ऋषिघातका प्रायश्चित लेनेकों संघके पास गइ. शुद्ध भावसें प्रेरणा की हुइ होनेसें संघने प्रायश्चितकी ना कही, यक्षा इससें संतुष्ट न हुइ ओर श्री सिमंधरस्वामीके पास उसका खुलासा पूंछ आनेका आग्रह कीया, शासनदेवीकी सहायता-मददसें यक्षा श्री सिमंधरस्वामीके पास गइ भगवान् श्री सिमंधरस्वामीजीने भी प्रायश्चित न दीया; मगर चार चूलिकाएं सुनाइ. यक्षानें वे चार चूलिकाएं संघके आगे कह बतलाइ. संघने आचारांगजी और दशवैकालिकजी सूत्रमें उनकी योजना की. जो चार चूलिकाए सांप्रत समयमें (अबी) भी भावना, विमुक्ति, रति कल्प और विचित्रचर्या ये नांवसें पूर्वोक्त दोनू सूत्रोंमें विद्यमान है.

पुनः कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजीने खुद कितने भवके पश्चात् (मैं) मोक्षगति पाउंगा, वो जाननेके लिये शासनदेवीकों श्री सिमंधर स्वामीके पास भेजीथी इत्यादि अनेक दृष्टांत मोजूद है.

९ प्रश्नः—तीर्थंकरकों देव किस लिये मानने चाहियें ?

उत्तरः—दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा. काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अव्रत, राग ओर द्वेष-यह अठारह प्रकारके दूषण मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवताओंमें रहे हुवे हैं. तीर्थंकर देवमें उक्त कथित एकभी दूषण नहीं होता है, जन्म मरण पुनः करनेका नहीं होता है, सर्वज्ञ है, धर्मका उपदेश करते हैं, अनेक भव्यजीवोंकों तारते हैं. फिर उन्हांके फरमाये हुवे आगम श्रवण करै तो अपने आत्माका कल्याण होने रूप उपकारभी उन्हींकाही है. वास्ते उन्होंकों देव मानना.

१० प्रश्नः—अन्यमतावलंबी जिनकों देव मानते है तिनकों अपनभी देव माने या नहीं ?

उत्तरः—पूर्वोक्त अठारह दूषणोंसें रहित हो तो उन्होंकोंभी देव मान लेवै तो किंचित्भी दूषण नहीं.

११ प्रश्नः—अन्य देव दूषण युक्त हैं ऐसा क्यौ कहा जाय?

उत्तरः—उन्होंके चरित्र, मूर्तिये और (उन्हीके) शास्त्रोंसें दूषण सिद्ध होते हैं तो फिर देव क्योंकर माने जाय?

१२ प्रश्नः—तीर्थंकरदेवने आगम लिखे हैं या और किसीने लिखे हैं?

उत्तरः—तीर्थंकरदेवने शिष्योंको सुनाये, शिष्य संपूर्ण ज्ञानवान् हुवे. स्मरणशक्ति तीव्र होनेसें श्री महावीर स्वामीजीके निर्वाण पश्चात् ९८० वर्ष तक उन्होंनें मुखपाठपर रक्खे और पढाये, दिन दिन यादशक्ति कम हो जानेसें देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखनेका प्रारंभ किया.

१३ प्रश्नः—अगले आचार्य महाराजाओंनें क्यौं नहीं लिखवाये?

उत्तरः—मुनिमाहाराज आरंभके त्यागी हैं. लिखनेमें आरंभ होवै वो दोषसें डरकर नहीं लिखवाये.

१४ प्रश्नः—देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण आरंभसें क्यौं नहीं डरे?

उत्तरः—आपने ज्ञानचक्षुसें देखा कि अब पुस्तक नहीं लिखावेंगे तो सबकी स्मरण शक्ति हीन हुइ होनेसें सर्व शास्त्रका लोप हो जायगा और बडा दूषण प्राप्त होगा. इस लिये अपवाद सेवन करकेंभी पुस्तक लिखवानेका प्रारंभ किया. यह अधिकार बृहत्कल्पकी भाष्यमें स्फुटपनेसें मौजूद है.

१५ प्रश्नः—वै आगम किनके पाससें सुनने चाहियें?

उत्तरः—गुरुमहाराजके पाससें सुनने चाहियें.

१६ प्रश्नः—गुरुमहाराज किनकों मानने चाहियें?

उत्तरः—जो गुरु पापसें डरें, सत्योपदेश देवें, हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीगमन और धन वगैरः परिग्रहके त्यागी होवें, निरंतर शास्त्राध्ययन करते होवै उन्हीकों गुरु मानने चाहियें, और उन्हीके मुखद्वारा धर्मोपदेश सुनना चाहिये.

१७ प्रश्नः—पूर्वोक्त सब गुण न हो; मगर शास्त्रोपदेश करजानते हो तो उनके पाससें धर्म सुननेमें क्या हरकत है?

उत्तरः—उपदेश करनेवाला मनुष्य उत्तम गुणवाला हो, तभी श्रोताओंके मनपर

अच्छी असर कर सक्ता है, और आपके उत्तम गुणोंकी छाप श्रोताओं-
लेके हृदयमें पाड सक्ता है; परंतु जो उपदेशकही गुणहीन हो तो "परोप-
देशे पांडित्यं" जैसा होता है, आप मिथ्या ढोल धारण करके भवभ्रमण
बढाते जाते हैं और श्रोताजन अपना आत्मा सुधार सक्ते नहीं; सबब कि गुरु
कहते है मगर उन्हींसें पालन किया जाता नहीं है, तो अपन किसतरहसें
धर्म पालन कर सके? ऐसा मनमें आनेसें लाभ हांसिल नहीं होता है.

१८ प्रश्नः—यत्किंचित् सारभूत धर्मतत्त्व क्या है सो कहो?

उत्तरः—प्रथम तो धर्मकी योग्यता करनी.

१९ प्रश्नः—धर्मकी योग्यता किस रीतिसें हो सके?

उत्तरः—मार्गानुसारीके गुण पैदा करनेसें धर्मकी योग्यता हो सके.

२० प्रश्नः—मार्गानुसारीके गुणका विवेचन करो?

उत्तरः—प्रथम न्यायविभव यानि सब प्रकारके व्यापारमें न्यायपूर्वक वर्त्तन चलाना, अन्याय छोड देना, नौकरी करता हो तो मालिकने सुपरद किये हुवे कार्यकी अंदरसें पैसा नहीं खा जाना, लांच-रिस्वत नहीं खानी, कमअक्कलवाले मनुष्यको ठगलेनेका प्रयत्न नहीं करना, व्याजवटा करनेवालोंकों याद रखना चाहियें कि सामनेवालेकों ठगकर व्याजके ज्यादे पैसे नही लेना, मालमें भेलसेल करकें नहीं वेचना, सरकारी नौकरी करनेवालोंकों मुनासिब है कि अफसरोंकों प्यारे होनेके लिये लोगोंके उपर कायदेविरुद्ध जुल्म नही गुजारना, मजदूरी या कारीगिरीका धंधा करनेवालोंकों योग्य है कि ठहराये हुवे दाम लेकें बराबर काम करना-दिलमें चोरी रखकर काम नहीं करना, ज्ञाति या पंचोंमें शेठाइ करनेवालोंकों योग्य है कि आपसें विरुद्ध मतवालेकों द्वेषबुद्धिसें गैरव्याजवी गुन्हागार नहीं ठहराना, किसी मनुष्यने अपना कुच्छ बिगाड किया हो वो द्वेषसें उसके उपर झूंठा कलंक नहीं धरना या उसकों नुकसान नहीं करना, किसीकों नाहक अपराधी-दोषी नहीं बनाना, धर्मगुरुके बहाने-मिससें पैसे लेनेके वास्ते धर्ममें नही हो वो बात नहीं समझानी, अथवा सेवककी स्त्रीके साथ अयोग्य-नालायक काम नहीं करना, धर्मनिमित्तसें पैसा निकलवाकर अपने घरका-

र्ममें खर्च नहीं देना, धर्मसंबंधी कार्यमें खर्च करनेके वास्तेभी झूंठी गवा-साक्षी पूर कर पैसा नहीं लेना, धर्मकार्यमें कुच्छ फायदा होता हो तो उस-के बदलेमें मनमें शोचना कि अपन धर्मके लिये झूंठ बोलते हैं-अपने कामके लिये नहीं बोलते है वास्ते उनमें दोष नहीं, ऐसा समजकर उलटासूधा क-रना वोभी अन्याय है. जिनमंदिर अगर उपाश्रयमें प्रभावना होती हो वो एकसें ज्यादे वक्त लेनी वोभी अन्याय है. जिनमंदिर अथवा उपाश्रयके कार्यभार करनेवालोंकों उस खातेके मकान अपने खानगी कार्यमें नहीं वापरना. या उस खातेके मनुष्यद्वारा खानगी कार्य करवाना नहीं. कोइ म-नुष्य ज्ञातिभोजन कराता हो और उसके साथ कुच्छ तकरार वा अदावत हो, उस्सें उनकी भोजनसामग्री बिगाडनेके इरादेसें लढाइ खडी करकें, पक्-वान्न वगैरः चाहियें उस्सें ज्यादे लेकर बिगाड करवाना, एकसंप करकें ज्यादे खाजाना और भोजनसामग्रीमें टोटा पडे वैसीही युक्तियें करनी वोभी अन्याय है. परस्त्रीगमन नहीं करना. स्त्री या पुरुष कुच्छभी सलाह पुंछे तो मालुम होनेपरभी खोटी-बदसलाह नहीं देनी. अपने मालिकके हुकम सिवा उनका पैसा नहीं उठाना एकदूसरेकों लढाइ हो जाय ऐसी समझ नहीं देना. अपनी प्रतिष्ठा बढानेके लिये असत्य धर्मोपदेश नहीं देना. अन्यमतावलंबी धर्म संबंधी सच्ची बात कहता हो वोभी 'ये धर्म बढ जायगा' ऐसा जानकर वो बात झूंठी पाडनेकी कुयुक्ति करनी वोभी अन्याय है. आप अविधिसें चलता हो और दूसरे पुरुषकों विधियुक्त चलता देखकर उनकेपर द्वेष धारण करना वोभी अन्याय है. जो पुरुष विधिसें वर्तन चलाता है उसकों धन्यवाद देना और आपसें उस मुजब वर्त्ताव न हो सकता हो तो उनके लिये पश्चाताप करना वो अन्याय नही है. सरकारकी या म्युनिसिपालिटीकी जकात चोरी करनी, स्टेंप चोरी करनी, सच्ची पैदास छुपाकर कमती पैदास-आमदनीपर सरकारकों टया-कस कम देना वोभी अन्याय है. चोरी करनी, दूसरी कुंजी लागु करनी या लूंट चलानी वोभी अन्याय कहाजाता है. गुणवंत साधु मुनीराज, भगवंत और गुरुमहाराजके अवर्णवाद नहीं बोलना. शुद्ध धर्मकाभी

अवर्णवाद नहीं बोलना. और लडकीके पैसे लेकर आपका व्याह नहीं करना. इत्यादि बहुतसे अन्याय हो सकते हैं उन सबका त्याग करके व्यापार करना सो मार्गानुसारीका प्रथम लक्षण है.

२ शिष्टाचार यानि ज्ञान और क्रियासें करके उत्तम आचरणवाले मनुष्योंके आचार उनकों शिष्टाचार कहते हैं. उनमें लोग निंदा करे वैसा कार्य नहीं करना. राज दंडके पात्र होवे वैसाभी काम नहीं करना. वेश्या तथा परस्त्रीगमनका त्याग करना. जुगार नहीं खेलना, शिकार करनेकों न जाना. चोरी न करनी. बहुत जीवहिंसा होवे वैसा व्यापार नहीं करना. जिस कामसें किसी मनुष्यकों नुकसान होवे या किसीका जान जावे ऐसा झूठ नहीं बोलना बनसके तो सर्वथा झूठ नहीं बोलना और मांस, मदिरा, ताडी, सहत, मख्खन, कंदमूल वगैरः अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाना.

३ समान धर्म आचारवालोंके साथ व्याह करना; लेकिन एक गोत्रवाला हो उसके साथ व्याह नहीं करना. हेमचंद्राचार्यजीनें एक गोत्रवालेके साथ व्याह-सादी करनेका योगशास्त्रमें निषेध-मनाइ किया है. स्त्री भर्त्तारका एकही धर्म हो तो धर्मसंबंधी तकरार उठनेका संभव नहीं रहता और धर्मकार्य करनेमें परस्पर साधनभूत हो पडे.

४ सब प्रकारके पापसें डरना. पाप करनेसें इस लोकमें निंदा होती है और अपर जन्ममें नरकादि दुःख भुक्तने पडते हैं.

५ देशाचार मुजब चलना यानि जिस देशमें रहते होवे उस देशमें जो जो काम करनेसें निंदापात्र न हुवा जावे उस मुजब चलना. वस्त्र आभूषण अशन पानादि देशकी रीति मुजब उपयोगमें लेना जिस देशमें जो कपडे पहने जाते हो उसकों छोडकर अन्य देशकी रीतिके नहीं पहनना.

६ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और राजा, प्रधान, खजानची, कोतवाल वगैरः किसी मनुष्यके अवर्णवाद नहीं बोलना.

७ जिस घरमें बारी दरवाजे वगरः पैठने निकलनेके बहुतसे मार्ग हो वैसे घर-मकानमें नहीं रहना वहां रहनेसें चोर मनुष्यकों आनेजानेका तथा ओरतकों बदचलन चलानेका सुगम पडता है.

८ अशुद्ध स्थानवाले घरमें नहीं रहना. जिस घरकी जमीन उधेई लगी

हुइ हो, जिस मकानके नीचे हड्डीयें तथा मुर्दे गाडे हो अथवा मुर्दे जलाये हुवे हो अगर आसपास वेश्या, जुगारी, चोर, कसाइ वगैरः रहते हो वैसे घर छोडकर अच्छे पडोसमें रहना. पडोशी धर्मबंधु हो तो सर्वोत्तम समझना. अन्यमतावलम्बीके पडोससें उनके आचार विचार अपनेमें घुस जाते हैं, वो वहुत अंशः उठानेपर भी पीछेसें दूर नहीं हो सक्के है और वहुत करकें अनेक पापबंधनमें पडना पडता है.

९ अति गुप्त स्थानमें नहीं रहना. रहनेसें गुणिपुरुषकों दान देनेका अवकाश नहीं मिलता है. और आग प्रमुखके भय वक्त जानमाल बचानेका मुश्किल हो पडता है.

१० अति प्रकट स्थानमें भी नहीं रहना. रहनेसें स्त्री वर्ग पूर्ण प्रकारसें लज्जामर्यादा नहीं समाल सकता है. और दरवाजेके आगे सोर गुल मच रहा हो तो स्थिर चित्तसें कार्य नहीं हो सकता है.

११ सत्संग यानि गुणी पुरुषका समागम करना. मुनि महाराज, देवगुरु भक्तिकारक श्रावक और प्रमाणिक गृहस्थोंकी साथही विशेष परिचय रखना. मिथ्यात्वीका संग नहीं करना. करनेसें अपनी धर्मबुद्धि नष्ट हो जाती है. सुसंगसें बुद्धि अच्छी होती है. उनके सदाचरण देखकर अपनेकोंभी सदाचरण ग्रहण करनेका अवकाश मिलता है. जुगारी, लुचे, चोर, विश्वासघाति, ठग वगैरः की सोवत करनेसें वैसें नीच कृत्य करनेका इरादा सहजही होता है; वास्ते वैसें अधर्मीयोंका संग छोड देना.

१२ माता पिताकी आज्ञामें रहना, उनकों पूजनेवाले होना, हमेशां प्रातःकालमें उनका वंदन करना, परदेशमें जानेके और विदेशसें आनेके वक्त भी विनयपूर्वक चरणपूजन करना, जो वृद्ध हुवे हो तो उनकी खाने पीने और पहनने ओढनेकी शक्ति मुजब तजवीज रखना. कोइ वक्त गुस्सा नहीं करना. कटुवचनका उपयोग नहीं करना, उनके आदेशका उल्लंघन नहीं करना. कभी गैरव्याजबी नहीं करने योग्य काम वतला देवें तो मौनवृत्ति धर लेनी. अयोग्य कार्य करनेसें गैरफायदे होते हैं उनका विनयपूर्वक बयान करकें समझा देनेका प्रयत्न करना उनका अपनेपर अवर्णनीय उपकार है. माताने नौ महिने तक उदरमें रखकर-बोजा वहककर अपने लिये अनेक वेदनायें सहन की हैं. विष्टा मूत्रादि मलीन तत्त्वोंसें अपना वेरवेर प्रक्षालन कीया है. फिर जब अपन रोगग्रस्त हुवे हो तब वो भूंख, प्यास सहन कर अनेक उपचार करकें अपना शुद्धबुद्धिसें पालन करती है. इसके उपरांत परोक्ष रीतिसें उनके उपकारका जलप्रवाह निरंतरही

वहन करता है. मातापिता तो जगत्में कल्पवृक्ष समान हैं. अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी त्रिशलादेवीके उदरमें आये बाद माता दुःखी होगी, ऐसा शोचकर किंचित् वक्ततक चलायमान नहीं हुवे; उतनी देरमें तो माताजी अनेक कल्पांत करने लगे, मुर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़े ! उसी वक्त भगवंतजीने अभिग्रह धारण कर लिया कि 'माता पिताका स्वर्गवास हुवे बादही दीक्षा ग्रहण करुंगा.' अहा ! पुत्रकी पूजनीक वुद्धि तर्फ दृष्टि करो. राम ओर लछमन तथा पांडवोंने मातापिताकी जो सेवा की है, उसका वर्णन सहस्त्र जिव्हासेंभी करना मुश्किल है. उनके किये हुवे उपकारका वदला अपन कोइभी तरहसें नहीं दे सकते हैं; तोभी निरंतर उनको धर्ममार्गमें योजनेके लिये प्रयत्न करकें भक्ति करनी.

१३ जहां स्वराज्यका या परराज्यका भय हो, वैसे स्थानमें नहीं रहना. क्यौं कि वहां रहनेसें धर्मकी, धनकी और शरीरकी हानि होती है

१४ पैदासके प्रमाणमें खर्च करना, पैदासके चार हिस्से कर देना. एक हिस्सा सिलकमें रखना, दूसरा हिस्सा व्यापारमें रोकना, तीसरा हिस्सा आपके तथा कुटुंबके खानेपीने और वस्त्रादिकमें वापरना, और चौथा हिस्सा धर्मकार्यमें व्यय करना. इस मुजव आमदनीकी व्यवस्था करनी. यदि पैदास कम हो तो दशवां हिस्सा किंवां अपनी शक्ति मुजव धर्मानिमित्तमें अवश्यद्रव्य व्यय करना वडी महेनतसें उदरपोपण होता हो तो मन-कोमल रखकर धर्मकार्यमें द्रव्य व्यय करनेवालेकी अनुमोदना प्रशंसा करनी.

१५ धनके अनुसार वस्त्राभूषण पहनना. कम द्रव्य हो और धनवान्के समान वस्त्र पहननेसें या ज्यादे धन हो और गरीवके जैसें पहननेसें लघुता-हलकापन हो जाय; वास्ते शक्त्यानुसार पोशाक रखना.

१६ शास्त्र श्रवण करनेमें चित्त पिरोना. बुद्धिके आठ प्रकारके गुण उपार्जन करना-यानि शास्त्र श्रवण करनेकी इच्छा करनी १, शास्त्र सुनना २, उनका अर्थ समझना ३, वो याद रखना ४, उसमें तर्क करना वो सामान्य ज्ञान ५, अपोह-विशेष ज्ञान मिलना ७, ऊहापोहसें संदेह न रखना ७, और तत्त्वज्ञान यानि फलानी चीज ऐसीही है ऐसा निश्चय करना ८, पूर्वोक्त रीतिसें शास्त्र श्रवण कर अपने औगुन छोड करकें उद्यमवंत होना

१७ अजीर्ण–बदहजमीके वक्त यानि खोराक हजम नहीं हुवा हो वैसे समयमें दूसरा नया खोराक नहीं खाना. रोगोत्पत्ति होवै वैसीभी वस्तु नहीं खानी और स्वादिष्ट वस्तु देखकर शक्ति उपरांत भोजन नहीं करना.

१८ अकाल–बे वक्त भोजन नहीं करना. भोजन करनेका जो वक्त कायम किया गया हो वही वक्त भोजन करना यानि वक्त नहीं भूलना–चूकना.

१९ धर्म अर्थ और काम यह तीनू वर्ग साधन करना–मतलब यह कि गृहस्थावस्थामें जो समय धर्म साधनेका हो वोही समय धर्म साध लेना, पैसे कमानेके वक्त धनोपार्जन करना, और भोग–उपभोग भोगनेके वक्त उनमें तत्पर रहना. धर्मसाधनके समय द्रव्य उपार्जन करनेका ध्यानमें रक्खे तौ धर्मसें पतित हुआ जाता है. सब वस्तुकी प्राप्ति धर्मसेंही होती है. धर्मसें पतित हुवे तौ तीनू वर्ग हाथमेंसें गयेही समजना; वास्ते दिनभरमें तीनुं वर्ग साधनेका वक्त मुकरर कर रखना कि जिससें धन पैदा करनेमें और संसारोचित कार्य करनेमें विघ्न न आवै, जगत्में निंदा न होवै और अच्छी तरहसें धर्मसाधन हो सके उस मुजब चलना.

२० मुनिराज महाराजका दान देनेरूप आतिथ्य विनय पूर्वक करना. दुःखीजनकों अनुकंपादान देना, मुनिकी सेवा भक्ति करनेमें कुशल रहना और अहंकार रहित दान देना.

२१ जिनमतकी अंदर सन्मान पूर्वक राग धरना. नाहक झूंठा हठ–कदाग्रह नहीं करना.

२२ गुणीजनका पक्ष करना. उनकी साथ सौजन्यता और दाक्षिण्यता वापरनी. जो जो सुकार्य करनेके हो वो वो कार्य बंदरकी तरह चपलताईसें नही मगर स्थिरतासें करने चाहियें. निरंतर प्रियभाषित होना–किसीकों दुःख–बुरा लगै वैसा नहीं बोलना. अपने और पराये आत्माका उपकार करनेकी बुद्धि रखना, और गुणीपुरुषके अनुयाय वर्त्तन रखना.

२३ जिस देशमें जानेकी शास्त्रकार आज्ञा न देते हो या राजकी तर्फसें मना हो उस देशमें उद्धताई करके नहीं जाना. जो समय जो कार्य करनेकी आज्ञा–रजा न हो उस कालमें वो कार्य नहीं करना–जैसें कि उष्ण कालमें खेती करै तौ वर्षाकालके जैसी न होवे, वर्षाकालमें ठंडे पदार्थ खानेसें हजम नहीं होते हैं. और समुद्रपर्यटन

करनेसें नुकसान होता है. यवनके मुल्कमें जानेसें जबरदस्तीसें न खानेलायक चीज-अभक्ष्य खिला देवें और जबरदस्तीसें धर्मभ्रष्ट कर देवें-वैसे देशमें नहीं जाना. अपना वल समालकर काम करना; क्यों कि शक्ति उपरांत कार्य करनेसें धनकी और शरीरकी हानि होनेका संभव है.

२४ व्रतके अंदर स्थिर चित्तवाले, और ज्ञान सावधान ऐसे जो पुरुष होवे उन्हकी पूजा करनी. आत्महितार्थ उन्हके पाससें ज्ञान संपादन करना और उन्होंकी प्रवृत्ति मुजब चलना.

२५ पोषण करने लायक अपने कुटुंबका वस्त्र आहार वगैरःसें पोषण करना.

२६ हरएक कार्य शुरु किये पहिलेही शुभाशुभ परिणाम दीर्घदृष्टिसें विचार लेना और उस बाद शुरु करना.

२७ विशेषज्ञ यानि सामान्य और विशेषकों पहिचानते सीखना और उनके ज्ञाता होना.

२८ लोकवल्लभ यानि सब लोगोंकों वल्लभ लगे वैसा काम करना. किसीका दिल दुभाना नहीं, अनीतिसें और धर्मविरुद्ध आचरणसें लोगोंमें प्यार होनेकी इच्छा नहीं रखनी.

२९ लज्जावंत होना यानि निर्लज्ज कार्य नहीं करना.

३० विनयवंत होना. देव, गुरु, सुश्रावक, कुटुंबी, शिक्षक, हुन्नर सीखानेवाला तथा राजा, प्रधान, शेठ-शाहूकार जो कोइ गुणसें, धनसें, पद्वीसें और अवस्थासें करकें अधिक हो उन सबका यथोचित विनय करना.

३१ दुःखी मनुष्यपर दया करनेमें कुशल रहना. ज्यों बन सके त्यों हिंसाका काम नहीं करना.

३२ सौम्यदृष्टि रखनी. किसी वक्तभी कषायवाली प्रकृति धारण नहीं करनी कि जिससें दूसरेकों अपनेपर द्वेष पैदा हो आवे.

३३ छः शत्रुओंकों जीतना यानि कामका पराजय करना-मतलब कि परस्त्रीका बिलकुल त्याग करना-स्वस्त्रीकोंही सेवन करना. वोभी अपनी स्त्रीका जैसे रोगार्त्त पुरुष औषध खानेकी जरूरतसें ओषध खावें, वैसेंही ऋतुस्नानके वक्त केवल चित्तकी समाधी करनेके-उपाधि मिटानेके लिये सेवन करें. भावना तो छोड देनेकीही रखवें. कूत्तेकी तरह निरंतर वा एक रात्रिमें बहुत दफे स्त्रीसंग करना वो उत्तम पुरुषोंका

लक्षण नहीं है. नित्य स्त्री सेवनसें आपका और स्त्रीका शरीर निर्बल होता जाता है. फिर ऐसा बुरी आदनके लिये स्त्रीके विरह वक्त परस्त्री सेवनकी बुद्धि हो आती है. बहुत करकें दुनयांमें हलकापन प्राप्त होता है-कोइ विश्वास नहीं करता है-राजाके जाननेमें आवै तो दंड करता है. यह भवमें ऐसा होता है और आते भवमें नरकके दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते ज्यौं वन शकै त्यौं कामदेवकों वश्य करलेना. १, क्रोध-किसीके ऊपर गुस्सा न करना यानि सव प्राणियोंके ऊपर समभाव धारण करना. एक क्रोड पूर्व तक संयम पालन करके उपार्जन किया हुवा फल क्रोधके करनेसें क्षणभरमें नष्ट हो जाता है, और कुगतिका भाजन होना पडता है. हालाहल विष खाया हो तो एक वक्तही मरण प्राप्त करता है; लेकिन क्रोधरूपी हालाहलके ताबे हुवे प्राणियोंका अनंती वेर मरण होता है; वास्ते निरंतर क्षमागुण धारण करनेका सीखना चाहिये. २, लोभ-लोभी मनुष्यका चित्त हम्मेशां फिकरमेंही भटकता रहता है. उनकों किसी वक्त कोइभी प्रकारसें संतोष पैदा नहीं होता है. फिर लोभके वश्य होनेसें नहीं करने लायक काम करनेकों तैयार होता है, उससें इस दुनयांमें हीलना होती है और परभवमें भी दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते जिस औसरमें जो मिले उसीसें संतोषवृत्ति रखनी और नीतियुक्त उद्यम करना. अलगे जन्मोंमें जैसा उपार्जन किया होवै वैसा यह भवमें मिलता हैं. लोभ करनेसें कुच्छ ज्यादे नहीं मिलता है. ऐसा सोच-समजकर संतोष पकडना. क्योंकि संतोषसेंही लोभका पराजय होता है. ३ मान-गर्वदशा धरनेसें जगतमें हलकापन प्राप्त होता है. लोग गर्विष्ट-अहंकारीका उपनाम देते हैं गुरु-श्रेष्टका विनयभी नहीं हो सक्ता है, विद्या हुन्नर नही आते हैं और मनुष्यजन्म मिलने परभी धर्म नहीं साध सक्ता है; वास्ते मानकों छोडकर गंभीरता धारण करनी. ४, हर्ष-किसीभी कार्यमें अत्यंत राजी न होजाना क्योंकि हर्ष करनेसें गर्वकी सीढीपर चढनेमें देर नहीं लगती है. यह संसारमें सर्व वस्तुएं क्षणिक हैं. शरीर आज सुखी मालूम होता है और कल अनेक व्याधियुक्त होजाता है. लक्ष्मी चपल है यानि आज जिस मकानमें लक्ष्मी सोभायमान् हो रही हो उसी मकानमें दूसरे रोज भूतगण निवास करता है? वास्ते ऐसे अस्थिर पदार्थ पूर्वकृत पुण्यके सबबसें प्राप्त हुवे होवै तो उनका सदुपयोग करना; लेकिन अत्यंत हर्षित होकर गर्व नहीं करना. ५, मद आठ प्रकारके हैं. यानि जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, ऋद्धिमद, लोभमद, तपमद और विद्यामद यह ८ हैं जातिमद करनेसें नीच जातिमें उत्पन्न होता है. कुलमद करनेसें नीच गोत्र

बांधता है, बल पराक्रमका मद करनेसें आते भव-जन्ममें निर्बलता प्राप्त होती है रूपका मद करनेसें कुरूपता प्राप्त होती है, धनका या ठकुराइका मद करनेसें परभवमें दरिद्री पना प्राप्त होता है, ज्यों ज्यों मिलता जावे त्यों त्यों ज्यादे लोभ करै और मनमें इरादा करै कि मैं तो खोनेवाला हुंही नहीं, जो जो व्यापार करुंगा उनमें पैदाही करुंगा! अैसा आ जिवीकाका मद धरनेवाले मनुष्यकों किसी ना किसी वक्त भारी धक्का लगता है कि सब दिनोंका पैदा किया हुवा एक दिनमें चला जाता है और निर्धनावस्था प्राप्त होती हे; वास्ते लोभका मद नहीं करना. तपमद करनेसें तप निष्फल होता है, विद्याका मद करनेसें आपसें ज्यादे विद्वान हो उनकों मान नहीं दे सकता हे; मगर उनकी अवगणना करता है और आप ज्यादे ज्ञान संपादन नहीं कर सकता है, क्यौं कि गर्विष्ठ होनेसें शंका पडे वोभी दुसरेकों नहीं पूंछी जाती है और युं करते धीरेधीरे अपनी विद्या खो देता है और आते जन्ममें अज्ञानी होता है; वास्ते विवेकी मनुष्यकों यह आठों मद छोड देनेही चाहियें.

३४ कृतज्ञता यानि किसीने अपना उपकार किया होवै तो उनका अच्छा बदला देना, नहीं कि समय प्राप्त होनेपरभी उपकारकों भूल जाना.

३५ पोंचों इंद्रियोंकों तावे करनेमें तत्पर रहना, इंद्रियोकों छुट्टी छोडनेसें इस जन्ममें भी बहुत नुकसान होता है और परजन्ममें भी दुर्गति मिलती है. देखो स्पर्शेंद्रियके सुख भुक्तनेके लिये हस्ति बंधनमें पडता है. रसइंद्रियके विषयमें मछलियां बेजान होती हैं, घ्राणेंद्रियके विषयसें भौरा कमलपर बैठता है और सूर्य अस्त होजानेसें कमल बंध होवेही अंदर कब्ज होजाता है. चक्षु इंद्रियके वश होनेसें पतंग नामक जंतु दीपकपर गिरकर जान खो देता है. कर्णेंद्रिय के विषयसें हरिण शिकारीके तावे होकर मरणके शरण होता है. इस तरह एक एक इंद्रियकों छूटी छोडदेनेसें प्राण गुमाना पडता है तो जब पांचो इंद्रियोंके विषयोमें लुब्ध होनेसें परभवमें कैसे दुःख भुक्तने पडते है ? उनका वर्णन तो ज्ञानी महाराजही कर सकै; वास्ते यथाशक्ति विषयका संकोच करना. इस मुजब मार्गानुसारीके पेंतीस गुण जिस मनुष्यमें होवै वोही पुरुष धर्मके लायक जानना एसे गुणोंसें मनुष्य समकितवंत होता हे श्राद्धधर्म और मुनिधर्मकों पाता है और अंतमें मुक्तिसुखकों हाथ करता है.

३१ प्रश्नः—समकित वो क्या है ?

उत्तरः—समकितके बहुत प्रकार हैं; लेकिन अल्प मात्र कहता हुं. समकितके मुख्य दो प्रकार हैं यानिं व्यवहार समकित और निश्चय समकित यह दो हैं. उनमें व्यवहार समकित सो आगे कहे हुवे अठारह दूषण रहित ऋषभादि चोविश तीर्थंकरकों शुद्ध देव तथा तरणतारण नावरूप मानने चाहिये. जो देव संसारके पारकों नहीं पहुंचे हो उनको देवबुद्धिसें देव नहीं मानना. प्रभुने मुनिका जो मार्ग बताया हैं उन मार्गपर चलनेवालेकों गुरुबुद्धिसें गुरु मानना. साधु और श्रावकोंका धर्म प्रभुने जिस मुजब बतलाया है उसी धर्मकोंही सत्य मानना यह तीनों तत्त्वोंके ऊपर श्रद्धा रखनी सोही व्यवहार समकित है. निश्चय समकित वही है कि पहिले अपने आत्माका स्वरूप और पुद्‌गलका स्वरूप जानना. आत्मामें चेतन गुण है और पुद्‌गलमें जड गुण है, उससें आत्मामें सब पदार्थ जाननेकी शक्ति है; मगर कर्मसें करकें आत्मा छा गया है उससें अभी संपूर्ण हाल–भाव नहीं जान सक्ता है. ऐसा निश्चय होनेसें जो जो बाह्य पदार्थ हैं उनके ऊपरसें मोह छोड देता है. फक्त आत्मगुणमेंही आनंद मानता है. जो संसारी आनंद है वो सब अस्थिर आनंद है और उनकों सच्चा आनंद मान लेनेसें कर्मबंधन होता है और दुर्गतिमें उनके दुःख भुक्तने पडते है. आत्माका ज्ञान ज्यौं ज्यौं निर्मल होता जाता है त्यौं त्यौं सांसारिक कार्यमें ममता घटती जाती है. कर्मके योगमें जो सुख दुःख प्राप्त होते हैं, उनकों कर्मके फल समझकर रागद्वेष नही करते हैं, पुद्‌गलके संयोगसें कर्म बंधन हुवे है सो भुगते जाते हैं, ऐसा विचारता हैं. इस मुजब चित्तकी सुंदरता होती है; परंतु विशेष विशुद्धि नहीं हुइ उस्सें संसारकों नहीं छोड सक्ता है. श्रावकके व्रतभी नही ले सक्ता है; लेकिन भावना रात दिन बनी रही है, अनंतानुबंधी कषायकी चोकडी तथा समकितमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी यह सात प्रकृति क्षय हुइ है. ऐसें जीवोंकों समकितकी प्राप्ति होती है, वो निश्चय समकित कहाजाता है.

२२ प्रश्नः—निश्चय समकित दृष्टिकों व्यवहार समकित होवे या नहि?

उत्तरः—बहुत करके होवे.

२३ प्रश्नः—व्यवहार समकितवालेकों निश्चय समकित होवै या नही?

उत्तरः—होवैभी नही और नहींभी होवे.

२४ प्रश्नः—अकीले व्यवहार समकितसें क्या फायदा होता है?

उत्तरः—व्यवहार समकित निश्चय समकितका कारण है. देवगुरुकी श्रद्धा हुइ कि गुरुमहाराजकी सेवा करै. गुरुमहाराज धर्म सुनावें इस्सें अपना आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जाने. यु करते करते क्रमसें निश्चय समकित होवे.

२५ प्रश्नः—देवकी भक्ति किस प्रकारसें करनी?

उत्तरः—देव अभी नहीं विचरते हैं; किन्तु उन्होंकी मूर्ति हैं वो अपनेकों आलंबनभूत हैं, उससें पाषाणकी, धातुकी, रत्नकी, काष्टकी और दांतकीः—जैसी अपनी शक्ति हो वैसी भगवंतजीके आकारवाली मूर्त्ति करा लेवै, यथाशक्ति सुंदर मंदिर बंधवा लेवै और आचार्य महाराजके पास उन प्रतिमाजीकी प्रतिष्ठा कराकें उन्हकी भक्ति करै अथवा पूर्व पुरुषोंने ऐसे जिनबिंब पधराये हुवे होते हैं उन्हीका अष्ट द्रव्यसें करकें पूजन करै तथा उन्हकी समीपमें अच्छे प्रकारसें गुणग्राम करै.

२६ प्रश्नः—प्रतिमाजीकों पूजनेसें क्या लाभ होता है? प्रतिमाजी कुच्छ भगवान् नहीं हैं तो उनकों कैसे भावसें पूजनी चाहियें?

उत्तरः—भगवंत धर्म प्रकाश गये हैं उनके आधारसें धर्मका स्वरूप—आत्माका स्वरूप जान लिया है उससें वै उपकारी पुरुष हैं, वै उपकारी पुरुष तो निर्वाण प्राप्त हो गये हैं, तब प्रतिमाजीमें उन्हीके नांवका आरोपण करकें भक्ति करनी. जैसे अपने बुजुर्ग—बडे पुरुष या तो मान्यकारी पुरुषकी तसवीर होती है और उनका कोइ गुणग्राम करै तो अपन कैसे खुशी होते हैं; अगर अभी अपने राज्यकर्त्ता शहनशाह एडवर्ड या गव्हनर जनरल, गव्हर्नर वा प्रतिष्ठित अधिकारीओंकी तसवीर—छवी या पुतले जगह जगह बैठाये हुवे हैं और ऐसा किया हुवा देखकर वै अधिकारी तथा उन्हके उपर प्रीतिभाव धारण करनेवाले लोग राजी होते हैं और वै अधिकारी

आपकोंही मान्य मिला समझते हैं, तैसे अपनभी भगवंतकी मूर्ति बैठानेसें उन्हीकों मान्य देते हैं. उन्होंकों मान्य देनेका दिल हुवा वो शुभ अध्यवसायका लक्षण है और उससें जीव बडा भारी पुण्य उपार्जन करता है. जो जैन नांव धारण करकें ढुंढक कहाते है वै प्रतिमाजीकों नहीं पूजते हैं जो उन्हकी अज्ञानता है, वै जैनशास्त्रकों मान्य करनेका कहते हैं; मगर वैं शास्त्रमें कहे मुजब नहीं चलते हैं. इस बाबतके दृष्टांत श्री प्रतिमाशतक ग्रंथमें श्री यशोविजयजीनें बहुतसें दीये हैं, तथा समकितशल्योद्धार नामक ग्रंथ छपा गया है, उनमेंभी बहुतसें दृष्टांत हैं इस लिये यहांपर विस्तारसें नहीं लिखता हुं. भगवान् विचरतेथे उस वक्तकी प्रतिष्ठाकी हुइ प्रतिमाजीयें अभि विद्यमान् हैं और ढुंढकमत तो अभी निकला है, तब जो प्रतिमा पूजनेका अयोग्य होता तो भगवंत थे जब क्यौं बनवाइ गइ? उस पीछेभी बहुतसें आचार्य हुवे हैं, कि जिनके उपदेशसें बहुतसे श्रावकोंने प्रतिमाजी करवाइ हैं तथा अनेक प्रकारसें पूजाभी की है. गृहस्थावासमें रहे हुवे श्रावकभाइयोंकों भगवंतके गुणग्राम करनेके लीये अनुकूलता भरी जगह देखें तो फक्त जिनमंदिरही है और उनकी अंदर भगवंतके गुणोंका स्मरण होनेके वास्ते जिनबिंबकी स्थापना की है. उन्हों की आकृति एसी सौम्य है कि उन्होंकों देखनेसें भगवंतके गुण स्मरणमें आते है. अपने वृद्ध पुरुषकी या मानवंते पुरुषकी छबी या उनकी कोइभी चीज पडी हुइ होती है तो उसकों देखकर वै पुरुष और उनके गुण जैसें स्मरणमें आते हैं वैसे ही भगवंतकी मूर्तिकों देखकर भगवद् गुणस्मरण होता है. प्रतिमाजीकी मुंह देखकर सोचता है कि यह मुख कैसा है जिनमुखसें किसीके भी अवर्णवाद, मृषावाद या हिंसाकारी वचन नहीं बोले गये हैं. उन मुखका अंदर रहा हुइ जीव्हासें रसेंद्रियके विषयोंका सेवन नहीं किया गया है; किन्तु यह मुखद्वारा धर्मोपदेश देकर अनेक भव्यजीवोंकों संसार समुद्रसे पारकर दिये हैं; वास्ते इस मुखकों धन्यवाद है. यह नासिकाद्वारा सुरभिगंध और दुरभिगंधरूप घ्राणेंद्रियके विषयोंका सेवन नहीं किया गया है. यह चक्षु इंद्रियद्वारा पांच वर्णरूप विषयोंकों

सेवन नहीं किये हैं. किसी स्त्रीकी तर्फकामविकारकी नजरसें नहीं देखा है ओर न किसीके सामने द्वेषकी नजरसें भी देखा है. मात्र वस्तुस्वभाव और कर्मका विचित्रता विचारके समभावसें रहे हुवे हैं उससें ऐसें नेत्रोंकों धन्य है. यह कानोंसे करकें विचित्र प्रकारकें राग, रागणीयें श्रवण करनेरूप उनके विषयोंकों सेवन नहीं कीये है, किन्तु प्रिय अप्रिय जैसे शब्द कानपर पडे तैसेही समभावसें सुने हैं. यह शरीरसें किसी जीवकी हिंसा या अदत्त ग्रहण वगैरः नहीं किया है. फक्त जीवरक्षा की है और किसी जीवकों दुःख प्राप्त न हो वैसेही चले है. ग्रामानुग्राम विहार करकें भव्य जीवोंकों संसारिक दुःखोंसें पार किये है और आपनें कर्मक्षय करकें केवलज्ञान केवलदर्शन प्रगट किया है; वास्ते इन प्रभुकों धन्य हैं. वे परमोपकारी है, उससें उन्हेंकी जितनी भक्ति कर सकुं उतनी करनी योग्य है एसा सुंदर भावना भगवंतकी मुद्रा देखनेसें उत्पन्न होती है. उत्तम प्राणि ऐसें प्रभुकी जल, चंदन, केसर, बरास, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्यसें पूजा करते है. तथा आभूषण चढाते हैं. इस मुजब पूजा करनेमें यथाशक्ति द्रव्य व्यय करते हुवे चिंतवन करते है कि, मैं जो द्रव्य पेदा करता हुं उन्हमें अनेक प्रकारकें पाप लगते है कि, फिर वो धन संसारकें कार्यमें व्यय करता हुं उससेंभी फिर पापकी वृद्धि करता हुं मेरे ये धनमेंसें मेरे परिणाम पहुंचें उतना धनजो मैं प्रभुभक्तिकी अंदर खर्चु तो उनसें पापबंधन रुक आवे और पुण्यबंधन होवे; फिर ये धन अंतमें मेरा नही है और उनका स्वभाव भिन्न होता है.-मैं चेतन हुं वो जड है; वास्ते मेरे उनपरसें मूर्च्छा उतारनी सो योग्य है. फिर सोचता है कि मैं प्रभुकी भक्ति करुंगा तो वो देखकर दूसरे जीव उनकी अनुमोदना करेंगे, फिर कितनेक भाग्यवान् जीव भक्ति करनेमें तत्पर होंगे तो उनका कारणीक मैं होउंगा इससें प्रभुभक्ति करनेमें अनेक लाभ होवेंगे. उत्तम जीव पहिले द्रव्यपूजा करकें पीछे भावपूजा करते हैं उन ओसरमें भगवंतके गुण विचारते हैं और प्रभुके गुण सोचकरकें उनका अपने आत्माके साथ मिलाप करते है कि, अहा! प्रभु निरागी ओर मैं रागी हुं, प्रभु अद्वेषी

और मैं द्वेषी हुं, प्रभु अक्रोधी और मैं क्रोधी हुं, प्रभु अकामी और मैं कामी हुं, प्रभु निर्विषयी और मैं विषयी हुं, प्रभु अमानी और मैं मानी हुं, प्रभु अमायी और मैं मायी हुं, प्रभु अलोभी और मैं लोभी हुं, प्रभु आत्मानंदी और मैं संसारानंदी हुं, प्रभु अतिंद्रिय सुखके भोगी और मैं पुद्गलका भोगी हुं, प्रभु स्वस्वभावी और मैं विभावी हुं, प्रभु अजर और मैं सजर हुं, प्रभु अक्षय और मैं क्षय स्वभाववंत हुं, प्रभु अशरीरी और मैं शरीरवाला हुं, प्रभु अनिंदक और मैं निंदक हुं, प्रभु अचल और मैं सचल हुं, प्रभु अमर और मैं मरण सहित हुं, प्रभु निंद रहित और मैं निंद सहित हुं, प्रभु निर्मोही और मैं समोही हुं, प्रभु हास्य रहित ओर मैं हास्य सहित हुं, प्रभु रतिसें रहित और मैं रति सहित हुं, प्रभु अरति रहित और मैं अरति सहित हुं, प्रभु शोक रहित और मैं शोक सहित हुं, प्रभु भय रहित और मैं भय सहित हुं, प्रभु दुगंच्छा रहित और मैं दुगच्छा सहित हुं, प्रभु निर्वेदी और मैं सवेदी हुं, प्रभु अक्लेशी और मैं क्लेश सहित हुं, प्रभु अहिंसक और मैं हिंसक हुं, प्रभु वचनसें रहित है और मैं मृषावादी हुं, प्रभु अप्रमादी और मैं सप्रमादी हुं, प्रभु निराशावंत और मैं आशावंत हुं, प्रभु सर्व जीवकों सुख देनेहारे और मैं अनेक जीवोंकों दुःख देनेहारा हुं, प्रभु अवंचक ओर मैं सवंचक--दूसरोंकों ठगने हारा हुं, प्रभु सबके विश्वासपात्र और मैं अविश्वासपात्र हुं, प्रभु आश्रव रहित और मैं आश्रवसें भरपूर हुं, प्रभु निष्पाप और मैं सपाप हुं, प्रभु परमात्मपदकों पाये हुवे और मैं बहिरात्मपनेसें प्रवर्त्तता हुं, प्रभु कर्मरहित और मैं कर्म सहित हुं. इस मुजब भगवत अनेक प्रकारके गुणसें संयुक्त हैं और मैं सब प्रकारके दुर्गुणोंसें भरा हुवा हुं, उसीसें यह संसारमें परिभ्रमण करता हुं. आज भाग्योदयसें यह प्रभुजीकी मूर्ति मैंने निहाल ली और उसके आलंबनसें मेरेकों प्रभुके गुणका स्मरण हुवा तथा मेरे औगुन समझनेमें आये, तो अब मैं मेरे औगुण छोडनेका उद्यम करुं. प्रभु जिस रस्ते चले वही रस्ते में चलुं और प्रभुने जैसा वर्त्तन चलाया वैसा वर्त्तन मैं चलाउं. इस मुजब भावना भावते--पूजा करते प्राणी अपना कर्मक्षय

करता है, शुद्ध समकितको प्राप्त करता है और यावत् मोक्षसुखकोंभी पाता है; वास्ते जिनप्रतिमाकी पूजा करनेसें उपर मुजब लाभ जानकर समस्त भव्य जीवोंनें यथाशक्ति जिनेश्वर भगवान्की भक्ति करनी चाहियें.

२७ प्रश्नः—सामान्यप्रकारसें जिनभक्तिकी रीति तथा लाभ बतलाये; परंतु अनुक्रमसें दररोज किस प्रकारसें भक्ति करनी ? वो कह दो.

उत्तरः—दिनमें तीन दफे जिनमंदिरमें जाना. उनमें प्रातःकाल वासक्षेपसें, मध्यानकाळ जल चंदनादि अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह प्रकारसें या जैसी शक्ति हो उन मुजब विशेष द्रव्यसें पूजा करनी और संध्याकालमें धूपपूजा तथा दीपपूजा करनी. उनमें मध्यान्हकी पूजा प्रभुके अंग स्पर्श करकें करनेकी है, और स्नानभी करना चाहिये-स्नान करकें शुद्ध हुवे सिवा प्रभुके अंगका स्पर्श करना घटित नहीं है. अपना शरीर मलीन होता है सो स्नान करनेसें शुद्ध होता है. वास्ते निर्जीव जगह देखकर शरीरकी शुद्धि हो सके उतने जलसें स्नान करना. ज्यादे पानी नहीं ढोलना. ज्यादे पानी ढोलनेसें असंख्य अपकाय जीवोंकी कारण सिवा विराधना होती है. स्नान कीए बाद पवित्र वस्त्रसें शरीर पुंछकर साफ कर डालना. पीछे सुंदर शोभायमान् सांसारिक कामोंमें जिनका उपयोग न हुवा हो वैसे और धूले हुवे वस्त्र धारण कर लेवै. विगर धूले हुवे वस्त्र पहनकर पूजा करनेसें नीवी पच्चख्खाणका प्रायश्चित लगे ऐसा कहा है. पीछे अपनी शक्त्यानुसार योग्य आभरण धारण करकें फिर जिनपूजाके लिये जल, चंदन, पुष्पादिक शुद्ध द्रव्य लेकर जिनमंदिरमें जाना. जिनमंदिरमें प्रथम द्वारमें पेठतेही 'निसिहि' कहना. तबसें संसारके व्यापारका निषेध कियाही समझना यानि जिनालय अंदर व्यापार रोजगार संबंधी बातचितभी नहीं करना. फक्त जिनमंदिर संबंधी कार्यमेंही चित्त पीरोना. जिनमंदिरमें कुच्छ काम चलता हो तौ उनका तपास करना, कुच्छ आशातना हुइ हो तौ वो दूर करनी और जिनमंदिरके नौकर चाकरके कार्यकी तर्फ नजर

रखनी. जप भगवंतकी मूर्ति दृष्टिमें आवै तब दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना और रंगमंडपमें दाखिल होनेही दूसरी दफे 'निसिहि' कहनी, यहांसें जिनमंदिर संबंधी व्यापारकाभी त्याग करदेनेका समझ लेना, और जिनपूजा संबंधी काममें प्रवर्त्त होना. प्रथम आपके हाथ धोकर सुवर्ण, चांदी, अन्य धातु मिट्टीके (अपनी शक्तिके अनुसार जसें) कलश हो वैसे कलशमें निर्मल जळ भरना, प्रभूके शरीरपरसें चिंतवन करना कि भगवंतने इस मुजब आभूषण उतारकर संयम ग्रहण किया था. बाद मोरे पीछीसें प्रभुके शरीरकी प्रमार्जना दृष्टिपूर्वक करनी. चींटी वगैरः जंतुओका प्रचारहुवा होवै तो वो दूरकरकें कलशद्वारा अभिषेक करना. पीछे वस्त्रके स्वच्छ टुकडेसें केशर निकाल डालना. उनसें न निकलसके तो वालाकुचीसें दूर करना. बाद पंचामृतका अभिषेक करकें सुकोमल सुंदर और धूलेहुवे उज्वळ वस्त्रसें प्रभुका शरीर जल रहित करना, पीछे चंदन, केसर, बरासादिसें ना अंगमें पूजा करना और जीव जंतु विगरके, नहीं सडे हुवे. भूमिपर न पडे हुवे, अशुचि संसर्गसें रहित और सुगंधिवाले मोतियें, गुलाब वगैरः के फूल चढाना. पीछे मुकुठ कुंडलादि आभरण पहनाना. उसके बाद अगर, सिलारसादि सुगंधिदार चीजोंसें बनाया गया हुवा दशांग धूप करना. लालटेनमें दीपक रखकर दीपक पूजा करनी. भगवंतके शरीरपर सोने चांदीके वर्क शक्ति मुजब चढाके आंगी रचनी या रचवानी, पीछे भगवंतके समीपमें सुंदर उज्वल अक्षतसें नंदावर्त्त अथवा स्वस्तिक करना. उनमें पहिली तीन ढिगलीयां करनेके अव्वल पहिली ढिगलीसें ज्ञान प्राप्ति, दूसरीसें दर्शन-समकित प्राप्ति और तीसरीसें चारित्र प्राप्ति होवै इस मुजबसें भावना रखकर स्वस्तिक करना, उस वक्त चोरों गतियोंका नाश होनेकी भावना रखनी फिर तिन ढगलीयोंके उपरके तर्फ अक्षतसें अर्द्धचंद्रकार समान सिद्धशिला बनानी और शोचना कि यह सिद्धशिलापर मेरा निवास हो. इस प्रकार अक्षत पूजा करकें पीछे सुंदर फल मेवे वगैरः धरना. अपक्व, सडे हुवे, खराब गंधवाले या अभक्ष फल पूजा प्रकरणमें नहीं धरना. बाद

नैवेद्य चढाना-धरना; उसमेंभी भक्ष पदार्थ यानि लड्डु, दूधपाक, शाक, दाल, चावल, चूरमा वगैरः विविध जातिके पक्वान प्रभुके आगे धरना. और पीछे भावना भावै कि-'यह आहार अनेक षापारंभ करके तैयार किया गया है और यह आहार मैं खाउंगा तो उससें भी इसके आस्वादनसें मेरेकों राग द्वेषकी परिणती जाग्रत होयगी; वास्ते जितना आहार प्रभुकों चढाउंगा उतने आहार संबंधी रागद्वेषकी परिणती होनी बंध रहेगी और फिर उपकारकी भक्ति होगी.' उनसें परंपराद्वारा मुक्तिफलकी प्राप्ति होगी. ऐसा शोचना. इस तरह द्रव्य पुजा करना. इससेंभी ज्यादे द्रव्य हो तो ज्यादे द्रव्य चढाना. उसके बाद तीसरी 'निसिहि' कहनी और शोचनाकि-'अब द्रव्य पूजाका कार्य मोकूफ करकें भाव पूजा करुंगा.' पहिले तीन प्रदक्षिणा देकें तीन खमासण देना तीन दिशाओंकी तर्फ निघा फिरानी छोडकर यानि केवल प्रभु सन्मुख देख वीरासन लगाकर दोनू हाथ जोडकें चैत्यवंदन, नमुथ्थुणं, दोनू जीवंती, स्तवन, जयवीयराय आदि कहना, और काउस्सग्ग करना. और काउस्सग्ग पारकर एक स्तुतिं वा आठ स्तुति शक्ति अवकाश हो वैसी रीतीसें चैत्यवंदन करना. यह सामान्य विधिसें प्रभु भक्ति कह दी. पीछे प्रभु सन्मुख खडे रहकर आगे जिस मुजब वतलाइ गइ है उसी मुजब भावना भावै बहुत गुणी आचार्य महाराज भगवंतके गुणरुपी श्लोकवद्ध-काव्यवद्ध रचना कर गय हैं उस स्तुतिसें स्तुति करनी. ऐसी सुंदर भावना उपयोग करनेसें नागकेतू वगैरः केवलज्ञान पाये हैं. उनकी कथा कल्पसूत्रमें मौजूद है.

२८ प्रश्नः—पुष्प पूजा करनेसें पुष्पोंके जीवोंकों पीडा होता है उसका क्या करना?

उत्तरः—पुष्पके जीवोंकों बाधा नहीं होती है; लेकिन रक्षण होता है; क्यों कि पुष्प कोइ गृहस्थ ले जावै तो मनुष्यके स्पर्शसें उनके जीकों किलामना होवै. कितनेक गृहस्थ शय्यामें बिछाकर सो जाते हैं उससें भी किलामना होती है; किन्तु जो पुष्प प्रभुजीकों चढते हैं उनकों तो अपने आयुष्य तक अबाधा रहती है. फिर तुम कहोंगे कि पुष्पकों सूइसें छेदकर गुंथनसें

किलामना हुवे विगर क्यों रहे? तो उसके जवाबमें यही खुलासा है कि, जो पुष्पकी दांडी पोकल हो उसमें डोरा पिरोना शास्त्रमें कहा है, वास्ते उस मुजब काम करनेसें बाधा नही होगी. पुष्प छेदके पिरोकर या कची कलीयें पिरोकर हार बनाके चढानेकी रीति प्राचीन नहीं; मगर अर्वाचीन-नवीन रीति मालूम होती है. ऐसी रीति पडनेसें कितनीक दफै ग्रुंथन किये बवे पुष्प नहीं मिलते हैं तब विधिपूर्वक पूजा करनेके रसिक पुरुषोंकोंभी सीए हुवे फूल चढाने पडते हैं, सो अपवाद समझकर चढाते हैं; सबब कि जो वो हार न चढावै तौ बिल्कुल पुष्पहार चढ सकै नहीं वास्ते योग बन सके वहांतक गुंथे हुवे फूल चढाना यही श्रेय है. प्रभुभक्ति करनेमें कदाचित् अल्पहिंसा होवे तो उसपर आवश्यकजीमें कुंवेका दृष्टांत दिया है. जैसे कुवा खोदनेमें कष्ट पडता है; मगर हमेशां पानीका सुख होता है; वैसेही प्रभुपुजनमें अल्पहिंसा होवे, मगर अंतमें मुक्तिके सुखकी प्राप्ति होती है. इस लिये श्रावककों अष्टप्रकारी पूजा करनेका महानिशिथ्थ सूत्रमेंभी कहा है.

—नैवेद्य-पकाया हुवा धरना ऐसा किस शास्त्रमें कहा है?

—श्राद्धविधिमें कहा है, फिर श्राद्धविधिमें निशिथ्थ चूर्णी वगैरःके दृष्टांत दिये हैं. आचारोपदेश, अष्टप्रकारी पूजाका रास, तथा सकलचंदजी उपाध्याय प्रमुख विरचित पूजाओंमेंभी कहा है. वे शास्त्र देखनेसें विस्तारयुक्त मालूम हो जायगा. सामान्य प्रकारसें नैवेद्य चढानेका तो महानिशिथ्थ, पंचाशकजी, प्रवचन सारोद्धार, योगशास्त्र आदि बहुतसे शास्त्रोंमें कहा है.

—दीपकपूजा कौनसें शास्त्रमें कही है?

—महानिशिथ्थसूत्रमें अष्टप्रकारी पूजाका अधिकार चला है, वहां कही है. प्रभुके जन्म समय दिग्कुमारीकाओंने दीपक किये हैं-वगैरः वर्णन जंबूद्वीपपन्नतिमें है; और आवश्यकसूत्रमेंभी कहा है.

—गुरुभक्ति किस प्रकारसें करनी?

—गुरुकों देखतेही दोनू हाथ जोडकर नमस्कार करना. गुरु कुच्छ काममें न लगे हो तो खमासमण देकर वंदन करना. इच्छकार पूंछकर अभूठियो

अभ्यंतरसें खमानों. गुरु खडे हो तौ खडेही रहना. गुरुके वचनकी अ-वगणना नहीं करना वस्त्र, पात्र, औषध, पाट, पटरे, रहनेकी जगह आदि जो कुच्छ चाहियें सो हाजिर करना. अपनी पास न हो तौ जिसकी पास हो उसकी पास गुरुजीकों लेजाकर दिलवा देना. किसी प्रकारसें उन्होंका वचन नहीं लोपना. गुरु महा उपकारी हैं, वो उपकारीके उप-कारका वदला किसी दिन नहीं दिया जायगा; वास्ते यथाशक्ति गुरुभक्ति करना. तन, मन और धन अर्पण करना. शायद गुरुमहाराजके काममें तमाम दौलत व्यय हो जावे तौभी व्यय करनेमें किंचित्भी अंदेशा नहीं ल्याना. ऐसा भाव जिनकों हो जाता है उनकों अवश्य-निश्चय समकित होता है. उनमें जितनी कसर-कचास हो उतनीही समकितमेंभी न्यूनता जाननी. वास्ते देवगुरुकी भक्तिमें कोइभी तरहसें कमी नही रखनी. गुरु-महाराज एक कौडीभी आप नहीं लेते हैं. किसी वक्त अकस्मात् धर्म संबंधी हरकत आ पडी हो और उस काममें पैसे खर्चने पडे वैसा हो-औषधमें वापरने हो, पुस्तक लिखवाने हो-आदि धर्मके कार्यमें पैसेकी जरूरत हो उस वक्त गुरुमहाराज वापरनेका उपदेश करते हैं; वास्ते वि-लकुल मनकों पीछे न हठातें प्रसन्न होकर द्रव्यका सदुपयोग करना.

२१ प्रश्नः—गुरु लोभी हो तो कैसें करना.

उत्तरः—गुरुमहाराज लोभी होवेंही नहीं, जो अपने शरीर, शिष्य और श्रावककी आशा नहीं रखते हैं वो धनकी आशा क्यों रक्खें ? वास्ते उन्होंमें लोभी होनेकी शंका करनीही नहीं. वे फक्त शरीर संरक्षणके लिये प्रमाणोपेत वस्त्रकों ग्रहण करते हैं और शरीरद्वारा ज्ञानदर्शनचारित्रका आराधन किया जाता है उससें शरीरकों शुद्धमान आहार देते हैं-इंद्रियोंकी पुष्टिके लिये तों आहारभी नहीं लेते हैं. उसमेंभी जो आहार गृहस्थने अपने वास्ते बनवाया हो वही लेते हैं, उनमेंसेंभी इस अंदाजसें ग्रहण करते हैं कि उन गृहस्थकों फिर न बनवाना पडे, और फिर नयाही बनवाना पडेगा ऐसा मालूम हो जाय तौ बिलकुल नही ग्रहण करते हैं आहारके संबं-धमें ऐसे निरिच्छावान् होते हैं तौ फिर दूसरा लोभ तो कहेंही

किस लिये ? उन्होंकों एक कौडी भी पास नहीं रखना है, और जिन्होंने रख्खा है तों उन्होंको शास्त्रमें गुरुबुद्धिसें (गुरु) मानने नहीं कहे हैं. जिनाज्ञा विरुद्ध ऐसे वेषधारी द्रव्यलिंगी, पासथ्थादिक द्रव्य रखनेवालेकों जो गुरुबुद्धिसें मानते है उनकों मिथ्यात्व लगता है.

२२ प्रश्नः—कोइ एसा कहता हैं कि-ज्ञानसें करकें ही धर्म होता है, क्रिया वो तो सी फ़कर्म है, उससें क्रिया करनेसें धर्म नहीं होवे; वास्ते कभी क्रियारुचि न होवै तो भी ज्ञान पढे हुवे होवें तों उनकां गुरु माननेमें क्या हरकत है ?

उत्तरः—शास्त्रमें समकित करकें सहित हो उनकों ही ज्ञान कहते हैं जो आज्ञाके समकित हो वों तो भगवंतकी आज्ञाके आराधक होते हैं, जो आज्ञाके आराधक होवें वे क्रियासें विमुख होवेंही नहीं; कारण कि ज्ञानद्वारा अपने आत्माका और पुद्गलका स्वरूप जान लिया है उससें वे जानते है कि "अहा ! यह पुद्गल तो जड पदार्थ है, पुद्गलका वशीभूततासें करकें विपरीत बुद्धि हुइ उससें पर वस्तु जो धन-धान्य-और स्त्री-कुटुंबादि उनकों इस जीवनें अपनी करकें मान लि है और उससें कर्मबंधन करकें चारों गतियोंमें धूमकर अनेक प्रकारके दुःख भुक्ते. इस भवमें भाग्योदयसें श्री जीनराजजीका मार्ग, प्राप्त हुवा औकर्मने विवर-रस्ता दिया उससें मेरेकों संयमकी प्राप्ति हुइ है, तो अब मुझकों आत्मतत्वमेंही रमण करना योग्य है. अनादिकालकी जीवकों परभावमें रमण करनेकी आदत है, उसीसें मेरी दशा वेर वेर पुद्गल भावकी होती है वो, बदल डालनेके लिये अशुभ क्रिया छांडके शुभ क्रियामें प्रवर्त्तना योग्य है." इस तरहकी भावनासें संयमकी क्रिया करते हैं और वो क्रिया कर्मनिर्जराकी हेतुभूत होती है. फिर योगादिककी जो शुभ प्रवृत्ति होती है उससें यदि शुभकर्म बंधाजाता है; परंतु वो कर्म मुक्ति प्राप्त करनेमें सहाय्यकारी होते हैं-विघ्नकारी नहीं होते हैं. ऐसे शुभ कर्मके योगसें आर्यक्षेत्रमें जन्म, पांचो इंद्रियें संपूर्ण, धर्मिष्ठ कुल, धर्मकार्यमें स्वजनादि अनुकूल, निरोगी शरीर, और देवगुरुकी योगवाइ-इत्यादि। साधनोंकी प्राप्ति होती है. यह साधन मिले बिगर जीवसें मुक्तिमार्गका आराधन नहीं हो सक्ता है. जो ज्ञानवान् हैं वे सहजसेंही क्रियामें प्रवर्त्तते हैं. ज्ञान

गुणद्वारा वस्तु स्वरूपका जाननेमें संसारका अनित्यता समझकर जिन्होंने चारित्र अंगिकार किया है वैसे मुनिराज हरदम शोचते हैं कि-सब जीव सत्तासें करकें समान हैं; लेकिन कर्मसें करकें अलग अलग गति प्राप्त हुवे हैं वे सब सुखके अभिलाषि हैं. दुःखकों नहीं चाहते हैं. जैसे मेरे शरीरकों कोइ पीडा प्राप्त करता है तो मुझकों दुःख होता है. वैसेंही सब जीवोंको भी दुःख होता है, उस वास्ते किसी जीवकोंभी दुःख देना योग्य नहीं है ऐसें विचारसें वे जबजब उठते हैं-बैठते हैं-सोते हैं-चलते है. तब तब यत्नापूर्वक प्रवर्त्तते हैं. फिर पडिलेहणभी उसी लियेही करते है कि वस्त्रमें कोइ जीव हो तो शरीरकों लगनेसें उनकों पीडा उत्पन्न होवे. फिर प्रतिक्रमणकी क्रिया करते हैं उनका कारणभी एसा है कि आप आत्मास्वभावमें रमणता करनेकों चाहते है; परंतु जीवकों अनादिकालका मोहप्रवृत्तिका अभ्यास बना हुवा है उसके जोरसें जो नही करने लायक प्रवृत्ति हो जाती है सो आपके मनमें अनिष्ट लगती है और उसकी निंदा गर्हा तो कायम हुवा करती है; परंतु प्रतिक्रमणमें विशेष प्रकारसें करनेका बन शके वास्ते प्रतिक्रमण करते हैं यथाशक्ति तप करते हैं, उसमेंभी ऐसा भाव प्रवर्त्तता है कि आहार करना वो मेरा स्वभाविकधर्म नही है, मगर अभीतक पुद्गलमें रहा हुं इस्सें ज्ञान ध्यान भले प्रकारसें होनेके लिये इस शरीरकों निर्वद्य आहार देता हुं; तौभी थोडी थोडी तपश्चर्या करुं तौ उस्से कुच्छ ध्यान ज्ञानमें हरकत नहीं, होगी, मगर शुभ भावके योगसें ज्ञान ध्यानकी वृद्धि होगी; वास्ते यथाशक्ति तपस्या करुं-एसी भावना होनेसें ज्ञानीकों सहजमें तपभी बन आता है. वास्ते ज्ञानवंतकों क्रियाकी रुचि न हो यह बात संभवितही नहीं है; लेकिन जो फक्त लोकरंजनार्थ ज्ञान पढे हुवे होते हैं उन्होंकों क्रिया रुचि नहीं होती, तौ वे कुच्छ जैनमार्गमें नहीं हैं! श्रीविशेषावश्यकजीमें क्रिया रुचि रहित जीवकों अज्ञानी कहे हैं. तौ वैसे अज्ञानी गुरु करने योग्य होवेही नहीं, उसकी संगत करनेसें उनके जैसी विपरीत बुद्धि और मिथ्यात्व प्राप्त होवे, इस लिये भगवंतकी आज्ञा मुजब चलनेवालेकों ही गुरुमानने चाहियें.

३४ प्रश्नः—गुरुमहाराज न हो तो धर्मकरणी किसके आगे करनी ?

उत्तरः—जैसें देवके अभावसें देवकी मूर्ति, तैसें गुरुके अभावसें गुरुकी स्थापना जाननी. उनमें मुख्य अक्ष, सो गोलाकारका कौडा समझना. वै तीन, पांच सात या नव आवर्त्तवाले हो तो श्रेष्ठ गिनेजाते हैं. इसका फल श्री भद्रबाहुस्वामीकृत स्थापनाकुलकमें विशेष प्रकारसें दर्शाया है. श्री यशो विजयजी उपाध्यायनें स्थापनाकी सज्झाय बनाइ है उनमें भी उनका फल तथा विधि बताया है. ऐसे अक्षके स्थापनाचार्य स्थापितकरकें उनके सन्मुख क्रिया करनी. उनका योग न बन सके तो ज्ञान दर्शन और चारित्रके उपकरण-मुख्यत्वनें पुस्तक नौकरवाली-माला प्रमुखकी स्थापना करनी. श्री ठाणांगजी सूत्रमें दश प्रकारकी स्थापना कही है, यौ स्थापित करकें पंचिंदियसें उनमें गुरु महाराजके गुणका आरोपण करना ओर पीछे उनकी समीपमें विधि करना.

३५ प्रश्नः—धर्म वो क्या है ?

उत्तरः—धर्म दो प्रकारके है अर्थात् आत्मिक धर्म और व्यवहारिक धर्म ये दो हैं.

३६ प्रश्नः—आत्मिक धर्म सो क्या ?

उत्तरः—आत्मिक धर्म सो आत्माका लक्षण यानि अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत चारित्र और अनंतवीर्यादि उनमें रमण करना वही आत्मिक धर्मका आराधन समझना.

३७ प्रश्नः—अनंतज्ञान किसकों कहते हैं ?

उत्तरः—अनंत पदार्थोंका और तीनू कालका स्वरूप जाननेकी आत्माकी शक्ति है वही अनंतज्ञान.

३८ प्रश्नः—आत्माकी ऐसी शक्ति है तो वो मालूम क्यौं नहीं होती ?

उत्तरः—आत्मा कर्मसें करकें आच्छादीत हुवा है उससें उनकी शक्ति नहीं चल शकती है.

३९ प्रश्नः—आत्मा कर्मसें करकें कबसें आच्छादित्त हुवा है ?

उत्तरः—आत्मा अनादि कालसें कर्मसें आच्छादित है वो किसी समयमें भी निर्मल होताही नहीं. जैसें सुवर्ण खानीकी अंदर मूलसेंही मिट्टीके साथ मिलाहुवा है, तैसे जीवके लियेही समझना.

४० प्रश्नः—कर्म वे क्या? और वे जीवके साथ कैसी रीतिसें भेलसेल हुवेले है?
फिर अनादिके कर्म है वही चले आते हैं या फेरफार होते है?

उत्तरः—कर्म वो जड पदार्थ है, जो चर्म चक्षुद्वारा मालूम होता है वो सब जड पदार्थही है, जीव नजर नहीं आते है. जड पदार्थ विचित्र प्रकारके रुप धारण करते हैं. मनुष्यके शरीररुपमें मिले हुव हैं वोही अलग अलग हो कर फिर भस्मरुप होजाते हैं, वक्तपर अग्निरुप होजाते हैं और वही पीछे पृथिवी, जल, वायु, वनस्पति, तथा जानवरोंके रुपकों धारण करते हैं. जीवके, शरीरमेंसें अलग पडे हुवे पुद्गलोंके विचित्र थाट बनते है. जीवने ग्रहण न किये हो वैसें छुटे पुद्गलोंके भी स्वभाविक अनेक रुप बनते हैं आकाशमें लीले-हरे पीलेरंग मालूम होते है वो स्वभाविकही बनते है. अैसे पुद्गल परमाणुए मिलकर कर्मयोग्य पदार्थ होता हैं. वैसा कर्मपदार्थ आत्माके साथ अनादिकालसें मिलगया हुवा है, वो ज्यों ज्यों भुक्ते जाते हैं त्यों त्यों अलग होते जाते हैं और पीछे नये बंधाते हैं. अैसें श्रेणी प्रश्रेणी चलीही आती है. जैसें चिकनाइवाले पदार्थकों धूल लगती हैं, तैसें जीवकों रागद्वेषकी परिणतीरुप चिकनाइ के योगसें कर्मके पुद्गल आकर लिपट जाते हैं.

४१ प्रश्नः—जीव और पुद्गलका कर्त्ता कोइ है?

उत्तरः—ये किसीके बनाये हुवे नहीं हैं यानि उसका कर्त्ता कोइ नहीं हैं. फिर न्यायसें शोचनेसें इसका कर्त्ता कोइ हो सके भी नहीं. जो उसका कोइ कर्त्ता-बनानेवाला हो तो वो शरीरधारी होना चाहियें यानि उसका बनानेवालेकाभी फिर बनानेवाला कोइ होनाही चाहियें. फिर जब जगतमें कोइ पदार्थही न होवे तब जीव और पुद्गल क्या पदार्थ न बना सके! फिर जो जीवका कर्त्ता हो तो वो पापकार्य करनेवालेकों-पैदाही नही करें, और जगतमें तो अैसेही मनुष्य ज्यादे नजर आते है! कभी कोइ कहेगा कि-बनाये गये जब तो अच्छेथे; लेकिन पीछेसें बिगड गये. तो बनाने वाले ज्ञानीकों अैसाभी ज्ञान होना चाहियें कि ये पीछेसें बिगड जायेंगे; वास्ते इनकों बनानेही न चाहियें. साधारण मनुष्य भी जो

किसी कार्यका बुरा परिणाम आनेका जान लेवे तौ वो कार्य नहीं करता है, तब जो सर्वज्ञ है वो तो तीनू कालका स्वरूप जान सके तौ फिर पीछेसें बिगड ऐसे प्राणीयोंकों क्यों बनावे? फिर इश्वर समदृष्टिवाला होनेसें एककों मनुष्य बनावें और दूसरेकों जानवर बनावे, एककों सुखी बनावे और एककों दुःखी बनावे ऐसा होवेही नहीं. उनका विचार तौ सबकों सुखी बनानेकाही होना चाहियें, और वैसा तो जगत्में किसी जगहभी नजर नही आता है. उसीसें मालूम और साबित होता है कि जगत्का बनानेवाला इश्वर नहीं है. इश्वरकों जगत् कर्त्ता मानना ये वास्तविक नहीं है. फिर कितनेक कहते है कि—यह तौ सब इश्वरकी इच्छाद्वारा ही बनता है. यह कहनाभी असत्य है; क्योंकि जो जो धर्मवाले मुक्तिकों मानते है और मुक्ति मिलानेके लिये उद्यम करते है उनके शास्त्रमें अंतमें क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारोंसें मुक्त हो जाता और समभावमें रहना उसीका नामही मुक्ति कही है. तब शोचोकि दूसरोंकों तौ इच्छासें मुक्त होना कहते है और आप यह जगत् उपजानेकी इच्छा करते है ये बात कयोंकर संभवे? जैसे आधुनिक समयमें कितनेक धर्मगुरु नाम धारण करनेवाले आप खुद द्रव्य रखते है, स्त्रीका आनंद लेते है और उनके दूसरे सेवक लोगोंकों उपदेश करते है कि— "द्रव्य अस्थिर है, अर्थ अनर्थका मूल है, स्त्रीकी सोवतसें अनेक प्रकारके कर्म बंधे जाते है; वास्ते तुम लोग द्रव्य और स्त्री इन दोनुका त्याग करो जिससें तुमकों बहुतही लाभ—फायदा होगा!" इस दृष्टांत मुजब जगत्के करनेवाले इश्वर आप तो खुद राग द्वेषसें मुक्त हुवेही नहीं है और दूसरोंकों मुक्त होनेका कहते है; वास्ते ऐसा कथन इश्वरका होवेही नहीं. ऐसी बातें करनेवाले इश्वरके स्वरुपकों नहीं समजते है और नाहक इश्वरकों दूषण लगाते हैं. इश्वर तौ समस्त प्रकारकी राग द्वेषकी परिणतीका त्याग करनेवाले होते है. किसी प्रकारकी उपाधि उन्होंकों होतीही नहीं; संसारी काम कोइभी उन्हें करनेका नहीं होता है. संसारी काम तो देहधारी मनुष्य—प्राणी करते है. इश्वर देह रहित हुवेले है. अपने

आत्मस्वभावद्वारा सब पदार्थोंको जानते देखते हैं; लेकिन उसमें परिणमते नही है. इश्वरका सच्चा स्वरुप इस मुजब होनेसें वे जीव या पुद्गलके कर्त्ताही नहीं है. जीव और पुद्गल पदार्थ अनादि कालसें स्वभाविकपनेसेंही है असा समझ लेना.

४२ प्रश्नः—आत्माके चेतन गुणको कर्मजड होनेसें किसतरह ढांप सके? या वेष्टित हो सके?

उत्तरः—अपनी नजरसें प्रत्यक्ष देखते हैं कि बुद्धि अरूपी है; तदपि मदिरापान करनेवालेकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और उसका केफ चढता है तब ज्यौं त्यौं बकता है, तो मदिरा जड होनेपरभी बुद्धिकों क्यों ढांप देती है? फिर केफ उतरता है उस पीछे बुद्धि मुकामपर आती है, तैसें कर्मभी असाही पदार्थ है, उसके संयोगसें आत्माका ज्ञान गुण लुप्त होता है. जैसें परदेमें रही हुइ वा मैलके जथ्थेसें लिप्त हुइ वस्तुओंका सच्चा स्वरूप नजर नहीं आता है, तैसें कर्मरूप मेल लगनेसें आत्माकी शक्ति और स्वरूप नजर नहीं असकता है.

४३ प्रश्नः—आत्मा निरंतर कर्मसेंकरकें आच्छादित हुवाही रहता है कि उसमें फेरफारभी होता है? और वो किसी वक्तभी शुद्ध होगा या नहीं?

उत्तरः—आत्माके ज्ञानकों कर्मकी नशा लगाहुवा हैं. नशा करनेवाले मनुष्यकों यदि कोइ भारी फिक्रकी बात करे या तो खटाइ वगैरः नशा उतर जानेकी चीज खिला देवे तो उसका नशा उतर जाता है, वैसें प्राणीकाभी गुरुमहाराजके योगसें या पूर्वके क्षयोपशमद्वारा जब अपने आत्माका सच्चा स्वरूप समझा जाता है और पुद्गलके संगसें अनादि काल संसारमें परिभ्रमण करनेका समझा जाता है, तब उससें भय पाता है और कर्मका नशा उतर जाकर ज्ञानदशा जाग्रत होती है. उस वक्त शोचता है कि, 'जो मैं सुख मानता हुं वो तो जडपदार्थद्वारा मात्र मान लियाहुवा सुख है, उससें मेरे आत्माकों तो सुख नही मगर उलंटा कर्मबंधनरूप दुःख है. फिर वो सुख जैसे फांसी चढानेवाले मनुष्यकों अच्छी अच्छी चीजें खानेको देते हैं किंतु थोडी देर पीछे फांसीपर लटका दिया जाता है

उनके जैसा है. संसारसुखकी लीनताभी ऐसीही है; सबब कि अभीके समयमें बडेमें वडा बहुतकरकें आयुष्य सौ वर्षका होता है, तो उतने समय तक सुख भुक्तना ओर पीछे उन्सें भये हुवे कर्मबंध नद्वारा नरकमें जाना पडे वहां सागरोपमके आयुष्य होनेसें असंख्य वर्ष पर्यंत दुःख भुक्तना उनके प्रमाणमें मनुष्यभवका सुख कुच्छ हिसावमें नहीं. कभी मरण हुवे वाद नरकमें न जातें मनुष्यगतिमें जानेका होवै तो वहां स्त्रीकी योनिमें अत्यंत अशुचिवाले स्थानकमें वेसुमार दुर्गंधिका अनुभव लेते हुवे उत्पन्न होना ओर वहां उंधे शिरसें नो मास तक रहना—ऐसे गर्भावासके दुःख भुक्तना पडे. तिर्यंचगतिमें जानेका होवै तो वहांभी क्षुधा, तृपा सहन करनी पडे ओर दूसरेभी अनेक प्रकारके दुःख भुक्तने पडें; वास्ते ऐसे पुद्गलीक सुखकों में सुख नहीं मान लुंगा. ” ऐसी भावना आनेसें सांसारिक सुखकों सुख माननेरूप नशा उतर जाता है. यों करते हुवे कदापि तद्दन नशा न उतर जावै तो उनके निवारणके लिये तप संयमरूप ओषधका उपयोग करकें मोहजन्य नशा उतारता है. तप संयमादिद्वारा ज्यों ज्यों कर्म नाश होते जाते है त्यों त्यों आत्मा शुद्ध होता जाता है. तो पीछे जो सुख दुःख प्राप्त होता है उस्में समभाव रखता है और शोचता है कि–‘ देहके साथ रहकर मैंने जो जो कर्म बांध लिये है सो वो देहके संबंधसें उदयमें आनेसें भुक्तेजा हैं, उस्में मुझे शांतपणेसें दूर–अलग रहनाही योग्य है; किंतु मुझकों दुःख होताहै, मुझकों सुख होता है ऐसा शोचना योग्य नहीं है. ’ ऐसी विचारनासें नशा उतरता जाता है और सावधानी बढती जाती है. उनमें भी जैसें दूसरी दफै नशा करता है तो फिर बुद्धि आच्छादित हो जाती है तैसे गुरुमहाराजके उपदेशसें शुद्ध भाव आनेपरभी फिर संसारके सुखमें गिरजाता है तो फिर ज्ञान आच्छादित हो जाता है. कितनेक मनुष्य ऐसे दृढ होते हैं कि अेक वेर नशा उतरे बाद उनका गैरफायदा समझकर दूसरी वेर कबीभी नशा नहीं करेंगे. उसीतरह कितनेक अल्पसंसारी जीव तो धर्म श्रवण किये पीछे दिन प्रतिदिन आत्माकी शुद्धता किये जाते है और अंतमें सर्वज्ञपना

संपादन करते है, उन्होंका ज्ञान पुनः आच्छादित नहीं होता है, सदा काल अेक समानही रहता है और पुनः उनकों संसारमें भी नहीं आना होता है.

४४ प्रश्नः—कर्मसें रहित हो जाय उनकों फिर कर्म नहीं लगते है?

उत्तरः--राग द्वेषरुप चिकनाइ योगसेंही कर्म लगते है. और रागद्वेष है सो कर्मके योगसें होते है; वे कर्म निकल गये कि उनका योग नहीं रहता है और रागद्वेषमय परिणति नहीं रहती है, वास्ते कर्म नही लगते हैं. जैसें कि दूधकी अंदर घी रहा हुवा है उसकों निकालनेकें लिये पहलें दहीं बनाना, पीछें उसकों बिलोकर मख्खन निकालना, पीछे मखनकों तपाकर घी बनाना. वो निकाले हुवे घीका पुनः दूध नहीं हो सक्ता है–घीही कायम रहता है, उसीही तरहसें आत्माके अनुक्रमसें प्रगट हुवे गुण आच्छादित नहीं होते है.

४५ प्रश्नः—कर्मआते हैं वो नजर नहीं आते हैं; वास्ते आते हैं अैसा कौनसे अनुमानसें सिद्ध हो सके?

उत्तरः—कर्म पुद्गलिक पदार्थ हैं. ठंडी के ठंडे पुद्गल जब अपनेकों स्पर्श करते हैं तब जानते हैं कि ठंडी लगती है; परंतु अपन ठंडीके पुद्गल नहीं देख सकते है, तोभी निश्चय करते हैं कि ठंडे पुद्गल स्पर्श करने लगे. सुगंधीके पुद्गल नहीं देख सकते है, मगर नाँकमें खुशबु मालूम होनेसें समझनेमें आता है कि यहांपर कोइ सुगंधी–पदार्थ है. गर्मी लगती है; लेकिन उसके आतेहुवे पुद्गलोंकों नहीं देखते हैं. हवा चलती है उसकों नहीं देख सकते हैं; मगर शरीरकों स्पर्श होनेसें जाना जाता है कि हवा चलती है, तैसे कर्म आते हैं वो अपनकों नजर नहीं आते; लेकिन जब कर्म उदय आते है और उनके फल देखनेमें आते हैं तब सिद्ध होता है. अगाडीके जन्मोंमें कर्म बांधे हुवे होते है उनके योगसें सुख दुःख प्राप्त होता है. कोइ सुखी, कोइ दुखी अैसा सब जगह मालूम होता है. कोइ मनुष्य वर्त्तमानकालमें अच्छे कृत्य करता है, फिर अकलमें भी खामी नहीं है, दुःख होवे वैसा कार्यभी अभी नहीं करता है; तौ भी वो दुःखी होता है ये सब पूर्व कर्मके योगसें समझना. फिर कितनेक मनुष्य लुच्चाइ, ठगाइ, चोरी वगैरः करते

हैं, झूठ बोलते हैं, अच्छे मनुष्यपर कलंक धर देते हैं, हिंसा करनेमें तत्पर होते हैं-अैसे अधर्मी-अधर्मके करनेहारे सुखी मालूम होते हैं, उसका सबब इतनाही है कि इस जन्ममें जो सुख भुक्तता है सो पूर्वजन्ममें कियेहुवे सुकृतके लियेही है अैसा समझना; परंतु इस जन्ममें कियेहुवे कृत्यके फल आते जन्ममें भूक्तने पडेंगे. क्वचित् इस जन्मके कियेहुवे कर्म इस जन्ममेंभी उदय आते हैं. कितनेक राजा परस्त्रीके लंपटपनेसें इसी जन्ममें ही राज्य खोकर कैदमें गिरफतार हो जाते हैं. चोरी करनेवालेभी इसी जन्ममें तुरंत कैद हो जाते हैं-यह सब कर्मकीही विचित्रता है. जुलाबकी दवा अैसी जल्लाद होती है कि उसकी फौरन असर होती है, और दूसरी दवा अैसी होती है कि जिनकी असर दो चार घंटेके बाद होती है. मनुष्य विष खाता है उसमें कोइ विष अैसा होता है कि खा लिया या सूंघलिया के तुरंत मर जाता है, और कोइ विष-झहर अैसा होता है कि मनुष्यकों दीर्घ-लंबे वक्त तक पीडित करकें फिर मार देता है, तैसें कर्मभी विचित्र प्रकारके हैं, वे किसीकों तुरंत और किसीकों जन्मांतरमें प्राप्त होते हैं. कर्मके अनुसार मनुष्यकों जुदी जुदी योनियें प्राप्त होती हैं. कोइ कहेगा कि इसकी सबूति क्या? तो समझना कि-किसी वक्त मनुष्य मरकें व्यंतर होता है और वो आकें उनके कुटुंबके पूँछे हूवे सभी जवाब देता हैं, उसपरसें दूसरा भव सिद्ध होता है, और उन्होंकों प्रतीति करा देता है. अपनी करणी माफक जीव दूसरी गतिमें जाता है. सब बातें कर्मके संबंधसेंही बनती हैं. पुनः मंत्रवादि सॉपके मंत्र पढते हैं उस वक्त मंत्रके अधिष्ठायक देव सॉपके विषकों शरीरमेंसें हरण कर लेते हैं, उसपरसें देवकी जाति भी सिद्ध होती है. जब दूसरी गति है, तब कर्म बिगर दूसरी गतिमें कौन लेजावे? इस अनुमानसें भी कर्म सिद्ध होता है.

४६ प्रश्नः—कर्मके संयोगसें परिणाम बिगडते है-और नये कर्मबंधे जाते है-इसी तरहसें परंपरा चली जाती है तब कर्मसें मुक्त किस प्रकारसें होवै?

उत्तरः—कर्म दो प्रकारके हैं-अेक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी-उसमें जो निरुपक्रमी कर्मबंधे हुवे होते हैं तो भुक्तने बिगर छूटकबारा नहीं होता

है, और उपक्रमी कर्मबंधा हुवा होवा है तो आत्माकी विशुद्धतासें गिर जाता है और अधिक विशुद्धता प्राप्त होती है. जैसेंकि कितनेक रोग अैसे होते है कि जन्मपर्यंत-अंततक भुक्तने विगर छुटकारा नहीं होता है और कितनेक रोगकी औषधीका प्रयोग करनेंसेंही शांति हो जाती है. जैसे जो गुरुके संयोगसें ज्ञान होवा है वो ज्ञानवंत जीव पापका उदय होवै तब शोचता है कि मैंनें अज्ञानतासें कर्म बांध लिये हैं वै भुक्ते विगर छुटकारा ही नहीं है; वास्ते मुझकों विकल्प करना दुरस्त नहीं. बुरे काम किये उनकी यह शिक्षा भुक्तनीहीं चाहियें. अैसी सुंदर भावना ल्याकर जब जीव समभावमें रहता है तब वो उपक्रम कर्मकों उपक्रम लगता है और उस्सें जलदी उन कर्मका नाश हो जाता है. यहां आत्माकी पुद्गल संयोगसें राग द्वेषरुप परिणति न हुइ वोही चिकनाइ कम हुइ उससें पूर्वके जो कर्म थे वो गिर पडे. फिर शुभ कर्मकों भी उपक्रम लगता है सो इस रीतिसें कि-जब जीवकों पुण्योदयसें धन-दौलत-पुत्र-मकान-दुकान वगैरः सब चीज सुंदर मीलती है, तब जीव अहंकारमें लीन होता है. इस मुजब अहंकार करनेंसें शुभकर्मकों उपक्रम लगता है. सबब जो शुभकर्म बंधाते हैं वै मंद राग द्वेषसें बंधाते हैं और जब अहंकारादि जोर करते हैं तब तीव्र रागद्वेष होता है वो अशुभ है और अशुभ है उस्सें शुभके पुद्गल भुक्ते जावें तब शुभ कर्मी हुवा यही उपक्रम लगा. वास्ते उत्तम पुरुषकों चाहे उतनी ऋद्धि मिलजाय तो भीवै अहंकार नहीं करते हैं; लेकिन भावना भाते है कि-" पूर्वमें मैंनें धर्मकरणी की उनके प्रभावसें शुभ कर्म उपार्जन हुवा है अब मोहके वश होकर मैं अहंकार करकें कर्म बांधुंगा तौ फिर दुर्गतिमें जाना पडेगा. यह पुद्गलिक सुख तो अस्थिर है, संसारी वस्तुओंका योग सो तो वियोग संयुक्त है वास्ते उसमें मद करना वो योग्य नहीं है. फिर अैसे सुखमें मग्न होना वो भी योग्य नहीं. मुझे तौ आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना वोही योग्य है ". अैसी भावनाका उपयोग करनेवाले उत्तम जीवके शुभकर्मकों उपक्रम नहीं लगता है: मगर शुभकर्म पुष्ट होतेहै,

४७ प्रश्नः—शुभकर्म पुष्ट होनेसें वैभी मुक्तिकों रोकते हैं वास्ते पुन्य तथा पाप दोनू त्याग देने योग्य कहे हैं उसका क्या?

उत्तरः—जैसे शुभकर्म बांधनेके वक्त राजा, चक्रवर्ति, देवता, शाहुकार इत्यादि होकर पुद्गलिक सुख भुक्तनेकी इच्छा रखनेसें जो पुन्य बंधाता हैं तैसे पुन्यकी इच्छा रखनेका तो निषेधही है. अैसी इच्छा तो रखनी ही नहीं; कारण कि अैसी इच्छासें करकें जो पुन्य बंधाजाता है वो पापानुबंधी पुन्य बंधाजाता है. उससें वो पुन्य भुक्तनेमें फिर पाप बंधाता है और उनसें आत्मा मलीन होता है, दुर्गतिके दुःख भुक्तने पडते हैं और आत्माकी शुद्धि नहीं होती है; परंतु जिन पुरुषोंको पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है और आत्मिक धर्म प्रकट करनेके लिये उद्यम करते हैं उसमें शुभ योगकी प्रवृत्ति होनेसें जो शुभकर्म बंधे जावें उनसें आत्मधर्मकों विघ्न नहीं होता है. सबब कि ज्यौं ज्यौं गुणस्थानक चढता जावै त्यौं त्यौं पुन्यराशि वढती जाती है; मगर उपरके गुणस्थानमें उनकी स्थिति नहीं वढती है. मतलब यह कि जिन जिन पुरुषोंनें श्रेणी मांडी है उनकों मुक्ति नजदीक है. फिर पुन्यराशि ज्यादे और स्थिति अल्प है उससें अल्प कालमें वहुत सुख भुक्त कर वे मुक्तिमें जाते हैं. मुक्तिकी अटकायत नहीं होती. जैसें खेतमें जुवारी वोते हैं उनकों जुवारीकी जरूरत है, कडविनकी जरुरत नहीं है; लेकिन सहजसें कडविन पैदा होती है. उसमें भी फिर पहिले तौ कडविन देखनेमें आती है उस्सें 'यह तो कडविन है' अैसा शोचकर कडबिनकों उखाड डाले तौ जुवारी भी न देखै, तैसें शुभ योगकी प्रवृत्ति करने के समय अैसा शोचे कि यह तौ पुन्यकरणी है, इनसें आत्माकों गुण नहीं होगा अैसा समजकर जो सख्स शुभकरणीका त्याग करै उनकों आत्मिकधर्म प्राप्त होनेका नहीं, और योगप्रवृत्ति बंध होनेकी नहीं. उस्सें अशुभ योगकी प्रवृत्तिसें अशुभ कर्म बंधायगा और आत्मा मलीन होयगा; वास्ते संसार सुखके अर्थ शुभ वा अशुभ क्रिया त्यागने लायक है. वो करणी आत्माकों गुण करनेवाली नहीं है. फिर गुणस्थानककी हद मुजब शुभ क्रिया भी त्याग की जाती है. जैसेंकी आ-

वक पोषध करते हैं तब द्रव्य-पूजा प्रमुख नहीं करते है. और मुनि महाराज भी द्रव्यपूजा नहीं करते हैं. फिर मुनिमहाराज ध्यानरुप होते है उन औसरमें आवश्यकादि क्रियाकी भी अभिलाप नहीं करते है. अपने स्वभावमें ही लीन हो जाते हैं. परभावका विचारही नहीं करते, आत्माके गुण पर्यायकी रमणता करते हैं, चिदानंद सुखमें सदा मग्न रहेते है; मगर उस ध्यानका काल अंतर्मुहूर्त्तका है. अेक ध्यान ज्यादे वक्त नहीं रहता है वास्ते जिस औसर ध्यान करते है उस औसरमें शुभ क्रियाकी अंदर चित्त नहीं रखते हैं और ध्यानसें रहित होवें उस औसर जिन जिन गुणस्थानमें जो जो क्रिया करनी व्याजवी हो वोही करते हैं. अैसे मुनि किसी प्रकारसें स्वप्नमें भी विषयकी वांछना नहीं रखते हैं. और जो विषयकी वांछासें मोहके वश होकर संयम प्रवृत्ति और श्रावकपनेकी प्रवृत्ति छोड देते हैं और मानते हैं कि हम आत्मज्ञान साधते हैं, वो कुच्छ जैनमार्गकी रीति नहीं है. जैनमार्गके जानेवाले श्री गणधर महाराज तथा आचार्यजी भी अपने गुणस्थान मुजब क्रिया करते हैं. जैसें कि स्थविर मुनिने आत्मस्वरूपकेही प्रश्न किये हैं. और गोतमस्वामीजीनें उनके उत्तर आत्मस्वरूपकेही बताये हैं. लेकिन उसबाद "चार महाव्रतरूप संयम था वो पंच महाव्रत रूप संयम प्रतिक्रमण सहित आदर ल्युं" यह अधिकार श्री भगवती सूत्रजीके पहिले शतकके नौवें उद्देशेमें छपी हुइ प्रतके १२१ मे पानेमे है; वास्ते गुणठाणेकी वर्त्तना मुजब क्रिया आत्मधर्मम अटकायत नहीं करती है; तदपि जो प्रभुकी आज्ञासें विपरीत विचार स्थापन करते हैं वो सर्वज्ञके मार्गकी रीति नहीं है. सर्वज्ञ महाराजीनें जिस मुजब सिद्धांतमें कहा है उसी मुजब चलनेमें ही कल्यान है.

४८ प्रश्नः—आत्मा नित्य है कि अनित्य हैं ?

उत्तरः—आत्मा सदाकाळ नित्य है.

४९ प्रश्नः—जीव मरता है अैसा सब जगत् कहता है उसका खुलासा क्या ?

उत्तरः—जीव नहीं मरता है; लेकीन कर्मके संयोगसें करके मनुष्य, तीर्यंच, नारकी, देवपना पाता है. उनके शरीर संबंधी पंचेंद्रिय आदि दश प्राण

बांधता है. स्पर्शेंद्रिय सो शरीर, रसेंद्रिय सो जीभ, घ्राणेंद्रिय सो नाक चक्षु इंद्रिय सो आंख, श्रोतेंद्रिय सो कान-यह पांच इंद्रिय तथा मन बल सो मनकी शक्ति, वचनबल सो बोलनेकी शक्ति, कायबल सो शरीरकी शक्ति, श्वासोच्छ्वास और आयुषये दश प्राण पूर्वक कर्मसें प्राप्त होते हैं और उनकी स्थिति पूरी हो जाय कि उनका विनाश हो जाता है-उसको जीव मरता है औसा लोग कहते हैं-सबब जो जीवका स्वरूप अरूपी है उसको कोइ देख सक्ता नहीं, और वो दश प्राणकों देखकर जीता है यौं कहते हैं. जब वो प्राण चले गये तब देह जीव रहित होता है उसको सबब कि जिस शरीरमें जीव रहताथा, उसी लिये जान रहित कहनेकी प्रवृत्ति है. पीछे जिस जगह जानेका कर्म बंधा है उस जगह फिर ये वैसेही प्राण इकठे होते है और उपजते हैं. वस्तुपनेसेंभी आत्माका विनाश नहीं होता जैसें सुवर्णके अनेक घाट बनते हैं यानि सुनेकी माला बनाइ और उनकों तोडकर फिर कटीमेखला बनाइ. फिर उसकों तोडकर कडे बनवाये; मगर सब ठौर सुवर्ण तो कायमही रहता है, तैसें जो जीव पंचेंद्रिय मनुष्य होता है वो एकेंद्रिय, बेरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय, नारकी, देवता वगैरः में जैसा जैसा कर्म बांधता है उस मुजब जाता है. वहां आत्मप्रदेशका घाट फेरफार होता है. जैसें कि हाथीके के शरीरमें आत्मप्रदेश महाकायमें व्याप्तमान हुवा रहता है और कंथुए (अति सूक्ष्मजंतु विशेष.) के शरीरमें कंथुए जितना फैला हुवा रहता है- जिस मुजबका शरीर हो उस मुजब बडी छोटी अवगाहना बनती है. दीपक करके उसपर टोकरा ढक देवें तो उतनेमेंही प्रकाश पडता है और वो टोकरा उठा लेकर दीपक घरमें रखदेवें तो तो सारे मकानभरमें उजाला करता है, वैसेंही आत्माकी अवगाहना-फैलाव-कमी ज्यादे होता है. उसका नाम जैनशास्त्रमे पर्याय कहाजाता है. उस्सें आत्माद्रव्यसें नित्य है और उपर मुजब पर्याय बदल जाता है उन अपेक्षासें अनित्य कहा जाता है. अब आत्मा नित्य हैं वोभी प्रत्यक्षपनेसें समझा जाता है, जीव खुद इस भवमें मरगया नहीं है; मगर गतभवमें मरगयाथा उस्सें बालक, युवान और वृद्ध ये सबकों मरनेका भय है

'शायद मर जाऊंगा' वो पूर्वकालमें मरगयाथा उसकीही संज्ञा चली आती है. जैसें कि मनुष्य निंदवश हो जाता है, तब वेभान अवस्था होती है तौ भी दिनको कप्पडका धंधा करता होता है तो कितनेक जन निंदमें धोती या हरकोइ कपडा हाथमें आवै तौ फाडं डालता है वो क्या है ? दिनकों काम किया हो उसके उपयोगकी ही संज्ञा है. तैसें निंदमें विचारभी हुवा करते हैं. जाग्रतावस्थामें जिसकों निरथे बजानेकी आदत है उसका चित्त अन्यकार्यमें होता है तौ भी अंगुलीआं हिलती ही रहती हैं, तैसें पिछले भवकी संज्ञासें इस भवमें कार्य होता है, पिछले भवका तो भान नहीं होता; मगर पिछलेभवमें आदतथी वैसें किये करता है. जैसेंकि बालक जन्मता है और तीसरेरोज वो अपनी माताकों स्तनपानके लिये विलग पडता है, उनकों स्तनपान करना किसने सिखाया? अगले जन्मकी संज्ञासेंही स्तन मुंहमें लेकर दुग्धपान करता है. कदापि कोइ अैसा कहेदे कि बच्चेकों उनकी मा मुँहमें देती है,; लेकिन मुँह हिलाना वो तो बच्चेकाही काम है, वो काम मातासें बन सके वैसा नहीं है. वास्ते पिछले भवकी वासनासेंही बनता है. छोटे बच्चेकों पैसा बतलाते हैं तौ तुरंत ले लेता है. स्त्रीकों देखकर विषय विकार होता है. स्त्रीभोग किसीने नहीं सिखाया है; मगर पूर्वके अभ्याससें वांछना होती है. फिर पूर्वभवमें धर्म किया होय वैसे बालकके अगाडी धर्मकी बात करैं तौ खुश होता है और वो संज्ञा नहीं होती है तौ खुश नहीं होआता है. इस्सें भी सिद्ध होता है कि आत्मा नित्य है.

२० प्रश्नः—कितनेक धर्मवाले चार गति नहीं मानते हैं, फक्त इतनाही मानते हैं कि जीव, ईश्वर या खुदा या देवके वहांसें आता है और पीछा वहीं चला जाता है उसका क्या खुलासा है ?

उत्तरः—इस जगतमें जीव जिस धर्ममें उत्पन्न हुवा हो उस धर्ममें जो कहा होवै उसकोंही मानता है. किसी जीवने नीच जातिका कर्म बांधा होवै और वो सर्वज्ञके धर्मसें विरुद्ध धर्म पालता हो; किंतु निकट भवी होता है तौ चित्तमें न्यायकी बुद्धि प्राप्त होती है. और सर्वज्ञके लक्षण तपासता

है. उसमें जिनके लक्षण न्याय युक्त लगें उनकों सर्वज्ञ मानता है. जिनकों इस जन्ममें आत्माका कार्य होनेका नहीं वो मनुष्य दूसरी बातमें कदाचित् हुंशीआर हो; मगर सर्वज्ञके लक्षण तपासनेकी बुद्धिवाला नहीं होता है उस्सें वो सर्वज्ञकों नहीं पहेचानता है, इस्सें करकें जिस धर्ममें पैदा हुवा हो उसी मुजब चलता है. देखियें कि—वै पाप पुन्यकों मानते हैं, तब पाप पुन्यके फल भी भुक्तनेही चाहियें. पापके योगसें नरकमें जाता है वहां दुःख भुक्तता है. फिर जैसें यहां गुनहा करनेवालेकों कैद करते हैं और पीछा वो मुदत पूर्ण होनेसें बंधीखानेसें छूट जाता है, तैसें नरककी अंदरसेंभी पीछा नीकलता है. अच्छे कृत्य करनेवालोंकों अच्छी पदवी मिलती है, तैसें इस संसारमें पुन्य किया हो तौ देवकी गति मिलती है, उससें कमी पुन्य बंधा होवै तौ मनुष्य गति मिलती है. पाप बंधा होवै तौ एकेंद्रिय, बेंरेंद्रिय, तेरेंद्रिय, चौरेंद्रिय तिर्यंचपंचेंद्रिय प्रमुख होता है. फिर इस्सेंभी ज्यादे पाप बांधा हो तौ नरकमें जाता है. इस मुजब जिस गतिमें रहकर जैसे कृत्य किये हो वैसें दूसरी गतिमें फल मिलवे हैं. इश्वर कर्मके संयोग विगर एककों मनुष्य और एककों जानवर क्यौं बनावै ? सब समान बनाने चाहियें, वो तो नजर नहीं आता है; वास्ते अैसा मानना हमारे विचार मुजब तो गैरव्याजबी मालूम होता है. जो सर्वज्ञ चार गतियोंका स्वरूप बताते है वोही व्याजबी मालूम होता है. सर्वज्ञके कथनमें कुच्छभी फेरफार नहीं होता है. लेकिन जिसकों सर्वज्ञपना प्राप्त नहीं हुवा है उनकों सर्वज्ञ माननेसें फेरफार आता है. उनका कुच्छ उपाय नहीं; परंतु अर्थी जीवोंकों तौ सर्वज्ञकी पहिचान करनेका उद्यम जरुर करना चाहियें. सबब} कि सब बात प्रत्यक्ष नहीं है. जो जो अरूपी पदार्थ हैं उसका, और गतकालमें हो गइ हुइ बाबतोंका और भविष्यकालमें होनेहारी बाबतोंका अनुमान कम हो सकै. विशेष तो उन्होंके कथन मुजबही मानना पडै उसी लिये सर्वज्ञका वर्त्तन, उनका उपदेश, ज्ञान तथा उनके शास्त्र—यह चार वस्तुकी तपास करनी चाहिये जिस शास्त्रमें उत्तम ज्ञान होवै उनकों प्रमाण-मंजूर करना. उंचे ज्ञानवा-

लेकी प्रवृत्तिभी अच्छीही होती है और उस मुजब चलनेसें अपनाभी कार्य हो सकता है.

... ...—जैनशास्त्रमें क्या क्या विषय है?

उत्तरः—जैन धर्मके सर्वज्ञनें स्वर्गके स्वरूपका वर्णन जितना बतलाया है उतना किसी अन्यशास्त्रमें नहीं बताया है. नरकके भेद, वहांकी वर्चनाका स्वरूप, तिर्यंचका स्वरूप तथा मनुष्यका स्वरूपभी जो जो सूक्ष्मरीतिसें उन्होंने वर्णन किया है वैसा वर्णन किसी शास्त्रमें नहीं किया गया है. (वो स्वरूप इस जगह लिखनेसें पुस्तक विस्तारवंत हो जावे.) जीवाभिगम, पन्नवणा, समवायांग, सूयगडांगजी वगेरः सूत्रोंमें बहुत विस्तारसह उसका वर्णन—स्वरूप दिखलाया गया है. जिज्ञासु हो सो उन उन सूत्रोंसें शंका दूर कर लेंगे. तिर्छालोक कि जिसमें अपन रहते है, उसमें समुद्रकी हद जिसने जितनी देखी उतनीही कह दिखाइ है आगे क्या है? वो शोध नही सक्ते हैं. कुच्छभी होना तो चाहिये! लेकिन वो चर्मचक्षुसें देखा नही जावे; क्यों कि समुद्रमें ज्यादा आगे नहीं जाया जाता है. को लंवसने अमेरिका ढुंढ निकाला उस पहले अमेरिका जाहिर न था, अब तकभी साहसीक इंग्रेज लोग नइ जगह ढुंढ निकालते हैं और आगेभी जिनसें महेनत वन सकेगी वो नइ शोध करेंगे. वास्ते, नजरसें, देखा उतनाही वस क्यों कहा जावे? सव पृथिवीका ज्ञान तो जिनके अंतरंगसें कर्मक्षय होगये होवें उनकोंही होता है. जब मंत्रसाधन करते हैं तव उनमंत्रका अधिष्ठायकदेव कुच्छ अपना शब्द नहीं सुनते हैं; मगर उनकों अपनेसें ज्यादे ज्ञान है, उस ज्ञानसें वे जान सकते है कि—'मेरा किसीने स्मरण किया है.' देवतासेंभी, अधिकज्ञान सर्वज्ञकों है, उससें उन्होंनें असंख्याते द्वीप समुद्रका स्वरूप बतलाया है. गतकालकाभी स्वरूप बतलाया है. फिर कर्मकास्वरूप, कर्मकी वर्गणाकास्वरूप, धर्मास्तिकाय आकाशास्तिकायकास्वरूप, कालकास्वरूप तथा आत्माकास्वरूप बहुत विस्तारसें बतलाया है वो दूसरे शास्त्रोंमें मालुम नहीं होता है. यह अधिकार कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, तत्वार्थ, सम्मतितर्क, विशेषाव

श्यकादि शास्त्रोंमें है. वो देखोगे तौ मालूम होगा कि जैनशास्त्रमें कितना सूक्ष्म ज्ञान बताया गया है? वर्त्तनके विषयमें देखोगे तौ जो आगे लिख गये हैं वें अठारह दूषणसें रहितकी कैसी प्रवृत्ति होती है? वो भी मालूम हो जायगा. विशेष तौ सिद्धांतमें चारित्रे है वो देखोगे तौ मालूम होगा कि, जिनकों किसी प्रकारकी वांछा नहीं, मात्र उपकारी बुद्धिही है, स्त्रीधन वगैर इच्छा और संगत नहीं, फिर आपकों वडाइभी नहीं, ऐसे देवकों देव कहेने योग्य हैं. फिर जो जीव अपने आत्माका ज्ञान मिलाकर राग द्वेषका त्याग करें वो कर्मसें मुक्त हो जावें. यहां ऐसा नहीं कहा है कि मेरेकों मानोगे तोही काम फतेह होगा. जो आत्माकी शुद्ध परिणती मुजब चलेगा उसका काम फतेह होगा. इस तरहका जिनका शुद्ध उपदेश है उन्होंकी वताइ हुइ वावते वहुतही प्यारी लगती हैं हमारे कहनेसें कुच्छ नहीं; मगर न्यायबुद्धि धारण करकें निष्पक्षतासें जैनशास्त्र और अन्यमतके शास्त्र देखोगे तौ तुमकों वेशक मालूम होगा, वास्ते फुरसुद लेकर निरंतर ज्ञानाभ्यास करना. ज्ञानाभ्याससें जीवकों कर्मके आवरण हठते जाते है और बुद्धि निर्मळ होती जाती है.

५२ प्रश्नः—जैनशास्त्रमें कितने प्रकारके कर्म कहे हैं और वे कर्मखप-क्षय हो जानेसें क्या क्या शुद्धता होती है?

उत्तरः—जैनशास्त्रमें आठ प्रकारके कर्म कहे हैं यानि ज्ञानावरणीयकर्म १, दर्शनावणीयकर्म २, मोहनीयकर्म ३, वेदनीयकर्म ४, नामकर्म ५, गोत्रकर्म ६, आयुकर्म ७, और अंतरायकर्म-यह आठ हैं. उसमें पहले कर्मकी प्रकृति ५, दूसरेकी ९, तीसरेकी २८, चोथेकी २, पांचवेकी १०३, छठेकी २, सातवेकी ४, और आठवेकी ५ ऐसे उत्तर प्रकृति १५८ हैं. औरभी प्रकृति भेद विस्तारवंत है-यानि एक एक प्रकृतिभी बहुत प्रकारकी हैं.

प्रथम ज्ञानावरणीय कर्मका स्वरूप इस मुजब है:-ज्ञान पांच प्रकारके हैं यानि मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यव और केवल ये पांच है. उसमें मतिज्ञान उसकों कहते है कि, मतिसें करकें जान-समझ लेना सो आत्माका उपयोग, पांच इंद्रिये और मन इनके योगसें ज्ञान होवे वो मतिज्ञान मतिज्ञानसें पिछले भवका ज्ञान होता है. परंतु आवरण

लगनेसें सब जीवोंकों नहीं होता है. मतिज्ञानसें जितनी शक्ति-विचारशक्ति खुल्ली है. उतना ज्ञान हो सकता है,क्यौं कि कितनेक मनुष्य बहुत लंबे विचार करशक्ते हैं,कितनेक अनुमानसेंभी विशेष विचार कर सक्ते हैं और कितनेक नही कर शक्ते हैं. उसका सबब यही है कि जिनके कर्म अल्प हैं उनकों बुद्धि विशेष है और जिनके कर्म ज्यादा हैं उनकी बुद्धि कम होती है. फिर दूसरी तरहके भी आवरण-ढकन होते हैं. जैसें कि कितनेक अनेक जातीकी लिपी पढेहुवे होते हैं, तर्क वितर्कभी बहुत कर सक्ते हैं, याददास्तीभी बहुत होती है, उस्से जो कुच्छ पढते-वांचते हैं सो याद रहजाता है, पढना होवै तो थोडेही वक्तमें पढजाते हैं; परंतु वो बुद्धिका फक्त संसारके काममें उपयोग करते हैं, धर्मके काममें उपयोग करनेके आवरण खुल गये नहीं, उस्सें धर्मका सच्चा अभ्यास नहीं करते हैं और निष्पक्षपात संबंधसें देख नहीं सक्ते. कितनेककों अैसे आवरण होते है कि धर्मका ज्ञान मिलानेमें अच्छी बुद्धि है उस्सें शास्त्र देखकर शास्त्रकी सुंदर बातका न्यायबुद्धिसें निश्चय करते हैं. पीछे साररूप शास्त्रकी बात ग्रहण करते हैं और तत्त्व विचारणा करते हैं. कितनेकके अैसे आवरण होते हैं कि संसारमें बुद्धि नहीं चलती और धर्ममेंभी नहीं चलती. दोनू प्रकारसें बुद्धिकी न्यूनता होती है. कितनेकी सब तरहसें बुद्धि खुल जाती है और सब काममें न्यायकीही बुद्धि प्राप्त होती है. सबी बातकोंही सबी जानता है बहुत प्रकारसें मतिज्ञानके आवरण नाश हो गये होवै तबही अैसी बुद्धि प्राप्त होती है. कितनेकोंमें बुद्धि कम होवै; लेकिन सत्यवादी पुरुषका संग करनेकी बुद्धि जाग्रत हुइ है उस्सें कम अक्कल होनेपरभी उनके कथन मुजब चलकर अपने आत्माका काम कर सकता है. कोइ कोइ जीव कर्मके आवरणकें योगसें मूक, अंधे और बहेरे भी होते हैं. इस्सें ज्ञान बढा नहीं सकते हैं. फिर कोइ मूक और तोतले होवै; मगर कानके आवरण खुले हैं उस्सें धर्म सुनकर अपने आत्माका काम कर सक्ते हैं; लेकिन दूसरेका उपकार नहीं कर शक्ते. बधिर होते हैं; मगर आंखके जोरसें सुनकर उसका विचार कर अपना काम कर सक्ते हैं. इस मुजब मतिज्ञानावरणी कर्मसें करकें आत्मका ज्ञान आच्छादित होना है उसकों मतिज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

श्रुतज्ञान तो शास्त्र और अक्षरका नाम है. यह ज्ञान मतिज्ञानके संगही रहता है. जहां मतिज्ञान वहां श्रुतज्ञान और जहां श्रुतज्ञान वहां मतिज्ञान होताही है. ये दोनुका आवरण होना और खुलना साथही रहता है. मतिसें जो अंतरमें विचार होती है उसमें

अक्षर है सो श्रुतज्ञान है. उनमें जिस जीवकों समकित हुवा है उस जीवकों मति श्रुति अज्ञान कहाता है. कोइ शंका करेगा कि संसारमें बहुत बुद्धिवंत होते हैं उनकों अज्ञानी क्यौं कहे जाँय ? तौ उनके जवाबमें-संसारमें बुद्धिका उपयोग करनेसें फिर नये कर्म बांध लिये और अपना आत्मधर्म जैसा है वैसा जानकर प्रकट करनेका उद्यम करना वो तौ हुवा नहीं और उलटा आत्माकों मलीन कर दिया, तब वो ज्ञान सो अज्ञानहीं कहा जाता है. अब जो पुरूष ज्ञानवंत पुरूषकी और ज्ञान-शास्त्रकी निंदा करता है, पढनेके वक्त अंतराय करता है, पुस्तकपर बैठ जाता है, पुस्तकपर मस्तक रखता है, थुंक लगाता है, पुस्तक आगे मोजूद होनेपरभी आहार निहार करता है, ज्ञान पढनेकी मरजी न होनेसें उलटा द्वेष रखता है-इत्यादि ज्ञानकी आशातना करता है, वो पुरुष ज्ञानावरणी कर्म बांधकर आत्माकों आच्छादेत करता है. और जो पुरुष ज्ञानवंतकी और ज्ञानकी बहुत मानपूर्वक बहुत प्रकारसें भक्ति करता है, ज्ञान पढनेका रात दिन अभ्यास करता है, दूसरोंकों ज्ञान पढनेमें सामिल करता है, शक्ति होवै तौ आप धन खरचकर दूसरोंकों पढाता है, ज्ञानके भंडार करता है. फिर जो जो लिपी संसारी विद्याकी हैं वे पढकर कोइ मनुष्य हुंशीआर हुवा होवै तौ धर्म समजना सुलभ होवै बडी पदवी मिलावै और सुखी होवै तौ सुखसें धर्मसाधन करै, शासनकों दीपावै; वास्ते सब प्रकारसें ज्ञान पढानेमें महान् लाभ है अैसा समजकर उनमें धन खर्चता है. इसी तरह ज्ञानाराधन करनेसें कर्मके आवरण कमती होजाते हैं. विशेप प्रकारसें तत्त्व विचारणा करनेसें बहुत आवरण नाश होते हैं और आत्मा शुद्ध होता है. यह मति श्रुतज्ञानके आवरणका तथा वही कर्मक्षयका स्वरूप समझना.

अवधि ज्ञानावरणीकी प्रकृति अवधिज्ञानकों ढक देती है. जिनकों अवधिज्ञान होता है, उनकों चक्षु आदि इंद्रियोंकी जरुरत नहीं पडती है; आत्मासेंही मालूम होता है. जिसकों सौ कोषका ज्ञान हुवा हो वो सौ कोषपर जो होता होवै सो अपने स्थानमें रहा हुवा जान सकता है. गत कालकाभी जान सकता है. जिसकों लोकावधिज्ञान हुवा होवै उसकों सारे लोकमें जो जो पुद्गलिक पदार्थ हैं उन सबका ज्ञान होता है. गुदस्त-भूतकालमेंभी असंख्याते कालका ज्ञान होता है. और जिनकों इन कर्मसें करकें आवरण लगे होवै उनकों वो ज्ञान बिलकुल नहीं होता है; लेकिन ज्यौं ज्यौं फिर आत्माकी शुद्धि होती जाती है और राग द्वेषरूप उपाधि कमती हो जाती है

त्यौं त्यौं अवधिज्ञान प्रगट होता है. किसीकों थोडे आवरण हठ गये होवें तौ थोडे क्षेत्रमें जो अदृश्य पदार्थ होता है वो आत्मासें जान सकता है. पीछे उन करतेंभी ज्यादे आवरण हठ जाय तौ ज्यादे क्षेत्र तथा ज्यादे कालका ज्ञान होता है. जैसें अपन किसी गॉवकों जाते हैं तब आंखसें तौ गाँव नहीं देख सकते हैं; मगर अंतरंगमें शोचते हैं तौ जाने वो गॉव नजरके आगे रुजु है वैसा देखते है. तैसेंही अवधिज्ञानसें भी विगर देखे हुवे पदार्थ अंतरंगमें मालूम होते है. इनके छ भेद हैं. उनका विस्तार नंदीसूत्र तथा आवश्यकसूत्रजी वगैरः में विशेषतासें देख लेना. इस ज्ञानकों ढक देवे उसकों अवधिज्ञानावरणीकर्म कहते है. यह ज्ञान देवताओंकों होता है, उस्सें मंत्रका स्मरण करनेके साथही उनकों खबर होती है और आते हैं. उनमेंभी जैसे जिन देवके आवरण खुलगये होंते हैं उनकों उस मुजब ज्ञान प्रगट होता है. ये गतिमें विशुद्ध परिणामवाले जाते हैं, इस्सें कॅमी ज्यास्ती भी एकको यह ज्ञान होना है. बिलकुल न हो ऐसा नहीं होता है. वहां भी मिथ्यादृष्टिवंत देव हैं उनकों विभंग अज्ञान होता है–उसका सबब यह है कि उनकों आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता है; लेकिन परोक्ष पदार्थकों जान लेनेकी शक्ति होती है. सम्यक्दृष्टि हैं उनकों तौ अवधिज्ञान कहा जाता है; क्यों कि उनकों तत्त्वज्ञान होताहै. वे पुरुष तो देवताके सुखकोंभी तृणके समान गिनते हैं और मनमें भावना भाते हैं कि–" पीछले भवमें कर्मसें मुक्त होनेके लीये पिछोनेके लिये तप संयम वगैरः साधन किये; मगर वे साधन पूर्ण प्रकारसें नहीं किये, उस्सें यह देवगतिमें संसार वर्धना करनेका हुवा और जन्म मरणके दुःख दूर नहीं हुवे. यह देवके सुख अस्थिर हैं और कर्मबंधनके कारण हैं; वास्ते यह देवायु पूर्ण हुवे बाद मानवभव पाउं तौ अब पूर्ण प्रकारसें प्रभुजीकी आज्ञा मुजब धर्म आराधन करुं कि जिस्सें पुनः भवचक्रमें भ्रमण न करना पडे."
ऐसी भावना करता है. फिर रत्नमय पुस्तक पढता–वांचता है, शाश्वते जिनमंदिरमें जिनबिंब हैं उनकी विस्तार सह भावयुक्त द्रव्य तथा भावपूजा करता है. तीर्थंकर भगवान् विचरते होवें वहां जाकर उन्होंकी भक्ति करता है, धर्मोपदेश सुनता है, और आत्मस्वभावमें रहनेमें सुख समझकर विचारता है, देवता संबंधी ऐसे ज्ञानकों अवधिज्ञान कहते हैं; किन्तु अवधिज्ञानके पूर्ण आवरण क्षय नहीं हुवे. पूर्ण आवरण तौ मनुष्यगतिमेंही क्षय होते हैं. जिनकों केवलज्ञान होता है उन्होंके ही संपूर्ण आवरण क्षय होते है.

मनःपर्यव ज्ञानावरणीय कर्म सो मनपर्यव ज्ञानकों आच्छादित करं देता है. मनपर्यव ज्ञानके आवरण जिनके क्षय हो जाते हैं या दूर हठ जाते हैं वै मनके भाव याने मनमें शोची हुइ वात जान लेते हैं. वो भी अपने आत्मासेंही जानते है. उनकों इंद्रियोकी जरूरत नहीं पडती है. यह ज्ञान संसार त्यागी, संयमी मुनि छठ्ठे सातवे गुणस्थानकमें वर्तनेवालोंकोंही होता है. उनमेंभी थोडे आवरण हठ गये होवै तो वै ऋजुमति मनपर्यव ज्ञानी कहाते है. वो पुरुष मनमें चिंतन किये हुवे पदार्थ जानता है. उन करते विपुलमति मनपर्यवज्ञानी बहुत विशुद्ध जानता है. वो ज्ञानकी विशुद्धि ज्यादा है; सबब कि विपुलमति मनपर्यव ज्ञानवाले वही भवमें केवलज्ञान पाते हैं, उस्सें मनके विचरा विशुद्धतासें जानते हैं. यहांपर कोइ कहेगा कि अवधिज्ञानी रूपी पदार्थ जान सक्ते है, उनमें मनके विचारभी रूपी होनेसें उनकोंभी जान सक्ते हैं; वास्ते यह ज्ञान अलग बतलानेका क्या सबब है ? इसका खुलासा यही है कि—अवधिज्ञानवाला यों मनपर्यव ज्ञानवाले जैसा संपूर्ण नहीं जान सक्ता है. अवधिज्ञानवालेकों उसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त होवै अैसाभी निश्चय नहीं है. फिर मनपर्यव ज्ञानवाला मनके भाव सिवा दूसरे पदार्थ नहीं जान सक्ता है—अैसा एक दूसरमें फरक है. सबब कि कर्मके आवरण जिसकों अवधिज्ञानके हठ जाते हैं उनकों अवधिज्ञान होता है और जिसकों मनपर्यव ज्ञानके आवरण हठ गये होवै तो मनपर्यवज्ञान होता है. किसीकों पहिले मनपर्यवज्ञान और किसीकों पहिले अवधिज्ञान होता है—इस मुजब जिनके कर्मावरण जिस तरह हठते हैं उस मुजब ज्ञान प्रकटता है. ज्ञानके नामभी उस मुजब अलग अलग हैं. केवलज्ञानावरणी पांचमी प्रकृति सो केवलज्ञानकों आच्छादित करदेता है. केवलज्ञानके आवरण जिनके नाश होते हैं उनकों इंद्रिये और मनकी जरूरत नहीं होती है. अपनी आत्मशक्तिसेंही रूपी अरूपी सब पदार्थ, अतीत, अनागत और वर्त्तमानकालका ज्ञान होता है. वो ज्ञान कैसा है ? जैसे दर्पन—आयनेमें सब पदार्थका भास पडता है, वैसें आत्मामें सब पदार्थ मालूम होते हैं. मालूम होनेमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहती है, एक एक पदार्थने अतीत कालमें अनंत स्वरूप धारण किये हैं उसमें अनंत पदार्थ है उन सबके स्वरूप एकही साथ मालूम होते है—अैसी वो ज्ञानकी अद्भुत शक्ति है अैसा ज्ञान प्रकट हुवे बाद उनकों संसारमें फिरना नहीं रहता है—उनकों मुक्तिही मिलती है. अैसे ज्ञानवाले पुरुष संपूर्ण प्रकारसें धर्मदर्शानेमें शक्तिमान होते हैं. उनकों जन्म मरण नहीं होता है.

यह पांच प्रकारके ज्ञानकों हक देवै उनका नाम ज्ञानावरणी कर्म कहते हैं.

दूसरा दर्शनावरणीय कर्म याने आत्माका दर्शन गुण देखनेकों रोकनेहारा जो कर्म वो-उसके विषे समझना कि ज्ञान और दर्शन संग वर्त्तता है. प्रथम सामान्य उपयोग सो दर्शन और विशेष उपयोग सो ज्ञान. जैसें एक मनुष्यकों देखा उस वक्त मनमें आया कि यह कोइ मनुष्य है! वहां तक सामान्य उपयोग और जब ऐसा समझ गया कि यह तो जिनदास है, जैनधर्मी है, शाहुकार है, अच्छा मनुष्य है ऐसा विशेष प्रकारसें समझ गया तब विशेष उपयोग सो ज्ञानका है. ऐसी रीतिसें हरएक पदार्थमें पहला सामान्य उपयोग और पीछे विशेष उपयोग होता है. अब सामान्य उपयोग चार प्रकारका है याने चक्षुदर्शन-चक्षुसें करकें देखना उसमें आवरण होवै तो अंध होवै और थोडे आवरण होवै तो रातकों नहीं देखता है-दिनकों देख सकै, कोइ दिनकों और कोइ रातकों विशेष देख सक्ता है, कोइ नजदिकके पदार्थ देख सकै, दूरके न देख सकै; मगर आवरणके लियेसें संपूर्ण देख सकै नहीं सो चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहाजाता है. १

अचक्षुदर्शन—आंख सिवायकी इंद्रियोंसें सामान्य बोध होवे सो चक्षुदर्शन शरीरकों कुच्छ स्पर्श होवै और स्पर्श हुवा ऐसा समझा जाय; लेकिन काहेका स्पर्श हुवा ? वो नक्की न कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. नाककों खुशबु आइ; मगर काहेकी खुशबु आइ ? वो नहीं कहा जाय वहां तक सामान्य उपयोग. मुंहमें रक्खे हुवे पदार्थके स्वादका निश्चय न होवै वहां तक सामान्य उपयोग. कानमें शब्द पडा; मगर क्या शब्द है वो नक्की न होवे वहां तक सामान्य उपयोग. यह उपयोग अचक्षुदर्शनके हैं. उनके आवरण उस मुजब किसी मनुष्यकों स्पर्श होवै मगर उनकों नहीं समझ सकै, कितनेक नाकसें खुशबु नहीं जान सकते हैं, मुंहसें स्वाद नहीं जान सकते हैं, कानसें सुन नहीं सकते हैं-यह दर्शनावरणी कर्मका प्रभाव है. फिर जितनी इंद्रियोंकी शक्ति है उतनी परिपूर्ण नहीं चलती वो भी आवरणसेंही नहीं चलती. अचक्षु-चक्षुदर्शनका संपूर्ण आवरण केवलदर्शन पानेकी वक्त नाश होता है. २, अवधिदर्शनरूपी पदार्थका आत्मासें सामान्य पनेसें समझ लेना सो अवधिदर्शन, उनका आवरण जहां तक है वहां तक अवधिदर्शन नहीं होता है. ३

केवलदर्शन—केवलदर्शनका आवरण जहां तक होता है वहां तक केवलदर्शन

प्राप्त नहीं होता; लेकिन इतना फरक है कि केवलदर्शनका उपयोग पीछे होता है और केवलज्ञानका उपयोग पहिला होता है. उनका सबब यह है कि जिनकों केवलज्ञान होता है उनको फौरन बोध होता है-उनकों कोइ अनुक्रमसें बोध नहीं होता है, पहिला विशेष होता है पीछे सामान्य होता है. वो इस प्रकारसें कि जैसें कोइ मनुष्यके सब प्रकारसें लक्षण समझलीए बाद उनकी सब हकीकत पूछनी नहीं पडती है-सबब कि वो सामान्य हो जाती है. और एक वक्त पूरा बोध हुवे बाद सामान्य होता है. यह अधिकार नंदीसूत्रजीमें विस्तारसें है.

पांच निद्रा है वो भी दर्शनका आवरण है. जहां तक मनुष्य निंदवश होवे वहां तक कुच्छ समझ-देख नहीं सक्ता. उनमेंभी आवरणकी तारतम्यतासें फेरफार है वो निद्राका अलग अलग स्वरूप समझनेसें मालूम होगा. जीवकों उंघमें-निंदमें कुच्छ सहज स्पर्श होवै या शब्द सुनेमें आवै तो तुरंत जागृत हो जाता है. और जागृत होनेसें बिलकुल दिलगीर नहीं होता है, वो 'निद्रा' कोइ मनुष्यकों जगावै तो बहुत दफै जोरसें अवाज देवे या बहुतही शोरगुल मच जाय तब जागृत होवै और दिलमें दुःख पावै. जगानेवालेपर गुस्सा करे-एसी सक्त निंद उसकों 'निद्रानिद्रा' कहते हैं. बैठे बैठेही निंद आ जावे वो 'प्रचला.' चलते चलतेही निंद लेवै वो 'प्रचला प्रचला.' और पांचवा 'स्थिणर्द्धि' निद्रा छ महीने तक आती है. वो निंद ऐसी सक्त आती है कि वो मनुष्य निंदमेंही निंदमें उठ खडा होकर हस्तिके दंतूशल निकाल-उखाड डाले इतना उस निंदमें बल होता है. वो निंदका आवरण बहुतही सक्त है उस निंदमें अर्द्ध वासुदेवके जितना बल होता है; मगर निंद जाती रहे तब बल नहीं होता है. इस कालमें तो वो निंद वालेकों अपने बलसें दुगना तिगुना बल होवै ऐसा कर्मग्रंथके बालावबोधमें कहा है. ऐसी निंद नरकगामी जीवकों होती है. यह पांच निद्रामें सामान्य उपयोग आच्छादित हो जाता है उससें दर्शनावरणीकी ये पांच प्रकृति और चार आगे कही गइ सो मिलकर नौ हुइ-ऐसें दर्शनावरणी कर्म नौ प्रकारसें है. इस कर्मका क्षय होनेसें सामान्य उपयोगको आवरण होवे-सो नाश हो जाता है उससें केवलदर्शन प्राप्त होता है. और संपूर्ण आवरण केवलदर्शन प्राप्त होनेके वक्त नाश होते हैं; तब केवलज्ञान और केवलदर्शन साथही प्राप्त होते हैं.

तीसरा मोहनीकर्म—यह कर्म आत्माको शोकग्रस्त कर देता है. जैसे शराब पिया होवै उनको करने लायक या न करने लायकका विचार नहीं रहता है, वैसें मोहनीकर्मके जोरसें

जीवकों अपने आत्माका क्या गुन है? और प्रवृत्ति करनेकी है? उनका उपयोग नष्ट हो जाता है, और शरीर, धन, कुटुंब, पुत्र, परिवार, स्त्री आदि पदार्थोंमें मग्न हों कर उन संबंधी अनेक काममें आसक्त हो जाता है. अपने प्राणसेंभी ये वस्तुये प्यारी मानता है, जो जो अस्थिर पदार्थ हैं उनको स्थिर मान लेता है. कोइ आत्मतत्त्वकी बात करता है तौ वो सुन्नेकीभी चाहना नहीं करता है. कदापि किसीकी सोबतसें सुनेकों जावैं तौ भी सुन्नेमें लक्ष नहीं होता है. कदाचित् कानमें शब्द पड जावे तौ उनका शोच विचारभी नहीं करै और कभी शोचे तौ अैसा शोचे कि शास्त्रमें कहा है उन मुजब कौन चलता है? शास्त्र सुनकर उलटे उंधे चलते हैं और पराये दूपण ढुंढ निकालते है. कोइ गुणवंत श्रावक होवै, सम्यक् दृष्टिवंत होवै और संसारमें रहा होवैं. तौ उनकों कहे कि शास्त्रमें संसारकों असार कहा है और तुम वैसी बात जाननेवाले हो तो फिर असार संसारमें क्यों लुब्ध हो रहे हो? फिर कोइ मुनिराज किसी सबब के लिये अपवाद सेवन करते होवै तौ उनकी निंदा करै. उनका सबब यह कि शास्त्र सुनकरकें जो मोहनीकर्म थोडाभी दूर हुवा होता तौ आत्माके साथ विचार करता और आपकें दूषण देखता; परंतु मोहनीकर्मका जोर ज्यादा है उसीसें शास्त्र सुनकरभी उलटा विचार करके मोहनीकर्म ज्यादा बांधता है, और आत्माकों ज्यादा मलीन करता जाता है. फिर अन्याय, लुचाइ, ठगाइ, और चोरी करनी, दूसरेके सिर कलंक देना, दूसरेकी निंदा करनी, दूसरेकों संकटमें डालना, जीवहिंसा करनी, अहंकार ममकार करना, मदसें करकें उन्मत्त होना, झूंठा बोलना और दूसरेके पाससें झूंठा बोलानेका यत्न करनेमेंही सावधान होना, अपनी औरत, पराइ औरतकाभी विचार नहीं रखना ये सभी मोहनीकर्मके लक्षण हैं. कितनेक जीव तौ विषयमें अैसें लुब्ध हो जाते है कि अपनी माता, बहिनी और लडकी के साथभी अत्याचार करनेमें भी शंकि नहीं होवे हैं.—ये सब जोर मोहनीकर्मकाही है वो अनादिकालसें लगा हुवा है उनके प्रभावसें आत्माके गुन जो चारित्र तथा समकित है वो ढके जाते है. वो मोहनीकर्म दो प्रकारका है—याने चारित्रमोहनी और दर्शनमोहनी दो प्रकार हैं और ये दोनूकी अठ्ठाइस प्रकृतिये है. उसमें चारित्रमोहनीकी पचीस प्रकृति नीचे लिखे मुजब है:—

अनतानुबंधी, क्रोध, मान, माया और लोभ, अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया

और लोभ. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ. संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ. हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगंछा, स्त्रीवेद पुरुषवेद, और नपुंसकवेद- यह पचीस कषाय हैं उनकी विस्तार सहित पहिचान नीचे मुजब हैं.

अनंतानुबंधी क्रोध जीसकों होता है उसके मनमें बहोतही द्वेष होवै. जिस वक्त इस क्रोधका जोर होवै उस वक्त शरीरभी लाल लाल हो जाता है. जिसकेपर द्वेष होवै उनसें मरने तकभी वैर नहीं छोडै. मरनेके वक्तभी कहता जावे कि यह भवमें वैर पूरेपूरा नहीं लिया गया है तो आगामिक जन्ममेंभी वैर लउंगा. अपने पुत्र वगरः कों भी कहवे कि मैंने फलानेंके साथ वैर रख्खा था वास्ते तुमभी उनके साथ वैर रखकर चलना. वक्त हाथ लगे तब उनकों नुकशान करनेका मत भूलना. स्हामनेवाला मनुष्य शान्त होवै ओर खमानेके वास्ते आवे तो उनकी साथ लडना शुरु करै. अगर उनका किंचित् भी काम आपके हस्तक आया हो तो उनकों बडा भारी नुकशान कर देवै. नुकशानी करनेकी तुरंत शक्ति न चले तो मौका हाथ लगनेसें हानि पहुंचानेमें बिलकुल कसर नहीं रख्खे, अैसी जो कषायकी परिणती है उनका नाम शास्त्रमें अनंतानुबंधी क्रोध कहा है. जैसें पत्थरके बीच चीरा पडगया होवै वो चीरा फिर नहीं जुड सकता है यानि असलके मुवाफिक बेमालूम नहीं हो सकता है, वीसी तरह अनंतानुबंधी क्रोधवालेका क्रोध मरने तकभी शान्त नहीं होता है, उन क्रोधके प्रभावसें जीव नरकमें जाता है और महा तीव्र दुःख भुकतता है. उन क्रोधके प्रभावसें जीव समकितभी नहीं पाता है; क्योंकि वो दूर हुवे बादही जीवकों समकित उदय हो सकता है.

अनंतानुबंधी मान पत्थरके थंभके समान होता है. जैसें पत्थरका थंभ झुकानेसें नहीं झुक सकता है, वैसे अनंतानुबंधी मानवाला अपनी बडाइमें इतना मस्त रहता है कि महा गुणवंत मुनिराज होवै उनकोंभी वंदना नहीं करता है. फिर आप धर्मगुरु होकर धन, स्त्री वगैरः का उपभोग करै. और दूसरे गुणवंत पुरुषोंने स्त्री धनका त्याग कीया होवै, समताभाव आदर कर संसारसें विमुख हो गये होवै वैसे पुरुषोंकों आप नमस्कार करने लायक है; तदापि आप नमस्कार नहीं करता है; लेकिन उनके पाससें आप नमस्कार करानेका यत्न करता है. कबी आप धनवंत होवै; और वो धन कभी चला जानेसें आजीवीकाभी पूर्ण न होती होवै; तौभी किसीकी नौकरी न करै,

आपके मनमें अहंकार त्यावे कि 'क्या हम बडे दर्जेके मनुष्य होकर किसीकी नौकरी करें?' फिर किसीने कुच्छ खराब शब्द कहा हो तौ 'वो हमकों कौन कहेनेवाला' ऐसा गर्व करकें स्हामनेवालेका प्राण लेनेमेंभी नहीं डरै. फिर कभी मान छोड देनेसें अपना प्राण बच जाता हो तौभी मान न छोड देवै. ऐसें अहंकारीका कठिन अहंकार उसकोंही अनंतानुबंधी मान कहेते हैं. ऐसा मान जीवन पर्यंत रहता है.

अनंतानुबंधी मायावाला पुरुष बहुतही कपटी होता है. मुँहसें अत्यंत प्यार बतलाता है; परंतु विश्वास रखनेवालेका प्राण लेने तकभी नहीं डरता है. आपकों किंचित् फायदा होता हो तौ पुष्कळ कपट करता है. जैसे वांसकी गांठ टेढी होती है वो किसी उपायसें सीधी न हो सकें, वैसें अनंतानुबंधी मायावालेका कपटभी छुडाया नहीं जाता है. वो कपटीजीवका जगतमें कोइ विश्वास नहीं रखता है.

अनंतानुबंधी लोभ बहुतही कठीन होता है. चाहे उतनी दौलत मिल जावे–यावत् चक्रवर्तीकी ऋद्धि मिल जॉय; तौ भी मन तृप्त नहीं होवे, खानेके लिये चाहे उतने पदार्थ मिल जावै; तौभी उसका दिल तृप्त न होवै, खानेके बहुत लोभके लिये भक्षाभक्षकाभी विचार नहीं करता है, अपना धर्मभी नहीं शोचता है, और आपकी कुलमर्यादामें जो चीज न खानेलायक हो; मगर वो चीज खानेकी मरजी हो जाय तौ याचना करनेमेंभी निडर हो जाता है. क्यौं कि पैसेका लोभ होनेसें आप तौ पैसा न खरच सके और खानेकी मरजी तौ होती है, उसें याचना न करने लायक जगहपर भी याचना करता है. चोरी करनेमें निडर हो जाता है, अन्याय करनेमेंभी जरासीभी डर नहीं रखता है, इस मुजब पांचो इंद्रियोंके विषयमें लुब्ध होता है. हरएक विषयके वास्ते अकृत्य करता है. लोभी मनुष्यकों फक्त एक पैसा मीलता हो, और उससें स्हामनेवालेका प्राणभी चला जाता हो तौभी उस्की दरकार नहीं रखता है. हरसूरतसें भी अपना मुतलब हाथ कर लेता है. राजाका तकसीरवार होनेमेंभी उनको भय नहीं रहता है–ऐसा लोभ मरनेका वक्त आ पहुंचे तौभी नही छोडे. कितनेक इस्सी वर्षके बुढे हो जावै; तोभी अपने लडकेकों तीजोरीकी कुंजी–चावी सुपरद नहीं करते हैं. जेवर–दागीने वगैरः हो वो मरनेके वक्त तकभी अंगपरसें नहीं उतार डालते हैं, मरणांत रोग हो आनेपरभी औषधके पैसे न खरचै, अनेक प्रकारके दुःख सहन करलेवे, कोइ दस गाली दे देवै, मार मार लेवैः तो भी कुच्छ लालच हो तो वो सब सहन

कर लेता है. कितनेक अनाजके व्यौपारी बहुतही लोभीष्ट होते है, वो चातुर्मासके लिये मालका संग्रह कर रखते हैं और अैसी भावना रखते हैं कि दुकाल पडै तौ अच्छा; दुष्काल पडनेसें धन ज्यादे हाथ लगे; मगर दुकाल पडनेसें दुनियोंकों कितना दुःख उठाना पडै, उनकी बिलकुल फीकरही नहीं करते है. यों शोचते भी अच्छी मेघवृष्टि हो गइ तौ दिलमें बडे दुःखी होकर दिलगीरीमें गर्क हो जाय. ये अनंतानुबंधी लोभका स्वभाव किरमज के रंग जेसा है. किरमजका रंग चाहे उतना धोवै तोभी चला नहीं जावै, जला देवै तौ भी भस्म किरमजी रंगकी नजर आवे, अैसें अनंतानुबंधी लोभ मरन पर्यंत नहीं छूटता है. ये अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ चारों नरकके देनेहारे है. ये चारों जहांतक कायम होवें वहांतक समकितकी प्राप्ति नही हो सकती

अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभसें कुच्छ नरम होते हैं. जैसें सूखे तालावके भीतर जो चीरे पडते हैं वो ज्यादेमें ज्यादे वर्ष दिन तक कायम रहते हैं, जब फिर वारिश-मेघवृष्टि होवै, तब वे चीरे मिट जाते हैं, वैसे किसी जीवके उपर क्रोध हुवा हो, स्हामनेवाले मनुष्यने चाहे उतना नुकशानभी किया हो; मगर संवत्सरी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सब जीवोंकों खमा कर सबकों मित्रके समान गिन लेवै; और किसीके पर गुस्सा न रख्खे उसने कुच्छ काम करनेकों दियां हो तौ उनकेपर द्वेषबुद्धि न ल्याते खुशीसै वो काम कर देवे उसका नाम अप्रत्याख्यानी क्रोध जानना. अप्रत्याख्यानी मान दांतके स्थंभे जैसा होता है. पत्थरका स्तंभ तौ कभी झुकताही नहीं; लेकिन दांतका स्तंभ पानी वगैरःउपाय करनेसें झुक सकता है. वैसे अप्रत्याख्यानी मानवाला पुरुष सद्गुरूके उपदेशसें अथवा दक्ष पुरुषके समझानेसें अपना अहंकार छोड देता है. चाहे वैसा मान रखता हो; मगर वो मान एक वर्षसें ज्यादे मुदत तक नहीं रह सकता है. अप्रत्याख्यानी मायावाला अनंतानुबंधी मायावालेसें कम मायावाला होता है. अपनी सहज मुलतबके लिये स्हामनेवालेकों भारी नुकशान पहुंचे वैसा कपट नहीं करता है. अप्रत्याख्यानी मायाकों मेंढाके सींग जैसी कही है, वो वक्रता ज्यौं उपाय करनेसें मिट जाती है, त्यौं यह मायावाला पुरुष कमती कपट करता है, और कितनेक काम कपट रहित भी करता है. अप्रत्याख्यानी लोभ शहरकी गटरके कीचडके रंग समान होता है. ये रंग एकदम तो जाताही नहीं, मगर कोइ खार आदिके संयोग युक्त बडी भारी

महेनत करै तो उसका दाग जाता है. वैसेंही यह लोभ भी अनंतानुबंधी लोभसें कुछ कम होता है. लोभके वास्ते किसीकों भारी नुकशान नहीं करता है. ये अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभसें जीव तिर्यंचकी गतिमें जाता है. श्रावकपना नहीं आ सकता है. यह चारों कषाय जब जाते रहै तब जीव श्रावकपना या पांचवा गुणस्थानक पाता है.

अप्रत्याख्यानी क्रोधसें प्रत्याख्यानी क्रोध नरम होता है. उसकों किसी जीवके उपर द्वेष हुवा हो तौ भी चौमासी प्रतिक्रमण करनेके वक्त सब जीवोंकों खमाता है. इस्सें पीछे किसी जीवके उपर द्वेष नहीं रहता है. रेतीमें जैसें लकीर खींची हो तौ थोडे वखतके बाद वो लुप्त हो जाती है तैसें ये क्रोध थोडे वक्तमें शांत हो जाता है. प्रत्याख्यानी मान लकडेके खंभे जैसा होता है. लकडेका खंभ दांतके खंभसें थोडी महेनत करनेपर भी झुक सकता है, तैसें ये मान भी थोडे वक्तमें शांत हो जाता है. प्रत्याख्यानी माया गायके मूत्रकी वक्रता समान होती है. चलते चलते गाय जैसे पेशाब करै और उसकी टेढी आकृति जमीन पर पड जाय वैसी प्रत्याख्यानी माया टेढी होती है, मगर जल्दी नाबूद हो जाती है. ये मायावाला पुरुष थोडे वक्तमें सरल हो जाता है, कठिन कपट उनसें होही सकता नहीं. अप्रत्याख्यानीसें सरल होता है. प्रत्याख्यानी लोभ गाडेकी कीलके दाग समान होता है. शहरकी गटरके कीचडके दागसें गाडेकी कीलका दाग थोडी महेनतसें चला जाता है; क्योंकि गटरका कीचड बहुत मुद्दत तक सडजानेसें ज्यादे चिकनाइवाला होता है. गाडेकी कीलके दाग समान ये लोभ सहजहीमें शांत होता है. प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ जहां तक कायम होवै वहांतक साधुपना प्राप्त नहीं हो सकता है. यह कषायके परिणामसें जीव मनुष्यगतिमें जाता है; क्योंकि यह कषाय पतले है.

संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ–ये चारों प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभसें हलके होते हैं. संजलका क्रोध पानीमें कीहुइ लकीरके जैसा है. पानीमें लकीर करतेही बेमालूम होजाती है, वैसें किसी सबबके लिये गुस्सा हो जाय, मगर तुरंत शांत हो जावै. कोइ कठिन सबब मिलनेसें कठिनता धारण कर लेवै तौ भी पाक्षिक प्रतिक्रमण किये बाद तो बिलकुल भी द्वेष नहीं रहता है. ये क्रोधकी ज्यादेमें ज्यादे उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह दिनकी है. उस्से ज्यादे वक्त ये क्रोध कायम नहीं रह सकेगा.

यह क्रोधवालेके अंतरंगमें विशेष क्रूरता नहीं होवे. संजलका मान वेतके स्तंभ समान होता है. जैसें वेतके खंभेकों झुकानेमें देर नहीं लगती है, तैसेही मानदशा विशेष वक्त नहीं रह सकती है. संजलकी माया भी बहुतही कम होती है. सहजहीमें कपट रहित हो जावें. बांसकी छोल जैसें थोडी देरमें सीधी होजावे, तैसें ये कपट भी नहीं जैसा ही होनेसें नाश हो जाता है. संजलका लोभ हलदीके रंग समान होता है. जैसें हलदीका रंग उडजानेमें देर नहीं लगती है, वैसेही यह लोभ दूर होनेमें देर नहीं लगती है. संजलका क्रोध, मान, माया और लोभ जहांतक हो वहांतक मोक्ष नहीं मिल सकता है. यह संजलके कषाय जब जाँय तब मुक्तिकी प्राप्ति होय.

उपर कहे गये चारों प्रकारके क्रोध, मान, माया और लोभ नाश हो जाँय तब मोक्ष मिलता है; वास्ते भवीजीवोंकों मुनासिब है कि इन्होंको दूर करनेके लिये उद्यम करना. यह ज्यौं ज्यौं कमती होते जावें त्यौं त्यौं आत्मा शुद्ध होता जाता है. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि, संजलके कषाय तो पंद्रह दिनही रहते है तो बाहुबलीजीकों संजलका मान वर्षदिनतक क्यौं रहा? इसके संबंधमें कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें और यशसोमसूरिने कर्मग्रंथके बालावबोधमें खुलासा किया है कि बालजीवोंकों अपने कषाय कैसे है? वो समझनेमें सुगम पडे वास्ते वो स्थिति कही है. वस्तुतः तो ऐसा समझना कि अति कठिन कषाय सो अनंतानुबंधी, उस्से मंद हो सो अप्रत्याख्यानी, उस्से भी मंद हो सो प्रत्याख्यानी, और उन्से भी मंद हो सो संजलका कषाय समझना. प्रसन्नचंद्रराजर्षि काउस्सग्ग ध्यानमें थे, उस वक्त ऐसे परिणाम बिगडे हुवे थे कि यदि उस वख्त मृत्यु हो जावे तो नरकमें जावे. सबब कि उनकों उस वक्त अनंतानुबंधी क्रोध होने पर भी अंतर्मुहूर्त तक ही रहा. यदि कालके उपर एकांत लक्ष दें तो वो अनंतानुबंधी क्रोध क्यों कहा जाय? फिर कोइ पुरुष समकितसें पतित हो जाता है उस वक्त अनंतानुबंधीका उदय होता है, फिर पीछा अंतर्मुहूर्त्तमें समकित पाता है, तब वो उदय दूर हट जाता है. इससें अनंतानुबंधी अंतर्मुहूर्त्तही रहा. यह कषायकों दूसरा कषाय नहीं कहा जाता है. तात्पर्य यह कि कठिन कषाय होवें और कम मुद्दत तक रहें तोभी अनंतानुबंधीही समझना. उससें मंद सो अप्रत्याख्यानी, उससें मंद प्रत्याख्यानी, और उससें भी मंद संजलका समझना. कितनीक दफे स्थितिसें भी समझा जाता है, एकांत नियम नहीं है. बाहुबली-

जीकों वर्षदिनतक कषाय रहा मगर वो मंद कषाय था उससे संजलका जानना. यह सोले कषाय हुवे.

अब नौ नोकषाय कहते हैं. नोकसाय शब्द, देशनिषेधवाची है. नोकषाय या नहीं कषाय-देशसें नही. कारण कि कषाय नहीः मगर कषाय पैदा होनेके कारण हैं. इनके सेवनसें कषाय पैदा होते है. किसी मनुष्यकी हँसी-दिल्लगी करनेसें स्हामनेवालेकों द्वेष पैदा होता है और वो मनुष्य अपनेपर द्वेष करे उससे अपनकों कषाय पैदा होवै; वास्ते वो कषायके कारण कहाते हैं. फिर मस्करी करकें खुशी होवै और राग पैदा होवै तौ वो भी कर्मबंधनकाही कारण है. जीवकों जहां तक हास्यमोहनी कर्म है वहांतक आत्माका शुद्ध स्वरुप प्रकट नहीं होता है; दुनियांमें भी मस्करीखोर कहाता है. वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं हास्य करनेकी आदत छोडदेनी चाहियें. सर्वथा छोडदेना तो जब जीवकों केवलज्ञान पानेके लिये क्षपकश्रेणी मांड देवै तबही बन सकता है. रतिमोहनी सो पुद्गलिक पदार्थोंसे जो जो अनुकूलता मिल जाय उस्से राजी होना. अरति सो प्रतिकूल पदार्थसें दिलगीर होना. भयमोहनी सो भयसें बेर बेर डरतेही रहना. मेरेसें उपवास होगा या नही ? मेरेसें श्रावकपना, मुनिपना कैसे बन सकेगा ? ऐसें डरता रहवै और धर्मकार्यमें वीर्य नही स्फुरावे; जो जो चीज नहीं की हुइ हो वो अभ्यासद्वारा बन जाती है; मगर डरनेसें-भयसें अभ्यास नहीं करे तौ कोइ दिन न बन सकेगी. उसी तरहही संसारी कार्यमें भी जिनकों मोहनीका भय उदय हुवा है वो हरएक कार्यमें डरताही रहता है. यहांपर कोइ प्रस्न करेगा कि-'पापसें डरे उनका क्या खुलासा है ?' उस विषयमें यह खुलासा है कि पापसें अवश्य डरतेही रहना चाहियें, मगर धर्मसें नहीं डरना. हिम्मत रखकर उद्यम करना, शरीरादिकमें रोग वगैरः हो तौ शोचकर कार्य करना, शक्ति होनेपर भी डर कर बैठ रहवै उनसें कोइ वक्त भी धर्म नहीं सधाया जायगा. वास्ते भयमोहनीका ज्यौं बन सके त्यौ त्याग करना. शोकमोहनी सो कोइ अपना कुटुंबीक या मित्र बीमार हो जाय वो मर जाय तब शोकातुर होवै, रोवै, कूटे, अनेक प्रकारके विलाप कर उस्से बहुत कर्मबंधन होता है. व्योपारमें नुकसान होवै या कोइ देवाला निकाल देवै और आपका धन जाय तब शोक करै. आपकी अनुकूलता मुजब मकान, नौकर, वाहन न मिलनेसें, या प्रतिकूल मिलनेसें भी शोक करे. इनों जिनकों मोहनीकर्मका

जैसा जोर उस मुजब शोक होता है. कितनेक उत्तम पुरुषोंको शोकमोहनी कर्म होवै तो शोचते है कि–"यह कुटुंब, शरीर, मकान वगैरः जो जो संसारी पदार्थ हैं, वै सब अथिर हैं. अथिर पदार्थका तो नाश होनेकाही हौ तो फिर मुझे किसलिये विकल्प करने चाहिये? जहांतक पुन्योदय था वहांतक सब पदार्थ स्थिर रहे, जब पापका उदय हुवा तब नाश हो गये; वास्ते किसलिये शोक करके कर्मबंधने चाहियें? आत्मधर्मही मेरा है, दूसरी कोइ वस्तु मेरी नहीं है. मात्र संसार मेरेसें नहीं छूटता है. उस्सें मैं मेरा मेरा करता हुं और व्यवहारोचित वर्त्तन करता हुं. वस्तुधर्मसें वस्तु मात्र जड है और मैं चैतन हुं." इस तरहका विचार करकें आप शोकसें मुक्त रहता है. उनकों कर्मबंधन भी नहीं होता है. संपूर्ण शोकका नाश तौ क्षपकश्रेणीमेंही होता हैं. दुगंछा सो दुर्गंधीवाली वस्तु देखकर मुंह विगाड देना; तथा जो जो वस्तु अपनकों नापसंद हो उनसें मुंह विगाडना वो दुगंछा कही जाती है. अब जिन पुरुषोंने अपने आत्मधर्मकों जान-पहिचान लीआ है उनकों तो दुर्गंधि आनेसें कहते है कि ये 'पुद्गलके' अैसेही धर्म हैं, अथवा ये पुद्गल अैसे धर्मके हैं. उनमें मैं किस वास्ते मुंह बिगाडुं? या जडपदार्थके उपर क्यों द्वेष करुं? यहांपर कोइ कहेगा कि–तब क्या गंदकीमें ही बैठ रहना? तौ उसका जवाब यह है कि–गंदकीके पुद्गल शरीरमें प्रवेश करनेसें–घुस जानेसें रोगोत्पत्ति होती है. वास्ते अव्वल तौ आपके मकानमें खालकुंवे, टट्टी वगैरः गंदकीकी चीजेंही न रख्खै. और मोरी भी साफ रख्खै. पानी वगैरः वपरासमें लेवै तो पानी सूखकर निर्जिव जगोपर अलग अलग डाल देवै कि जो जल्दी सूख जावै. गंदकीमें जीवकी उत्पत्ति होती है और उसके उपर पानी वगैरः गिरनेसें वो जीवोंका नाश होता है, तौ आत्मार्थी पुरुषोंकों कीसी जीवकों दुःख हो वैसा कामही नही करना; वास्ते अैसी गंदकी घरमें न रख्खै. और जहां अैसी जगह हो वहां रहवे भी नहीं; लेकिन दुनियांकी अंदर सभी जगह स्वच्छ नहीं होती है. तब वैसी जगह देखनेमें आ जावें तौ द्वेष न करै. उनकों तौ क्रमसें सर्वथा दुगंछा मोहनीका नाश होता है और जीव अनेक प्रकारसें अैसी दुगंछा कीये करते हैं उससें कर्मबांधकर आगे अैसेही कर्म भुक्तने पडेंगे. वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं दुगंछाका त्याग करदेनाही मुनासीब है. स्त्रीवेद उनकों कहते हैं कि स्त्री पुरुषकी अभिलाषा करै, पुरुषवेद उसकों कहते है कि पुरुष स्त्रीकी अभिलाषा करै, और नपुंषकवेद उसको कहा जाता है कि स्त्री

और पुरुष इन दोनुकी अभिलाषा करै. यह तीन वेद कहे जाते है. और यह वेद संसारका बीज है. उन्में सर्वथा कठिन वेदका उदय नपुंसकवेदवालेको होता है. वो रात दिन विषय विकारमेंही चित्त रखता है. उनका विकार शांत होनेका सववही नही, उस्सें इच्छाअें हुवेही करती है. नपुंसकसें स्त्रीकों विकार कम होता है और स्त्री करतें पुरुषकों विकार कमती होता है. अब यहां कोइ शंका करेगा कि–पुरुषकों स्त्रीके आगे अर्ज–प्रार्थना करते हुवे अपन अपनी आंखोंसें देखते हैं, मगर पुरुषके जितनी स्त्री, पुरुषकों प्रार्थना करती हुइ नजर नहीं आती, तो उसका खुलासा यह है कि स्त्री मुंहसें प्रत्यक्ष प्रार्थना नहीं करती है; लेकिन नेत्रकटाक्ष वगैरः बहुतसी चेष्टा करती है और उनके सववसें पुरुषका चित्त विकारवंत नहीं होवे तौभी विकारी हो जाता है. और स्त्री मनमें कामविलास चाहती होय तौभी पुरुषके पास बहुतही आजीजी करवाती है; तथापि चित्तमें मलीनता रहती है, उस वास्ते स्त्रीमें सर्वज्ञजीनें ज्यादा विकार कहा है. उन्में भी जो सती स्त्रीअें है–जिनकों स्वप्नमें भी परपुरुषकी इच्छा नहीं होती है. वे स्त्रीअें तो नमस्कार करनेही लायक हैं; कारन कि जगत् कामविषयमेंही पडा हुवा है और उनकी झपटसें गुणिपुरुष भी फँस जाते हैं. वास्ते उत्तम स्त्री होती हैं वोही अैसा शीलव्रत पालन कर सकती हैं. अैसे शीलशाली पुरुष भी अपनी स्त्रीके साथ, या तो सुशील स्त्री अपने पतिके साथ कुत्तेकी तरह हमेशां भोगक्रीडाकी वांछना नहीं करते है. फकत ऋतुके समयमेंही अपनी इच्छा शांतिकें लिये अनातुरतासें कामविलासका उपयोग करते हैं और कामसेवनके वक्त शोचते हैं कि–ज्ञानीमहाराजनें स्त्रीकी योनीमें बहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति कही है. जैसें एक भुंगलीमें रूइ भरकर पीछे उसमें लोहेकी सलाइ खूब तपाकर घुसाड देवे तो वो रूइ जल जाती है, वैसेही स्त्रीकी योनिमें पुरुषचिन्हके प्रवेशसें उन्में रहे हुवे जीवोंका नाश हो जाता है. उस्से ये बडी हिंसाका कारन है. फिर वही स्थानमें मूत्रादि दुर्गंध है, उसका एक छांटाभी लग गया हो तो उस्कों मनुष्य धो डालतें हैं, वैसी खराव दुर्गंधी है. वही स्थानकी क्रीडा करनी वो अज्ञानताकीही प्रबलता है. फिर भोगसें शरीरकी स्थिति भी कितनी नरम–शिथिल हो जाती है ? अेसा मालूम होनेपर भी उन्सी काममें सुख मान लेना वोभी अज्ञानताकीही प्रबलता है. यहांपर कोइ कहेगा कि–ये सभी कारण अपनी और परस्त्रीमें बरोबरही होते है, तो अपनी और पराइ स्त्रीमें

पापका क्या फेरफार है कि परस्त्रीका त्याग करनेके वास्ते सभी धर्मवाले पुकारते हैं ?' उसका खुलासा यही है कि-पराइ स्त्रीका मालिक है वो तो अपनी स्त्रीकों दूसरेके साथ बदकाम करनेकी परवानगी नहीं देवै, उस्से उनकी स्त्री पतिकी चोरीसें बदकाम करै और उसके पतिकों मालूम हो जाय तो बनें वहांतक उस स्त्रीकों जानसें मार डालेगा. और यदि जारपुरुष पकडा जायगा तो उनकों बेजान कर देगा. और कदाचित् स्त्री और जारपुरुषके उपर जोर न चल सकेगा तो गुस्सेके मारे खुद आप जान निकाल देगा. कभी नरम स्वभावका होगा तो मरेगा नही; लेकिन उनके दिलमें बडा रंज-दुःख भरा रहेगा. रात और दिन उसीही दुःखमें गुजारेगा. इस्सें साफ मालूम होता है कि परस्त्री बडी भारी हिंसाका कारन है. फिर बदचलनवाली स्त्रीओंकों अपना खाविंद दूसरे जारपुरुषोंके साथ खेलने न देगा तो वो स्त्री अपने पतिकों जानसें मारदेवें. अगर मार देती हैं वैसी बहुतसी बातें सुने-देखनेमें भी आती हैं, तो इस बदकामसें बडी जीव हिंसाऐं होती हैं. फिर परस्त्रीका मैं सेवन करताहुं तो भी मैं सेवन करताहुं ऐसा कहा भी नहीं जाता. इस्सें झूठ बोलनेके सबबसें मृषावादकाभी दोष लगता है. फिर परस्त्रीके उपरं इच्छा होती है वो अत्यंत विषयकी इच्छा वाली होती है उस्सेभी ज्यादे कर्मबंधन होता है. फिर अपनी स्त्री तो हमेशां नजर आगेही होती है उसलिये सर्वदा भोगकी विचारणा नही होती और पराइ स्त्रीके लिये तो रात दिन विचारणाही हुवा करती है, कामधंधा भी नहीं सूझ सकता और विकल्पही किये करता है. वो विकल्प कर्मबंधनकाही हेतु है. विकल्पका पाप मनुष्य सामान्य समझते हैं; लेकिन विकल्प समान दूसरा ज्यादा पाप नहीं है. वो पाप कितना बांधाजाता है सो ज्ञानीमहाराजही जानसकते हैं और उसीसेंही उन्होंने उस्के समान दूसरा बडा पाप नहीं बतलाया. उन्हीकोंही बडा पाप-कठीन पाप कहा है और भी जितने जितने धर्मवाले हैं उन्ह सभीने भी परस्त्रीमें बहुत पाप दर्शाया है. संसारमें परिभ्रमण करनेका बीज स्त्रीभोग है. भोगेच्छाके लीये स्त्रीए पुरुषकी दासी बनकर जींदगी पूरी करती हैं. इंग्रेज लोगोंमें पुरुष स्त्रीका दासत्वपना करते हुवे नजर आते हैं. और जो अति कामी या परस्त्रीलंपट होते हैं वैभी स्त्रीओंके दास बनते हैं, कामवासनाके लीये जेवर पेहननेकी और जेवरके लीये धन पैदा करनेकी उपाधि करनी पडती है. ऐसें अनेक प्रकारकी विटंबना कामके लीयेही संसारमें भुक्तनी पडती हैं.

वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं कामका अभिलाष छोड देना. संपूर्ण प्रकारसें तो अभिला-षका त्याग क्षपकश्रेणीमेंही होगा तभी पूर्णतत्त्व प्राप्त होगा. यह नौ नोकषाय और सोला कषाय मिलकर पचीश हुए. वो मात्र मोहनीकर्म है–याने ये कषाय होवें वहांतक पूर्ण चारित्र केवलज्ञानीका यथाख्यात वो नहीं आवें. वास्ते उनका त्याग करनेके लीये बहुतहा उद्यम करना. ये प्रकृतियें जितनी जितनी कम होवेगी उतना उतना आत्मा विशुद्ध होवेगा–वही धर्म है. और ज्यौं ज्यौं ये कषायोंकी वृद्धि होती जायगी त्यौं त्यौं कर्मबंध बढता जावेगा. और दुर्गतिके दुःख तथा जन्ममरणके दुःख भुक्तने पडेंगे. कोइ कहेगा कि–वै दुःख किसीने देखे नहीं है. तो कहेंगे कि–मनुष्यके दुःख देखते हो? कि भंगी लोगोंको रात दिन मैला उठाना पडता है और वैसा झूंठा बि-गडा हुवा खाना भी मिलता है. फिर कितनेक लोगोंको पहेननेके लीये कपडे भी नहीं मिलते हैं. ठंढ–धूपका दुःख भुक्तना पडता है. कितनेककों कोढरोग, जलोदर, वि-स्फोटक, दमा वगैरः रोग होते हैं. ऐसें अनेक रोगोंकी वेदनाओंका दुःख रात दिन सहन नहीं होता है तब चिल्लाते हैं–रोते हैं, तो ऐसे दुःख सख्त पापके योगसेंही प्राप्त हुवे हैं. ज्यादे पापसें नरकके दुःख होते हैं वो नास्तिकवादी विगरके सभी धर्मवाले मानते हैं. वास्ते शंका करनेकी जरूरत नहीं है. पापके फल तो अवश्य भुक्तनेही पडेंगे. वास्ते ज्यौं बनसके त्यौं राग द्वेषकी परिणती कम करदेनी कि जिस्से पाप कम बंधा जाय और अनुक्रमसें सब प्रकारपूर्वक राग द्वेषसें मुक्त हुवा जाय.

कोइ सख्स यहांपर प्रश्न करेगा कि 'देवकी गति संजलके कषायसें बंधी जाय तो सम्यक्दृष्टिको अप्रत्याख्यानादिकका उदय तथा श्रावकको प्रत्याख्यानादि-कका उदय कहा है, तो किस प्रकारसें देवगति बांध सके?' उसका उत्तर यही है कि जिस वक्त देवगतिका आयु बांधे उस वक्त संजलके कषायका उदय होता है, दूसरे कषायोंका गौणपना होता है. ऐसेंही मिथ्यादृष्टिको भी जानना. दर्शनमोहनीके तीन प्रकार हैं याने सम्यक्तमोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी ये तीन हैं. उनमें पहेले मिथ्यात्वमोहनीका स्वरूप लिखते हैं. जिस जीवने मिथ्यात्वमोहनी कर्म बांधा हुवा है, उसके प्रभावसें अठारह दूषणरहित श्री वीतराग देव हैं उनके ऊपर द्वेष भाव रखता है. (सातवे प्रश्नमें अठारह दूषण कह चुके है वहांसें देख लेना.) अठारह दूषण भरित देवको देव मानता है. जो गुरु हिंसामें तत्पर, जूंठबोलनेवाले,

चोरीकाभी नियम नहीं, मैथुनमें अत्यासक्त, धन और स्त्री रक्खे, रातदिन तृष्णाभी वनी रहे, और धन वगैरः के लाभार्थ सेवकोंकों उपदेश दीया जावे. अैसे निर्गुणीकों गुरु करकें स्थापन करै, उन्कोंही तरणतारण गुरु मान लेवै. और जिन पुरुषने ये पांचों अव्रतका त्याग कीया है, पांचों महाव्रत अंगीकार कीये हैं, पांचों इंद्रियोंके तेइश विषय छोड दीये है, फक्त कामके लायक वस्त्र रखते हैं, आहारभी आपके वास्ते न करते है या करवाते हैं, और न अच्छे आहारकी अनुमोदना भी करते है. फक्त गृहस्थने आपके घर जो रसोइ बनाइ हो, उनमेंसें थोडीसी वस्तु-भोजन पदार्थ लेते है, स्वादकी चाहना नहीं करते हैं, आत्माकों अच्छा लगे अैसें विचरते हैं, रात दिन शास्त्राभ्यास कर रहे हैं और विकथाका तो त्याग करदीया है. अैसे महानुभव महात्मा पुरुषकों गुरु नहीं मानता हैं. और कठोर मिथ्यात्वके जोरसें अैसे पुरुषोंमें दूषण न होनेपर भी दूषण आरोपण करता है. रातदिन अैसे गुणवंतकी निंदा करता है. फिर अैसे पुरुषोंने जो धर्म प्ररूपण कीया है उनकों अधर्मही मानता है. और दया मूलके नाशरुप हिंसाओं, अविनय, अज्ञानता, विषय तथा पुद्गलका पोषण है उसकों धर्म मानता है. अगर तो जो दयामूल, विनयमूल, हिंसाका त्याग, असत्यका त्याग, चोरीका त्याग, स्त्रीसेवनका त्याग, पैसेका त्याग-ये रूप व्यवहार धर्म, तथा आपके आत्म स्वरूपमें रहकर रागद्वेषकी परिणतीसें मुक्त हो, सव प्रकारसें मोहका नाशकारक उद्यमरूप जो निश्चय धर्म उनकों अधर्म मानता है. ये मिथ्यात्वमोहनी कर्मके जोरसें धन, स्त्री, पुत्र, परिवार, मकान, दुकान, कपडे, पात्र-वरतन वगैरः पदार्थकों जीव अपना मानता है, और उस संवंधी जीव विचित्र प्रकारका अहंकार ममकार करता है और पीछे नये कर्म उपार्जन करता है. ये मिथ्यात्वमोहनी जिन पुरुषसें दूर हो जाती है, उनकों संसारदावानलकें जैसा मालूम होता है. जैसें कोइ मनुष्य जंगलमें गया हो ओर वहां चारों औरसें आग लग गइ हो तो उसमेंसें निकल जानेके लीये अनेक उद्यम करता है, तैसें यह जीव संसारमें रहा हुवा विचारता-शोचता है कि-यह धन कुटुंब सब पदार्थ नाशवंत है, संयोगसें मिले हैं ओर वियोगसें जानेवाले हैं, पूर्व कृतकर्म संयोगसें जाते हैं और पूर्वकृतकर्म संयोगसें प्राप्त होते हैं. उन्में मैं जो राग रखता हुं उससें समय प्रतिसमय नूतन कर्म वंधाते हैं और मैरा आत्मा मलीन हुवा जाता है. अनादि कालसें संसारमें परिभ्रमण करता हुं वो वही जड पदार्थोंके ऊपर राग धरनेके सववसेंही

करता हुं; लेकिन इस भवमें तौ भवितव्यताके योगसें ये सब वस्तु पर हैं ऐसा विछानकर ये सारे पदार्थोंमें निरिच्छकता करके सभी वस्तुका संयोग त्याग करनाही योग्य है. कॅव ये सब वस्तुका त्याग करके मैं मेरे आत्मधर्ममें प्रवर्त्तुं और कुच्छअपने आत्माका साक्षात् ज्ञान प्रकट करूं. ऐसी दशा मिथ्यात्वमोहनीके जानेसें होती है. अब मिश्रमोहनीका स्वरूप लिखते हैं. इस मोहनीसें कुच्छ शुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें द्वेप दूरहुवा और अशुद्ध देवगुरु धर्मके ऊपरसें राग-प्रीति कम हुइ मालूम होवे. फिर पुद्गल भावके अंदर संपूर्ण आसक्त था सो उन्मेंसें मिथ्यात्वके पुदगल जानेसें आसक्त भाव कम होवे, उससें अपना आत्मधर्म प्रकट करनेकी कुच्छ मरजी होवे. मिथ्यात्वपनमें तौ कुलका धर्म करताथा; मगर वो मिथ्यात्वमोहनी चली गइ और मिश्रमोहनी हुइ, उसके प्रभावसें करके अपना धर्म प्रकट करनेके लिये उद्योग करना शुरु करे. फिर ये मिश्रमोहनीका काल अंतर्मुहूर्त्तका है और उन अंतर्मुहूर्त्तमें भी दो श्वासोश्वाससें नौ श्वासोश्वास तकका है, इस्सें ऐसा सुंदर भाव आत्म हितकारी होवे; लेकिन वो भाव प्राप्त हुवे पर भी अल्प समयके सववसें अपनकों जानना दुष्कर हो पडता है. ये मिश्रमोहनीके पुद्गल भी मलीन हैं, उससें सच्चा तत्त्व नहिं पहिचाना जाता है; इसके लिये ये भी दूर करनेके योग्य होनेसें उसकुं छोड देनेका उद्यम करना चाहियें. ये दोनूका (मिथ्यात्व और मिश्रका) अभाव हो जानेसें सम्यक्तमोहनी प्राप्त होवे, उस सम्यक्तमोहनीका स्वरूप कहते हैं. शुद्ध देव गुरु धर्मके ऊपर राग प्रकट होवे, झूठे देव गुरु धर्मके ऊपर राग नहीं रहेवे, आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवे, गुरुमहाराज और उत्तम श्रावकोंकी अच्छी तरहसें संगति करे, उन्के पाससें धर्मोपदेश सुने, देव गुरुकी अच्छी तरहसें भक्ति करनेमें तत्पर होवे, जीव, अजीव, पुन्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ तत्त्वोंकों जाने, और जानकर उनपर जैसें आगमोंमें कही है वैसी ही श्रद्धा रक्खे, ऐसा तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रक्खे, केवल धर्ममय चित्त हो जावे और संसारमें पडा हुवा भी संसारी सुखकों दुःख रूप समझ लेवे.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि-सम्यक्त्वमोहनी तौ मोहनी कर्मका प्रभाव कहा है और यहां तौ तुमने गुनवंतपनेका वर्णन कीया उसका सबब और समाधान क्या है सो बतलाइये?

यह शंकाका समाधान यही है कि-ये सम्यक्तमोहनीके प्रभावसें जीवादिक

पदार्थोंकी यथार्थ श्रद्धा होवें; लेकिन उन नौ तत्त्वका विस्तार पूर्वक जो सूक्ष्म ज्ञान है उसके भीतर सम्यक्तमोहनीवालेकी बुद्धि मोहकों प्राप्त हो जाती है, यथार्थ अनुभवगम्य आत्मतत्त्व न कर शके-इस सबबसें आत्म स्वरूप धमडा देता है; वास्ते वो त्याग करने योग्य कही है. मगर मिथ्यात्व और मिश्र ये दोनू मोहनी करतें इसमें (सम्यक्त मोहनीमें) धर्मरूचि वढती है, उसके लिये ये गुणोंका दर्शाव कीया है जैसें आंखोंमें जब अवस्था या दोषप्रकोपके सबबसें रोशनी कम मालूम पडे-छाउं छा जावे-कमदेखा जावे, तब चस्मे लगानेसें पदार्थ पहिचाने जाते हैं, तो चस्मोंकी तारीफ ही करते हैं; लेकिन जिसकों चस्मे लगानेकी जरूरत नहीं है-आंख साफ और रोशनीदार और अच्छी तरहसें देख सक्ता है वो तो चस्मेकी तारीफ नहीं करेगा; क्यों कि वो जैसा देख सक्ता है वैसा चस्मे लगानेवालेभी साफ साफ नहीं देख सक्ते हैं. और इसी सबबसेंही चस्मे लगानेवालेभी वस्तुतासें यही, इच्छा रखते हैं कि आंखकी झांख दूर हो जावै, और चस्मे न लगाने पडे तो अच्छा होवेवैसेही जब तक मिथ्यात्वमोहनी है उसकी अपेक्षासें सम्यक्तमोहनी अच्छी है; परंतु सम्यक्तमोहनीभी मिथ्यात्वमोहनीके पुद्गल है, वास्ते ये सम्यक्तमोहनीके पुद्गल त्याग होवे तब जीवकों क्षायकसम्यक्त होता है और तबही यथार्थ पूर्ण स्वरूप समझा जाता है, कुच्छभी शंका नहीं रहेती है और सर्वज्ञ प्रभुनें सूक्ष्म ज्ञान शास्त्रकी अंदर जो दर्शाया है वो सब ज्ञानीमहाराजके कथन मुजब सुलभतासें समझ सक्ता है. और जिसकों सम्यक्तमोहनीका जोर है उनकों यथार्थतासें कुल् वातें नहीं समझी जायगी-कुच्छभी शंका रहेगी; क्यों कि सम्यक्तमोहनीवालेसें मिश्रमोहनीवालेकों ज्यादे शंकाए पडे, और उन करतेभी मिथ्यात्वमोहनीवालेकों तो बहुतही शंकाये पडती हैं. सब वस्तु विपरीतही समझनेमें आती है-जो शुद्ध मार्ग होवे वो विपरीत-अशुद्धही मालूम होता है. कुच्छ कुच्छ मिथ्या पुद्गल हटते जायें, उतना उतना सहज कुच्छ सच्चा मालूम हो आवे; वास्ते हर एक प्रकारसें मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहना और सम्यक्तमोहनी ये तीनूके नाश निमित्तका उद्यम करनाही योग्य है.

पूर्वोक्त तीनू मोहनीकी सत्ता, बंध और उदयसें संपूर्ण प्रकारसें नाश हो सक्ता है या होता है, तब क्षायकसमकितकी प्राप्ति होती है. फिर ये तीनू मोहनीका नाश होनेके साथही अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभकाभी नाश हो जाता है-उससे भी क्षायकसमकित प्रकट होता है और वो क्षायकसमकिती उसीही जन्ममें मोक्षकों

प्राप्त करता है. कदाचित् सम्यक्त्व प्राप्तिके अव्वल यदि दूसरी गतिका–नारकी, देवताका आयु बांध लीया हो तो दूसरी गतिमें जाय, और वहांसें मनुष्यजन्म पाकर मोक्षमें जावै. कदापि युगलियोंमे जावै तो युगलियोंमेंसें देवगतिमें जाकर फिर मनुष्यगति पाकर मोक्षमें जाता है; मगर इनसें ज्यादे भव नहीं करने पडते है अथात् तीसरे भवमें मोक्ष प्राप्त होता है, यही क्षायकसमकितकी अजब खूबी है.

फिर जिनकों सम्यक्त्वमोहनीका संग नहीं छूटा है उन्कों क्षयोपशमसम्यक्त्व होता है; उनके उदयसें अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ नाश होते हैं. सत्तामें मिथ्यात्व रहता है, उदयमें नहीं रहेता. ये समकितवालेकों भी मुक्तिका निश्चय होता है; लेकिन क्षायकवालेकी तरह तद्भवमें मुक्ति जानेका निश्चय नहीं हैं. जब ज्यादे विशुद्धता होवै और क्षायकसम्यक्त्व प्राप्त करै तब मुक्ति हांसिल होवै. यदि क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त नहि हुवा हो तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती है. क्षयोपशमसम्यक्त्वकी स्थिति कायम रहेवै तो ६६ सागरोपम तक रहती है. और सम्यक्त्व सहित आयुष भी देवलोकका बांधै, अगर देवता नारकी होवै तो मनुष्यकाही बांधता है, ऐसा ये सम्यक्त्वका प्रभाव है. दर्शनमोहनीकों दूर करनेके फल जान लेकर ज्यौं बन सके त्यौं इनका त्याग करना. ये तीनू मोहनी और पचीस चारित्रमोहनी ये सब मिलकर अठ्ठाइस मोहनी कर्मकी प्रकृति जानी. इनका सर्वथा त्याग करनेसे केवलज्ञान प्राप्त करता है. जब तक ये मोहनीकर्म है वहांतक पूर्ण गुण भी प्रकट नहीं होते हैं. और ये प्रकृतियोंमें वर्ताव रखनेसेंही पुनः कठिन कर्मकी ग्रंथी बंधाकर जीव संसारमें परिभ्रमण करने लगता है. भवभ्रमणाकी वृद्धिका मूलकारण मोहनी कर्मही है; वास्ते इनका त्याग करनाही उचित है. राग द्वेषकी प्रकृतिके लिये जीवकों इस लोककी अंदर भी अपयश और परलोकमें भी दुःख होता है. जिन जिन वस्तुओंका धर्मपदमें निषेध किया है उन उन वस्तुओंका आदर करनेसें इस जन्ममें और अपर जन्ममें दुःखके सिवा और कुच्छ हाथ नही लगता है; वास्ते समभावसें मोहनी कर्म क्षय करनेका उद्यम करनेमें तत्पर रहेना चाहियें.

अब वेदनी कर्मका स्वरूप कहते हैं. वेदनीके दो प्रकार हैं–शाता वेदनी और अशाता वेदनी, याने सुख वेदना सो शाता वेदनी और दुःख वेदना सो अशाता वेदनी कही जाती है. जिसनें पूर्वभवके भीतर नीतिमार्ग अनुसार चलन रक्खा है,

सत्य भाषन किया है, दया पालन की है, चोरीका त्याग कीया है, परस्त्रीका त्याग और अपनी स्त्रीमें संतोष, किंवा त्याग किया है, किसी जीवको दुःख न होवे वैसा वर्त्ताव रख्खा है, और धनकी तृष्णाको त्याग कर परोपकारमें वा सच्चे देव गुरुवोंकी भक्तिमें द्रव्यका सदुपयोग किया है अर्थात् ऐसी पुण्यकरणी करनेसें शाता वेदनी कर्म बांधा होवे उनके प्रभावसें अपनी प्रकृतिके अनुकूल सुखके पदार्थ मिलते हैं. और जिसने इन्सें विपरीत कृत्य किये हैं-जेसें कि जीवहिंसा करनी, झूठ बोलना, पराइ वस्तु उठा लेनेका जिसको डरही नहीं, कामभोगमें अत्यंताशक्ति और उसीके प्रभावसें अपनी या पराइ स्त्रीका भी कुच्छ शोच विचार नहीं होनेसें बहुत कामांध हो गया होवे, याने अपनी बहेनी या लडकीके ऊपर भी बद निगाह करनेका जिसको शोच नहीं होवे, जिस स्त्रीके ऊपर नजर पड जावे उसीके साथ भोग करनेकी चाहना करे. मतलबमें सब स्त्रियोंके साथ कुछ योग नहीं बन सकता है तो भी मनकी इच्छासें कर्म बांध लेता है. कदाचित् इच्छित स्त्रीयोंमेंसे कंइएक स्त्रीयोंका योग मिलभी जाता है तो उन्में भी बहोत लुब्ध होकर काम सेवन करता है. नही सेवने योग्य स्थानपर चुंबन प्रमुख भी कर लेवे. और दूसरोंको ठगनेको लिये विश्वासघात करै उससे दूसरे मनुष्योंको दुःख होवे वैसे कृत्य करनेमें तत्पर रहेवे, शुद्ध देव गुरु धर्मकी हेलना-निंदा करै, खोटे मनुष्यकी प्रशंसा करै, बुरे कामोंमें तत्पर रहेवे, अहंकारी, कषायवंत, अति क्रोधी और ऐसेही महा आरंभकारी कृत्य तथा दुराचरण सेवन करनेसें अशाता वेदनी कर्म बांधता है. उन्में भी एक दूसरेकी प्रकृतिमें तफावत रहता है. बुरा काम दोनू मनुष्य समान करें तोभी एक सख्स मनुष्यको मार कर उसका प्राण निकाल देवै और दूसरा प्राण लेकर भी पीछे उस मृतक कलेवरके टुकडे टुकडे कर डाले और उस बाद तेलमें भूनकर छोड देवै. इस तरह दुष्टतामें तफावत होता है. और यही तफावतसें कर्म बांधनेमें भी तफावत रहता है. इस लिये समझना चाहियें कि जिसन दुष्ट कठिन प्रकृतिके सबळ योगसें कार्य किये हैं उसको कठिन अशाता वेदनी कर्मबंध होता है और भुक्तनेके वख्त भी कठिन वेदना भुक्तनी पडती है. और जिसने मंदतासें कर्मबंध किया होवै तो उस्को मंद वेदना भुक्तनी पडती है. यह कर्मका नाश भुक्तनेसेंही होता है. उसमें अज्ञानी लोग तो दुःख भुक्तते हैं तो भी परमात्माको दोष देकर कहते है कि-'हे भगवान्! मैंने तेरा क्या बिगाडाथा

कि मुझे ऐसा दुःख दिया!' फिर कोइ कहते है कि-'अरे! मुझसें ऐसें दुःख सं-हन नहीं हो सकते है. ये दुःख कब दूर होगा!' इत्यादि कहकर डॉकटर-हकीम-वैद्यके ऊपर गुस्सा करते हैं, या तो अपने घरके मनुष्य किंवा नौकर चाकरके ऊपर चिल्लाकर धूमधाम मचाते हैं; और रोग चिंतवनाके अरिष्ठ फल प्राप्त होते हैं. इस तरह अनेक जीव गेरवाजवी विकल्प किये करते हैं, उस्सें जीव पुनः उन्सें भी ज्यादे कठिन कर्म बांधता है. और जो धर्मिष्ट जीव हैं वो तो दुःख आता है तब अपने क-र्मका दोष निकाल कर सोचते है कि-'गत जन्मोंमे मैंनें अज्ञानतासें दुष्ट आचरण किये होंगे उस्सें वो कर्म मुझकों भुक्तनेही चाहियें. जैसे सरकारका गुन्हा किया हो और उसकी शिक्षा मिल चूकी हो तो वो सरकारके हुकम मुजब यदि शिक्षा न भुक्तेंगे तो सरकार ज्यादे शिक्षा करेगी, तैसें मै विकल्प करुंगा और समभावसें ऐसा दुःख न भुक्तुंगा तो फिर नये कर्म बंधे जायेंगे, तो मेरी आत्मा ज्यादे मलीन होगी; वास्ते मुझकों जो जो दुःख प्राप्त हुवे हैं वोः दुःख समता भावसें भुक्तनेही चाहियें कि जिस्सें फिर ऐसे कर्म न बंधे जॉय, ऐसी वर्त्तना करनेकी आवश्यक्ता है.

फिर भावना भावे कि मैं तो चेतन हुं, अनंतज्ञान दर्शन चारित्रवंत मेरी आत्मा है; लेकिन जडकी संगतिसें मैंनें नहीं करने लायक काम किये; मगर उस वक्त मुझकों मेरी आत्माका ज्ञान नहीं था. अब तो मैं जानता हुं कि मेरा जाननेका धर्म है वास्ते सुख दुःख आजावे उसकुं जानना किंतु मुझकों दुःख होता है-पीडा होती है ऐसे विकल्प करना यह मेरा धर्म नहीं है. ऐसे विचार करकें समभावमें रहता है उसके तो पूर्वके बंधाये हुवे कर्मभी नष्ट हो जाते हैं और नये कर्म नहि बंधे जाते हैं. फिर जो मुनिराज है वे तो अपने ज्ञान ध्यानमें तत्पर रहते हैं, उस्सें अपना स्वभाव छोडकर दुःखकी तर्फ उनका ध्यान नहीं जाने पाता है उस्से किंचित्भी उस संबंधका विचार नहीं करना पडता है. जैसें कि कोइ मनुष्य भवाइ-नाटक देखनेकों जावे, वहां खडे खडे अपने पैर दुखने लगें तोभी तमाशा देखनेमें ध्यान होनेके सबबसें पैरके दुखनेकी तर्फ ध्यान या लक्ष नहीं जा सकता है, वैसेंही मुनि महाराजभी अपने आत्म तत्त्वके ध्या-नमें लीन हुवे होते हैं उस सबबसें दुःखवेदनामें उपयोग नहीं जा सकता है. ऐसे पुरुष तो ध्यानके प्रभावसें अपने बंधे हुवे निकाचित कर्मकुं शिथिल कर डालते हैं और पीछेमें तुरत उन कर्मोंका नाश करकें मोक्ष प्राप्त करते हैं. इसलिये आत्मार्थिज-

नोंकों तो ज्यौं वढे त्यौं समभावकों बढानाही चाहियें-कि जिस्सें कर्म नाश होकर आत्माकी मुक्ति हो जाय, और तबही अव्याबाध सुखकी प्राप्ति होवे. इस मुजब वेदनी कर्मका स्वरूप समझ लेने योग्य है.

अब नाम कर्मका स्वरूप कहेंगे. नाम कर्मकी १०३ प्रकृतियें हैं. और उनके नांव नीचे मुजब हैं-गतिनाम कर्म याने मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवता इनचारों गतिमेंसें जिन गतिमें जानेका पूर्वजन्मके भोतर कर्म बांधा होवे उन गतिमेंही जावे. १, दूसरा जातिनाम कर्म याने एकेंद्रि, बेरेंद्रि, तेरेंद्रि, चौरेंद्रि, पंचेंद्रि, यह पांच जाति हैं, इनमेंसें जितनी इंद्रि प्राप्त करनेकी प्रकृति बांधी होवे उतनीही उन गतिमें बांधे, २, तनुनामकर्म याने तनु-शरीर पांच प्रकारके हैं-उदारिक, वक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण. इन पांचोंमेंसें उदारिक शरीर जो अपने हैं वो, और तिर्यंचमेंभी उदारिक शरीरवाले होते है. तथा देवता और नारकीकों वैक्रिय शरीर होता है. पारेकी सदृश अलग अलग हो जानेपरभी पुनः एकत्र हो जैसाका वैसा बनजावे वो वैक्रिय कहा जाता है. नारकीमें पेदा होतेही शरीरके टुकडे टुकडे हो कर फिर जुड जाते है. और परमाधामी दुःख देनेके समयभी काटते व्हेरते हैं तोभी शरीर असल स्थितिवाला हो जाता है; मगर विनाश नहीं हो जाता है. देवतायेंभी अपनी इच्छानुसार छोटा वडा शरीर करलेते हैं वोभी वैक्रिय शरीरका स्वभाव है. आहारक शरीर तो अतिशय ज्ञानी कि जो चौद पूर्वधर है उनकों यह शरीर करनेकी लब्धि होती है. वे किसी समयपर कुच्छ शंका पडनेके सबबसें मुठी प्रमाण शरीर बनाकर शंका निवृत्तिके लिये भगवंतके पास भेजते हैं और वो वहुतही अल्पकालमें जाकर पीछा आता है. वो शरीर वैसे मुनि महाराजके सिवा किसिकोंभी प्राप्त नहीं होता है. तेजस शरीर वो शरीरकी अंदर आहारकों पाचन करता है. और कार्मण शरीर वो अत्यंत सूक्ष्म शरीरकी अंदर रहता है. जिस वक्त जीव इस गतिमेंसें मरण पा कर दूसरे स्थानक जाता है उत्त वक्त ये तैजस और कार्मण संग संग जाते हैं. कर्मभी कार्मण शरीरमेंही रहते हैं. उदारिक वैक्रिय शरीरकी साथ ये तैजस, कार्मण शरीर हम्मेशां रहते हैं. यह शरीर, नामकर्म जिस तरहका बांधा होवे वैसा प्राप्त होता है. ४ उपांग नामकर्म याने उदारिक अंगोपांग, वैक्रिय अंगोपांग, और आहारक अंगोपांग यह तीन शरीरके अंगोपांग है वो जैसा बांधा होवै वैसे अंगोपांग होते हैं. ५ पंद्रहबंधन हैं, याने उदारिक उदारिक बंधन, उ-

दारिक तैजस बंधन, उदारिक कार्मण बंधन, उदारिक तैजस कार्मण बंधन, वैक्रिय वै-क्रिय बंधन, वैक्रिय तैजस बंधन, वैक्रिय कार्मण बंधन, वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन, आहारक आहारक बंधन, आहारक तैजस बंधन, आहारक कार्मण बंधन, आहारक तैजस कार्मण बंधन, तैजस तैजस बंधन, कार्मण कार्मण बंधन और तैजस कार्मण बं-धन-इस तरह पंद्रह बंधन हैं. वै पूर्वके बांधे हुवे कर्मके साथ नवीन कर्मका एकजीव पना करदेते हैं जैसें मिट्टीका बरतन टूटा फटा होवे तो चपडाके संयोगसें साबित हो जाता है वैसें पूर्वके कर्म संगाथ नवीन कर्मको जोड देते है. ६ पांच संघातन वै पांचों शरीरके नाम मुवाफिक हैं. ये प्रकृति कर्मके दलियोंको खींचकर कर्मकी नजदीक करते हैं और पीछे बंधन नाम कर्मकी प्रकृतियें ऊपर लिखी गइ है वै एकजीव कर देती है. अब छः संघयणके विषयमें खुलासा करते हैं. वज्रऋषभ नाराच संघयण याने शरी-रकी हड्डीके सांधे ऐसे होते है कि एक दूसरेके परस्पर मणिबंध पकडे गये होवै उसी तरह हड्डीके बंधके सांधे आगे होते है उसको मर्कटबंधे कहते है. उसपर पाटा होवै और बीचमें वज्रमय खीली होवें-ऐसे मजबूत सांधे होवें उसको वज्रऋषभनाराच संघयण कहते हैं. ये संघयणवाला शरीर बहुतही बलवान् होता है. तद्भव मुक्त-गामी जीवको अवश्य यह संघयण होता है. क्यों कि यह संघयण विगर क्षपकश्रेणी न कर सकै, और क्षपकश्रेणीके सिवा केवलज्ञान प्राप्त नहीं होवै. यहांपर कोइ शंकाशील शंका करेगा कि क्या यह संघयणवाला अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है ? तो उस विषयमें हम समाधानके लिये खुलासा करेंगे कि यही संघयण वालाही मुक्ति वरे ऐसा नियम नही है; मगर ये संघयणवाला प्रभुकी आज्ञा मुजब सुकृत्य करेगा तो मुक्ति पावैगा, और प्रभुकी आज्ञा विरुद्ध चलैगा तो दुष्ट कृत्यके जोरसें या-वत् सातवी नरकमें जायगा. सातवी नरक भी यह संघयण विगर प्राप्त नहीं हो स-कती है; क्यौं कि संघयण बलवान् होवै तभी अतिशय बुरे या अच्छे काम करसकता है. और बुरेके परिणाममें नरक और अच्छेके परिणाममें स्वर्गापवर्गकी प्राप्ति हो सकती है. दूसरा ऋषभनाराच संघयण है, वो वज्रमय खीलीसें रहित होता है, बाकी सब वज्रऋषभ सादृश कृति होती है. तीसरा नाराच संघयण है. उनके दो बाजु मर्कटबंध होता है; मगर वज्रमय खीली और पाटा यह नहीं होते हैं. चोथा अर्धना-राच संघयण है. उसमें एक बाजुपर मर्कटबंध होता है. पांचवा कीलक संघयण है.

उसमें दो सांधेके बीचमें खीली होती है. छठ्ठा छेवट्ठ संघयण है. उसमें हड्डीके अग्रभाग एक दूसरेके साथ अडकर रहते हैं. अभी यही संघयण है; लेकिन जिस वक्त श्री तीर्थंकर प्रभु विचरते थे उस वक्तमें छवुं संघयणवाले मनुष्य थे. जिसने जैसा पुण्य संचय किया हो वैसा संघयण प्राप्त होता है. आधुनिक समय महाविदेह क्षेत्रमें ये छवुं संघयणवाले मनुष्य विद्यमान हैं. ७

संस्थान नाम कर्म उनके छः भेद हैं. पहिला समचौरस संस्थान है, वो नाभिसें दोनू खंभे तक डोरी नापकर वोही डोरी पद्मासन लगाकर बैठेहुवे सख्सके गोठन-घूंटन तक नापनेसें समान याने नाभिसें खंभे और नाभीसें पद्मासनवालेके घूंटन तक भरनेसें दोनू बाजु बरोबर लंबाइमें होवे तो उसको समचौरस संस्थान कहा जाता है. इस संस्थानसें शरीर बहुत सुंदर मालूम होता है. दूसरा न्यग्रोध संस्थान-वो संस्थानवालेके शरीरका उर्द्धभाग और अधोभाग बेहुदा होता है. इससें कम खुबसुरतीवंत तीसरा सादी संस्थान होता है. उससे भी हलके दर्जेका चौथा वामनसंस्थान होता है. पांचमा कुब्ज संस्थान कि जो बडा बेडोल होता है. और छठ्ठा हुंडक संस्थान, वो सब संस्थानोंसें विपरीत लक्षणवाला होता है. यह शरीरके संबंधी संस्थान हैं. पूर्वजन्मोंमें जैसा संस्थान नाम कर्म बांधा हो वैसाही शरीरका संस्थान प्राप्त होता है. ८

अब वर्णनाम कर्म याने वर्ण पांच हैं-हरा, राता, पीला, श्याम और स्वेत-उज्वल-गौर ये पांचुं वर्णमेंसें जिस वर्णका नाम कर्म बांधा हो वैसाही शरीरका रंग होता है. ९ गंधनाम कर्म याने गंध-सुगंध और दुर्गंध ये दो हैं. जिसने जैसे शुभाशुभ कर्म बांधा होवे वैसा शरीर अच्छे बुरे गंधवाळा होता है. १० रसनाम कर्म याने रस पांच हैं-चरपरा, कडुक, खट्टा, मीठा और तूरा ये पांचमेंसें जिसने जैसा कर्म बांधा होवे उनको वैसेही रसवाला शरीर प्राप्त होता है. ११ स्पर्शनाम कर्म याने हलका, भारी, रूखा, स्निग्ध, ठंडा, गरम, कोमल और कठोर-यह आठ स्पर्श हैं. उनमेंसें जो नाम कर्म प्राप्त किया हो वही स्पर्श मुजब शरीरका स्पर्श होता है. १२ आनुपूर्वी, नामकर्म याने मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और नरकानुपूर्वी-यह चार हैं. इनमेंसें जिस गतिके अंदर जीव जानेवाला हो उस गतिमें वही गतिके आनुपूर्वी पुद्गल उस्सें ले जाते हैं. ये आनुपूर्वीका उदय जब अजल-मरण आ पहुंचे तब

होता है. १३ चलन गति नाम कर्म याने शुभ विहाय और अशुभ विहाय ये दो गति हैं, हाथी और बेहलके समान चाल चले सो शुभविहाय, और ऊंट किंवा गदहेकी तरह चाल चले सो अशुभ विहाय गति कही जाती है. इन दोमेंसें जिस गतिकी कर्म प्रकृतिका बंध हुवा होवे उसी प्रकृतिकीचाल प्राप्त होती है.

१४ त्रस नाम कर्म याने चलने हिलनेकी जैसी शक्ति उपार्जनकी हो वैसी प्राप्त होवे. बादरनाम कर्म याने दूसरे मनुष्य देख सकें वैसा शरीर प्राप्त करै. पर्याप्त नाम कर्मसें जीव पूर्ण पर्याप्ति बांध सकै. प्रत्येक नाम कर्मसें एकही शरीरमें एकही जीव होवै. स्थिर नाम कर्मसें शरीरकी हड्डी स्थिर होवै. शुभनाम कर्मसें नाभिके ऊपरका भाग-अंग जगत्में पूजनीक कहा जावे. सौभाग्यनाम कर्मसें जीव मात्रकों प्रिय लगे. सुस्वरनाम कर्मसें अवाज मीठा प्राप्त होवै. आदेय नाम कर्मसें हरकिसीकों वचन कहै वो मान्य करै-उनके वचनका कोइ अपमान न कर सकै. यशनाम कर्मसें जगतमें यशवाद प्राप्त करै-कोइभी उनका अपयश न बोलै. स्थावरनाम कर्मसें जीव स्थावरपना बांधता है-जिस्सें पृथिवी, अप, तेउ, वाउ और वनस्पतिपना प्राप्त करै. सूक्ष्म नाम कर्मसें जीव ऐसा शरीर बांधे कि उसकों कोइ भी न देख सकै. अपर्याप्तनाम कर्मसें पर्याप्ति पूर्ण किये विगर मरणके शरण होता है. साधारण नाम कर्मसें एक शरीरमें अनंत जीवोंकों रहनेका होवै. अस्थिरनाम कर्मसें केश, कान, रुधिर, अस्थिर होवैं. अशुभनाम कर्मसें नाभिके नीचेका अंग अपूजनीक होवै. दुर्भाग्यनाम कर्मसें सब जीवोंकों अनिष्ट लगे. दुस्वरनाम कर्मसें सब जीवोंकों अनिष्ट लगे. दुस्वरनाम कर्मसें कर्णकटु अवाजवाला होवै-उनका गाना किसीकोंभी पसंद नहीं आवै. अनादेयनाम कर्मके प्रभावसें किसीकोंभी सच्ची बात कह देवै तोभी दूसरे मनुष्यकों पतीज लायक मालूम न होवै-कुछभी बोले सो किसीकोंभी पसंद न पडे. अपयशनाम कर्मसें सब जगह अपयश पावै. पराघातनाम कर्म बांधा होवै उन्सें पर जीव बलवान् होवे तोभी वो जीवका मुख देखै कि भय पावै, उच्छ्वास नाम कर्मसें श्वासोच्छ्वास बराबर ले सके और उनमें कुछ कसर होवै उतनी अडचण-हरकत होवै. आतापनाम कर्मसें सूर्यबिंब समान तेज न सहन कर सकै वैसा दिव्य तेजवंत होवै. उद्योत नामकर्मसें चंद्रमा तारेके समान शीतलस्वभावी और उद्योतकारक होवै. अगुरुलघुनाम कर्मसें बहुत भारी शरीर न होवै और न बहुत हलका होवै-मतलबमें जैसा चाहियें वैसाही

होवै. निर्माण नाम कर्मसें शरीरके अवयव जहां चाहिये वहां कायम होवै. उपघात नाम कर्मसें शरीरमें रसोली याने अर्बुद, प्रतिजीव्हा, चोरदंत, खीली वगैरः उपद्रव होवै और शरीरकी अंदर पीडा होवै. तीर्थंकरनाम कर्मसें तीर्थंकरकी पदवी पावै, असंख्य देव जिनकी सेवामें हाजीर रहै, समवसरण प्रभुत्वकी रचना होवै, प्रभुका मुख देखनेसें आनंद होवै, प्रभुका दियाहुवा उपदेश ग्रहण करै, बालजीवोंकों धर्म प्राप्तिका मुख्य कारण है; क्योंकि जो मनुष्य चमत्कारके रसिक है. वे रत्नमय समवसरणमें प्रभुकों विराजमान हुवे देखकर पहिलें तो उनके दर्शनकी इच्छा उत्पन्न होवै, बाद देवता वगैरः देशना सुनते होवै वोह देखकर भगवानकी तर्फ विशेष प्रतीति पैदा होवै, वास्ते भगवानकी अमृतमय देशना सुन लेवे कि आसन्न भविजीव तुरत प्रतिबोध प्राप्त कर लेवै.

इस मुजब नामकर्मकी १०३ प्रकृति हैं. उनमैंसें कितनीक पुण्य उदयसें और कितनीक पापके उदयसें जैसी जैसी प्रकृति बांध ली हो उस मुजब जीवकों प्राप्त होती है. उसमें भी अशुभ नामकर्मकी प्रकृति उदय होती है तब अज्ञानी जीव दिलगीर होते हैं. और शुभ नामकर्मकी उदय होती है तब खुश होतें हैं, वो खुशी और दिलगीरी अशुभ कर्म बांधनेका स्थान है. ज्ञानवान् पुरुष अशुभ शुभ चाहे सो उदय होती है, तब उनमें खुशी या दिलगीर नहीं होते हैं. वे यों मानते हैं कि 'जैसे पूर्वभवमें कर्म बांधे गये है वैसे उदय आये हैं तो उनमें मेरे राजी या दिलगीर होनेका सबब क्या है? कुछभी नहीं' असा शोचकर आप समभावमें रहते है, उससें अनुक्रमसें विशुद्ध होकर कर्मसें मुक्त होते हैं और अरुपी गुण प्रकट करता है उसीसें सिद्धिकों प्राप्त करते हैं.

अब गोत्रकर्मका स्वरुप कहते हैं. गोत्रकर्मके दो भेद हैं याने उंचगोत्र और नीच गोत्र. उंचगोत्रके भी आठ प्रकार है कि जो पन्नवणाजी सूत्रमें बताये गये है याने उंच जाति, उंच कुल, सुंदर स्वरुप, उत्तम बल, धनवंतता, ठकुराइ–राज्यपद–बड़ा होद्दा शेठाइ वगैरः और विद्यानता–यह आठ वस्तुकी प्राप्ति उंचगोत्रके प्रभावसें होती है. और नीच गोत्रके प्रभावसें यही आठ वस्तु विपरीत रुपमें प्राप्त होती हैं. कर्म भी समभावसें ज्ञानी पुरुष भुक्तते हैं और उनकों व्यय कर अगुरु लघु गुण पैदा करकें सिद्धमें रहते हैं.

अब अंतराय कर्मका स्वरूप कहते हैं. अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति हैं याने दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय-ये पांच हैं. उनमेंसें दानांतरायके प्रभावसें देने लायक वस्तु हाजिर है, लेनेवाला पात्रभी विद्यमान है, तौ भी दान नहीं दे सके. लाभांतरायके उदयसें लाभकी प्राप्तिही न होवे. भोगांतरायके उदयसें भोग्य पदार्थ मोजूद होवें; तदपि उनका उपभोग न कर सके. उपभोगांतरायके जोरसें उपभोग वस्तु जो वेर वेर भोग्यमें आवे वैसी प्राप्त हुवेपर भी शोक वगैरः आ पडनेसें उपभोग न कीया जावे. और वीर्यांतरायके जोरसें बल वीर्य प्राप्त न हो सकें. या प्राप्त होवे; तदपि धर्मके काममें वीर्य स्फुरा सके नहीं. यह पांचो प्रकृतिका सर्वथा अंत केवलज्ञानकी प्राप्तिके समय हो सकता है, तौ भी थोडा थोडा नाश तौ आगेभी होता है, उस्सें उतना काम हो सकता है.

अब अंतिम आयुकर्मका स्वरूप कहते हैं. मुख्यपनेसें मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी-इन चार प्रकारके आयुमैसें जिन गतिका आयु बांधा होवे उन गतिमें जीव जाता है.

इस प्रकारके आठों कर्म कीये जाते हैं उससें करकें जीव संसारमें परिभ्रमण करता है. जब ये आठों कर्मका नाश हो जावे तब सिद्ध भगवान् होता है. सिद्ध हुवे बाद पुनः संसारमें आगमन नहीं होता है याने जन्म जरा मरणका केवल अभाव होताहै.

१२ प्रश्नः—उक्त कथित आठों कर्म क्या क्या करनेसें जीव बांध सकता है?

उत्तरः—ये आठों कर्म बांधनेके बहुत कारण हैं; तोभी मुख्यतासें ५७ हेतु हैं सो इस मुजब हैं:-पांच मिथ्यात्व याने अभिग्रह मिथ्यात्व, अनभिग्रह, अभिनिवेशिक, संशयीक और अनाभोग-ये पांच हैं. उनमैसें पहिलेके प्रभावसें, कुगुरु, कुदेव, कुधर्मका झूठा हठ ग्रहण कीया गया है वो छोडता नहीं. मेरे बापदादे जो करते आये हैं वोही करुंगा. दूसरी तरहसें जो पुद्गलिक वस्तुकों मेरेपनसें अति आग्रह करके मान बैठा है वोभी मिथ्यात्व है. दूसरे अनभिग्रह मिथ्यात्वसें सुदेव, और कुदेव ये दोनूकों समानतासें मान लेवे; लेकिन गुणिकों गुणिपनेसें मान लेना और निर्गुणिकों छोड देना ये नहीं कर सके. तीसरा अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके प्रभावसें सच्चे देव गुरु धर्मकों पहिचाने; मगर ममत्वके वशसें उन्होंका आदर न

करै; मगर हेलना करै. चौथा संशयीक मिथ्यात्वके जोरसें सर्वज्ञके वचनमें संशय करै. और अनाभोग मिथ्यात्वके प्रभावसें धर्म कर्मकी कुछ भी खबर न होवै, जड जैसा मनुष्य होवै और धर्मकी बिल्कुल रुचि होवै नहीं. ये पांच मिथ्यात्वसें करकें जीव कर्म बांधता है, फिर बारह अव्रत याने पांच इंद्रिय और छठा मन यह छः और छ काय. उनमें पांच इंद्रियोंके और मनके विषयमें लुब्ध रहै. और पृथिवीकाय याने मिट्टी, निमक, धातु वगैरः, अप्काय याने पानी, तेउकाय याने अग्नि, वाउकाय याने पवन, वनस्पतिकाय याने हरी पत्ती फूल फल वगैरः और त्रसकाय याने बेरेंद्रिय,तेरेंद्रिय,चौरेंद्रिय,पंचेंद्रिय-उन्मेंभी पंचेंद्रियवाले मनुष्य, तिर्यंच-पशु-गाय-भैंश-घोडा-बकरा-गीदड-हरिण वगैरः, तथा पंखी, और समुद्रके छोटे बडे मच्छ मघरमच्छ वगैरः, बहुत प्रकारके सांप आदि है, वो और देव तथा नारकी-यह चार जातिके पंचेंद्रिय जीव हैं. ये छःकायके जीवोंकी हिंसा करै उनसें जीव कर्म बांधता है. फिर पच्चीस कषाय (जो इस ग्रन्थके पचासवे प्रश्नके उत्तरमें मोहनी कर्मके स्वरूप मध्य चारित्रमोहनीकी पच्चीस प्रकृतिये कही गइ हैं वही पढकर ध्यानमें ले समजमें रख्खीये कि) उनके सेवनेसें जैसी जैसी कषायकी प्रकृति होती है वैसा वैसा कर्म बांधता है. कर्म बांधनेका बीजही वो है, और तिव्र मंद कषायके ही संबंधसें कर्म बंधे जाते हैं. और पंदरः योग याने मनके चार वचनके चार और कायाके सात ऐसें १५ हैं. उनमेंसें मनके चार योग कहते हैं. सत्य मनयोग याने सच्चे विचार करना. असत्य मनयोग याने खोटे विचार करना. सत्यासत्य मनयोग याने सच्चाहै मगर झूठाहै, जैसें कोइ एकाक्षिकों काना कहनेसें उनकों महा दुःख होता है. और दूसराभी जो जो छिद्र सच्चेहैं मगर प्रकट करनेसें उस जीवकों महा संताप होता है. देखो ! ये सच्चा कहनेसें दुःख होता है; वास्ते ऐसा सत्य बोलनेसें असत्य कथनका कर्म बांधा जाता है. चौथा असत्यसत्य मनयोग याने जैसें कोइ स्त्री किसी सबबके लिये पुरुषका पोशाक पहेनकर आइ होवै उनकों देख पहिचान ली; मगर दिलमें खियाल आया कि ' यादि इनकों स्त्री कहुंगा तो इनका छुपा भेद खुल्ला

हो जायगा और उस्सें नुकशान होगा,' इस बातके रक्षणार्थ पुरुषके वेषमें देखकर पुरुष नामसें कहकर बुलावे. वो जानता है कि मैं सत्यरूप जानता हुं तौभी असत्य प्रकाशता हुं उसें यह असत्य है; तथापि उन वेषधारीका मान सभालनेके लिये असत्य प्रकाश किया जाता है वास्ते असत्य नहीं–अैसें हर किसीको नुकशानीसें बचालेनेके सबबसें कहा जावे वो असत्य है; लेकिन मृषा नहीं. इस मुजब मनमें चिंतन करना वो मन योग कहा जाता है. और बोलना वो वचनयोग कहा जाता है. वचन योगकेभी इसी मुजब चार योग समझ लैना. कायाके सात योग सो उदारिक काययोग, वैक्रिय काययोग, आहारक काययोग, उदारिकमिश्रकाययोग. वैक्रिय मिश्रकाययोग, और आहारकमिश्रकाययोग ये मिश्रकाययोग जिस वक्त उदारिकादि शरीर तैयार नहीं हुवे थे उन्के पेस्तर होता है. सातवा कार्मण काययोग एक भवमेंसें दूसरे भवमें जानेके वक्त रस्तेमें उदय होता है. उस बाद जीव आकर अपने पिताका वीर्य और माताका रुधिरका पहिला आहार ग्रहण करता है, उसके बाद जब तक शरीरकी शक्ति नहीं बांधी गइ हो तब तक उदारिक मिश्रयोग है. उसके पीछे उदारिक काययोग होता है. यह सातों योगोमेंसें जो जो योग प्रवर्त्ते उस मुजब कर्म बंधाते हैं. इस मुजब पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पचीश कषाय और पंद्रह योग–ये सब मिलकर ५७ हुवे सो कर्म बांधनेकेही हेतु हैं. उसमें जीतने जीतने प्रवर्त्तमान होवें उसमाफक जीवकर्म बांधता है. वास्ते यह सत्तावन हेतुमेंसें जितने दूर हो सके उनोंको दूर करनेका उद्यम करना.जब सब हेतु व्यतीत हो जावेंगे तब तो सिद्ध गतिही प्राप्त होयगी.

प्रश्न ५४:—जैन दर्शनके भीतर कर्म बांधतेके साथ उसका अटकायत किया जावे, और पुरातन–पूर्वके बांधे हुवे कर्म नाश किये जावें उसके वास्ते क्या उपाय बतलाया गया है?

उत्तरः—चौदह गुणस्थानक कहे हैं, उसमें क्रमसें गुण वृद्धि करके अंतिम गुणस्थानक पाकर जीव मोक्ष सिद्धि प्राप्त करता है. वो गुणस्थानक इस मुजब हैं:—

पहिला मिथ्यात्व गुणस्थानकके भीतर जीव मात्र रहे हुवे हैं, उसके प्रभावसें विपरीत बुद्धि होती है. पर वस्तु याने पुद्गलिक पदार्थकों शरीर, धन, कुटुंबादिककों मेरा मानकर उसमें लुब्ध हो रहा है वहांतक संसार है.

दूसरा सास्वादन गुणस्थानक, सो जीव उपशम समकित पाकर पीछे हठते हैं और ज्हांतक मिथ्यात्वकी भेट नहीं भइ है, वहांतक उनके वीचका जो छ आवलिकाका उत्कृष्ट काल है उतने देर ठहरने वाला है. जैसें किसी मनुष्यनें क्षीर सकरका भोजन किया होवे और पीछेसें वमन होता है तौभी उस वक्त उसकी मिष्टता मुखमें मालूम होती है, वैसें समकितसें पड जाता है, तौभी समकित संबंधीके कुछ अच्छे अध्यवसाय रहते हैं, उसका नाम सास्वादन गुणस्थानक है. यहांपर किसीकों शंका हो आवेगी कि पहिले दूसरे गुणस्थानकमें विशुद्ध अध्यवसायसें चडता है उनका स्वरूप चाहियें, यहां उसके बदलेमें न्यून भावका दूसरा स्थानक कहा यह क्या? उसके उत्तरमें यही समाधान है कि जो ज्ञानी महाराजने ज्ञानके भीतर वढते घटते अध्यवसायके स्थानक देखे, उसमें एक एकसें वढते हुवे अध्यवसाय देखे, मगर दूसरी पायरीके अध्यवसाय किसीके चढते हुवे देखनेमें आयेही नहीं याने पतित होतेही मालूम हुवे, उसीसे यहां पतित अध्यवसायका स्वरूप कहा. वढते हुवे तो पहिले गुणस्थानकके भावसें विशुद्ध भावरूप तीसरे गुणस्थानके भाव होते हुए नजर आये, उसीलिये पहिलेसें तीसरे गुणस्थानक जाता है.

तीसरा मिश्र गुणस्थानक है. यह गुणस्थानके प्रभावसें मिथ्यात्व भावका नाश होता है; मगर समकित योग्य नहीं होते हैं. वीचके अध्यवसाय होते है सो मिश्रभाव कहा जाता है. (इसका ज्यादा स्वरूप मिश्रमोहनीका दर्शाव पेस्तर दिखाया गया है उससें वाकेफगार होना.) जब मिश्रमोहनीका नाश होता है तब जीव समकित पाता है और चौथे गुणस्थानककी भी प्राप्ति होती है. यहां पर कोइ शंका करेगा कि- 'जिनकों धर्मकी अंदर रागभी नहीं है और द्वेषभी नहीं है, ऐसी प्रकृतिवाले तीसरा गुणठाणा पाते हैं; तथापि ये गुणठाणेवालेकों तो मुक्तिकी नियमा कही हैं. तब जितने जैनी हैं उन्की तो सबकी मुक्तिकी नियमा हुइ?' इसके समाधानमें यही खुलासा है कि मुक्तिकी नियमा तो, मिथ्यात्व भाव ही-शरीर, धन, पुत्र उसपर मेरेपना वर्त्तता है सो भाव जब दूर हो जावे और अंतरंगमें शुद्ध भाव होवे तब होती है. फिर इस ग्रंथके १८ प्रश्नमें विशुद्ध मार्गानुसारीके गुण कहे हैं, वो गुण प्रकट होतें

हो जायगा और उस्सें नुकशान होगा,' इस बातके रक्षणार्थे पुरुषके वेषमें देखकर पुरुष नामसें कहकर बुलावै. वो जानता है कि मैं सत्यरूप जानता हुं तौभी असत्य प्रकाशता हुं उसें यह असत्य है; तथापि उन वेषधारीका मान समालनेके लिये असत्य प्रकाश किया जाता है वास्ते असत्य नहीं—ऐसें हर किसीकों नुकशानीसें बचालेनेके सबबसें कहा जावे वो असत्य है; लेकिन मृषा नहीं. इस मुजब मनमें चिंतन करना वो मन योग कहा जाता है. और बोलना वो वचनयोग कहा जाता है. वचन योगकेभी इसी मुजब चार योग समझ लेना. कायाके सात योग सो उदारिक काययोग, वैक्रिय काययोग, आहारक काययोग, उदारिकमिश्रकाययोग. वैक्रिय मिश्रकाययोग, और आहारकमिश्रकाययोग ये मिश्रकाययोग जिस वक्त उदारिकादि शरीर तैयार नहीं हुवे थे उन्के पेस्तर होता है. सातवा कार्मण काययोग एक भवमैंसें दूसरे भवमें जानेके वक्त रस्तेमै उदय होता है. उस बाद जीव आकर अपने पिताका वीर्य और माताका रुधिरका पहिला आहार ग्रहण करता है, उसके बाद जब तक शरीरकी शक्ति नहीं बांधी गइ हो तब तक उदारिक मिश्रयोग है. उसके पीछे उदारिक काययोग होता है. यह सातों योगोमैसें जो जो योग प्रवर्त्ते उस मुजब कर्म बंधाते हैं. इस मुजब पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पचीश कषाय और पंद्रह योग—ये सब मिलकर ५७ हुवे सो कर्म बांधनेकेही हेतु हैं. उसमें जीतने जीतने प्रवर्त्तमान होवै उसमाफक जीवकर्म बांधता है. वास्ते यह सत्तावन हेतुमैसें जितने दूर हो सके उनोंको दूर करनेका उद्यम करना.जब सब हेतु व्यतीत हो जावेंगे तब तो सिद्ध गतिंही प्राप्त होयगी.

प्रश्न ५४:—जैन दर्शनके भीतर कर्म बांधतेके साथ, उसका अटकायत किया जावै, और पुरातन—पूर्वके बांधे हुवे कर्म नाश किये जावैं उसके वास्ते क्या उपाय बतलाया गया है?

उत्तरः—चौदह गुणस्थानक कहे हैं, उसमैं क्रमसें गुण वृद्धि करकें अंतिम गुणस्थानक पाकर जीव मोक्ष सिद्धि प्राप्त करता है. वो गुणस्थानक इस मुजब हैः—

पहिला मिथ्यात्व गुणस्थानकके भीतर जीव मात्र रहे हुवे हैं, उसके प्रभावसें विपरीत बुद्धि होती है. पर वस्तु याने पुद्गलिक पदार्थकों शरीर, धन, कुटुंबादिककों 'मेरा मानकर उसमें लुब्ध हो रहा है वहांतक संसार है.

दूसरा सास्वादन गुणस्थानक, सो जीव उपशम समकित पाकर पीछे हठते हैं और ज्हांतक मिथ्यात्वकी भेट नहीं भइ है, वहांतक उनके वीचका जो छ आवलिकाका उत्कृष्ट काल है उतने देर ठहरने वाला है. जैसें किसी मनुष्यनें क्षीर सकरका भोजन किया होवै और पीछेसें वमन होता है तौभी उस वक्त उसकी मिष्टता मुखमें मालूम होती है, वैसें समकितसें पड जाता है, तौभी समकित संबंधीके कुछ अच्छे अध्यवसाय रहते हैं, उसका नाम सास्वादन गुणस्थानक है. यहांपर किसीकों शंका हो आवैगी कि पहिले दूसरे गुणस्थानकमें विशुद्ध अध्यवसायसें चडता है उनका स्वरूप चाहियें, यहां उसके बदलेमें न्यून भावका दूसरा स्थानक कहा यह क्या? उसके उत्तरमें यही समाधान है कि जो ज्ञानी महाराजने ज्ञानके भीतर वढते घटते अध्यवसायके स्थानक देखे, उसमें एक एकसें वढते हुवे अध्यवसाय देखे, मगर दूसरी पायरीके अध्यवसाय किसिके चढते हुवे देखनेमें आयेही नहीं याने पतित होतेही मालूम हुवे, उसीसे यहां पतित अध्यवसायका स्वरूप कहा. वढते हुवे तो पहिले गुणस्थानकके भावसें विशुद्ध भावरूप तीसरे गुणस्थानके भाव होते हुए नजर आये, उसीलिये पहिलेसें तीसरे गुणस्थानक जाता है.

तीसरा मिश्र गुणस्थानक है. यह गुणस्थानके प्रभावसें मिथ्यात्व भावका नाश होता है; मगर समकित योग्य नहीं होने हैं. वीचके अध्यवसाय होते है सो मिश्रभाव कहा जाता है. (इसका ज्यादा स्वरूप मिश्रमोहनीका दर्शाव पेस्तर दिखाया गया है उससें वाकेफगार होना.) जब मिश्रमोहनीका नाश होता है तब जीव समकित पाता है और चौथे गुणस्थानककी भी प्राप्ति होती है. यहां पर कोइ शंका करेगा कि— 'जिनकों धर्मकी अंदर रागभी नहीं है और द्वेषभी नहीं है, अैसी प्रकृतिवाले तीसरा गुणठाणा पाते हैं; तथापि ये गुणठाणेवालेकों तो मुक्तिकी नियमा कही हैं. तब जितने जैनी हैं उन्की तो सबकी मुक्तिकी नियमा हुइ?' इसके समाधानमें यही खुलासा है कि मुक्तिकी नियमा तो, मिथ्यात्व भाव ही—शरीर, धन, पुत्र उसपर मेरेपना वर्त्तता है सो भाव जब दूर हो जावे और अंतरंगमें शुद्ध भाव होवै तब होती है. फिर इस ग्रंथके १८ प्रश्नमें विशुद्ध मार्गानुसारीके गुण कहे हैं, वो गुण प्रकट होतें

है तब भवकी नियमा होती है. वो मार्गानुसारीके गुण प्रकट नहीं हुवे है और उस गुणके अभावसें अन्याय प्रवृत्तियें तो कुशल रहे है; तदपि जैन ऐसा नाम धारण करते हैं, तो उससें भवकी नियमा नहीं होती है; लेकिन श्रावक नाम धारण करकें अन्यायकी प्रवृत्ति करै उससें जैनधर्मकी लघुता तो होती है. तो जिससें लघुता होती है याने जिन जैनोंके लिये लघुता होती है उनसें मुक्तिकी नियमा कैसें होवे ? यहां पर कोइ और भी शंका करेगा कि—'जैनकुलमें उत्पन्न होना सो तो पुण्य प्रभावसें कहा है; तथापि मुक्तिकी नियमा न हुइ ये क्या ?' इसके समाधानमें यही कहेंगे कि जैनकुलमें उत्पन्न होनेसें तो वडा फायदा है; क्यों कि उद्यम करै तो यथार्थ आत्मज्ञान प्रकट करनेका साधन है और उद्यम करकें मिलावे तो आत्माकी अज्ञानता दूर हो जावै और मुक्ति पावे, या तो मुक्तिकी नियमा भी होवै; परंतु वो जैनकुलमें जिस मुजब परमात्माने धर्मप्रवर्त्तना करनेकी आज्ञा दी है उस मुजब न करै, जो अन्यायादिकका निषेध करनेका कहा है वो भी दूर न करै और नाम मात्रसें श्रावकपना धारण कर लेवै तो उससें मुक्तिकी नियमा कैसे होवै ? ये तो गत जन्मांतरोंमें पुण्य उपार्जन कियाथा वोभी निकमा गुमा दिया; वास्ते प्रभुकी आज्ञा मुजब चलनेसें गुण होगा और जिनके अंगमे मार्गानुसारीके गुण आये हैं वो तो तीसरे गुणठाणेका स्पर्श करकें चौथा गुणठाणा पावेगा; क्यों कि कितनेक जीव जिनाज्ञा पालन कर सकते नहीं, लेकिन धर्म सत्य है ऐसा मनमें जानते हैं और जैनधर्मपर राग है तो यह भी परंपरासें करकें मुक्ति प्राप्त करनेका सवव है.

चौथा अविरति समकित गुणठाणा सो क्षायकभावसें पावे तो अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकित मोहनी, मिश्रमोहनी और मिथ्यात्वमोहनी—ये सात प्रकृति, सत्ता, बंध, उदय—यह तीन प्रकारसें भी नाश हो जाती है उनकों क्षायक समकित होता है, और जिसकों क्षयोपशम समकित होवें उसकों तो ये सातों प्रकृति सत्तासें रहती है; मगर बंधमेंसें दूर हो जाती है. उस विषयमें यही खुलासा है कि तीन मोहनी है, उसमें बंध तो मिथ्यात्वमोहनीका है, मिश्र, समकितमोहनीका बंध नहीं है—सवव यह कि यह तीन नाम मिथ्यात्वमोहनीके विभाग पडनेसें होते हैं. जैसेंकि चावलोंके उपर तूस हैं सो चावलोंका ढकन है; परंतु तूस दूर हो जावै तो भी तूसका अंश रहता है, वो निकल जाते हैं तब उसका नाम कुशकी (भूसा) कहा

जाता है. और कुशकी निकल गये बाद भी चावलोंकों पानीसें धोते हैं तब वह पानीका नाम चावलोंका धोवन कहा जाता है. ऐसें नाम और स्वभावमें भी तफावत रहता है उसी मुजब मिथ्यात्वके पुद्गल हठ जाते हैं; तदपि कुशकीरूप पुद्गल रहते हैं उनका नाम मिश्रमोहनी कहा जाता है. फिर वो जाती है तोभी सहज अंश रहती है उसका नाम समकितमोहनी है. यह तीनु प्रकृति मिथ्यात्वकी हैं उससे मिथ्यात्वका बंध है, सो क्षयोपशम समकितवालेकों दूर होता है. अब उदयसें अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्वमोहनी और मिश्रमोहनीका नाश होता है, और समकितमोहनीका उदय रहता है तौभी ये समकितवालेकों मुक्तिकी नियमा है. एक वक्त समकितका स्पर्श करकें कदापि त्याग दिया होवे तथापि पुनः प्राप्त करेगा और अंतमें मोक्ष सुख अनुभवेगा. फिर उपशमभावका उपशम समकित होता है, वो उपशमभावका चौथा गुणठाणा पाता है. वो उपशम समकितवालेकों सातों प्रकृति सत्तामें रही हैं; मगर उदय तथा बंधमें नहीं है. ये चौथे गुणस्थानकवालेकों समकितके ६७ बोल प्राप्त होते हैं. [महोपाध्याय श्री यशविजयजीने समकितकी सज्झाय की है, उसमें उन बोलोंकी सविस्तर हकीकत है, वो पढकर समझ लेना.] उनमेंसें पांच लक्षण यहां कहते हैं:—

पहिला उपशम लक्षण सो—अपराधीके संग भी रोषभाव न रक्खे, किसी मनुष्यने चाहे वैसा अपराध किया हो और उसीका कोइभी काम उनके हाथमें आया हो तौभी उनका काम अपना अपराधि है ऐसा जानकर न बिगाडे.

दूसरा संवेग लक्षण सो—देव मनुष्य सुखके सुखकों सुख न जाने. संसारकों उपाधि जाने. आत्मा जितना कषाय प्रकृतिसें मुक्त होवे और आत्माका गुण प्रकट होवे उतना सुख माने तथा केवल मुक्तिकी अभिलाषा रहे सो संवेग लक्षण है.

निर्वेद सो—संसारमें रहा है; मगर संसारमेंसें निकलनेका अतिशय चित्त हुवा है, संसार कैदखाने समान लगता है. कब ये संसार उपाधि जडभावकी छोडदुं और मेरे सहज स्वभावमें रहुं? ऐसी भावना रातदिन बनी रही है. कोइ कहेगा कि—' ऐसे भाव है तथापि संसारमें क्यों पड रहा है?' इसके उत्तरमें यही है कि पूर्वके भोगकर्म तीव्र बांधे होवे उस बंधनके सबब जीव छोड सकता नहीं. छोड देवे तौभी निकाचित कर्म पीछे उदय आते हैं. कर्मकी गति विचित्र है; मगर वो विचित्र कर्म

दूर करनेका उपाय तत्त्वरमण है. वो ज्यौं ज्यौ विशुद्ध होवै त्यौं त्यौं जडता नाश होती है.

चौथा अनुकंपा लक्षण सो-दुःखी जीवका दुःख दूर करनेका शक्ति मुजब उद्यम करै. शक्ति है तौ दुःखीका दुःख दूर करनेमैं लापरवाह न रहै. यह द्रव्यानुकंपा कही जाती है. और भावअनुकंपा सो धर्म रहित जीवकों अपनी ज्ञानशक्तिसें धर्मोपदेश करकें धर्मका संस्कारी करें. यहां कोइ शंका करेगा कि-१३ प्रश्नमें तौ गुरुमुखसें धर्म श्रवण करना कहा है, तब क्या श्रावकके मुखसेंभी धर्मका उपदेश श्रवण करना? इसके समाधानमैं यह खुलासा है कि-श्रावककों भावदया लक्षण यही है कि धर्मका संस्कारी करना; वास्तें मुनिमहाराजका योग न होवै तो वडील-वयोवृद्ध-तपोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध श्रावक होवै सो धर्मका उपदेश सुनावे ओर दूसरे श्रावक श्राविकाए सुनें. श्रावककों धर्म श्रवण करानेका अधिकार श्री भगवतिजीमें, तथा धर्मरत्न प्रकरणमें है. और उपदेशमालामें तथा आवश्यककी चूर्णीमे भी कहा है. देखियें वंदिताके भीतर भी यह गाथा मौजूद है:—'पडिसिद्धाणं करणे। किच्चाण म करणे पडिक्कमणं॥ असद्दहणे अतहा। विवरीय परूवणाअेय.' इस गाथाके अर्थमें अर्थदीपिकाके कर्त्ताने विस्तारसें वर्णन किया है. फिर श्री शांतिनाथजी महाराजके पूर्वभवोंमें पोषह लेकर शास्त्र सुनाया था असा अधिकार है. औरभी बहुत जगह पर यह बातकी प्रतीतिके पुरावे मौजूद हैं. वास्ते उचित है कि श्रावक अपनी शक्ति मुजब धर्मोपदेश करै और जीवकों हरएक रीतिसैं धर्ममें जोडदेवे सो भावदयाका लक्षण है.

पांचवा आस्तिक्यता लक्षण सो-जिनराजने प्ररूपे हुवे आगमोंपर, पंचांगीपर आस्ता होवै और वोभी शंका रहित होवै; क्यौं कि जो जिनेश्वर है सो राग द्वेष रहित है उससें उन्होंकों कम ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं असा निर्धार किया है. फिर जो आगम है सो न्याय युक्त हैं. आगमके वचनोंमैं किसी जगहपर शंका उत्पन्न होवै वैसा हैही नहीं. जो जो बाते हैं सो सो न्यायसें सिद्ध है. पुनः जो जो वस्तु आगममैं कही गइ है उन करते अधिक विवेचनादिके साथ दर्शाइ हुइ कहीं अन्यशास्त्रोंमैं नजर नहीं आती है. आत्माकों रागद्वेषसें मुक्त करना सो जैनशासनमैं कहा है. वोही वेदांत, न्याय, सांख्य, बौध-ये सब दर्शनवाले कहते हैं; मगर जैनसें अधिक मोक्षसाधन दूसरे दर्शनोंमैं मालूम नहीं होता है. पुनः सूक्ष्म आत्मस्वरूपकी बातें जितनी जैनमैं बतलाइ गइ हैं उतनी दूसरे कोइभी दर्शनमैं मालुम नहीं होती है. फिर निजस्वरूपमें जोडनेवाले

व्यवहारिक साधन भी जैनमें बताये हैं, उन्सें अधिक साधन दूसरे दर्शनोंमें मालूम नहीं होते हैं. और जैनकें साधनोंसें जल्दी राग द्वेषकी प्रकृति शांत होती है. पुण्य पापके माननेवाले नास्तिक सिवा यवन भी हैं; मगर जैनसें ज्यादे माननेवाले कोइभी नहीं हैं. जैनमें पुण्य पापके स्वरूप बहुतही अच्छी तरहसें दिखलाये गये हैं. और मोक्ष साधनके उपाय जो जो दिखलाये है, वे वे सब दूसरे दर्शनसें जैनने अधिक दिखलाये हैं. उससें चित्तमे जैनदर्शनं उपर अतिशय आस्ता हुइ है. फिर नास्तिकताका मत न्यारा पडता है. वो मत कुछ व्याजवी नहीं हैं. उस मतका कुछ स्वरूप बतलाना चाहता हुं; वास्ते रायपसेणी सूत्रमें केशीगणधर महाराजनें परदेशी राजाकों समझाये हैं वो कथन नीचे मुजब सारांशरूप हैं:—

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि—'आप कहेते हो कि—जीव और शरीर भिन्न है और जैसा करै वैसा भुक्ते, तौ मेरा बाप नास्तिक मतवाला था, बहुत हिंसा वगैरः करताथा, वो मर गया है, वो नरकमें जाना चाहियें, और वैसाही हुवा होवे तो नरकके दुःख देखकर वो मुजे यहांपर आकर कहेता कि, मैंने पाप किये हैं, उसीसें नरकके दुःख सहन करता हुं; वास्ते तुं भी पाप न कर, धर्म कर कि जिस्से दुःख न भुक्तने पडे. जो अैसा आकर कहे तो मैं शरीर और जीवकों अलग अलग मान लुं.' यह सुनकर केशीमहाराजने कहा कि—'हे परदेशीराज! तेरी सूर्यकांता नामक रानी है वो सब प्रकारके वस्त्राभूषण पहेनकर बैठी हो, उस वक्त कोइ तोफानी बदनिगाहवाला पुरुष उनकी साथ बदचलन चलावे और वो तुं देख लेवै तौ उसकुं घर जाने दे या जानसें मार डाले?' परदेशीराजाने कहा—'उसकों तो शूलीपें चडा दुं, अनेक विटंबना करुं, उसकों घरपर कभी न जाने दुं.' तब केशीमहाराजनें कहा कि—'जैसें तुं उसका विनाश करै और घरपर न जाने दे, वैसें नरकमेंसें परमाधामी भी आने क्यों देवे? और न आने देवै तौ किसतरहसें आने पावै? वहांही दुःख सहन किया करै.' फिर परदेशी राजानें दूसरा प्रश्न किया कि—'मेरे बापकी माता बहुत धर्मीष्ट थी, वो हमेशां पौषध प्रतिक्रमण किये करती थी, दान देती थी वो तुमारे कथन मुजब देवलोकमें जानी चाहियें, तो वो देवका सुख अनुभवती है तब यहां आकर मुजे क्यों धर्म करनेका नही कहेती है कि मैं देवलोककी अंदर बहुत सुख भुक्तती हुं उस वास्ते तुं भी धर्म करनेसें वैसाही सुख प्राप्त करेगा, जो अैसा कहे तो मै सच्चा मान लुं कि जीव भिन्न है. और शरीर भी भिन्न है.'

केशी महाराजनें कहा-' तुं स्नान मंजन कर सुंदर मूल्य वस्त्राभूषण पहेनकर पवित्र पूजाके उपकरण लेकर देव पूजनेके लिये चला जा रहा होवे उस वक्त कोइ मनुष्य कहे कि यह विष्टाके कमरेमें आओ, विश्राम ल्यो, खडे रहो, बैठो, सो जाओ, ऐसा कहै तो तुं वहां जायगा ? '

परदेशीराजाने कहा—' जाना तो दूर रहा; मगर उसका कथन मात्रभी न सुनुं. ' ऐसा सुनकर केशी स्वामीने कहा-' इसी मुजब देवलोककी अंदर देवता पैदा होता है, वहां दिव्यसुख, दिव्यभोग-अतिशय सुंदर महा सुगंधमय है, उनमें लीन होता है, उसके साथ स्नेहग्रंथी बंधता है, और अत्रके सगेसंबंधीका स्नेह तूटता है; तथापि अत्र आनेका विचार करता है कि मैं दो घडी बाद जाउंगा; लेकिन वहां के आयुष लंबे होनेसें वहांकी दो घडी व्यतीत होनेमें अपने दो हजार वर्ष चले जाते. इससें यहांके जो सगे होते हैं, उनका अल्प आयुष होनेके सबबसें कितने जन्म व्यतीत हो जाते हैं, कहो अब कैसें मिलाप होवे ? और यहां न आनेका दूसराभी सबब है कि-मानवक्षेत्रकी अंदर उदारिक शरीरके लियेसें निहारादिककी बदबु चारसो या पांचसो योजन तक उछलती है, वो बदबुके सबबसें सुगंधमय पदार्थोंमें निवास करनेवाले देव यहां नहीं आ सकते हैं, तो तुझे किस तरह तेरे बापकी माता यहां आ कर कुछ हाल कह सके ? यहां आनाही दुर्धर है. '

परदेशी राजाने प्रश्न किया कि-' मैंने एक दिन एक चोरको लोहेकी मजबूत छिद्र रहित कोठी में घुसेड रख्खा था, पवन जा सके वैसाभी बारीक छिद्र नहीं था; तथापि कितनेक दिनोंके बाद वो कोठीको खोलकर देखा तो वो चोर मर गया मालूम हुवा. जब शरीरसें जीव अलग था तो उनका जीव किस रस्तेसें बहार निकल कर चला गया ? शरीर और जीव एकही है, वास्ते भिन्न कहना झूठा है. '

केशी गणधरने कहा—' सुन, एक बडे मकानमें भूमिगृह है उस भूमिगृहमें जाकर कोइ सख्स उनके सब बारी जाली वगैरः हवा आने जाने के मार्ग-छिद्र बंध कर पीछे ढोल बजावे तो ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है या नहीं ?'

परदेशी राजाने कहा—' बेशक आ सकता है ! ' केशी महाराजने कहा-' जैसे सब छिद्र बंध करदेने परभी ढोल बजानेका आवाज बहार आ सकता है, तैसेंही सब छिद्र बंध करनेपरभी जीव चला जा सकता है. '

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—'मैनें एक चोरको लोहेकी कोठीमें पूरकर सब छिद्र बंध कर दियेथे, उससें वो मर गया, मगर जब वो कोठीको खोलकर देखा तो उनके कलेवर में कीडे पडे हुवे नजर आये, तो वो कीडे किस तरह अंदर उत्पन्न हो सके?'

केशी महाराजने कहा—'लोहेको अग्निसें तपाकर लालचोळ बना देते हैं तब उसमें अग्नि दाखिल होता है. कहिये, उसमें छिद्र तो नथे, तोभी क्यों कर अग्नि दाखिल हो सका? जैसे लोहमें अग्नि दाखिल होते मालूम न हुवा वैसेंही अरुपी जीव कलेवरमें दाखिल हुवे, मालूम न हो सका.'

परदेशी राजानें प्रश्न किया—'कोइ युवान, बुद्धिमान या निरोगी मनुष्य बाण छोडे उस मुजब रोगी, बाल्यावस्थावाला बाण छोड शकेगा? मतलब यह कि वो नहीं छोड सकेगा. तुमारे कहने मुजब जीव तो वै दोनुमें है; मगर शरीरकी न्यूनता होनेसें वैसा तफावत मालूम होता है; वास्ते शरीर है सोही जीव है.

केशी महाराजने कहा-'कोइ युवान पुरुष है और बलवानभी है; मगर उनके पास पुरानी कावड है, तो वो कावडसें भार उठा सकेगा? अर्थात् नहीं उठा सकेगा; क्यों कि कावड तूट जावे. उसी तरह जीवके साथ शरीरका संबंध है; मगर शरीर निर्बल है, बाल्यावस्थावंत है, तो उससें बाण छोडना क्यों हो सके? मतलबमें नहीं छोड सके.'

परदेशी राजानें फिर प्रश्न किया—'एक चोरको मैनें जीते हुवे तोल लिया और उस पीछे शस्त्र बिना उसका जान निकाल दे फिर तोल किया तो वजनमें कुछभी तफावत मालूम न हुवा. वास्ते जीव जूदा होता तो तोल कम ज्यादा होता; मगर ऐसा न हुवा तो जीव शरीरसें जूदा है ऐसा संभव नहीं होता है.'

केशी महाराजने कहा—'चमडेकी धमन खाली होवे उस वक्त उसका तोल कर लेवे और फिर उसमें पवन भरकर तौल करे तोभी तोलमें बिलकुल तफावत नहीं होता है. उसी मुजब जीव है उसमें वजन नहीं होता है; क्यों कि अरुपी है, वास्ते कम ज्यादा तोल हुवा मालूम नहीं हो सकता है.

परदेशी राजाने कहा—'मैने एक पुरुषके शरीरमें सब जगह जीवको देखा; मगर कही मालूम न हुवा, तो पीछे उसके टुकडे कीये और फिर जीवको देखा तो

भी मालूम न हुवा, तो फिर वहुत बारीक टुकडे करके देख लिया मगर जीवका पता न मिला; वास्ते जीव जूदा नहीं है.'

केशीमहाराजने कहा—'कोइ पुरुषमंडली जंगलमें गइ और रसोइ बनानेके लिये वहां अग्नि पैदा करनेके वास्ते लकडेके बहुतसे टुकडे करके देखा; मगर अग्नि देखनेमें न आया, तब सब उदास हो बैठे. उनमेंसें एक बुद्धिशालीने कहा कि तुम सब न्हा धोकर देवपूजन करना शुरु करो, मैं अग्नि उत्पन्न करकें रसोइ तैयार कर लुंगा.' पीछे उन बुद्धिमानने जंगलकी अंदरसें अरणीका लकडा ढुंढ निकाला और उनके दो टुकडे करकें एक दूसरेके साथ घिसना शुरु किया तो फौरन अग्नि पैदा हुवा और उससें रसोइ पकाकर सबकों भोजन कराया. उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसें जीव नजर नहीं आता है, जैसें बुद्धिमानने बुद्धिवलसें अग्नि पैदा किया; लेकिन लकडेके टुकडे करनेसें अवल्लमें अग्नि पैदा न हुवा और न नजर आया, उसी मुजब शरीरके टुकडे करनेसे जीव नजर नही आता है; लेकिन ज्ञानवंत पुरुष ज्ञानवलसें जीवकों देख सकता है.'

परदेशी राजाने प्रश्न किया—'यह दृष्टांत वतलाये, मगर जब प्रत्यक्षपनेसें जीवकों हाथोंमें पकडकर वतलाया जावे तब मैं सच्चा मानुं?'

केशी महाराजने कहा—'यह दरख्तके पत्ते किस सववसें हिलते हैं? कोइ देव हिलाता है?'

परदेशी राजानें कहा—'पवनसें हिलते है.'

तब केशी महाराजनें कहा—'पवनकों तुं देख सकता है?'

परदेशी राजानें कहा—'मैं नहीं देख सकता हुं.'

तब केशी गुरुने कहा—'पवन देखनेमें नहीं आता है तो भी पवनही हिलाता है ऐसा ज्यों मान लेवा है त्योंही जीव नजर नहीं आता; मगर लक्षणसें मालूम होता है और केवलज्ञानी महाराज प्रत्यक्ष देख सकते हैं—दूसरे नहीं देख सकते हैं.'

इस तरह युक्तिवाले प्रश्नोत्तर होनेसें परदेशी राजाने नास्तिक मत छोडकर जीव अजीवादि नो तत्त्वकी श्रद्धा करकें श्रावकके व्रत अंगिकार किये.

इस मुजब बहुत तरहसें नास्तिकवाद शास्त्रमें निराकरण किया हुवा नजर आता

है, उससें प्रभुमार्ग और आगमपर पूर्ण श्रद्धा-आस्ता हुइ है. स्वप्नमें भी संशय नहीं होता वही आस्तिक्यता लक्षण ध्यानमें लैना.

यह पांचों लक्षण सम्यक्त्व दृष्टिवालेकों होते हैं. उनकों शोचना और जो न होवै तो इन्होंकों प्रकट करनेके लिये योग्य उद्यम करना. मुख्य उद्यम यह है कि-हरएक धर्मकी बातें सुनकर आत्मामें विचार करना कि मेरेमें यह गुण नहीं है वास्ते प्रकट करनेका उद्यम करुं. परंतु सम्यक् दृष्टिकी धर्म सुनकर दूसरेकी तर्फ नजर न जावै कि अमुक निर्गुणि है. वो तो जिन जिन पुरुषमें गुण हांवे वो ग्रहण करै. अन्य दर्शनकी भी अच्छी रीतभात होवै तो उसकी निंदा न करै. उसपर महोपाध्यायजीने कहा है कि-'दर्शन सकलके नय ग्रहे.' याने जो जो दर्शनवाले जो जो नयसें धर्म करते होवें वो वो नय विचारसें जान लेते हैं और आप अपने सातों नयके विचारमें रहते हैं. फिर जैनदर्शनमें भी पंचमकालके प्रभावसें कदापि क्रिया फेरफार मालूम होवै; तौ भी मध्यस्थ दृष्टि रखनी. लेकिन एकांत खींचातानमें नही पडना. योग्य जीव होवै और कदापि क्रिया उनके गच्छाचार मुजब करते हो अथवा दूसरे आप अपने गच्छकी रीति मुजब करते होय उसकी निंदा न करते हो तौ अपन भी उनके साथ मध्यस्थ रहना; मगर खींचातान करनी नहीं. खींचातानसें बहुत विकल्पमें पडनेका होता है. और धर्म है सो निर्विकल्प दशाहीमें है; वास्ते जो जो काम करना उन उनमें निर्विकल्प दशा होवै वैसी क्रिया करनी. सोवत करनी उनमें भी स्वगच्छी होवें और उनकी सोवत करनेसें विकल्प होता होवै, और परगच्छी होवै मगर उसकी सोवतसें निर्विकल्पदशा होती हांवै तो उनकी सोवत करनी दुरस्त है. हरेक रीतसें राग द्वेषकी प्रकृति कम होवै वैसाही करना. वाद विवाद करनेसें स्हामनेवालेकों गुण होवै अथवा जैनशासनका जय हो अैसा होवै तौ करना; लेकिन नाहक कंठशोष होवै वैसा वाद करना वो बेमुनासिब है. हरिभद्रसूरीजीने अष्टकजीमें अैसे वादका निषेध किया है; वास्ते जिसमें दूसरेकों या अपने आत्माकों गुण प्राप्त हो वैसा होवै तो वाद चर्चा या धर्मकथा करनी. और ये गुणठाणेवाले युंही करें. आत्मधर्मका लाभ होवै उसमेंही काल निर्गमन करै. संसारमें रहा है; मगर सांसारिक सुखकों वेठ (बिगर पैसे और बिन मरजीकी मजदूरी.) रुप जानता है; लेकिन उसमें प्रसन्न नहीं होता है. जो जो संसारि काम करता है उसमें शोचता है

कि यह कृत्य मेरे करने लायक नहीं है; मगर मत जन्ममै कर्म बांधे हुवे है उसीसें मै इसीमैं बंधा हुवा हुं, इस उपाधीसें नहीं निकला जाता है; लेकिन जब रागद्वेषकी प्रकृतिसें मुक्त होकर यह संसारकी जालमैसें निकलुंगा और मेरे देखने समझनेके स्वभावमैं चलुंगा वही मेरा कार्य है. अबी भी जो जो शुभ अशुभ कर्मके उदय होवै उसमै मेरें लीन होना वौ मेरा स्वभाव नहीं है. मै जहां तक संसारमें रहा हुं वहांतक मुझे मेरे स्वभावमें रहकर उदय आइ हुइ क्रिया करनी है. सहजहीमें समकितके प्रभावसेंही आप लीन नहीं होते हैं, पुद्गलका तमाशा देखते है और आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्रमैही मग्न हो रहे हैं. ये गुणमैही आनंद मानते हैं. संसारी-आनंद तौ अस्थिर है; वास्ते वो आनंदकी तो स्वप्नमैंभी इच्छा नहीं करते हैं अैसा समकितका प्रभाव है. यहांपर कोइ शंका करेगा कि-श्रेणिकराजा क्षायक समकितीथे; तथापि उन्होंने कुछभी व्रत क्यों न किया ? संसारसें अैसी उदासीनता होनेपरभी क्यों व्रत न ग्रहण किये ? इसके समाधानमैं यही कहेंगे कि-श्रेणिकराजाने समकितकी प्राप्तिके पेस्तर नरकका आयु बांध लियाथा उसीसें नरकमें जानेवालेथे वौसी सबबसें त्यागभाव नहीं हुवा. मगर उन्होंके दिलमै तौ त्यागभाव बना हुवाही रहाथा और विरती तौ पांचवे गुणठाणेसें होती है; वास्ते कुछभी व्रत नहीं करनेसें समकितमें दूषण नहीं; लेकिन सब जीवकों अैसा नहीं होता है. क्यों कि मार्गानुसारीपना आता है वहांसेही विरतिके भावही आते है. योग दृष्टिका स्वरूप कहा है, वहां पांचवी दृष्टि पाता है तब समकित पाता है और पहिलेसें चौथी दृष्टि तक मार्गानुसारीपना कहा है. उसमै पहिली दृष्टिमैही व्रत प्राप्त होवै अैसा कहा है; वास्ते बहुतसे जीवकों तौ यथाशक्ति विरतीके भाव होतेही है. किसी जीवकों अंतरायका उदय होवै तौ व्रतकी अंदर वीर्य स्फुरा न सकै और जिसकों वीर्यांतरायका क्षयोपशम हुवा है वै तौ वीर्य स्फुरा था करै-जो जो पर वस्तुका त्याग बन सके उतना करै और श्रावकके गुणठाणरूप व्रत तौ पांचवे गुणठाणमें करै.

पांचवा देशविरती गुणस्थानक जब प्रकट होवै तब अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभका नाश होता है. उन्होंके साथ दूसरी प्रकृतियें भी उदय बंधसें नाश होती है, वो कर्मग्रंथ देखनेसें मामलू होगा. इस गुणस्थानपर देशसें अव्रतका नाश होता है, उसीसें समकित गुणस्थान करते भी विशेष करकें परभावकी इच्छा दूर हो जाती है. संसारसें भी ज्यादे उदास होते है. खान-पान-वस्त्र-धन-धान्यकी इच्छा

कम हो जाती है. मनमै तो संयमके भाव वर्त्तते हैं; मगर पूर्वकर्मके जोरसें प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभका उदय रहा है उससें संयम नहीं ले सकता है; लेकिन हृदयमेंसें संयमकी भावना नाबूद नहीं हुइ. संसारी काम करता है सो वेठरूप करता है और विरतीमें भी आनंदादिक श्रावकने बहुतही सख्ताइ की है, वो बात उपासकदशा सूत्र देखोगे तो मालूम होवेगा. अब श्रावक किस मुजब विरति पाले? उसका बयान करते हैं. पहिले स्थूल प्राणातिपात व्रत लेवे; क्यों कि जो गृहस्थावासकी अंदर आरंभादिक कार्य किये बिगर निर्वाह नहीं हो सकता है, उससें सर्वथा या समस्त प्रकारसें दया पालनी वो नहीं बन सकता है. वहां श्रावककों सवा वसेकी दया मुनिकी अपेक्षासें कही है. संपूर्ण दया पालनी सो वीस वसेकी दया है, वो त्रस-हिलते चलते जीव, स्थावर-पृथ्वि, अप, तेउ, वाउ, वनस्पति-ये त्रस और स्थावर दो प्रकारके जीव हैं उन सबकी दया पाले तब २० वसेकी दया पलती है; परंतु स्थावर तो खाने पीनेके काममें आते है उसीसे उन्होंकी दया नही पल सकती है, वास्ते दस वसे चले गये. पीछे दस वसे त्रसकी दयाके रहे उसकी अंदरसें भी अग्नि वगैरः के आरंभादि करनेसें त्रस जीवका नाश होता है उससें वो भी न पल सके, वास्ते उनमेंसें भी पांच वसे चले गये. उस बाद भी आरंभके काम सिवा कोइ राजा प्रमुख है उनका गुन्हा किया है तो अपराधीकी दया भी संसारमें रहेसें नही पल सकती है वास्ते पांचमैसें ढाइ चले जाते हैं, तब बाकीमें ढाइ रहे. उसमें भी सापेक्ष हिंसाका त्याग नहीं होता है, जैसें कि शरीरमें जीव पडे है किंवा अपने स्वजन सज्जनादिकके शरीरमें जीव पडे हैं, अब वो जीवकों दूर करनेके लिये उद्यम करनाही पडता है. तब वो जीवोंका नाश हो जाता है, उससें वो दयाभी नहीं पली जाती हैं, तो ढाइ मैसे सवा गया तो सवा बाकीमें रहा याने अनारंभ अपराधसें निरपेक्ष त्रस जीव मारनेका त्याग करता है. उस मुजब पहिला व्रत धारण करे.

दूसरा मृषावाद व्रत वो किसी उत्तम पुरुषसें सर्वथा मृषावादका त्याग होवे तो वैसा करे और वैसा न बन सके तो पांच बडे झूठ कहे है उनका त्याग कर देवे. याने कन्यालीक-कन्याका विवाह जोडनेमें झूठ न बोलना; क्यों कि जो उलटा सूधा समुझाकरके संयोग जोड देवें उससें उनकों जन्मभर दुःख सहन करना पडे; वास्ते उस काममें झूठ बोलनेका त्याग करना. गोवालीक याने गाय-भेंस-बेहलके काममें

झूंठ बोल अर्थात् किसी वहेलकी पांच कोश जानेकी ताकत है और दश कोश जा सकता है अैसी प्रतीति देवै, उससें विचारेकों वो खरीदनेवाला पांच कोशके बदलेमें दस कोश चलाता है जिस्सें जानवरकों बडा दुःख होता है; वास्ते अैसे संबंधमें झूंठ नहीं बोलना. भोमालीक याने जमीनके काममें झूंठ बोलनेका त्याग करना–मतलबमें जो दो तसू जमीनके बदलेमें अैसी लडाइ होती है कि जिसके लिये हजारों रुपये कचहरी चढनेमें बरबाद किये जाते है; वास्ते उस संबंधमें बडा विकल्प होता है. अैसा समझकर मृषा बोलना नहीं. थापणमोसा अर्थात् किसीने विश्वाससें अपने वहां कुच्छ चीज रखी होवै और जब मालधनी मंगनेकों आवै उस वक्त उस चीजका इन्कार करना कि 'तूने मेरे वहां कब चीज रख्खीथी ? क्या गले पडता है ? वाह !' अैसा जवाब देना उसकों थापणमोसा कहा जाता है. उस बिचारेकों वो रकम न मिलनेसें आजीवीकाका भंग होता है और उसी सबबसें बडाभारी दुःख होता है; वास्ते अैसी बातमें झूंठ नहीं बोलना. झूंठी गवाह याने खोटी साक्षी पूरै, उनसें राजा दंड देवै, लोग गाली देवै और अपकीर्ति होवै, वास्ते अैसे काममें झूंठ नहीं बोलना. अैसी बातोंसें यह लोकमें धर्मिष्ट मनुष्यकी बहुत लघुता होती है और आते भवमें महान् दुःख भुक्तने पडते हैं. इस मुजब दूसरा व्रत अंगिकार करै.

अदत्तादान याने पराइ वस्तु किंचित्‌भी न लेनी, वोभी सर्वथा पालना चाहियें; लेकिन सर्वथा न पल सकै तो रस्तेमें किसीकों लुंट लैना किसीकी घर फोडकर चोरी करना, दूसरी कुंजी–चावी लगार माल निकाल लेना या किसेके खीसेकी–जेबकी अंदरसें कुछ निकाल लैना अैसी चोरी अगर सरकारी दाणचोरी वगैरः का त्याग करना.

मैथुनव्रत अर्थात् स्त्रीसंभोग या पुरुषसंभोगका सर्वथा त्याग बन सकै तो करना और न बन सकै तो अपनी स्त्रीसें संतोष रखना और दूसरी स्त्रीओंके साथ विषय सेवनका त्याग करना.

परिग्रहव्रत अथात् जितना धन धान्य घर दुकान आभूषण स्त्री वगैरः होवै उतनेमैंही संतोष रख्खै, और उनसें ज्यादा प्राप्त करनेका त्याग करै. या आपकों जितनी इच्छा होवै उतनी छूट रखकर उनसें ज्यादा न रखनेका नियम कर लेवै. अैसा करनेसें तृष्णा शान्त होती है. तृष्णा शान्त होवै तो बुरे काम करनेकी जरूरत

नहीं रहती है और धर्मसाधन करनेकाभी वक्त ज्यादा मिलता है; उससें आणंदजी वगैरः श्रावकने आपके पास जो धन-द्रव्य था उतनेसेंही संतोष किया था.

दिग्विरमणव्रत अर्थात् चारों दिशाओंमे तथा उर्द्ध, अधो-नीचे ऊपर जानेकी मर्यादा कर लेवें कि इतने योजन तक जाना. येभी कब होता है कि अतिशय धन मिलानेकी, विविध पदार्थ देखनेकी, अनुभव करनेकी तृष्णा कम होती है तब बन सकता है. फिर जितना योजन जानेका नियम किया है उस हदसें बहार जाकर हिंसा करनी, झूठ बोलना, चोरी करनी, मैथुन सेवना, व्यौपार करना, ये सब काम करनेका सर्वथा बंध हो जाता है, उससें यह व्रत बहुत लाभकारक है.

भोगोपभोग व्रत अर्थात् एक बेर भोगवै सो भोग-खान पानकी चीज, और बेरबेर भोगवैं सो उपभोग याने दागीने वस्त्र स्त्री वगैरः वस्तु जगतकी अंदर हैं उन सबकी कुछ हमेशां जरुरत नहीं पडती है; क्यों कि जितनी वस्तुओंसें निर्वाह करना चाहे उतनी वस्तुओंसें हो सकता है. क्यों कि उनका चित्ततो आत्मभावोंसें हुवा है. फक्त संसारमें कारणसर रहा है; लेकिन उनमे लीनता नहीं है. वास्ते अपनें खाने पीनें पहेनने ओढनेकी जितनी जरुरतकी चीजे होवें उतनीही रखकर बाकीकी चीजोंका त्याग कर देवें. वो चौदह नियममें आता है उनकी मर्यादा कर लेवें. पुनः व्यौपार करनेमेंभी बहुत सावद्य व्यौपार जो पंद्रह कर्मादान याने बहुत पाप करना पडे उससें कर्मका आगमन होवें सो कर्मादान कहा जाता है. उन कर्मादानोंका बन सके तो सर्वथा त्याग करना और न बन सके तो निर्वाहके योग करें; मगर उनके सिवा न करै. वो पंदरह कर्मादान इस मुजब हैं:—

इंगाली कर्म—अग्निके आरंभसें जो व्यौपार होवै सो-कुम्हारका निभाह, चूनेकी भट्टीयें, हलवाइ, लुहार, रंगारे, अग्निसें चलनेवाले सांचेसें काम करनेवाले, तथा कोलसे बनाके वेचनेवाले और दूसरे असेंही व्यौपार करनेवाले होवे वैसा व्यापार बंध कर देवै.

वन कर्मः—वृक्ष कटानेका धंदा, उसमें खेतीका काम, बाग बगीचे बनानेका कामका समावेश हो जाता है.

साडी कर्मः—गाडे रथ वगैरे बनाकर वेचनेका धंदा-रोजगार करै.

भाडी कर्मः—गाडे, ऊंट, मकान वगैरः बनाकर भाडा पैदा करनेका व्यौपार करै.

फोडी कर्मः—जमीनँ फोडनेका काम–उसमें त्रस जीवोंका नाश होता है.

दांतका व्यौपार–न करै; क्यौं कि हाथियोंके दांत निकलवानेमै हाथीकों वडा दुःख होता है. पुनः वो दांतोकों काटकर उनके टुकडे बनानेके वास्ते पानीमें डालने पडते हैं उसमेंभी वहुत जीवोंकी हिंसा होती हैं.

लाखका व्यौपारः—उसमें वहुतसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्यागने योग्य है.

रसः—घी तेल गुड सक्कर निमक वगैरः नरम पदार्थके व्यौपारमें भी जीवहिंसा होती है.

केश व्यापारः—ऊंन वेचनेका और मनुष्य वेचनेका व्यौपार नहीं करना.

विष व्यौपारः—अफीम, वछनाग संमल वगैरः झेरी चीजोका तथा शस्त्र–तलवार भाला छुरी कटार आदि हैं जिनसें दूसरे जीवका प्राण नाश होवे वो व्यौपार नहीं करना.

यंत्र व्यौपारः—चक्की वगैरः यंत्र रखकर उससें काम कर देवै.

पीलन कर्मः—घाणी–तल एरंडी गंडे पीलनेकी किंवा कपास पीलनेका चरखा, रु वगैरः की गठडीयें वांधनेके सकंजे आदि कि जिस्सें वहुतसें जीवोंका नाश होता है उसका त्याग करना.

निर्लंछन कर्मः—लडका लडकीके कान नाकमै छेद करावे, वहेलके वृषण कटावे, जानवरोंकों डाम देवै उसकों निर्लंछन कर्म कहा जाता है उसका त्याग करै, क्यौं कि इस्सें जीवोंकों वडा दुःख होता है.

अग्नि मारफत लाय लगाना—दव लगाना, खेतरोंकों और जंगलोंकों जला दैना उसमैंभी वहुतसें जीवका सत्यानाश निकल जाता है; वास्ते त्याग दैना.

सर याने सरोवर तालाव कुंवे टांकेके भीतरसें पानी निकालकर खाली करनेका धंदा नहीं करना; क्यौं कि उससें पानीके जीवोंका निकंदन हो जाता है; वास्ते ये भी त्यागने योग्य है. मतलवमें ऊपर कहे गये पंद्रह कर्मादानोंका त्याग कर देवै.

यह व्रतवाला वाइस अभक्षकाभी त्याग कर देवै. वे वाइस अभक्ष कौनसे है ?

पीपलके फल, पीपलीके फल, वूलरके फल, वडके फल, कुठुंवरके फल, मांस, मदिरा, मस्का, सहत, रात्रिभोजन, विदल याने मुंग उडद मठ चिनें वगैरः के साथ छांश दुध दहीं खाना, शायद गरम किया जावै तौभी जोश आये वाद काममें लैना, तौ अभक्षका वाद नहीं लगता है. गरम न किये हुवे दही वगैरः के साथ मुंग उडद

चिने आदिका संयोग होता है उससें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है; वास्ते इसका त्याग करना. सब जातिकी मिट्टी, संचित्त नियक, हिमालयमै जम जाता हुवा पानी–वरफ, ऑले, जहर, वैगन कि जिसकी टोपीभि त्रसजीव रहते हैं, उसका नाश होनेके सववसें उनका त्याग करनाही दुरस्त है, वहुवीज याने जिस फलके अंदर एक दूसरे वीजके वीच अंतर नहीं हैं वैसे फल, (अनारमै वहुतसे दाने होते है मगर एक एकसें अलग वीज रहते हैं–वीच परदह होता है. वास्ते वैसे फल वहुवीज नहीं गीने जाते हैं.) तुच्छ फल–वेर वगैरः कि जिसमै खानेका भाग कम और फैक देनेका भाग ज्यादा होवे वैसे फल, धूप दिखाये विगरका आचार, गत दिनकी वनाइ हुइ रसोइ, अनजाने फल, अनंतकाय (जो चीज भांगनेसें समान दो टुकडे हो जावै वैसी वस्तु.) या कंदमूल–ये वाइस अभक्ष याने न खाने लायक चीजें हैं–उसका श्रावक अवश्य त्याग कर देवै. इस मुजव भोगोपभोग व्रतकी मर्यादा करै; सवव कि जो पुद्गल भावकी वांछना नहीं है; लेकिन आत्मभावकीही वांछना हैं, उससें जो निभ सकै उनके सिवाकी चीजोंका त्याग कर देवै. निर्वाहकी चीजोंका त्याग न करै, तौभी मतलव जितनीही छूट रखवे.

अनर्थ दंड अर्थात् आपके वास्ते अयवा स्वजन कुटुंबके वास्ते जो करना सो अर्थ; मगर उस सिवा करना सो अनर्थदंड गिना जाता है.

अपध्यान सो आर्त्तरौद्र ध्यान करना. आर्त्तध्यान उसै कहते है कि–इष्ट वस्तुके संयैगका चिंतवन करना, वा कानिष्ट वस्तुके वियोगका चिंतवन करना, अग्रशोच याने भविष्यका चिंतवन करना, ओर रोगके वियोगका चिंतवन करना अथात् ‘ अैसे रोग दूर रहो–मत आओ ’ अैसा शोचना रौद्रध्यान उसै कहते है कि–दुष्ट संकल्प करना. उसके चार प्रकार हैं अर्थात् हिंसानुवंधी–हिंसा करनेका चिंतवन करना, मृषानुवंधी–झूठ वोलनेका चिंतवन करना, चौर्यानुवंधी–चोरी करनेका चिंतवन करना, परिग्रह रक्षणानुवंधी–परिग्रहके रक्षणका चिंतवन करना ये चार प्रकारका रौद्रध्यान है. ये रौद्र और प्रथम कहा गया सो आर्त्त यह दोनुं छोड देनै ही लायक है.

हिंसाप्रदानं अर्थात् हिंसाके उपकरण तैयार कर रक्खे और मांगे उसकों देवै.

पापोपदेश याने पाप होवै वैसा विना प्रयोजनसें उपदेश देवै; जैसें कि किसकों कहै–तुं मकान क्यौं नहीं वनवाता है ? क्यौं मकानकों नहीं रंगवाता है ? चूलहा क्यौं

नहीं सुलगाता है ? कपडे क्यों नहीं धुलाता है ? इस तरह अपने स्वजन कुटुंबके मनुष्य सिवा दूसरे मनुष्योंकों कहा करै कि जिस्सें जीवहिंसा, झूंठ, चोरी वगैरः काम करै; वास्ते अैसा कहना छोड देवै.

प्रमादा चरित—अर्थात् दिनकों सो जाना. दस शेर पानीसें स्नान किया जावै वैसा होवै तौभी ज्यादा पानी ढोला करै. फुरसद है तौभी ज्ञानाभ्यासमें आलस रक्खै. राजकथा-राजाओंके संबंधी कथा करै, देशकथा-देशावरोंकी कथा करै, स्त्री कथा-स्त्रीये संबंधी वातें करै, भक्त कथा-भोजन संबंधी वातें कहा करै, मगर अैसी कथाओंमें अच्छि बुरी विचारणा दर्शानेसें किसी वक्त वहुत नुकशान होता है, जैसे कि राजा वगैरः कि वात करता होवै और वो वात राजाके कानपर जा पहुंचे तो राजा दंड देवै; वास्ते श्रावक अैसी विकथायें न करै; क्यौं कि जो आत्माभावी है, अपने आत्मभावमैही रहता है, मात्र निरूपायसें संसारमैं रहा है उसकों वैसी वातोंसें क्यां मुतलब है ? यदि फुरसद मिल जाय तो अपना आत्मध्यान करै, वा शास्त्राभ्यास करै कि जिस्सें कल्यान होवै.

सामायिक व्रत—दो घडीका है, उसमै समता युक्त रहै, शास्त्राभ्यास करै, वा दो वक्त प्रतिक्रमण करै, और, उस व्रतमें जो जो पाप लगा होवै वो आलोये करै.

देशावगाशिक व्रत—अर्थात् चारों दिशाओंकी मर्यादा छठ्ठे व्रतमें की है, उसमैसें संकोच करै. वारव्रतकाभी संकोच करै. चौद नियमकाभी संकोच करै. ये संकोच करनेसें दिशावगासिक व्रत अलग करता है वो दो घडीसें लगा कर चार घडी, पहेर, दिवस, महीने तकका करै उस्सें वाह्यका आरंभादिकका त्याग हो जाता है.

पोषध व्रत—अर्थात् पोसह उपवास व्रत हमेशां न बन सकै तो ठीक, नहीं तो पर्वके दिन अवश्य करै कि जिस्सै अहोरात्री संयम जैसी प्रवृति होवै, आत्मा समभावमें रहै, रात्रिमै भूमिसंथारासें सो रहेवै–इत्यादि करणीसें शायद संयम लेनेकाभी भाव हो आवै तो अैसी आदतसें सुगमता प्राप्त होवै. पुनः अैसी करणीसें यहभी परीक्षा हो जाती है कि मेरेसें संयम पल सकता है या नहीं ? वास्ते महीनमै दो अष्टमी, दो-चतुर्दशि तथा पूर्णिमा अमावास्या किंवा दो अष्ठमी दो चतुर्दशि और पंचमी इन पांच पर्वोंके रोज अवश्य चार या अष्टपहेरका पोषध करै, और वोभी अहार पौषध सर्वथा करै तो असणं-पकाइ हुइ वस्तु, पाणं-पाणी, खाइमं-मिठाइ मेवा,

साइमं-तांबूल या औषध गुटिका चूर्ण वगैरः चारों आहारका त्याग करै. किंवा देशसें पौषध करै तौ फासुक पानी सिवा तीन आहारका त्याग करै, वा आंबिल, नीवी, एकासन करै. खरतर गच्छवाले आहारका पौषध सर्वथाही करना चाहियें अैसा कहते हैं; मगर तत्त्वार्थकी टीकामें तथा श्रावक पन्नति सूत्रमें सामायिक संयुक्त देशसें आहार पौषध करनेका कहा है. तथा पंचाशकजीमें पत्र ९, १० की अंदर आहार पौषधसें कहा है. दूसरा शरीरसत्कार पौषध तौ सर्वथाही करना, याने आभूषण जेवर वगैरः की शोभा कुछभी न करतें मुनिके समान बन जावै. श्रावकपन्नतिमें तथा तत्त्वार्थ वगैरः बहुतसे ग्रंथोंमें आभूषणका त्याग करकें पौषध करना कहा है. यहांपर कोइ शंका करेगा कि क्या सौभाग्यवंती स्त्री अपने हाथकी चूडी बंगडी कडे वगैरः सोनेकी चीजे उतारकर पौषध करै? इसके समाधानमें यही वचन है कि सौभाग्यवती स्त्री अपने सौभाग्यके चिन्हरूप जो जेवर होवै उसका कभी त्याग न करै-सौभाग्यचिन्हरूप दागीने या चूडी बंगडी तौ वैधव्यदशा होवै तबही उतर सकती है वास्ते अैसी चीजे उतारनेकी जरुरतही नहीं है; लेकिन सौभाग्यचिन्हरूप दागीनेसें ज्यादे दागीने पहेनकर पौषध करनेकी मर्यादा नहीं है. परंतु पुरुष तौ सर्वथा आभूषण त्यागके पौषध करै. कितनेक धनाढय ग्रहस्थ सामायिक लेनेके लिये गुरुजीके पास जाय तब बडे आडंबरसें जाय; मगर गुरुके पास जाकर सामायिक लेवै तब सब आभूषण उतारकर अपने खीजमतदारकों दे देवै और सामायिक पूर्ण हुवे बाद धारण कर लेवै-इस मुजब शरीरसत्कार पौषध करै. ब्रह्मचर्य पौषधमें सर्वथा मैथुनका त्याग करना अर्थात् मनुष्य देव तिर्यंचादि जातिकी स्त्रीका स्पर्श मात्रभी न करै. अव्यवहार पौषध अर्थात् सर्वथा प्रकारसें सावद्य प्रवृत्तिका त्याग करै याने हिंसा-झूठ-चोरी-मैथुन-परिग्रह ये पांचों संबंधीकी प्रवृत्ती सर्वथा प्रकारसें बंध करै. हांस्यादिककाभी त्याग करै. कुछभी पाप न लगै उस मुजब चारों प्रकारका त्याग करकें पौषध करै. और उसमें दो वक्त वस्त्रकी पडिलेहणा करै, त्रिकाल अष्टस्तुतियोंसें देववंदन करै, बाकीका वक्त स्वाध्याय ध्यानमें, काउस्सग्ग ध्यानमें या धर्मध्यानमें गुजारै. किंचित्भी प्रमाद विकथामें काल न गुजारै और हरप्रकारसें रागद्वेषकी प्रवृत्ती कम होवै वैसीही भावना भावै. संसारी भावनाका त्याग करै. यहांपर कोइ शंका करेगा कि भावना किस मुजब भावै? तौ उसका खुल्लासा अैसा है कि:—

श्रावक चार भावनासें युक्त बना रहै अर्थात् मैत्रिभावना, प्रमोदभावना, मध्यस्थभावना और करुणाभावना इन चारोंमें सदैव लीन रहै. मैत्रिभावना उसें कहेते हैं कि एकेंद्रिसें लगा कर पंचेंद्रि तकके सब जीवोंके ऊपर मित्र बुद्धि रख्खें; क्यौं कि सत्तामें सब जीव समान हैं; परंतु कर्मके वश या सबबसें अलग अलग जातिके होते हैं, वास्ते किसी जीवके ऊपर द्वेषभाव नहीं है. सब जीव सुखके अभिलाषि हैं, उससें तमाम जीवोंको सुखी करनेकी भावना-विचारणा अहोरात्र बनी रहै. अपनी शक्ति प्रमाणे सुख देवै, किसीके साथ वैर विरोध न रख्खे, एक पक्षी वैरसेंभी जीवकों वहोत भवतक दुःख भुक्तने पडते हैं; वास्ते किसीके साथ वैर न रखना. प्रमोदभावना उसें कहते हैं कि-मुनिमहाराज, साध्वी, श्रावक, श्राविकाकों देखतेंही हर्षित चित्त हो जावै. अैसे पुरुषके संयोगकी सदा इच्छा करै. किसी वक्तभी वियोग न होवै अैसीही भावना भावै. करुणाभावना उसें कहते है कि-सब जीवपर दयाभाव रख्खे. कोइ जीवकों दुःखी देखें उसकों सुखी करनेकी भावना रख्खे और सुखी करै, परंतु बेदरकार न रहै; क्यौं कि दुःख दूर करनेकी शक्ति है वास्ते दरकार रख्खे. दया करनेमें अपने धर्मवाला या परधर्मवाला है अैसीभी विचारणा न रख्खे, कोइभी दुःखी हो उसें सुखी करनेकी बुद्धि रख्खे. मध्यस्थभावना उसें कहते हैं कि-पापिष्ट जीवपर भी रागद्वेष न करै. राग करनेसें आते जन्ममें पापिष्टका संयोग प्राप्त होवै उससे धर्ममें विघ्न आ पडै. द्वेष करै तो वैरभावसें संयोग मिले और दुःख होवै; वास्ते पापिष्ट जीवकों समझा सकै अैसी शक्ति होवै तो समझा देवै और न समझे तोभी उसकेपर द्वेषभाव न ल्यावै,

पुनः बारह भावनायें है सो भावै. उसमें पहिली अनित्य भावना अर्थात् शरीर धन कुटुंब ये सब पदार्थ अनित्य-अस्थिर हैं. जहां तक ये वस्तु रहनेका संयोग बांधा है वहां तक रहेगा. ये वस्तु कायम रहनेकी नहीं है, तो अैसे अस्थिर पदार्थपर राग करना सो कर्मबंधनकाही कारण है. गत जन्मोंमें ये अनित्य पदार्थोंके ऊपर राग धारणा किया है उसीसें अनेक जन्म मरणके शरण हुवा. वास्ते हे चेतन! तुं सदैव नित्य है, तेरे स्वाभाविक गुणभी नित्य हैं, आत्माका सुखभी नित्य है, उसकों छोडकर ये अनित्य पुद्गलमें क्यौं निमग्न होता है? जितने सांसारिक सुख हैं उसमें उनके साथही दुःख रहे हैं. फिर कालांतरमें नरकादि दुःख रहे हैं; वास्ते पुद्गलिक जडपदार्थका संयोग वियोगमें

तुं तेरा स्वभाव छोडकर रागद्वेष करता है सो योग्य नहीं है. जहांतक अनित्य पदार्थकी अंदरसें रागद्वेष दूर नहीं हुवा है वहांतक नित्य सुख प्राप्त होनेकाही नहीं. वास्ते हे चेतन! नित्य सुख प्राप्त होवै वैसा उद्यम कर. इस मुजब अनित्य भावना भावै. दूसरी अशरण भावना इस तरह भावे कि-संसारमै कोइ शरणभूत नहीं है. जिन जिन कुटुंबके वास्ते मैं पाप करता हुं वो मेरे अकेलेकुंही भुक्तना पडेगा. दुःख भुक्तनेके वक्त कोईभी दुःखसें छुडानेहारे नही हैं. इस जन्ममें रोगादिक उत्पन्न होता है सो मैं अकेलाही भुक्तता हुं, उस वक्त कोइ दुःख लेनेमै समर्थ नहीं होते हैं. वैसेंही परजन्ममैभी दुःख पडेंगे उस वक्त कोइ शरणभूत नहीं होवैगे; वास्ते हे चेतन! तुं अज्ञानतासें कुटुंबके लिये अनेक पापारंभ करता है. वो वेमुनासिब है. तुं तेरे आत्मभावका विचार कर. ज्यौ वन सकै त्यौं जडभावका त्याग कर. वडे राजाओं जैसेंकोंभी दुःखसें कोइ छुडानेवाला नहीं है. नरककी अंदर विचित्र दुःख भुक्तना पडेगा. अैसा शोच करकें सव पदार्थ अनित्य है; लेकिन कोइ शरणभूत नही है. यौं निश्चयकर मोहमें दिग्मूढ न हो. तीसरी संसारभावना सो संसारमै सगे संबंधी जो मिले है वै सव सार्थेहि मिले हैं. जिसकों तुं मेरा है यौं मानता है वो तो उसका स्वार्थ पूरा होगा वहां तक प्यार रख्खेगा ओर जब स्वार्थ पूरा न होगा तब कोइभी तेरा होनेका नहीं. तुं मेरे मेरे करकें नाहक कर्मबंधन करता है; परंतु वो दुःख तेरेही भुक्तने पडेंगे. संसारी सुख है सो भ्रमित सुख है, वस्तुतासें कुछभी सुख नहीं हैं. सुख तो समभावमेंही है; वास्ते हे आत्मा! मोह करना युक्त नहीं है. एकत्वभावना इस तरह भावे कि-आत्मा अकेलाही आया है और अकेलाही जायगा. कुटुंबादिक कोइ संग नहीं आनेकाहै जडपदार्थपर मोह करता है वो सब दुःखके साधन है. जो जो दुःख पडते हैं वो पर पदार्थके विषे तुने मेरापणा मान लिया उसके फल हैं. वास्ते हे चेतन! एक आत्मस्वरूपके स्वभावमें रहना वोही मेरा काम है, अैसी भावना भावकर परवस्तु परसें मेरेपणेका राग दूर करै. अन्यत्वभावना उसें कहते हैं कि-छउं द्रव्य याने धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकासास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, काल और जीवास्तिकाय यह छउं द्रव्यमें जीवद्रव्य जो मेरा आत्मा उसका स्वभाव चेतन लक्षण है. वो लक्षण यह दूसरे पांच द्रव्यमें नहीं है; वास्ते मेरेसें ये न्यारे हैं. ये आकाशास्तिकाय द्रव्य है सो समस्त द्रव्यका भाजन है. उसमै मैं वास करता हुं; मगर उनका

स्वभाव अवकाश देनेका है वो देता है; परंतु मैं उससे न्यारा हुं. पुनः धर्मास्तिकाय है उसका जीव पुद्गल पदार्थ चलै उसें सहाय करनेका धर्म है. सो करता है. जैसें मच्छीयोंकों तिरनेकी शक्ति है मगर पांनी बिगर न तिर सकती हैं, वैसे जीव पुद्गलकों चलनेकी शक्ति है; लेकिन उसकी सहायता बिना न चल सके वास्ते उनका सहाय करनेका धर्म है सो करता है. परंतु मै ये धर्मास्तिकायसें भिन्न हुं. अधर्मास्तिकायकों स्थिर रहनेवालेकों सहाय करनेका धर्म है वो करता है. उसमैंभी मेरा स्वभाव नहीं. कालका नइ वस्तुकों पुरानी करनेका स्वभाव है, उसमैभी मेरा स्वभाव नहीं. पुद्गलका जडस्वभाव है. सडना, पडना विध्वंसनताका स्वभाव है वास्ते ये भी मेरेसें भिन्न हैं वास्ते मै ये पांचों द्रव्यसें अलग स्वभाववंत हुं तौभी अनादिकाल मैने अज्ञानतासें मेरापणा मान लिया उसे करकें अनेक जन्म मरणके दुःख सहन किये और मेरा स्वभाव भूल गयां. इस भवमै भाग्योदयसें जैनधर्म मिला उससें मैने वस्तु धर्म पहिचाना; वास्ते हे चेतन! अब तेरे ये द्रव्य अन्य समझकर उसमे लीन न होना—इस मुजब भावे. अशुचिभावना इसे कहते हैं कि—यह शरीर मलमूत्रसें भरा हुवा है. यदि उपरसें चमडा मढा हुवा न होता तौ महा भयदायक मालूम होता. पुनः शरीरमैंसें मलमूत्र वहन होता है वो मै हमेशां देखता हुं. यह शरीरके नव द्वार खुले हुवेही हैं उनमैसें दुर्गंध निकल रही है. स्त्रीके शरीरमै बारह छिद्र हैं उनमैसेंभी रातदिन अपवित्र वस्तु निकलतीही रहती है. ऐसे अशुचिमय शरीरमै प्यार करना सो केवल कर्मबंधनकारी कारण है और वो कर्मबंधसें ऐसे अशुचिमय स्थानमै पैदा होना होता है ऐसी अशुचि पिताका वीर्य और माताका रुधिर है और वोही शरीरोत्पत्तिका प्रथम बीज है. पीछेभी माता के शरीरमै दुर्गंधमय पुद्गल रहे हैं, उनमैसें ग्रहण करके शरीर बढता है; वास्ते हे चेतन! ऐसे अशुचि शरीरके वास्ते क्यौं मोह करता है! तुं तेरे आत्मिक सुखमै आनंद कर कि जिस्सें ऐसा अशुचि शरीर प्राप्त करना न पडे ऐसी भावना भावे. आश्रवभावना उसै कहते हैं कि—मेरा आत्मा चिदानंद मय है; लेकिन मिथ्यात्व अव्रत कषायके योगसें करके भवर्त्तता है उस्सें समय समयमै नये कर्म आते हैं उसीसें मेरा आत्मा मलीन हुवा जाता है. जितने जितने संसारी संबंध है उतने आश्रव आनेके कारण हैं. समय समयमै पुद्गलिक पदार्थपर राग करता है उससें कर्म बांधता है. कर्म बांधनेके बीजभूत रागद्वेषकी प्रकृति है वो प्रकृति होनेके

कारणभूत शरीर, पुत्र, स्त्री, धन, मकान, अहंकार ममकार ये पदार्थ हैं; वास्ते हे चेतन ! ये तुझे करने लायक नहीं है. पुनः पुनः यह मनुष्यजन्म मिलनेका नही है. भाग्योदयसें यह मनुष्यजन्म मिला है इस लिये ज्यौं बन सकै त्यौं आश्रवकी प्रकृति बंध कर दे जिस्सें कर्मबंध न होवे. [यह मिथ्यादिकका विचार प्रश्न ९१ के जवाबमें हैं वास्ते वो पाठ देख लैना.] संवरभावना याने जो समय समयमें कर्म आते हैं वो समभावसें रुक जाय वास्ते हे चेतन ! तुं समभावमें रहै. समभावकों आनेकें ५७ सबब हैं उन ५७ के सेवनसें संवरभाव होवैगा. पांच सामिति, तीन गुप्ति, बाइस परिसह, दस विध यतिधर्म, बारह भावना और पांच चारित्र यह ५७ के सेवनेसें आते हुवे कर्म रुक जाते हैं; वास्ते हे चेतन ! तुं संवरके कारण अंगीकार कर ले कि जिस्सें कर्म आ न सकैं. जब तक संवरभावना नहि करेगा तब तक आत्माका कार्य सिद्ध होनेका नहीं है, और भवभ्रमणाभी मिटनेकी नहीं, इस लिये हरप्रकारसें संवरभाव कर. इस मुजब संवरभावना भावे. निर्जराभावना इस तरह भावे कि-पूर्वके कर्मोंकी निर्जरा करनेकों भावै. अकाम निर्जरा तौ समय समयमें जो जो कार्य भुक्ते जाते हैं वो वो समयमें बनती हैं; मगर उसमें आत्मा निरावरण नहीं होता है; क्यों कि निरावरण आत्मा करनेकी इच्छा नहीं है. स्वपर उपयोग नहीं है. परभावमें आसक्तता है उससें पीछे नये कर्म बंधेजाते हैं; वास्ते हे चेतन! तुं कर्म क्षय करनेकों तत्पर हो, जो जो कर्म उदय होवै वो वो समभावसें भुक्त ले तौ सकाम निर्जरा होवै. पुनः उदय नहीं हुवे है उनकों क्षय करनेके वास्तै बारह प्रकारसें इच्छा रोधरूप समभाव युक्त तप कर कि उससें कर्मक्षय हो जावै. अनशन सो नवकारसी, पोरसी, साढ पोरसी, पुरिमड्ढ, अवड्ढ, एकासणा, बेसणा, नीवी, आयंबिल, उपवास, छट्ठ, अट्ठम, आदि तपश्चर्या करं कि उससें मेरे कर्मकी निर्जरा होवे और आत्मा निर्मल होवे. उनोदरी तप अर्थात् खानेकों खुराक चाहिये उतना नहीं, मगर उससें कुछ कम खाना उसें उनोदरी तप कहा जाता हैं. वस्त्राभूषण कम वापरे उसें वृत्तिसंक्षेप कहते हैं, वो मुनि अभिग्रह धारण करते हैं वैसे श्रावक चौदह नियम धारण करते है सो करना. रसत्याग याने छउं विगयोंका त्याग करना, कायक्लेश अर्थात् शरीरकों कष्ट देना. मुनि लोच करते हैं. सूर्यका आतापना वगैरः लेते हैं, वो भावना भावै. सलीनता अर्थात् अंगोपांग संकोच कर सोवे. इंद्रियें और कषायकों वश्य रक्खे. यह

छउं बाह्य प्रकारके तप कहे जाते हैं. अब छ अभ्यंतर तपका संक्षेप स्वरूप कहते हैं: प्रायश्चित याने जो जो दूषण लगे हैं उसका गुरुके आगे प्रायश्चित लेना. विनय अर्थात् देव गुरु ज्ञानका विनय करना और उन्होंका वयावच्च करना. सज्जझाय अर्थात् वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा यह पांच प्रकारसें स्वाध्याय ध्यान करै. काउस्सग्ग याने कायाको एक जगह रखकर हाथ पाउं हिलानेका बंधकर-स्थिर उपयोग करकें जिनगुणग्राम अंतरंगमें करना; और ध्यान अर्थात् धर्मध्यान, शुक्लध्यावे-येह छ प्रकारके अभ्यंतर तप है; क्यों कि ये तप किसीके देखनेमें नहीं आते हैं जिस्सें आभ्यंतर कहे गये है. यह बारह प्रकारके तप समभावसे करुंगा तो मेरे पूर्वके किये हुवे कर्मकी निर्जरा हो जायगी ऐसी भावना भावे. लोकस्वरुप भावना यानी चौदह राजलोक है, उसमे उर्द्ध-उचा, अधो-नीचा, तिर्च्छा-ये अपन रहते हैं वही ये तीन लोक रहे हैं उसमै सात राज हैं, उसके भीतर नारकीकेजीवकों रहेनेका स्थानक है, और कितनेक जगह भुवनपति, व्यंतरके देव रहे है. तिर्च्छे लोकमै मनुष्य हैं, तथा तिर्यंच और व्यंतरके स्थान हैं. ऊपरके सातराजमै ज्योतिषि तथा विमानवासी देव रहते हैं. उनके ऊपर सिद्ध महाराज हैं और ऊनपर अलोक है. यह चोदराजलोक हैं. यह चौदराजलोक जेसें कोइ मनुष्य जामा पहेनकर दोनु हाथ दोनु बाजू कम्मरपर हाथ रखकर खडा रहा होवे उस आकृतिका चोडाइ,लंबाइसें रहा है, और उसमै मेरा जीव अज्ञानपणेसें भ्रमण किये करता है वो अज्ञानताकेही फल हैं; वास्ते हे चेतन! अब कुछ ज्ञानदशा प्रगट करके परवस्तु परसै मोह छोड दे कि जिस्सें तेरा स्वाभाविक गुण प्रकट होवे और सिद्धमें निवास होवे. इत्यादि विस्तारवंत स्वरूप शास्त्रमें कहा गया है सो भावे. बोधबीज-समकित भावना अर्थात् जीव समकित नही पाया उससें अनेक जन्ममरण पाया. वस्तुकों अवस्तुपणेसें मान ली. और अभी मनुष्य जन्म पाया है. वीतरागभाषित शास्त्रका योगभी मिला है; वास्ते वो गुरुमहाराजके द्वारा श्रवण करकें यथार्थ वस्तुधर्म समझकर-तत्त्वातत्त्वका विचार कर, जैसा जो पदार्थ है उसकी श्रद्धा कर कि सहजसें जडपदार्थपर जो तेरा प्यार बंधा हुवा रहा है वो उतर जावे और सहजसें आत्मस्वभावमें प्रीति होवे. आत्माकों आत्माकी रीतिसें जाने बिगर अकेली व्यवहार क्रिया जोवन वहोत वक्त की उससें पुद्गलिक सुख मिले; मगर आत्मिक सुख न मिला; वास्ते हे चेतन! अब औसर प्राप्त हुवा है इस लिये बोधबीज-समकित

प्राप्त कर कि जिस्सें सब करणी गिनतीमें आवै और भवचक्रका भ्रमण दूर हो जावै, अैसा यत्न कर. प्रथम ज्यौं बन सकै त्यौं धनकी उपाधी छोड दे. इस मुजब बोधिबीज भावना भावै. बाहवी धर्म भावना इस तरह भावै कि वीतरागकथित धर्म मिलना दुर्लभ है. रागीद्वेपीके कहे हुवे धर्मसें आत्मकार्य हुवाही नहीं और होनेकाभी नहीं. तीर्थंकर देव हैं सो रागद्वेषें रहित हैं, उनके कहे हुवे धर्मसें वीतरागता जाहेर होती है; वास्ते अैसे वीतरागके धर्मकी योगवाइ मिलनी मुस्कील है. वो भाग्योदयसें मिली है तो अब प्रमाद छोडकर जिस यत्नसें रागद्वेषकी प्रकृति कमी होवै और आत्माका शुद्ध स्वरूप प्रकट होवै वैसा यत्न कर. अव्वलमें ज्यौं बन सकै त्यौं उपाधि छोड दे, धनकी विषयकी वांछना छोडकर निर्वाहके जितनी प्रवृत्ति कर कि तुजे अवकाशका वक्त हाथ लगै. अवकाश मिले उस वक्त एकांतमें बैठकर सब उपाधियोंसें मनकों दूर करकें तेरे आत्माका विंचार कर कि-'हे चेतन! तेरा क्या स्वभाव है? और रात दिन क्या प्रवृत्ति कर रहा है? तुं जडप्रवृत्ति करता है; वास्ते समय समयमें नये कर्म आते हैं. और जो जो जडप्रवृत्ति है वो मेरी नहीं, मेरा तो जाननेका स्वभाव है, तो जो जो क्रिया पुद्‌गल संगसें होती है उससें मुजकों दुःख हुवा, सुख हुवा, अैसे विचार किसलिये किये करता है? तेरा सुख तो सहज स्वभाविक है. कृत्रिम सुख हैं वो जाता रहेगा और स्वभाविक सुख प्रकट हुवा वो तो जानेका नही है. इत्यादि आत्माका तथा जडस्वरूपका विचार करेगा और उसमें स्थिर हो जावैगा तो आत्मामें अपूर्व ज्ञान प्रकट होयगा, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माकों सुखका अनुभव होयगा. तो पीछे जडप्रवृत्तिपर हे चेतन! तेरा राग है सो रहेनेका नहीं वास्ते हरएक प्रकारसें निरुपाधिवंत हुआ जावै अैसा उद्यम कर. फिरसें यह जोगवाइ मिलनेकी नहीं है.' इस मुजब धर्म भावना भावै.

यह बारह भावनाका स्वरूप नाम मात्रस मैंने मेरी अल्पबुद्धि मुजब लिखा है, विस्तारसें पूर्वाचार्योंनें बहुत प्रकारसें लिखा है और वर्त्तमान कालमेंभी आत्मारामजी महाराज उर्फे विजयानंदसूरी महाराजनें बहुत ग्रंथ और भावनाओंकी रचना की है, वो देखकर या सुनकर भावनाका दिल हो आवै उस लिये मैने लिखी है.

श्रावक पौपधमें अैसी भावनाए भावै. अैसी भावनाअें भावै उस्सें धर्मध्यानमें भी आ जावै; वास्ते पौषध करकें बन सकै तो धर्मध्यान करै. परंतु वो शक्ति श्रावक

कों प्राप्त होनीही मुश्कील है; संबवं कि हरिभद्रसूरी महाराजने श्रावककों धर्मध्यानकी भजना कही है, उसका परमार्थ ऐसा मालूम होता है-बारह भावना वगैरः भावे उसमें वक्तपर ध्यान आ जावे; मगर ज्यादे वक्त तो भावनामेंही जाता है वास्ते पौषधमें भावना भावे, और वो न बन सके तो स्वाध्याय ध्यान करे, आप नया पढे, या पूर्वकालमें पढा होवे सो याद करे, या ज्ञानका बोध फैलानेके लिये प्रश्नोत्तर करे, या वृद्ध श्रावक शास्त्र पढे और दूसरे सुनै इस तरह पोषधकाल पूर्ण करे; लेकिन पोषध लेकर सज्झाय ध्यानादिकमें तो कुछभी उद्यम न करे, वहां निद्रा करे वा विकथा करे तो पोषधमें बडा दूषण लगे वास्ते गुणस्थानकी प्रवृत्तिवाला जीव तो प्रमाद विकथा छोडकर अपने आत्मतत्वकों प्रकट करनेका प्रयत्न करे, इस मुजब पोषध व्रत वो आत्माकों आत्मस्वभावकी पुष्टि करनी; वास्ते आत्माकी पुष्टि होवे उस तरह पौषधमें प्रवर्तन रख्खे. बारहवा आतिथि संविभाग व्रत उसे कहते है कि पौषधके पारणेके दिन एकासन व्रत करे. पीछे अपने वहां जो रसवती तैयार हुइ होवे उसमेंसे मुनिमहाराजकों देनेके लिये मुनि महाराजकी खोजना करे. भाग्योदयसें मुनि महाराजकी योगवाइ मिल जावे तो मुनि महाराजकों बुलालाकर जो जो वस्तुकी मुनिमहाराजकों दरकार हो वो वो वस्तु देवे और जो वस्तु मुनि महाराजनें अंगीकार की हो उसका शेष रहा होवे उसी वस्तुका आप भोजन कर एकासन व्रत करे. किंवा ऐसा अभिग्रह होवे कि जो कुछ वस्तु मुनिराज लेवे वही वस्तुका शेष भाग अपने निर्वाहके लिये भासन करे. इस मुजब पौषधके पारणेके दिन आतिथि संविभाग करे, अथवा अतिथि जो मुनिराज उनकों हमेशां आहार पानी देनेकी भावना रख्खे और जब जोग मिल जावे तब जो जो चीजे मुनिराज मागें वो वो चीज घरमें होवे तो बहुत भावसहित देवे. मुनिराजकों अन्नजल देनेसें बहुतसे प्राणी भव भ्रमणाके पार पहुंच गये हैं. सुबाहुकुमार प्रमुखका अधिकार विपाकसूत्रमें है वो सुनोंगे तो मुनिने प्रतिलाभनेका लाभ क्या है वो मालूम होयगा.

इस मुजब श्रावकके बारह व्रत व्यवहार निश्चयसें हैं और अपने स्वभावमें रहनेकी भावना रहती है; मगर पूर्वकर्मकी प्रबलतासें संयम नहीं लिया जाता है उसीसें संसारमें रहा है तोभी सब जीवोंकों मित्रवत् जानता है. अपना निर्वाह करनेमें कुछ हिंसा होती है उस संबंधीभी रात दिन बहुतही दिलगीरी रहती है; लेकिन ऐसा नहीं

शोचै कि अपन कुछ साधु नहीं है, अपन श्रावक हैं उससें सब दरवज्जे खुल्ले हैं, वास्ते अपने वहां तो किंचित्‌भी जीव हिंसा होभी जाती है. ऐसा विचार करनेसें निध्वंस परिणाम होते हैं वो न करें. जो जो काम करै वो लाचारीसें करै. जैसें कोइ मनुष्यकों दरद हुवा होवे तो वो औषध खाता है. वो औषध अच्छा नहीं लगता है; मगर जहां तक रोग है वहां तक खुशीसें औषध खाता है, तौभी भावना यह है कि कब मेरा दरद दूर हो जाय और औषध खाना न पडै, वैसेंही यह शोचता है कि मै कब संसारसें विमुक्त हो जाउं के यह सब संसारी भोगादिक छूट जाय; ऐसी भावनासें श्रावक प्रवर्त्ते. यह बारह व्रतोंमे कोइ अतिचार लगे या लगा होवे वो पापकों निंदे. और हमशां दो वक्त पडिक्कमण करें. (उस्का सविस्तर अधिकार आवश्यकके अर्थसें अति चार तथा विधि जान ले कर उस मुजब करना.)

छठ्ठा सर्वविरति वा प्रमाद गुणस्थानक अर्थात् यह गुणस्थानकमे मुनिराज मग्न रहते हैं, उनकों प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ यह चारों प्रकृति उदयसें नष्ट हो जाती हैं, उससें उनके रागद्वेषकी परिणती कम होती है और आत्मा शुद्ध होता है उसके लियेसें संसारके उपरसें राग छूट जाता है, शरीरकी ममताभी छूट जाती है, तब व्यवहारसें पांचों महाव्रत अंगीकार करते हैं यानी प्राणातिपात विरमण व्रत अर्थात् त्रस तथा स्थावर जीवकी हिंसाका त्याग करते है. सब जीवकों मित्रवत्, समझकर किसीभी जीवकों दुःख न होवे वैसे काम नहीं करते हैं.

मृषावाद विरमणव्रत सो सर्वथा झूंठ बोलनेका त्याग करते है. और आप झूंठ नहीं बोलते हैं अगर झूंठ बोलता है उसकी प्रशंसाभी नही करते हैं.

अदत्तादान विरमणव्रत सो किसीकी कुछभी चीज दिये विगर नहीं लेवै. मार्गमे पडी हुइ धूलभी मंजूरी मिले विगर नहीं उठावै. इस अदत्तादानके चार प्रकार हैं याने जीवअदत्त सो कोइ जीवने कहा नहीं कि मुझे मारो, उससें किसीभी जीवकों नहीं मारते हैं और जो मारते हैं उनकों जीव अदत्तका पाप लगता है. स्वामी अदत्त-जिस वस्तुका जो मालिक है उस मालिकके दिये विगरकी चीज कुछभी न लेवै. और लेवै तो स्वामीअदत्तका पाप लगता है. गुरु अदत्त-गुरुमहाराजनें जो जो आहारादि चीजे करनेकी आज्ञा नहीं दी है तौभी वो वस्तु खावे या उपयोगमे लेवै या वर्त्तना करै तो गुरुअदत्तका पाप लगता है, उससें गुरुमहाराजकी आज्ञा मिले विगर कुछभी व-

सेवें न करै. तीर्थंकर अदत्त-परमात्माने जो जो आज्ञा दी है वो आज्ञासें विरुद्ध आचरण करना उसें तीर्थंकर अदत्त कहते हैं. वास्ते धर्मकों सहायकारी आहार वस्त्र पात्र रहेनेका मकान आदि जो जो निर्दोष वस्तु याने आपने न करवाइ है न की है और न गृहस्थनें मुनिके लिये करवाइ है अपने लियेही बनाइ है. और वो वस्तु वर्त्तमानमें अभक्ष नहीं है उससें प्रभुजीनें लेनेको आज्ञा की है वही वस्तु लेवै. इस मुजब चार तरहका अदत्तदान विरमणव्रत मुनि पालै.

मैथुन विरमणव्रत सो देवकी स्त्री, मनुष्यकी स्त्री, तीर्यंचकी स्त्री अर्थात् इन्होंकी कोइभी स्त्रीके साथ मैथुन सेवनेका और स्त्रीकों छूनेकाभी त्याग करै.

परिग्रह विरमण व्रत याने धन, धान्य, जमीन, मकान, राछरछीला, चांदी सुना, कुप्यधातु, मनुष्य, जानवर यह नौ प्रकारका परिग्रहका जिसने त्याग किया है, कोडी मात्रभी जिसकों नहीं रखनी है. इस मुजब सब तरहका परिग्रह छोड देवै. मात्र शरीर ढांकनेके वास्ते वस्त्र पात्र सिवा कुछभी आहार आते दिनके लिये रख छोडनेका नहीं है. इस तरह कोइभी वस्तुकी इच्छा नहीं है उससें परिग्रहका त्याग करते हैं. परिग्रह पापकाही बीज है.

इस मुजब पांचों अव्रत, मन वचन कायासें करकें सेवे नहीं, सेवरावेभी नहीं और सेवै उस्कों अनुमोदेभी नहीं. इस तरह पांच अव्रतका त्याग करकें पंच महाव्रत आदरते है और सदाकाळ ज्ञानका अभ्यास कर रहे हैं. यत्किंचित्भी विकथा आलस निद्रामें वकत नहीं गुजारते है. ज्ञानका अभ्यास करते हैं. वोभी मान महत्त्वताके लिये नहीं लेकिन अपना आत्मस्वरूप प्रकट करनेके वास्तेही फकत उद्यम करते हैं. हमेशां भावना तो समभावकीही बनी हुइ रहती है. कोइभी पुद्गल भावमें ममता नहीं है. निरंतर आत्मभावना भावनेमेंही मस्त रहे हैं. लेकिन पांच प्रमाद दूर नहीं हुवे हैं, उससें प्रमाद गुणठाणा कहा जाता हैं. सातवा अप्रमाद गुणठाणा है. यह गुणठाणेसें पांच प्रमादका नाश होता है. याने प्रमाद-मद-मदिरा तथा अष्टमद अर्थात् जातिकामद, कुलकामद, बलकामद, रुपकामद, अधिकारकामद, ठकुराइकामद, तपकामद, ज्ञानका मद यह आठ मद-गर्व हैं. विषय-पांच इंद्रीओंके तेइश विषय है. अर्थात् स्पर्शेद्रि-शरीरके आठ विषय है. हलका, भारी, रुखा, स्निग्ध, कोमल, खरसठ-करारा, ठंडा, गरम ये आठ है. हलका सो हलका वस्त्र वगैरः चीज मिलै; मगर नापसंद होवै तो

दिलगीर, और पसंद हांवै तौ खुश होना. भारीमें भारी चीज मिलनेसें राजी या दिलगीर होना. रुखी वस्तुकी प्राप्तिसें राजी या दिलगीर होना. स्निग्ध पदार्थमैंभी राजी या दिलगीरं होना. सुकोमल और असुकोमल, ठंडा तथा गरम ये पदार्थ पसंदगीकी मुजब मिलै तो राजी ओर नापसंदगी मुजब मिलनेसें नाराजी होना, ये स्पर्शेंदियके विषय हैं. रसेंद्रि–जीभ के पांच विषय हैं याने चरपरा, कटुक, कशायल, खट्टा और मीठा–ये पांच रस हैं. खारा रस तो सब रसोंकी अंदर होताही हैं इस लिये अलग नही बतलाया गया है. यह पांचों रसमें जो जो रस मिला उसमै मुनिराज दिलगीर नहीं होते हैं. जिस वक्त जो रस मिला वो समभावसें खाते हैं ओर यह पांचों रसोंके स्वादमें जो अनुकूल हौवै उसकी अंदर राग–भिती ओर प्रतिकूलमें द्वेष वो विषय कहा है. घ्राणेंद्रेय–नाक उनके सुरभी गंध और दुरभिगंध ये दो विषय है. अच्छी सुगंधीसें भीति और दुर्गंधिसें अभीति बतलानी. चक्षुइंद्रियके पांच विषय हैं अर्थात् सुरख, सफेद, पीला, हरा और काला ये पांच हैं. उसमे जो रंग अनुकूल होवै उसके मिलनेसें राग और प्रतिकूल मिलनेसें द्वेष करना सो विषय कहा जाता है. श्रोत्र इंद्रियके तीन विषय याने सचित्त शब्द अर्थात् स्त्री पुरुषका शब्द, अचित शब्द नगारे ढोल वगैरः का शब्द, और मिश्र शब्द–मृदंगादिकका है, उसमें जिसका शब्द प्रिय होवै उसपर राग और अप्रियपर द्वेष करना सो विषय कहा जावै–इस तरह पांचों इंद्रियोंके तेइस (२३) विषय हैं. उसमेंसें जो अनुकूल मिलै उसमै मुनि वो वस्तुका वस्तुधर्म जानते है और जिस वक्त जो मिला उससें अपने शरीरको आधार देते हैं; लेकिन उसमै यह अच्छा यह बुरा है ऐसा मान कर खुश नहीं होते है और दिलगीरभी नहीं होते हैं. मुनि महाराज तौ आप खुद कर्मका क्षय करनेके वास्ते तत्पर हुए हैं. आपके पास कुछभी पैसा तो रखतेही नहीं हैं उससें खरीद करना हैही नही. और आपके हाथसें आहारादिक बनाने भी नहीं हैं. गृहस्थके वहांसें जिस वक्त जो चीज मिल जावै उससेंही संतोष मान कर आनंदमें रहते हैं; मगर खुशी या दिलगीरी नहीं होते हैं. इस तरह तेइस विषय त्याग कर दिये हैं, बारह कषाय थे सो तो चले गये हैं. और चार जो संजलके रहे हैं वे भी पतले पड गये हैं. चार विकथायेभी त्याग दी हैं. निद्रा कि जिसका स्वरुप मोहनी कर्ममें कहा गया है वो निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, और थिणद्धी ये तीन् चलो जाती है.

इस तरह पांच प्रमादका नाश होनेसें अप्रमाद गुणठाणा कहा जाता है. यह गुणस्थानकमे आत्म विशुद्धि ज्यादे होती है. मगर छठ्ठे और सातवे गुणस्थानकका काल अंतर्मुहूर्त्तका है. सो फिर पिछे गिरकर छठ्ठे जाता है फिर सातवे आता है-ऐसें अध्यवसायमे फेरफार हुए करता है और गुणस्थानमेभी इसी सबबसें फेरफार होता रहता है. उसमेभी सातवे गुणठाणेका अंतर्मुहूर्त्त लघु है और छठ्ठेका अंतर्मुहूर्त्त वडा है, इस सबबसें इतना अंतर पडता है. पूरे आयुष् तकमे सातवे रहेका काल इकठ्ठा कर लेवै तो दो घडीमे कुछ कम जितना काल होता है; लेकिन इस्सें ज्यादा काल नहीं और छठ्ठेका बाकी सब काल होता है. यह अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके २७२ पानेमे है. अप्रमाद गुणठाणेका ज्यादा अधिकार कर्मग्रंथसें समझ लेना. यह विशुद्ध भावका स्थानक है. इस गुणठाणेमे धर्म ध्यानकी अंदर ज्यादा काल व्यतीत होता है और वो धर्मध्यानके चार प्रकार है अर्थात् प्रथम पाद आज्ञाविचय याने परमात्माकी आज्ञाका ध्यान करै. परमात्माकी आज्ञा कैसी है? अविच्छिन्न है. फिर परमात्माके वचन कैसे है? निराबाध है! किसी प्रकारके दोष नही. आत्माकी सत्ता अनंत ज्ञानमय, अनंत दर्शनमय, अनंत चारित्रमय, अनंत तपमय और अनंत उपभोगमय है. ये आत्माकी सत्ता है वो स्वरूपमे रहना यह आज्ञा है. इस तरह प्रथम पादमें ध्यान करै. दूसरे अपायविचय पादमें ऐसा ध्यान करै कि जो अनंत ज्ञानमय आत्मा सो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग यह चारों कारणोंसें ढका गया है. वो यह जडमें जड जैसी प्रकृति कर रहा है; मगर चेतन! तेरा स्वभाव नही. धन स्त्री पुत्र परिवारको देखकर मेरे मेरे कर रहा है, उनके संयोगसें राजी होता है और वियोगसें दिलगीर होता है. यह बुद्धि, अनादिके पुद्गलका संयोग बना हुवा है उनके प्रभावसें हुवा करती है; लेकिन चेतन! ये तेरे करने लायक नहीं है. आज तक तो अज्ञानता थी उस्सें मेरा क्या है? और पराया क्या है? वो ज्ञान न था. अब हे चेतन! भाग्योदयसें जैनशासन मिला है. जिसमे आत्माका स्वरूप-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्य. अजर, अमर, अक्षय, अविनाशी, अशरीरी, अगम, अक्रोधी, अमानी, अलोभी, अमायी, अवेदी, अभेदी, अछेदी, अइंद्री, अनाहारी, अकामी, अविषयी, अगंधी, अवर्णी, अरसी, अस्पर्शी, अगोचर, अनूपम, न संज्ञी, न असंज्ञी, न अपर्याप्ता, न पर्याप्ता. न रागी, न द्वेषी, न बाल, न युवान, न वृद्ध, न स्त्री, न पुरुष,

न नपुंषक, सच्चिदानंदमय, और सहज सुखमय अैसा आत्माका स्वरूप है; मगर पर संगके सबबसें कुबुद्धि प्राप्त होनेसें जड वस्तुका रागी हो हे चेतन! तुने अनेक दुःख सहन किये. वर्त्तमान कालमेंभी चेतन! जो जो सुख मानता है वो सुख कथन मात्रही है. चेतन! तुं जो जो वस्तुके संसारी सुखकों सुख मानता है; मगर वो काम तपास कर देखेगा तो मालूम हो जायगा कि क्या क्या दुःख है? पुनः भवांतरमें नरकादिकके दुःख यह शरीरकी संगतीसें बहुत सहन किये हैं; वास्ते अब हे चेतन! तुं तेरा स्वरूप विचार कर तेरे आत्मिक सुखमें मग्न रहै, और पर संगसें कर्म बांधे जाते है. सो शोच. तीसरा पाद विपाकविचय धर्मध्यान है उसमें शोच करै कि जीवने पर संगसें आठ कर्म बांधे उनकी १५८ प्रकृतियें है (और उनका स्वरूप आठ कर्मके स्वरूपमें लिखा गया है वास्ते वहांसें पढकर माहितगारी मिला लेवै.) उसका बंध, जिस वक्त जैसे जैसे अध्यवसाय होवै, वैसें कर्मका बांधना. उसका उदय, नही हुवा है वहांतक रहेना सो सत्ता, पीछे उदय होवें तब सुख दुःख भुक्तनेम आवै. सो उदय कहा जावै. यह बंध चार प्रकारका है याने प्रकृति बंध–कर्मका शुभाशुभ स्वभाव, स्थितिबंध–कर्म कितने काल तक भुक्तना पडेगा? उसका मान, रसबंध–कर्म तीव्र मंद जैसा भुक्तनेका होवै वैसा रस होवै, प्रदेश बंध–कर्मके दलका मिलना. यह जब जीव कर्म बांधता है तो जिस वक्त जो अध्यवसाय वर्त्तता हो वैसाही कर्म बांधता है. उसका उदयकाल प्राप्त होता है, तब दुःख भुक्तने पडते हैं. आत्माकी ज्ञानशक्ति अनंत है; मगर कर्मके योगसें आच्छादित हो गइ है; वास्ते हे चेतन! जो जो सुख दुःख आते हैं उसमै तुं रागद्वेष मत कर. रागद्वेष करनेसेंही यह कर्म बांधे गये हैं और यह जन्म मरण रोगादिकके विचित्र दुःख भुक्तने पडते हैं. इसलिये हे चेतन! जो जो कर्मविपाक उदय आये हैं वै वै कर्मके स्वभाव है वैसा बनता है. तेरा स्वभाव तो देखने जाननेका है सो जान ले, किंतु अज्ञानतासें अनादिकालका अभ्यास पडा है उस्सें मुझे दुःख होता है–पीडा होती है अैसा करता है सो अब तुं मत कर. अब तो तुं तेरे स्वरूपका विचार कर और समभावसें रहै यही तेरा धर्म है. तुं समभावसें रहेगा उस्सें रागद्वेषमय प्रकृति नहीं बनेगी, इससें सहजसें यह कर्म क्षय हो जायगा. आज दिन तक तुं तेरे स्वभावकों नहीं जानता था. अब तेरा स्वभाव तुने जान लिया है तौभी ये जडप्रकृतिमें किसलिये सपडाता है? अैसा यह तीसरे पादसें

ध्यान करै. चौथा संस्थानविचय धर्मध्यान है—उसमै चौद राजलोकका स्वरूप शोचै. चौदह राजलोकमै जो जो पदार्थ जिस मुजब रहे हैं उसकों शोचै. षट् द्रव्य रहे है उनकाभी शोच करै. षट्द्रव्यका स्वरूप विचार ले, उस बाद आत्माके द्रव्य साथ दूसरे द्रव्यका स्वरूप विचारै कि जो जो गुण आत्मामें हैं वो दूसरे द्रव्यमें नहीं हैं, सो हे चेतन! किस सबबसें ये द्रव्यमें मेरापणा मानता है? असा शोच कर अपने स्वरूपमें लीन होता है. मन वचन कायाभी वही स्वरूपमें स्थिर हो जाता है. अनुभवज्ञान स्वाभाविकतासें प्रकट होता है. यह ज्ञान प्रकट होवै वो अनुभवज्ञानका सुख जानै. ये सुख किसीसें कहा नहीं जाता है. अपने आत्मतत्त्वमें एकाग्रता होनेसें आनंद होता है. वो आनंदका सुख ध्यानसें चलायमान होता है; तोभी कितनीक मुद्दत तक रहता है. वास्ते हे चेतन! तुं तेरे स्वाभाविक सुखमें मग्न रहेवै तो तेरे रहनेका स्थान लोकाग्रमें सिद्ध स्थान है वहां होगा. इत्यादि चतुर्थपादमें ध्यान करै. यह चारों पादमें स्वरूप विचार लिखा है वो चिंतवन रूप है, और ध्यान तो मन वचनकी एकाग्रतासें अपूर्वज्ञान स्वाभाविक होवै वही कहा जाता है. असा कहे उसका समझना कि ध्यानमें श्रुतज्ञानके बलसें प्रथम तो चिंतवन करै और पीछे स्वाभाविक होवै वास्ते चिंतवन करनेसेंही ध्यान होता है. इस मुजब सातवे गुणठाणेमें ध्यानादिककी अंदर वर्त्तन रख्खे.

आठवा अपूर्व-गुणस्थानक है. यह गुणठाणेमें आगे नहीं आये हुवे भाव प्राप्त होते हैं. यह गुणठाणा उपशम भावसें होता है. उनकी प्रकृति उपशम पाती है और क्षायकभावसें ये गुणठाणा होता है. वो सत्ता बंध उदयसें क्षय किये जाते हैं. क्षायक भाववाले तो चढकर केवलज्ञानही पाते है और उपशमवाला तो एकादशवे गुणठाणे तक चढकर पीछे पड जाते हैं. पीछे पुनः क्षायकभाव प्रगटे और चढे वो पडै नहीं. ये आठवे गुणठाणे समकित मोहनीका उदय न होवै; सबब कि सातवे गुणठाणेके अंत तक उसका नाश हो जाता है तब यह गुणठाणा प्रगट होता है. ये गुणठाणेमें शुक्ल ध्यान प्रकट होता है; अव्वलमें तो शुक्लध्यानके बलसें विचार करता है; मगर पीछे स्वाभाविक ज्ञान प्रकट होता है, उससें करके ध्यान करै. भेदज्ञान प्रकट कहेता है. यह गुणस्थानमें अनुभवज्ञान प्रकट होता है सो सूर्य उदय होनेके पेस्तर जैसे अरुणोदय हो उद्योत होता है, वैसे केवलज्ञान रूप उद्योत होनेका है उसका

अव्वलही प्रकाश होता है. यह गुणठाणेमें केवल सहज ध्यान है. कृत्रिम हठादिक ध्यान नहीं है. ये गुणठाणेका सुख तथा ज्ञान जिसकों होता है वोही जाने. महा अद्भुत विशुद्धि है. ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय ये कर्मउदय रहे हैं; मगर उनके रस नास होते जाते हैं. मोहनीकर्मकी १३ प्रकृतिये रही हुइ होती है; लेकिन वै बहुतही रसरहित हो गइ होती हैं. अति विशुद्ध अध्यवसाय हुवे हैं. जड चेतनका केवल विभाग करते हुवे चले जाते है. शुक्ल ध्यानका प्रथम पाद पृथक्त्ववितर्क सप्रविचार नामक ध्यानमै ध्याते है.

नवम अनुवृत्ति वादर गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें अतिशय विशुद्ध अध्यवसाय होते हैं. आठवेके अंतमै हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा, यह छउं प्रकृतियोंका अंत हो जाता है. यह गुणठाणेमें ये छउं प्रकृतियोंका उदय नहीं है. यहांपर शंका होगी कि आठवा गुणठाणा पाया वहां उसकी प्रकृत्तिथी उस विषयमै यह समाधान है कि लोककी रीतिके तो छट्ठे गुणठाणेसें निकल गये हैं; लेकिन आत्माके गुणस्वाभाविक प्रकट होते हैं वो देखकर हर्ष होता है, वो रुप हास्य तथा रति है. तथा अरति परभाव पर है. भयभी अपने भाव चलायमान होवै उसका है. शोकभी कर्मसें आत्मा मलीन हुवा उसका है. दुगंछाभी स्वाभाविक परपरिणती की है. यह षट् स्वाभाविक है. इसका ज्यादे विस्तारपूर्वक स्वरुप विचारसारकी टीकामें किया गया है. यह नवम गुणस्थानकके अंतमें संज्वलन क्रोध, मान, माया, और स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंषकवेद-इन्होंका अंत होता है, तब दशम गुणस्थानक प्राप्त होता है.

दशवा सूक्ष्मसंपराय नायक गुणस्थान है. यह गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभका उदय रहा है, सो अति विशुद्ध भावसें दशवेके अंतमें उस लोभका क्षय हो जाता है. अब जो उपशम भावसें श्रेणी मंड दी होवे वो एकादशवे गुणस्थानमें जावै; क्यों कि जो गुणस्थानक उपशम भावका है; क्षायक भावका गुणस्थान नहीं है, उस्सें क्षायक भाववाले वारहवे गुणस्थानमै जाते हैं.

ग्यारहवा उपशांत मोह गुणस्थान है. ये गुणस्थानमें मोहनी कर्मका उदय तो नहीं होता है; मगर सत्तासें रहता है, उसके जोरसें परिणाम पीछे हठ जाते है. उस सबब से यह गुणठाणेसें चढते नहीं लेकिन गिरजाते है. कदापि आयुष् आ रहा होवे और मरण आ जावे तो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाता है. वहांसे मनुष्य गतिमें आ करकें मोक्ष प्राप्त करता है.

बारहवा क्षीणमोह गुणठाणा है. यह गुणठाणंमें वीतरागपद प्राप्त होता है. यह गुणठाणेमैं अभेदज्ञान है, एकत्ववितर्क अप्रविचार नामक ध्यान अभेद ज्ञान है उसका दूसरा पाद वर्त्तता है; उससें अति विशुद्ध भाव होता है उसी सबबसें यह गुणठाणंके अंतमै ज्ञानावर्णी कर्मकी पांच प्रकृति, दर्शनावर्णीकी छः प्रकृति शेष रही हुइथी, वो और अंतराय कर्मकी पांच प्रकृतिका उदय बंध सत्ता सब प्रकारसें नाश होकर तेरहवा गुणठाणा प्राप्त होता है.

तेरहवा सयोगी गुणठाणा है. यह गुणठाणेमें केवलज्ञान, केवल दर्शन प्रकट होता है. लोकालोकके ज्ञाता होते हैं, गया हुवा अनंतकाल और आनेवाला अनंतकाल है उसमैं जो जो पदार्थ हो गये और होनेवाले है वो सबका ज्ञान है. कुछभी वस्तु ज्ञात होनेमें अज्ञात नहीं ऐसा संपूर्ण ज्ञान प्रकट होता है, तब तीर्थंकर महाराजजीकी वैमानिक, ज्योतिषी, भवनपति और व्यंतर यह चारों जातिके देवोंके इंद्र भक्ति करनेकों आते हैं, और समवसरणकी रचना करते है, उसमें प्रकट कोट-गढ चांदीका, दूसरा गढ सोनेका और तीसरा गढ रत्नका बनाते हैं. उस रत्नके गढ भीतर प्रभुका सिंहासन रत्नमय बनाते हैं. उसपर प्रभु बिराजमान होकर देवध्वनि पूरित देशना देते हैं. वो प्रभुका ऐसा प्रभाव है कि-चारों तर्फ बैठे हुवे लोग प्रभु अपने सन्मुखही हैं ऐसा देखते हैं-सबब यह कि तीनू दिशाओंमें प्रभुके प्रतिबिंब होते है. प्रभुके मस्तक पर अद्धर तीन छत्र रहते हैं. देवता चंवर वींजते हैं. प्रभुके पीछे तेजपुंजरूप भामंडल होता है, उसका तेज सूर्यसेंभी बारह गुना होता है. उपर अशोकवृक्ष होता है, उसकी ऐसी शीतल छांउं होती है कि वहां बैठे हुवे समस्त जीवोंका शोक संताप नाश होता है. आकाशमें दुंदभी बजे, उसमें ऐसी शब्दध्वनि होवै कि 'यही देवकों भजो.' फिर त्रिगढके चारों और जानु प्रमाण सुगंधित पंचवर्णी पुष्पोंकी वृष्टि देवोंकी तर्फसें होती है. इत्यादि रचना देव रचते हैं. वहां प्रभुजी बैठकर धर्मदेशना देते हैं, उस्सें बहोतसे जीव प्रतिबोध पाते हैं; सबब कि केवलज्ञानद्वारा सब वस्तुकों जानते हैं. यदि किसीकों कोइ विषयमें कुछ शंका हो आवे तो वहभी जान लेते हैं, उस्सें पृश्न करनेकी जरूरत नहीं रहती है. भगवान आपसेंही सब शंकाका समाधानरूप उत्तर देते है उस सबबसे किसीकों शंका नहीं रहती है. इस मुजब जबतक आयुष्य कायम रहे वहांतक पृथिवी पर फिरकर भव्य जीवोंकों प्रतिबोध करते हैं. इस प्रकार तेरहवे

गुणठाणमें वर्त्तते हैं. इस गुणठाणमें चार अघाति कर्म रहे हुवे होते है. अघाति कह-नेका यही मतलब है कि आत्माके गुणोंकों ये कर्म घात नहीं करते है. और गुण प्रकट करनेमें अटकायत नहीं करते है उससें अघाति कर्म कहा जाता है.

चतुर्दशवा अयोगी गुणठाणा है. यह गुणठाणा जींदगीके अंतका अ-इ-उ-ऋ-लृ-यह पांच अक्षर बोलनेके वक्त जितना वक्त बाकी रहा होवे तब प्राप्त होता है. ये गुणठाणेमें योग यानी मन वचन और काया इन्होंका रोध होता है और चारों कर्म नाश हो जाते हैं. तथा सब कर्मोंसें रहित होता है. चरम शरीरका त्याग होता है. एक समयमें सिद्धमें बिराजमान होते हैं. वहां सदैव अवस्थित रहते हैं. फिर संसारमें आनेका नहीं रहता है; क्यौ कि संसारमें परिभ्रमणका कारणरूप कर्म है, उसका नाश होता है उससें पुनः जन्ममरण होताही नही. संपूर्ण आत्मिकसुख प्रगट हुवा है ऐसे पूर्ण सुखकों प्राप्त करते है.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि जो लोकके अंतमें जाते है वे अलोकमें क्यौं नहीं जाते है? इसकी समाधानीमें यह है कि अलोकमें धर्मास्तिकाय नहीं है. लोकके अंत तकही धर्मास्तिकाय है. जीव और पुद्गल धर्मास्तिकायकी सहायता विगर नहीं चल सकते है. उससें आगे नहीं जा सकते हैं. यदि कहेगा कि यहांसें वहां तक आत्माकों जानेका क्या सबब है? उसका उत्तर यही है कि उर्द्ध जानेका स्वभावही है जिस्सें वहांही जाते है. इस मुजब चौदह गुणस्थानरूप धर्म हैं इन्मेंसे जितना बन सके उतना धर्म करे उसी मुजब शुद्ध होता है.

५५ प्रश्नः—इस मुजबका धर्म जैनवालेही कर सकते है या दूसरेभी कोइ कर शके?

उत्तरः—बहुत करकें जैनवालेही कर सकते है; सबब कि-जिसकों वस्तु धर्मका ज्ञान नहीं होता है, वहांतक वस्तुकों वस्तुपणेसें मानना नहीं बन सकता है, उसीसें स्वभाव विभाव नहीं जाना जाता है. और विपरीत जाननेसें क्यौंकर मुक्ति होवे? किसी जीवकों स्वाभाविक सहजहीमें वस्तु धर्मका ज्ञान होवे, तो आपके स्वभावमें रहकर परभावका त्याग कर देवे तो गुणस्थानमय धर्म प्राप्त होवे. जैसें कोइ मनुष्यकों मार्गमें चलते चलतेही पाँव जमीनमें घुस जाय और वहांसें द्रव्य प्राप्त होनेसें धनवान हो जाता है, वेसें स्वभाविक बोध हो जावे. मगर वो थोडे जीवोंकोंही ऐसा बन

आता है, बहुतसें जीवोंकों अैसा होना बहुतही मुश्किल है. पूरेपूरा उद्यम करनेसें तो बहुतसे मनुष्य द्रव्य पैदा करते हैं, तैसे जैनमार्गसें निकट मुक्ति है. अन्य भावसेंभी 'जैनधर्मकी मर्यादावत्', आत्मिकधर्म आजावे तभी मुक्ति पाते हैं.

५६ प्रश्नः—अैसा समझकर जैनधर्मके उपर राग–प्यार रख्खे और दूसरे धर्मपर द्वेष रख्खे तो युक्त है या नही?

उत्तरः—जिसने जैनधर्म पाया होवे उसकों मुनासिब है कि किसी धर्मके उपर वा किसी मनुष्यके उपर द्वेष न रख्खे; क्यों कि जैनाचार्योंने तो कहा है कि–'सकल दर्शनके नय ग्रहे, आप रहे निज भावेरे'–इसका परमार्थ यह है कि, जिनधर्मवालाओंने मार्ग दर्शाया है उसमें सारभूत क्या है? वो सारभूत जिस पक्षसें होवे सो पक्ष जान लेवे और अच्छे पक्षकी व्याख्या करे, विरुद्ध पक्षकी ओर लक्ष न देवे. आप रहे निज भावे–यानी जैनशासनमें सप्त नयसें मार्गका निर्णय है वही भावमें स्थिर रहेवे; लेकिन किसी जीव पर द्वेष न करे. निंदा न करे–निंदा करनी संसारमें दुरस्त नहीं है. और वादविवादमेंभी दूसरे जीवकों या अपने जीवकों लाभ–फायदा होवे अैसी प्रतीति होवे तो वाद कर. मगर अपने अहंकार ममकार के लिये मत कर. अष्टकजीमें पत्र (५२) बारहवे अष्टकमे हरिभद्रसूरि महाराजने धर्मविवाद करना कहा है; लेकिन शुष्कवाद–कंठशोपरूप–कुछभी फायदा न होवे वैसा वाद करनेका निषेध किया है. फिर जिसकों आत्मधर्म प्रकट करना है तो ज्यों बन सके त्यों वे पुद्‌गल भावकी प्रवृत्तिसें मुक्त होनेका उद्यम कर रहे हैं. वे दूसरोंकी पंचातमें क्यों पडे? जिसकों व्यवहार करणी करनी है वे अैसी करे कि जिसमें आत्म विशुद्धि होवे. और रागद्वेषकी परिणती कम होवे वैसा उद्यम करे. वैसे जीव किसीपर द्वेष रख्खेही नहीं, वो तो हम्मेशां भावदया कर रहते हैं. वास्ते आपको फुरसद मिले जब धर्मोपदेश देवे; उसमेंभी किसीके छिद्र जाहेर होवे वैसा न करे. लेकिन सुननेवालोंकों जिस प्रकार समता बढे उस प्रकार उपदेश देवे.

५७ प्रश्नः—अधर्मि जीवोंके ऊपर द्वेष करैं किंवा नहीं करैं?

उत्तरः—अधर्मि जीवोंके ऊपर मध्यस्थ रहेवै यानी रागभी न ल्यावें और द्वेषभी न करै. राग करनेसें अधर्मकी प्रशंसा होवै तो आपकों कर्मबंधन होवै, और स्वप्रशंसा देखकर दूसरे जीव अधर्म सेवन करैं तो उनका कारणीक बनै. और द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैर बंधन होवै तो वो कर्म भुक्तना पडै; वास्ते समभावसें रहेवै. अधर्मकी प्रशंसा करनेसें श्रावककों भवभ्रमण करना पडा है. वो कथा अर्थदीपिकामें छपी हुइ किताबके पत्र ७७ में है. वास्ते अधर्मिका बहु मानभी न करै.

५८ प्रश्नः—अन्य धर्मवाले धर्मकरणी करते है वो निष्फळ जाती है या नहीं?

उत्तरः—अन्य दर्शनीमेंभी कितनेक जीव केवल अपने आत्माकों कर्मसें मुक्त करनेके लिये जीवदया पालते हैं, असत्य नहीं बोलते हैं, चोरी नहीं करते हैं, मैथुन नहीं सेवते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ पतले पडे हुवेकों ज्यादा पतले करनेका उद्यम करतेही रहते हैं. किसी धर्मपर द्वेष नहीं ल्यावे येभी क्रमसें चढती दशाका निशान है. जिस्सें हरीभद्रसूरी महाराजने योगदृष्टिसमुच्चयमें पातंजलीकों मार्गानुसारीमें गिन लिये हैं. कितनेक जीव सत्य जैनधर्मपर द्वेष कर रहे हैं और अहंकार ममकार कर रहे हैं, हिंसा करकें धर्म मानते है. ऐसे जो अन्य धर्मवाले होवै उनका कार्य सिद्ध कैसे होवे? रागद्वेष है सोही संसारका बीज है और वो तो रातदिन कर रहे हैं, तब उसका लाभ तो सब धर्मवाले कह गये हैं कि संसार फळ-भवभ्रमणही मिलता है. उनका दूसरा फळ कहांसे प्राप्त होवै?

५९ प्रश्नः—जैनमैंभी बहुतसे गच्छ हैं वै सभी शुद्ध हैं या नहीं?

उत्तरः—जैनमें शुद्ध आचार्य महाराजका गच्छ तो एक आचार्यका परिवार हो उनकों गच्छ कह गये हैं, उसी मुजब अलग अलग आचार्योंके परिवारकों अलग अलग गच्छ कहेवै तो उनमै कुछ एक दूसरेकों हठवाद नहीं है. ऐसे जो जो गच्छ हैं उन सभीमें धर्मसाधन समान है-सभी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले है. कभी कुछ समझकी तफावतसें किसी किसी ऊवालेमें

एक दूसरे आचार्यके विचारमें तफावत आता है; तौभी एक दूसरेके ऊपर द्वेष नहीं होता है. दोनू मुक्तिके कामी हैं. उस्सें उनके पीछेकेभी आचार्य असा कहते है कि जिनभद्रक्षमाश्रमणजी यौं कहते हैं और सिद्धसेनदिवाकरजी यौं कहते हैं असें मध्यस्थ रहते हैं; लेकिन किसीकों ज्यादे कम नही कहते हैं. वसें अपनकोंभी मध्यस्थ रहना चाहीए. जैसे कि खरतरगच्छवाले सामायिकके आद्यमें करेमिभंतेही कहते हैं और पीछे इरियावही पडिकमते हैं. इस मुजब आवश्यकजीकी टीकामें हरिभद्रसूरि महाराजने कहा है. और तपगच्छमें प्रथम इरियावही पडिकमते है, उस पीछे करेमिभंते कहते हैं. इस विषयके बारेमें श्रीमहानिसित्थसूत्रकी अंदर कहा है कि इरियावही कहे विगर कुछभी काम नहीं करना. इन आधार परसें तपगच्छवाले वैसेंही करते हैं. अब दोनू गच्छवाले दोनू शास्त्रकों कबूल करते हैं, तब दुरस्त है कि दोनू गच्छवालोंकों मध्यस्थ रहना चाहियें. जैसे पूर्वाचार्य दोनू आचार्यके दोनू मत दर्शाते है मगर किसीका निरादर नहीं करते है, तैसें अपनकोंभी कबूल करना चाहियें कि यह गच्छवाले इस ग्रंथके आधारसें क्रिया करते हैं, और ये गच्छवाले इस ग्रंथके आधारसें करते हैं. असा कहकर मध्यस्थ रहना. मगर एकके शास्त्रकों सच्चा और दूसरेके शास्त्रकों झूठा कहकर रागद्वेषमें गिरना वो आत्माकों दुःखदायक है. जो प्रवृत्ति पूर्वाचार्यकी नहीं है तौ वो अपनी मतिकल्पनाकीही गिनी जाती है, और शास्त्रसेंभी विरुद्ध है. उसमेंभी वो शांतपणेसें समझ सकें तौ समझाना चाहियें; लेकिन रागद्वेष करना तौ बेमुनासिब है. अपने आत्माकों गुण प्राप्त होवे वैसी प्रवृत्ति करनी; क्यौं कि ठाणांगजीमें चौभंगी है कि-परगच्छी है और योग्य जीव है उसकों अपने गच्छके हठसें ज्ञान नहीं देते है वो भगवंतकी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं. इस्से समझा जाता है कि जो गुणवंत होवे और परगच्छी होवे तौभी उनका अनादर नहीं करना; सबब कि गुणवंत होवे वो सम परिणतिवंत होते हैं, उसके साथ परिचय करनेसें गच्छकी तकरार आनेही नहीं पाती है. एक दूसरेकी भूल होवे सो सुधर जाती है; वास्ते गच्छका हठ करके तकरारमें

नहीं झुक जाना. शास्त्र तर्फ दृष्टि देकर विचारना- दोनू शास्त्रमें दो बाते अलग होवै वो कुछ दोनू ग्रहण होती नहीं. और दोनूमेंसें एकभी बात असत्य होतीही नहीं; लेकिन वे दोनूके हेतु अलग अलग होते हैं, वो गीतार्थ जान सकते हैं. आधुनिक कालमें ऐसे गीतार्थका वियोग है. भगवतीजीकी टीकामें अभयदेवसूरि महाराजभी गीतार्थका विरह कहते हैं, वास्ते अपनी अल्पमतिसें मुकरर नहीं हो सकता है. इसलिये मध्यस्थ रहकर प्रवृत्ति करनी और जिस मुजब करनेसें हठ कदाग्रह न होवै उस मुजब चलना कि जिस्सें आत्माकी परिणति न बिगडने पावै. ठाणांगजीके चौथे ठाणेमें छपी हुइ प्रतके पत्र २८२ के दूसरे पृष्ठमें इस मुजब लेख है कि:—पुरुष चार प्रकारके हैं-१ साधुधर्म सो जिनाज्ञा उसकों छोड देवै, और गण-गच्छकी स्थिति यानी गच्छकी मर्यादा नहीं छोडता है. किसी आचार्यनें ऐसी मर्यादा कही है कि दूसरे गच्छके यति साधुकों सिद्धांत न देना. अब दूसरे गच्छके यतिकों श्रुत न देवै, न पढावै, वो धर्म जिनाज्ञा छोडता है; मगर गच्छकी स्थिति नहीं छोडता है. जिनाज्ञा ऐसी है 'कि-' जो योग्य होवैं उन सभीकों श्रुत देनाही योग्य है.' यह पहेले पुरुषकी रीति है. और दूसरा पुरुष गच्छकी आज्ञा छोडकर दूसरे गच्छके यतिकि जो योग्य होवै उस्कों श्रुत देता है. वो पुरुष जिनाज्ञारूप धर्म नहीं छोडता; मगर गच्छ स्थितिका उल्लंघन करता है. तीसरा पुरुष जो अयोग्य अन्य गच्छवाले यतिकों श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और गच्छ ये दोनूका उल्लंघन करता है. और चौथा पुरुष, दूसरेके शिष्य हैं; लेकिन वे श्रुत रखनेके योग्य हैं इस्सें अपने शिष्य बनाकर श्रुत देता है, वो पुरुष धर्म और स्थिति इन दोनूकी मर्यादा पालन करता है. इस मुजब ठाणांगजीमें अधिकार है. उस पर लक्ष देकर कदाग्रहमें न गिरते स्हामनेवालेकों या अपने आत्माकों लाभ होवै सोही प्रवृत्ति करनी. ये चौभंगीमें ऐसी शंका होगी कि 'आचार्योंने गच्छकी स्थिति कैसी बनाइ है?' उसके लिये उसी टीकामें कहा है कि-प्रभुके उपदेश रहित आज्ञा बंधी गइ है. सबब कि प्रभुका उपदेश समस्त योग्य जनोंकों ज्ञान देना ऐसा

है. इस मुजब टीकामें है. फिर चौथे भांगेवालेके लिये गाथा रख्खी गइ है कि-ये पूजनीक है. उस्से विदित होता है कि ये गच्छकी खोटी रीति परसें चित्तकी रुचि कम हुइ मालूम होती है. तत्त्व केवली गम्य है.

६० प्रश्नः—इस कालमें देव आता है या नहीं? न आनेके सबब परदेशी राजाके विवादमें आगे कह बतलाये है, उसी वास्ते नहीं आ सकते हैं?

उत्तरः—चार कारणसें देवता आते हैं. यह अधिकार ठाणांगजीमें चौथे ठाणेमें छपी हुइ प्रतके पत्र २८६ के पहेले पृष्टसें संबंध चला है. चार स्थानकमें अभीका पैदा हुवा देवता देवलोकमें रहा हुवा चाहता है और मनुष्यलोकमें आनेके वास्ते समर्थ होता है यानी तुरतका उत्पन्न हुवा देवता देवलोकमें दिव्य काम भोगनेके विषे मूर्छित न हुवा होवै वो देव अनित्यता ध्यानमें लेकर यावत् अत्यंत आसक्त मन न हुवा होनेसें चिंतवन करता है कि-मेरे मनुष्य भव संबंधवाले आचार्य, प्रतिबोधक, वा उपाध्याय, सूत्रदाता, प्रवर्त्तक (जो साधुजनकों आचारमें प्रवर्त्तावै), वा स्थविर वा गणीगच्छके स्वामी, गणधर [गच्छके धरनेवाले], वा गणावच्छेदक [गच्छकी सार करनेवाले] ऐसे महाशय कि जिनके प्रभावसें यह प्रत्यक्ष देवसंपत्ति-देवताका शरीर तथा कांति प्राप्त हुइ. जन्मांतरमें उपार्जन की हुइ पुण्यलक्ष्मी सन्मुख खडी हुइ; वास्ते मैं वहां जाउं और वो उपकारी भगवंतका वंदन करुं यावत् उन्होंकी सेवा करुं. यह पाहिला सबब. दूसरा सबब यह होता है कि-तुरतका उत्पन्न हुवा देवता जबतक विषयमें अत्यंतासक्तिकों प्राप्त न हुवा होवै तब तक वो देवता चाहता है कि मेरे मनुष्यजन्म संबंधी माता.पिता भार्या भाइ भगिनी पुत्र पुत्री हैं उनकों मिलनेके वास्ते वहां जाउं. उन्होंकी पास जाकर प्रकट हो खडा रहुं. वे सब मेरी दिव्य देव संबंधी विमान वगैरः की संपत्ति, रत्न मस्तकका दिव्य देवकांति आदि प्राप्त हुइ है वो देखैं; यह दूसरा सबब है. तीसरा सबब यह है कि-तुरंतका उत्पन्न हुवा देवता सोचता है कि मनुष्य भवमें ज्ञानी श्रुतज्ञानादिक सहित हैं, वा बडे तपस्वि है, वा अति दुष्कर करणीके करनेवाले हैं उन्हकों वंदन निमित्त यावत् सेवा भक्ति निमित्त वहां जाउं. ये तीसरा कारण है. और

चोथा सबब यह है कि-नवीन उत्पन्न हुवा देव मनमें शोचता है कि-मेरे मनुष्य भवके मित्र स्नेही सहचारी वा संगतिक-परिचयवंत है उन्होंके साथ मनुष्यजन्ममें था उस वक्त परस्पर संकेत कीआथा या देवतामें संकेत किया था कि देवताकी अंदरसें प्रथम च्यवन हो मानवमें जावै तव उन्हकों प्रतिवोध देना, ये चार सबब हैं. इस मुजब ठाणांगजीकी अंदर अधिकार है; वास्ते देव यहांपर नहीं आता है ऐसाभी एकांतसें न समझना चाहिये. फिर वीरस्वामीके निर्वाण पश्चात् वहुतसे आचार्य महाराजकी सेवामें देवता आये हैं. देवकी मददसें श्रीसीमंधरस्वामीजीके पास शंकाकी समाधानीके स्वालोंके खुलासे मंगवाये हैं; लेकिन अत्यंत गुणवंत होवै उनकी सेवामें देव आता है. हीरविजयसूरीजी तकके आचार्योंनें देवकी सहाय्यतासें शासनकी वहुतसी प्रभावना की है. फिर आनंदविमलसूरीके वक्तमें श्रावकने देवाराधन कियाथा और उस देवकों पुंछाथा कि-' अभी युगप्रधान कौन हैं ?' तव देवने युगप्रधानकी पहिचान होनेके लक्षण कह वतलायेथे. उस्सें श्रावकने तजवीज की तो आनंदविमलसूरीजीकों युगप्रधान मुकरर कीये थे. यह अधिकार हीरविजयसूरीके रासमें है. वास्ते न आवे ऐसा निश्चय नहीं है. (शेठ अनूपचंदजी लिखते है कि-) मुझेभी मुनिसुव्रतस्वामी जीके प्रभावसें कुछ अनुभव हुवा है. फिर व्यवहार सूत्रकी भाष्यमें कहा है कि-किसी मुनिकों गुरुमहाराजका योग न होवै और प्रायश्चित लेना होवै तो अठ्ठमका तप करके भरुचमें मुनिसुव्रतस्वामीजीका आराधन करना, उस्सें उन प्रभुके अधिष्ठायक आकर प्रायश्चित देवैंगे; सबब कि मुनिसुव्रतस्वामी जीनें और उन्हीके गणधरोंनें वहुतसें प्रायश्चित दीये हैं वो उन्ह अधिष्ठायक देवोंने सुने हुवे हैं उस सबवसें वे देवैंगे. कदापि वे देव दूसरी गतिमें चले गये होवैंगे तो उन्हीके दूसरे अधिष्ठायक देव श्रीसीमंधरस्वामीजीकों पुंछ करकेंभी खुलासा देवैंगे, इस्सेंभी समझा जाता है कि देव यहां आते हैं. यह अधिकार व्यवहारसूत्रकी भाष्यकी टीकावाली प्रत जो मेरे पास है उसमें पत्र २०६ के दूसरे पृष्ट मै पहिला उद्देशाकी समाप्तिके भागमें है.

११ प्रश्नः—सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीका यह पांचों अंग तुल्य माननेमै आते है. और कोई नहींभी मानते है, तो उसमें व्याजवी क्या है ?

उत्तरः—ये पांचों अंग समान मानने चाहियें; सबब कि सूत्रमें दश पूर्वधरके वचन तो सूत्र तुल्य कहे हैं. अब भद्रबाहुस्वामी चोदह पूर्वधर हुए, उन्होंने निर्युक्ति रची है, तो उसमें तफावतकी भावना ल्यानी वो अज्ञानता है. फिर समवायांग सूत्रमें ऐसा पाठ पत्र २२८ में छपी हुइ प्रतमें है कि—'कप्पस्स समोसरणंणेयं'—इसका अर्थ किया गया है सो कल्पकी भाष्यसें समवसरणका अधिकार जान लेना. और छपी हुइ भगवतीजीमें पत्र ९१८ में कहा है वो सिद्धगंडिआसें जान लेना.

यहां पर कोइ शंका करेगा कि समवायांगजी तो गणधर महाराजने गुंथन किया है, और भाष्य पीछेसें रचा गया है, तैसेंही सिद्धगंडिआभी पीछेसें रचा गया है, तो उसमें वो अधिकार कहांसें आया? उसके उत्तरमें यह समाधान है कि जिस वक्त देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीनें शास्त्र लीखे उस वक्त ज्यादा लिखान न बढ जावे उनके लिये एक दूसरे शास्त्रकी भलामण की. जैसें कि भगवतीजीमें पन्नवणाजीकी और जीवाभिगमजी वगैरः की भलामण है. अब पन्नवणाजी शामाचार्य महाराजने बनाया है तो वो भलामण भगवतीजीमें कहांसें आवे? मगर लिखनेके वक्त एक वात ज्यादे जगह लिखनी न पडे उससें उपांग पयन्ना भाष्यकी ये भलामणें करकें संकोच किया. इसपरसें शोचनेका है कि देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीको जो ज्ञान था उसमें सूत्रनिर्युक्ति भाष्य वगैरः यादीमें था सो लिखा. तब जो सूत्रमें और निर्युक्ति भाष्यमें शंका होती तो क्यों लिखते? उन्होंनें तो अपने पर परोपकार बुद्धि लाकर सूत्रादि लिखाये. वास्ते इसमें कुछ शंका या फेरफार माननेका वेमुनासिब है. फिर आर्यसुरक्षितसूरीजीनें सूत्रका संक्षेप किया, वो अधिकार हरिभद्रसूरीजीकी रची हुइ आवश्यककी टीकामें है. वोंभी मानवगणको शंका हो आवेगी कि उन्होंभी कुछ फेरफार किया होगा; लेकिन आर्यरक्षितसूरीजीके पाटपर दुर्बलीपुष्प हुवे. उनके वक्तमें गोष्ठामाहिल हुवे. उस समय देवताके द्वारा पुंछवा लिया था कि—'आर्यदुर्बलीपुष्प कहते हैं वो सच्चा है या गोष्ठामहिल कहते हैं वो सच्चा है?' श्रीसीमंधरस्वामी महाराजजीने देवताको कहा कि—'आर्यदुर्बलीपुष्पका कथन सत्य है. गोष्ठामहिल निन्हव है.' यह अधिकार उत्तराध्ययनजीकी टीकामें है. इससें सबूत होता है कि आर्यरक्षितसूरीके पाटपर आर्यदुर्बलीपुष्प हुवे है तो वे आर्यरक्षितसूरीके वचन

मानते थे, वे वचनोंकी प्रतीति श्रीसीमंधरस्वामीजीने दी, तो यह वार्त्ताभी सिद्ध हुइ, उस पीछे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमणजी हुवे, उन्होंने भाष्य रचना की, और चूर्णी आचार्यने वनाइ. और उनमेंसें कितनीक टीका हरिभद्रसूरीजीने बनाइ. वैसेंही दूसरे आचार्यकी वनाइ हुइभी उन्होंने प्रमाण रख्खी. उन हरिभद्रसूरीजीकों शासनदेवने १४४४ ग्रंथ रचनेका कहा. अब शोचिये कि पांच अंगमै विरुद्ध होता तो हरिभद्रसूरीजीकी श्रद्धाभी विरुद्ध ठहरती, तो शासनदेव रचनेका क्यों कहे ? मगर शासनदेवने शुद्ध पुरुष जानकर हरिभद्रसूरीजीका मान्य किया-सच्चा माना तो १४४४ ग्रंथ रचनेके लिये कहा. वास्ते ये पांच अंग शासनदेवताने योग्य जान लिये थे, इस प्रमाणसें इसमै कुछभी विषमवाद गिनना नहीं. और गिने तो वो सख्स भगवंतकी आज्ञाका लोपनेवालाही ठहरे. फिर अभयदेवसूरीजीने टीकायें वनाइ तो उन्होंनेभी शासनदेवके कहनेसेंही टीकायें वनाइथी. इस तरह बहुत प्रकारकी ये पांचों अंगोंकों छाप है. फिर दूसरी तरह शोचो कि सूत्र तो सूचकमात्र है और सबका खुलासा तो पंचांगीसेंही मिल सकता है. जो लोग पंचांगीकों नही मानते हैं वैभी गुप्त रीतिसें टीकायें देख कर शोचते हैं तभीही अर्थ हाथ लगता है; वास्ते पंचांगी प्रमाण करनेसें यथार्थ बोध होता है.

६२ प्रश्नः—उनसठवे प्रश्नमै कहा गया है कि-दश पूर्वधरके वचन प्रमाण करना ऐसा शास्त्रमें कहा है, और देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणजी तो दश पूर्वधरभी न थे तब वो कथन किस तरहसें प्रमाण कीआ जावे. ?

उत्तरः—देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने कुछ नइ रचना नहीं की है. गणधर महाराजकी पाट परंपरामै जो पुरुष चले आये उनकी पाससें आपने धारणा कीथी उस मुजब लिखा; वास्ते उसमै कुछ पूर्वकी न्यूनताके बारेमै शंका ल्यानेकी जरूरतही नहीं है.

६३ प्रश्नः—बाह्य वा अभ्यंतर तपश्चर्या करनेसें निर्जरा होवै कि पुण्य बंधा जाता है ?

उत्तरः—जो पुरुष स्वसत्ता परसत्ताका ज्ञान पा चुके है वे पुरुष शरीरकों जड करकें जानते हैं. फिर जानते हैं कि जो जो कर्म उदीरणा करकें उदय होता है और समभावसें भुक्तनेसें नये कर्म बंधाते नहीं पूर्वके बांधे हुवेभी एक कर्मके साथ दुसरेभी शिथिल कर्म रहे है. तब समभाव आनेसें शिथिल कर्म तो प्रदेशसें भुक्त जाते हैं, तब जो पुरुष कर्म खपानेके लिये

उदीरणा करै उसकों तौ अवश्य समभावही होवै. वास्ते वो प्रदेश उदयके कर्मकी निर्जरा होती है. दूसरे कर्म जो निकाचित होवै वोभी शिथिल होवै, मात्र एक उत्कृष्ट स्थानवर्ति निकाचित कर्म है वो भुक्ते विगर अलग होते ही नहीं, और मध्यम स्थान वर्ति तौ ज्ञानसहित तपसें नाश होती है. यह अधिकार विशेषावश्यमें है. तप करनेमें अशाताभी होवै तौ उसकीभी निर्जरा होती हैं. फिर शुभ योग रहे है उस्सें पुण्यभी बंधा जाता है; परंतु पुद्गलिक सुखकी इच्छा नहीं है उस्सें वो पुण्यभी मुक्तिकों सहाय्यकारी होवै; लेकिन मुक्तिकों रोकनेवाला नहीं है. वास्ते तपश्चर्या करनेसें मुख्य पणे निर्जराही होती है. निर्जराके बारह भेद वही तपके बारह भेद कहे हैं. फिर तिर्थंकर महाराजजी और दूसरे मुनि महाराजभी बहुत तपश्चर्या करकें कर्मक्षय कर तद्भव मुक्तिमंदिरमें पधारे हैं, वास्ते जो तपश्चर्यासें पुण्यबंध हो अटक जाता तो वे पुरुषोंकोंभी रुकावट होती वो नहीं हुइ है, उस्से समझा जाता है कि निर्जराही मुख्यपणे होती है.

६४ प्रश्नः—आत्मतत्वका ज्ञान न होवै उसकों तपश्चर्या करनेसें क्या लाभ होवै ?

उत्तरः—आत्मज्ञान नही होता; मगर आत्मज्ञानी पुरुषकी निश्रासे रहकर वर्त्तते है वे पुरुषभी कर्म क्षय कर सकते हैं. जेसें कि मासतुस मुनिकों एक चरणभी मुँहपर याद नहीं हो सकता था; मगर गुरुकी आज्ञामें रहकर एक चरणका अभ्यास जारी रख्खा तौ केवलज्ञान प्राप्त हुवा; सवब कि गुरुमहाराज निश्चय-व्यवहार-उत्सर्ग-अपवाद-द्रव्य-भाव ये सभीके ज्ञाता है; वास्ते शिष्यकों थोडा बोध होवे तौभी मुख्य मुख्य बावत गुरु समझा देवें. उस्से उनके आत्माका कार्य सहजहीमें हो जाता है. दूसरे मनुष्य साथ वादविवाद न कर सके; मगर स्वात्माका काम कर सकता है; वास्ते अैसे पुरुषका तप सफल है. गीतार्थ और गीतार्थकी निश्रा यह दो प्रकारका मार्गही कहा है.

६५ प्रश्नः—गीतार्थकी निश्रा नहीं और स्वच्छंदतासें करे उसकों कुछ लाभ-फायदा होवै या नही ?

उत्तर:—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६१८ मे चौभंगी है, उसमे कहा है कि-जो श्रुतसें करकें रहित अज्ञानी बालतपस्वी गीतार्थ अनिश्रितदेश आराधक कहा है, फिर ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ३४६ मे मेघकुमारका अधिकार है. मेघकुमारमे पिछले हाथीके भवमें ससेकी दया कीथी उससें उस जगह कहा है कि संसारका अंत लाया. विपाकसूत्रमे-सुखविपाकमे पत्र २६२ सें बाहु तथा सुबाहुकुमारके पिछले भवका अधिकार है. उन्होंने मुनिकों प्रतिलाभे थें उस वक्त कुछ समकित नहीं था. तथापि वहां कहा कि संसार परित कियां उस्सें अंत आया; वास्ते गीतार्थकी अनिश्रासें मोक्षकी कामना युक्त धर्मकरणी करता है वोभी सफल होती है. परंपरासें लाभ मिलता है; लेकिन अपने अहंकारके लिये गीतार्थकी निश्रा छोड देता है और दिलमें उन्माद करता है कि गुरु क्या करनेवाले हैं? गुरु जो करनेका कहेंगे वो तो मै करता हुं. ऐसे अभिप्रायसें करनेवालेकों तो फायदा होनेका संभव नहीं है. गुरुकी योगवाइ नहीं मिलती तोभी चित्तकी भावना वर्त्तती है कि-कब मुझे गुरुका योग मिलेगा? फिर मिलनेसें उन्होंकी आज्ञा मुजब चलुंगा-असे जीवकों लाभ होता है. इस वृत्ति सिवायके अहंकारी मुमुक्षुकों लाभ नहीं मगर नुकसान तो बेशक होता है.

६६ प्रश्न:—यह लोकके उपर लोककी वांछना रहगइ है और तप वगेरः करें उसकों लाभ किस प्रकार होवे? फिर उपदेशमालाकी गाथा ३२५ मे कहा है कि अज्ञानी तप करे वो निष्फल होवे वास्ते उसका क्या खुलासा है?

उत्तर:—मुख्य वृत्तिसें यह लोक परलोककी वांछासें तपश्चर्या वगेरः करनेसें संसार बंधावे; मगर संयम तो यह लोककी वांछासें करे; तथापि उत्तम पुरुषकी संगति होवे तो उससें किसीकोंभीलाभ होता है. जैसें कि संप्रतिराजाके जीवनें पिछले भवमे आजीविकाके वास्ते संयम ग्रहण कीया था; तोभी वो कालकर (मरन के शरन होकर) के राजा हुवा. वहांभी आर्यसुहस्तिसूरीजीकों देखकरकें जातिस्मरण ज्ञान हुवा और समकित पाया. इत्यादि बहुतसें गुण हुवे. यह अधिकार परिशिष्टपर्वणिमें पत्र २७७ की अंदर छपी हुइ किताबमें है. वास्ते एकांत येभी निश्चय नही है; लेकिन ज्यों बने त्यों यह

लोककी और परलोककी वांछना कम होवै वहीउद्यम करना दुरस्त है. मगर कितनेक जीव लालचसें करते होवें उसका तपश्चर्यादिकका उद्यम छुडाना नही. उनकों उपदेश देकर यह लोक परलोककी वांछना छुडा देनी चाहिये जैसें कि उपाश्रयमें बतासे श्रीफलकी प्रभावना होती है.-अब वो लेनेकों आया, लेकिन बंटनेकी देर है और दरम्यान धर्मश्रवण किया, वो अच्छा लगा और रुचि हुइ; तौ पीछें आत्माका हितभी होवै; वास्ते धर्मकरणी करनेमें किसीकों रुकावट नहीं करनी. और बन सकै तौ परभावकी जो वांछना है वो छुडा देनी ये अच्छा है. हरिभद्रसूरिजी अष्टकजीके आठवे अष्टकमें मेरी पास जो प्रत हैं उसके पत्र; ४१ में लिखते है-कि-जो ये लोक परलोककी वांछनासें तप करता है; मगर अरिहंतजीके भक्तिफळसें मुजकों लाभ मिलेगा ऐसी भावना है; उसमें अरिहंतजीके ऊपर राग है वो परंपरासें जोडनेवाला है-इस मुजब ल्याये है: फीर पंचाशकजीमेंभी इसी मुजब पत्र १९४ में तपका अधिकार है, उसमेंभी यह बात परंपरासें लाभकारक बतलाइ गइ है. फिर नंदीजीकी टीकामें (छपी हुइ प्रतके पत्र २४१ में.) सबसें कम गृहस्थलिंगसें सिद्ध और अन्यलिंगसें असंख्यात गुणे सिद्ध होवै, उससें साधुलिंगसें जैन के वै असंख्यात गुणे सिद्ध होवें. फिर सिद्ध पंचाशिकामें एक समयमें गृहस्थलिंगसें चार सिद्धि प्राप्त करनेका कहा है; और अन्य तापसलिंग दश सिद्धि प्राप्त करनेका कहा है. अब सोच ल्यो कि गृहस्थलिंगमें श्रावक सम्यग्दृष्टि सब आगये तोभी चार सिद्धि प्राप्त करते है. और तापस्यादिककों कुछ समकित सुद्धल गुरुसेंही नहीं, परभी दश सिद्धि प्राप्त करै. उसका सबब इतनाही है कि जो समकित दृष्टि श्रावकनें आत्माका और परका स्वरुप और संसार अस्थिर जान लिया है; लेकिन पूर्व कर्मके योगसें संसारमेंसे नहीं निकल सकता है, इस सबबसें विशेष विशुद्ध न होनेके लिये कम जन सिद्धिकों प्राप्त करते हैं. तापस वगैरःका अज्ञानतासेंभी वैराग्य प्राप्ति होनेसें संसार छोड दिया; मगर यथार्थ बोध नहीं हुवा उससें अन्यदर्शनमें पड रहे है; तौभी भवितव्यताके जोरसें सहजसें खोटे दर्शनका मार्ग

देखनेसें वो खोटा मालूम हुवा, और जो वस्तु सर्वज्ञ महाराजजीनें जैसी बताइ है वैसी दिलमें सची मालूम हुइ उससें खोटी वस्तुके ऊपरसें दिल उठ गया. सचे पदार्थ जो नव तत्त्व वे ज्यौं है त्यौंही उपयोगमें आये, देवका स्वरूप उपयोगमें आया उसी मुजब ध्यानादिकमें कुशल हुवे; द्रव्यसें संसार खोटा जान कर त्याग कर दियाथा वो अब भावसेंही खोटा समझनेमें आया. अपने आत्मिक सहज भावमें रहना वही प्रिय हुवा-इस मुजब ध्यान करना सुगम पडा, उस्सें गृहस्थसें अन्य लिंग ज्यादे सिद्ध होते है. तापसोंने अज्ञानपनेसें संसार न त्याग किया होता तौ गृहस्थकी तरहसें उनकोंभी मुश्केली उठानी पडती. इसपरसें ख्याल करनेका है कि अन्य लिंगमेंभी त्यागभावसें गुण होता है, तौ जैनकी तपश्चर्याका अभ्यास है वे अनुक्रमसें क्यौं गुनकों न जोड दे? वास्ते धर्मकी अभिलाषा है वही गुणदायक है; मगर कितनेक ऐसी क्रिया करकें अहंकार करै कि अपन तो बराबरही करते है, बहुत पढकर क्या करना है? थोडेही ज्ञानसें बस है. फिर कोइ समझाता है कि ज्ञानाभ्यासका उद्यम करनेका कहता है पर ज्ञानाभ्यास नहीं करता है. प्रभुकी आज्ञा आराधनेकी बुद्धि नही-जो जो वस्तुकों बोध नहीं है उसकों मीलानेकी इच्छा नहीं-फक्त जनरंजनार्थके लियेही करता है-उनके वास्ते तो उपदेश मालामें कहा है उसीही तरह तप निष्फल होवे. यह लोककी वांछावाले बहुत करकें देवलोकादिक मिलनेसें देवके सुखोंका अभिलाष है. उसमें लुब्ध हो जावे उससें धर्म करना दुर्लभ हो पडे. वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं वांछा तो कम करनी; लेकिन त्यागभावसें विमुख नहीं बनाना. निकट साधन तो प्रभु आज्ञासें चलना और वोभी ज्ञान सहित चलना कदाचित् ऐसा न बन सके तो ज्ञानसहित आज्ञा सहित करनेकी अभिलाषा रखकर चले वही उत्तम पुरुषका काम है, जैनकी जो जो क्रियाए है उनका अभ्यास करनेसें शुद्ध होता है, उस लिये पंचाशकके पत्र ८ वेमें सामायिकका अंदर उनके अतिचारमेंभी ऐसा कहा है कि मन स्थिर है वो अभ्यास करनेसें स्थिर होना है, वास्ते अच्छा अभ्यास करना और ज्ञानाराधनमें लक्ष र-

खना जो जो प्रभु आज्ञाकी वहार होता है यांनी आज्ञा विरूद्ध होता है उसके वास्ते अैसी भावना रखनी कि-जो भगवंतजीकी आज्ञा है उस मुजब कब चलुंगा ? अैसें भाववालेकों कार्यसिद्धि समीप है.

१७ प्रश्नः—यात्रा करनेके लिये तीर्थोमें जाना उससें क्या फायदा-लाभ है ? जहां अपन रहेते हैं वहांभी भगवंतजी तो होतेही हैं तो तीर्थभूमिकी जात्रा करनेसें क्या विशेषता है ?

उत्तरः—यात्रा जानेका लाभ, समकित निर्मळ होता है अैसा आवश्यक निर्युक्तिमें भद्रबाहुस्वामी कि जो चौदह पूर्वधर थे उन्होंने कहा है. (वो प्रत हाजिर न होनेसें पत्रांक नहीं दिया गया है.) फिर उपदेशमालामें धर्मदास गणि महाराजनें १२६ वी गाथामें कहा है कि-श्रावक भगवंतके पांचों कल्याणककी जगह यात्रा करनेकों जावे. अब जानेसें क्या फायदा होता है ? उसका खियाल करो कि-घरके आगे व्यौपारकी, संसारकी, कुटुंबकी, अैसी अनेक पीडाये-उपाधिये होती है उनके विकल्प करकें धर्मसाधन पूर्णतासें नहीं हो सकता है; लेकिन गाँव घर छोडकर तीर्थयात्राकों जावें जब वे सभी दूर हो जाते हैं, सोवतमें सब धर्मीष्ट भ्रातायें होते हैं उससें बुद्धिभी शुद्ध होती है और शास्त्रका ज्ञान होता है. फिर मार्गमें गाँव आवें वहांभी कितनेक उत्तम मुनि महाराज तथा श्रावकोंका योग मिलें, उनकी पाससेंभी नवीन ज्ञान प्राप्त होवे, और तीर्थोंमेंभी वैसेही उत्तम पुरुषोंकी भेट होवे, उन्होंके समीप रहनेसेंभी ज्ञानका बोध होवे तथा वैराग्य हो आवे-यही लाभ होते हैं. यहां पर कोइ प्रश्न करेगा कि-घर परभी अैसे पुरुषोंकी भेट हो सकती है. तो उसके उत्तरमें यही खुलासा है कि घरपर अैसा पुरुष कभी कभी आ जावे तो लाभ होता है मगर तीर्थस्थलमें वैसे उत्तम महात्मा बहुत प्राप्त हो सकते हैं, वास्ते ज्यादे लाभ होता है. और तीर्थस्थलमें तीर्थंकर महाराज, गणधर महाराज तथा मुनि महाराज जहां जहां निर्वाण पद पाये हैं वहां वहां; जानेसें वे महान् पुरुष याद आते हैं और उन्होंके गुणानुवादका गान किया जाता है, उससें बुद्धिकी शुद्धि होती है. फिर वे महान् पुरुष जिस प्रकारसें गुणवंत हुवे वो :ागेपर वहन करनेकी

अभिलाषा होती है और संसारसें उदासीनता होवे. तथा आत्मनरव खोज नेकी इच्छा होती है. परभाव रमण दूर होवे, अपने आत्माका गुण प्रकट करनेका उद्यम लब्ध होवे. जैसी जैसी विशुद्धि होवें वैसा वैसा उद्यम करै. अतिशय विशुद्धिवाले जन पहाडमें गुफायें है वहां एकांतमें बैठकर अपने आत्माकी जडके विभाग करैं. भेदज्ञान करैं. धर्मध्यान शुक्लध्यांनादिक ध्यावें और बडा लाभ उपार्जन करैं. औरभी बुद्धि शुद्ध होनेका सवब है कि-उत्तम पुरुषोंके अंगमें जो पुद्गल [रजकण-परमाणु] इकट्ठे हुवे हैं वे बहुत उत्तमही एकत्र हुवे है. जैसें कि क्षपकश्रेणि मांडनेकी इच्छा होवै तौ वज्रऋषभनाराच संघयण चाहियें-उस संघयण विगर उत्तम ध्यान न कर सकें. तब पुद्गलकीभी सहायता चाहियें. तथा उत्तम पुरुष यानी जिसकी मुक्ति होनेकी है ऐसे पुरुषके शरीरमें जो ध्यानमें वृद्धि होवै वैसे पुद्गल एकत्र हुवे है, वे पुरुष तीर्थस्थलमें निर्वाण प्राप्त हुवे हैं उससें वहां वे पुद्गल बिखरे हुवे हैं; वास्ते वहां अच्छे पुद्गलोंका बहुत बडा हिस्सा होता है वो अपनमें दाखिल होता है. यदि बहुतसा काल हो गया है, तदपि वें सब उत्तम पुद्गल कुछ नाश नहीं हो जाते हैं, उससें तीर्थस्थलपर भाग्यवंत जीवकों श्रेष्ठ पुद्गलोंका स्पर्श होता है और उसीसें बुद्धि शुद्ध होती है. उनमेंभी जिस पुरुषकों विशेष अच्छे पुद्गलोंका स्पर्श होता है उनकी विशेषतासें बुद्धि विशुद्ध होती है. कदाचित् भाग्यहीन कों अच्छे पुद्गलोंकी स्पर्शना नहींभी होती है, बुरे पुद्गलोंकाही स्पर्श होता है वो उनके कर्मकी विचित्रता है; परंतु मुख्यता तो वहां अच्छे पुद्गलोंकीही है, उसी लिये क्रमसें ज्यादे लाभ होनेकाही कारण तीर्थयात्रा है. अपने गाँवमें जिन बिंब होवे; मगर ये कारण सभी नहीं प्राप्त होते हैं वास्ते शास्त्रकारोंने यात्रा जानेमें लाभ बतलाया है. उसी सबबसें यात्रा करके ऐसे साधन साध्य करै कि जिससे बहुतही फायदा होवे.

६८ प्रश्नः—सामायिक पौषध और प्रतिक्रमणके अंदर आभूषण रक्खे जाँय या नहीं?

उत्तरः—पंचाशकजीमें सामायिक व्रताधिकार पत्र १८ वे में है, वहां आभूषण उतार डालनेका कहा है, और पोषधाधिकार पत्र १९-२० मेंभी आभू-

पण उतार डालनेकी आज्ञा दी है. फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १७७ में शंखजीका-अधिकार है, वहांभी आभूषण उतारकर पौषध लिया है. फिर दूसरी तरह भी समझनेका है कि समायिक संयुक्त जो पौषध करता है उसमें आहारका पौषध देशसें तथा सर्वसें है, और शरीर सत्कारादिक पौषध सर्वथा करनेका कहा है तो फिर आभूषण क्योंकर रख्खे जॉय? फिर तत्त्वार्थमेंभी पत्र २४३ में आभूषण पहरकर सामायिक पौषध करना योग्य नहीं ऐसा कहा है. सौभाग्यवती स्त्रीयें जो अहित्रा-तन-सधवाचिन्ह रूप शृंगार पहरती हैं और किसी समयभी जो शंगार परित्याग करने योग्यही नहीं वैसे भूषण रख्खे जावेः मगर उस शिवा-यके भूषण स्त्रीयेंभी पौषधादिकमें त्याग कर देवे ऐसी आज्ञा है.

१९ प्रश्नः—कोइ मुनी संयमसें भ्रष्ट हुवे हैं वे प्रवृत्ति नही कर सकते; मगर शुद्ध प्ररुपणा करते है तो उनके मुखसें धर्म श्रवण करना या नहीं?

उत्तरः—शुद्ध प्ररुपक गुण उपदेशमाळामें बहुत प्रशंसनीय कहा है. ऐसे पुरुषोंको शास्त्रमें संवेगपक्षी कहे हैं. शुद्ध प्ररुपकपणा प्राप्त होना बडा कठिन है, और जिनकों वो गुण प्राप्त हुवा होवे तो उन्की पास धर्म श्रवण करना चाहियें. उन्होंका विनयभी करना उचित है. कितनेक कहते है कि जैसे तैसेके पास जावें सही मगर उन्कों वंदना न करे. ऐसा कहना अयोग्य है; सबब कि जिनके पास श्रवण करना है और ज्ञान लेना है, तो बेशक वंदनाभी करनी चाहियें. और वंदना करनी योग्य नहीं तो श्रवण कर-नाभी योग्य नहीं. लेकिन संवेगपक्षीकी मुख्य परीक्षा इतनीही है कि दूसरे त्यागी पुरुष हैं, अच्छी तरहसें संयम पालन करते हैं वो पुरुषकी निंदा नहिं करेंगे, मगर उनका बहु मान करेंगे, उनेकां सेवा भक्तिकी प्रेरणा करेंगे; क्यों कि आपसें संयम पलता नहीं, मगर समकितगुण आपमें रहा है, उस्से वे अपने आपके दूषणकी निंदा करेंगे. और आपसें अधिक संयम पालते हैं उन्का अवश्य बहुमान करेंगे. गुणवंतका ऐसा स्वाभाविक धर्म है, और ऐसे पुरुष हैं वे श्रावकको सेवा करनेही योग्य हैं. वर्तमान समयमें बकुशकुशल संयमभी हैः वास्ते अल्प दूषण देखकर

मुनिपणेकों निषेधनेसें बडा भारी दूषण होता है, इसलिये शुद्ध प्ररुपक पर बहुत लक्ष रखना. गुणीकी निंदा होवै तो फिर दूसरे मरतवे गुणिका योग मिलना दुर्लभ हो जावै. निर्गुणिकी साथ राग-प्रीति हो जावे तो गुणिजनपर द्वेष हो आवै, तो पुनः धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है. वास्ते अपने आपके आत्माकी हिफाजत रखकर शुद्ध प्ररुपणा करते हैं तो वे अवश्य सेवा करनेके लायक है.

७० प्रश्नः—साधुजी महाराजके पास कोइ शख्स दीक्षा लेनेकों आवे तो उन शख्सकें माता पिताकी आज्ञा मिल चुकी है या नहीं असा निश्चय कर पीछे दीक्षा देवै या उस बिनाभी देवै ?

उत्तरः—माता पिताकी आज्ञा मिल चुके बाद दीक्षा लेनेकी मर्यादा है; मगर वो मर्यादा अष्टकजीमें हरिभद्रसूरी महाराजने दर्शाइ है उनका रहस्य निम्न लेख मुजब है:—

दीक्षा लेनेवाला अपने मा बापकों समझाकर आज्ञा मांगे, और मावाप आज्ञा देवै वो उत्तम है; लेकिन मातादिक आज्ञा न देवें तो आप खुद, साधुका वेष पहरकर घरमें रहवै और रजा मॉगे. असें कितनेक दिन घरमें रहवे तथापि रजा न मिलै तो उस पीछेसें घरमेंसें चल धरे और गुरुके पास जाकर संयम अंगीकार कर लेवै. इस विषयमें वहां असाभी तर्क किया है कि—'इस तरह घरसें चला जाय तब घरमे रहे हुवे माततातादिक दुःखी होवे उनका दोष दीक्षा लेनेवालेकों लगे ?' इसका जवाब असा दीया है कि—किसीके माता पिता रोगी हैं और वे किसी गॅावकों जाते होवै तथा इस वक्त उनका पुत्रभी साथ होवै और उस मुशाफरी दरम्यान वडी भारी बीमारी प्राप्त हो जानेसें पुत्र औषध लेनेकों कहीं चला जाय और कदाचित पीछेसें माता पितादिमेंसें किसीका मरण हो जावै तो उसका दोष पुत्रकों नहीं लगता है. इसी तरह माता पितादिककों समजानेपरभी आज्ञा न देवै तो वो दीक्षा लेनेवालेकों दोष नहीं लगता है जैसें पुत्र औषधी लेनेकों गया और पीछेसें मातादि मरण पावें तो उसकों दोष नहीं, तैसेंही वो पुत्रभी जानें कि मैं दीक्षा लेकर और ज्ञानवंत होकर पीछे माता पिताके मनोगत अज्ञानजनित रोग मिटनेका वोध करुंगा. असी भावनासें जावै और पीछेसे मातापितादिकका मरण हो जावै तो उनकों दोष नहीं होता है. असा अधिकार अष्टकजीके पत्र

९२ मै पचीसवे अष्टकजीमें है. वैसेंही पंचवस्तुमेंभी दीक्षाका अधिकार बहुत लिखा गया है, वहांभी बहुतसे तर्क किये है कि-'मातापिता वृद्ध हैं और पुत्र दीक्षा लेवै तो ... दयाके परिणाम किस तरह कायम रहे ?' उनका जवाब ऐसा दिया है कि दीक्षा लेनेवालेको जगतमें जितने जीव है वे सबके साथ अनंताकाल व्यतीत हुवा, उससें मातपिताका संबध हुवा है, तब एक मातापिताकी दया पालन करे कि भवोभवके मातापिताकी दया पालन करै ? उनके चित्तमें तो चौदहराजलोकके जीवकी दया है, उनमें मातापिताकीभी दया करनेकों तैयार है; लेकिन उसके कहने मुजब वे नहीं करते है तो फिर किस तरहसें दया पालन करै ? नहीं तो उसके भाव तो दयाकेही हैं. ऐसे ऐसे कितनेक प्रश्न कहे हैं वो पहेले हिस्सेमेंही पांच वस्तुयं हैं. (वो प्रत हाजिर न होनेसें पत्रांक नहीं लिखा है.) यह अधिकार तर्फ निगाह करनेसें गुरुकों मातापितादिक दीक्षा लेनेवालेकों रजा देवै तभीही दीक्षा देवै ऐसा संभव नहीं है. लेकिन दीक्षा लेनेवालेकी परीक्षा तो बेशक करनी चाहियें. उसके बारेमें पंचाशकजीके पत्र ३२ में दीक्षा लेनेवाला समवसरणकी रचना करै वहां प्रथम जगह शुद्ध करनेके लिये काजा निकाले, पीछे गंधोदकसें छंटकाव करै, पीछे समवसरणमें प्रभुजीकी स्थापना करै, तथा पर्षदाकोभी समवसरणमेंही रचना करै. पीछे दीक्षा लेनेवालेकी आंख पर पाटा बांधकर हाथोंमें पुष्प देवै, वे पुष्प तीन दफे समवसरणमें डाल देवै उसमेंसें एक दफेभी पुष्प अंदर गिरे तो दीक्षा देवै और तीनू दफें पुष्प बहार-समवसरणकी मर्यादा के बहार गिर जावै तो दीक्षा न देवै. ऐसा अधिकार पंचाशकजीके पत्र ३४ मे हैं, तथा पत्र ११७ मे दूसरा अधिकार है-उनमे दीक्षा लेनेवाला श्रावककी पडिमा वहन करै; सबब कि पडिमा वहन की होवै तो उनकों दीक्षा पालनी कुछ मुश्किल नहीं पडती. फिर इसमें काल विलंब होवै उसके वास्ते गुरुकी निगाहमें आवै तो छः महिने तक अपने साथ फिरावै, उसें पीछे योग्य मालूम होवै तो दीक्षा देवै. और जीव विशेष योग्य होवै तो वरत शिष्यकों दीक्षा देवै, ऐसीभी प्रणालिका है; वास्ते दीक्षा देनेका काम गुरुकी आधीनतामें है. गुरुमहाराजकों जैसें योग्य लगे वैसें कर लेवै. मगर श्रावक विना विचारसें दीक्षा देनेवालेकी निंदा करै तो वो उससें महा दूषण उपार्जन करता है. गुरुनिंदाका बडा भारी दूषण है. गुरुकी भक्ति करनेमें सहज

गुरुके शरीरकी मलीनता लगनेसें अंग रहित जीव हुवे हैं. यह अधिकार वासुपूज्यजीके चरित्रमें है. वास्ते जैसें बन सके तैसें गुरुमहाराजका अवर्णवाद नही बोलना. गुरु-लाभालाभ देखकर काम कर लेवें, वो अपनी समझमें नहीं आ सकता है.

७१ प्रश्नः—श्रावक प्रतिक्रमण करता है वे हरएक वस्तुओंके क्या क्या हेतु हैं?

उत्तरः—प्रतिक्रमणहेतुगर्भित ग्रंथ कि जो जयचंद्रसूरीजी कृत है, उनके और क्षमाकल्याण मुनीने हेतु दर्शाए हैं उनके आधारसें लिखता हुं कि–गुरु-महाराज होवें तो गुरु समीपमें प्रतिक्रमण करना, और न होवे तो स्थाप-नाचार्यजीकी समक्ष करना. वे स्थापना दश प्रकारसें कही हैं. उनमेंसें जिस स्थापनाका योग मिल जावे उसकी स्थापना करके नवकार मंत्रका उच्चार करे; क्यों कि नवकार मांगलिकरूप है. सब प्रकारके मांगलमें नवकार मुख्य मंगल है; वास्ते प्रथम नवकार पढकर पीछे पंचिंदियका पाठ पढे. सबब कि पंचिंदियमें आचार्यमहाराजके गुणोंका वर्णन है वैसे आचार्यकी स्थापना की है, इस हेतुसें पढे. बाद इरियावही पडिकमे; क्यों कि हरएक धर्मकरणी शुद्ध होकर करनी चाहियें. उस इरियावहीमें पापकी आलोयणा होनेसें शुद्ध हो सकता है. फिर जो पाप आलोयणासें शुद्ध न होवे वो कायोत्सर्गसें शुद्ध होवे उस वास्ते काउस्सग्ग करनेका है; मगर वो काउस्सग्गके आगार रखने चाहिये, उस वास्ते तस्सउत्तरी अन्न-त्थऊससीएणं कहेना. पीछे एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. उसका सबब यही है कि एक लोगस्समें चंदेसुनिम्मलयरा तक पचीस श्वासो-श्वास होते हैं वे नही गिने जावे, वास्ते लोगस्स गिननेसें प्रभुका ध्यान होवे और वो वक्तभी पूर्ण हो सके. काउस्सग्ग पूर्ण कर पीछे पूर्ण लो-गस्स कहेना उसका सबब कि सामायिकके अंदर प्रथम देववंदना करनी चाहियें वो लोगस्समें हो जाती है. बाद मुहपत्ति पडिलेहनेका आदेश गुरुके पाससें मांग ले और मुहपत्ति पडिलेहवे. उसका सबब कि गुरुको वंदना करनेमें पंचांग एकठे होवें, उसमें किसी जीवकी विराधना हो जावे वास्ते मुहपत्ति पडिलेहनी कि जिस्से जीव होवे सो दूर हो जावे–उस वास्ते मुहपत्ति पडिलेहवे. बाद सामायिक संदिसाहु ? यानी सामायिकका

आदेश दो. पीछे गुरुजी आदेश देवैं. फिर दूसरी दफै गुरुजीकों कहेवै कि सामायिक ठाउं? तब गुरु आदेश देवैं. पश्चात् मंगलार्थ नवकार पढकर इच्छकारी भगवन् पसाय करी सामायिक दंडक उच्चरावोजी, पीछे गुरुजी उच्चरावैं. गुरुके पास व्रतका उच्चार करना उस्से गुरुका विनय होता है, पीछे गुरु न होवैं तो श्रावकमें जो वृद्ध-ज्ञानवृद्ध होवै वो करेमिभंतेका पाठ उच्चरावें. अब सामायिक लेनेकी तथा प्रतिक्रमण करनेकी रीति खडे खडेही है. बैठे बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका प्रायश्चित्त एक आंबिलका श्राद्धजितकल्पमें कहा है; वास्ते शक्ति होवै वहां तक बैठे हुवे प्रतिक्रमण करना योग्य नहीं है. फजरका प्रतिक्रमणभी खडे खडेही करनेका है. पडिक्कमणहेतुगर्भित देखोगे तो मालूम होगा कि सामायिक लिये बाद खमासमण देकर बेसणेसंदिसाहु? यानी मैं बैठुं? तब गुरु आदेश देते है. उस पीछे पुनः खमासमण देकर बेसणेठाउं? यानी आदेश होनेसें बैठता हुं. इससेंभी साबीत होता है कि बैठे हुवे प्रतिक्रमण करनेका होवा तो ऐसा आदेश लेनेकी कुछभी जरुरत न रहती; लेकिन खडा रहाथा उस्से बैठनेकी रजा मांगनी पडी. अब बैठकर सज्झाय ध्यान करना, उस वास्ते सज्झाय संदिसाहु? यानी सज्झाय करुं? गुरु कहेवै कि करो. तब फिर ज्यादा विनय बतलानेके लिये कहे के 'करुं?' तब फिर गुरु कहेवै उस बाद तीन नवकार पढकर सज्झाय ध्यान करना. नवकार पढनेका मतलब यही है कि हरएक कार्य मांगलिक पाठ सहित करना दुरस्त है. अब जिसकों प्रतिक्रमण करना हो तो वो प्रतिक्रमणमें छठ्ठा पच्चख्खाणका अंतिम आवश्यक आता है उस वक्त प्रत्याख्यानका काल-वक्त व्यतीत हो गया होता है. वास्ते मुहपत्तिका आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवै और शरीरकी उस्से शुद्धि कर लेवै. मुहपत्ति पडिलेहनेकी वक्त खमासमण दे आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहवै ऐसा सेनप्रश्नमें कहा है. पीछे द्वादश वंदन करै; क्यौं कि पच्चख्खाण गुरुके पास करना है वास्ते उन्होंका विनय करनाही मुनासिब है, वो विनय करके गुरुमुखसें पच्चख्खाण करै. बाद चार थुइ सहित देववंदन करै; सबब कि हरेक कार्यमें प्रथम देववंदन करनाही चाहियें. देववंदनमें प्रथम स्तुति अरिहंतजीकी भक्तिकी पढै,

दूसरी स्तुतिमें समस्त अरिहंतजीकी भक्ति होती है, तीसरी स्तुतिमें ज्ञानकी स्तुति होती है, और चौथी स्तुतिमें समकित दृष्टि देव शासनरक्षक है उनकी यादीके निमित्त पढे–इस मुजब चार स्तुतिका हेतु है. नमुथ्थुणं पढकर चार खमासमण देकर चार पुरुषकों वंदन करते हैं यानी प्रथम भगवान् हुं. ये भगवंत तथा किसी जगह धर्माचार्यजिनके द्वारा धर्म प्राप्त हुवा है उनकोंभी भगवान् वंदनमें वंदना करनी. वास्ते भगवान्कों वंदना करनेके वक्त भगवान् वा धर्माचार्यकों उपयोगमें लेवे. आचार्य तथा उपाध्याय और साधु ये चारोंकों वंदना करै. पीछे इच्छकारी भगवन् पसाय करी समस्त श्रावककों वंदना करुं? श्रावककों वंदनके निमित्त पडिक्कमणाहेतुगर्भितमें तथा धर्मसंग्रहमें तथा ज्ञानविमलसूरीकी बनाइ हुइ प्रतिक्रमणविधिकीसज्झायमेंभी हैं, वो सज्झायमालाकी बुकके पत्र २०४ में है. और प्रवृत्तिभी कितनेक ठोर पर है. इस मुजब वंदना कर रहे बाद देवसी पडिक्कमणे ठाउं? यानी अब देवसी प्रतिक्रमण शुरु करता हुं. दिनके पापका सामान्यपणेसें मिच्छामिदुक्कडं देना. देवसिअदुच्चिंतिअ कहे बाद करेमिभंते कहनेसें प्रथम आवश्यक शुरु हुवा. पहेला सामायिक आवश्यक कहा जाता है, ऐसा बारंबार कहनेकी मतलब इतनीही है कि प्रतिक्रमण करना सो समता पारिणाममें रहकरकें करना. पुनः पुनः करेमिभंते कहनेसें समताकी वृद्धि होती है. बाद देवसि अइयारोकओ कहकर तस्सउत्तरी पढ पीछे आठ गाथाका काउस्सग्ग करना. उसका सबब यह है कि आगे पाप ओलोचना है वो काउस्सग्गमें रहकर याद कर लेनी है; उस वास्ते कायोत्सर्ग करना. पीछे लोगस्स कहना, यह दूसरा आवश्यक है. चोविसथ्था नामक यह आवश्यकमें चोविश जिनेश्वरजीके गुणग्राम करनेके हैं. बाद मुहपत्ति पडिलेहवै. तत्पश्चात् गुरुके आगे पाप ओलचना है वास्ते उन गुरुकों वंदना करनी चाहिये; वास्ते द्वादशावर्त वंदन करना. यह तीसरा आवश्यक है. पीछे देवसी ओलाउं कहकर सामान्य प्रकारसें ओलोचनारूप देवसिं अइआरोकओ कहकर गमणागमण, अठारह पापस्थानक आलोय लेवै. बाद वंदितु कहनेके प्रारंभमें मंगलार्थ नवकार

कहकर समभावकी वृद्धि निमित्त करेमिभंते और सामान्य आलोचनारूप देवसि अइराओकओ कहकर विस्तारसे पाप आलोयणके वास्ते वंदित्तु कहेवे. यह चौथा आवश्यक है. समता परिणाममें स्थिरतायुक्त वंदित्तु कहना और जो जो अतिचार आवें उनके दूषण लगे होवें तो उनकी निंदा करें. महान् वैराग्यभाव ल्याकर पापको आलोय लेवे. वंदित्तु पूर्ण हुए बाद जैसें राजाके आगे अर्ज किये बाद नमन करनाही योग्य है, तैसे पाप ओलये बाद गुरुजीकों नमन करनाही लाजिम है; वास्ते वंदन कर अब्भुट्ठिओ अभ्यंतर खमाना दुरस्त हैं. उसमें जो गुरुजीकों खमाये बाद पाप आलोचना शुद्ध न होवे वो काउस्सग्गसें शुद्ध होवें वास्ते काउस्सग्ग करना. गुरुवंदना करकें समस्त जीवोंकों खमानेके लिये आयरिय उवजझाये कह कर समभावकी वृद्धिके वास्ते करेमिभंते कहेवे, बाद जोमेदेवसिओ अइआरोकओ कहकर पाप निंदकें काउस्सग्गके आगारादिक हितार्थ तस्सउत्तरी पढकर चारित्राचारकी विशुद्धिके लिये दो लोगस्सका काउस्सग्ग करना, यह पांचवा आवश्यक है. काउस्सग्ग पूर्ण हुवे बाद मभुस्तवनाके निमित्त प्रकट लोगस्स कहेना. सव्वलोए कहकर समकित शुद्धि होनेके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. बाद पुष्करवरदी कहकर ज्ञानकी शुद्धिके वास्ते एक लोगस्सका काउस्सग्ग करना. यहांपर कोइ शंका करेगा कि—चारित्र शुद्धिका काउस्सग्ग दो लोगस्सका क्यों है ? उसके समाधानमें यही जवाब हैं कि चारित्राचारमें ज्यादे दूषण लगते है वास्ते ज्ञानी माहाराजने दो लोगस्सका काउस्सग्ग कहा है. तदनन्तर सिद्धाणंबुद्धाणं कहकर श्रुतदेवता आराधनके वास्ते एक नवकारका काउस्सग्ग करना, उसका सबब यही है कि श्रुतज्ञानसें समस्त धर्म मालूम होते है और अमलमें लिये जाते है. तो श्रुतदेवकी साबता मिलनेसें श्रुतधर्मकी वृद्धि होवे. मल्लवादिजीकों कोइभी गुरुका योग नही था; मगर श्रुतदेवका आराधन किया था उस्सें श्रुतदेव प्रसन्न हुवे और बौद्धकी साथ जय मिलाया. बौद्धलोगोंकों देश बहार निकाल दियें, वास्ते श्रुतदेवताका काउस्सग्ग करके स्तुति कहनी. तत्पश्चात्

क्षेत्रदेव आराधनार्थ एक नवकारका काउस्सग्ग करना; सबब कि जिसके क्षेत्रमे रहना उस क्षेत्रका देव प्रतिकूल होवे तो धर्माराधनमें विघ्न होवे वास्ते निर्विघ्नतासें धर्माराधन होनेके लिये अेक काउस्सग्ग और स्तुति करना चाहिये. यह अधिकार आवश्यकसूत्रकी काउस्सग्ग निर्युक्तिमें कहा है. फिर भत्तपच्चख्खाणपयन्नामें कहा है कि-मुनि संथारा करै उस वक्त कुल संघ क्षेत्रदेवताका काउस्सग्ग करै; सबब कि अनशन करनेवाले मुनिकों कोइ देव उपसर्ग न करै. उसी मुजब यहांपरभी ज्ञानदर्शनचारित्रद्वारा मोक्षमार्ग साधक पुरुषके दुरित हरनेके लिये कहना है, सो अैसे मुनिकी भक्ति है; वास्ते करनेके योग्य है. बाद मंगलार्थ नवकार पढ मुहपत्ति पडिलेहवे, और छठ्ठा आवश्यकमें पच्चख्खाण करना है उस वास्ते गुरुकों वंदना करै. अवसर हो जानेके सबवसें पच्चख्खाण प्रथम करालिया गया है उस्सें पुनः नहीं करना मगर छवुं आवश्यककी संख्या बतानेकी मर्यादा है. छवुं आवश्यक पूर्ण हुए उस्की प्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिये देवकी स्तुतिरुप नमोस्तु वर्धमानाय, नमुथ्थुणं स्तवन कहना. बाद १७० जिन वंदनरुप वरकनक केहवे. स्त्रीयोंकों उक्त पाठ पढनेकी मना है वास्ते वे संसारदावाकी स्तुति पढें. तदनन्तर भगवन् प्रमुख वंदन कर अढाइद्वीपके समस्त मुनियोंकों नमन करनेके वास्ते अड्ढाइज्जेसु कहकर उस बाद कुछ दिवस संबंधी पाप रह गया होवे उनके लिये देवसिप्रायश्चितका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना. पीछे लोगस्स कह कर सज्झायका आदेश लेकर सज्झाय ध्यान करना यहांतकके हेतु वहां बतलाये गये हैं वो दाखल किये गये हैं.

राइपडिक्कमणेमें प्रथम कुसुमिण दुसुमिण उड्डावणियं राइय पायच्छित्तविसोहणत्थंका चार लोगस्सका काउस्सग्ग करना शुरु होता है. उनका हेतु यही है कि स्वप्न संबंधी दोष निवारणके वास्ते करना. अगर जो निद्रामें-स्वप्नमें चतुर्थव्रत-ब्रह्मचर्यादिकमें दूषण लग गया होवे तो १०८ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग करनेका फरमान है; वास्ते सागरवरगंभीरा तक लोगस्स पाठका काउस्सग्गमें उपयोग करना. बाद भरहेसरकी सज्झाय कहेवें-क्यों कि उत्तम पुरुषके नाम-स्मरण होवें. बाद एक लोगस्सका काउस्सग्ग चारित्रविशुद्धिके वास्ते रात्रिमें क्वचित् दूषण लगे होवे उस वास्ते करना. बाद

दर्शनविशुद्धि निमित्त एक लोगस्सका तथा ज्ञानकी विशुद्धि निमित्त अष्ट गाथाओंका काउस्सग करना और उसमें जिस व्रतमें दूषण लगा होवे उसकों याद करना. यह काउस्सग वंदित्तु कहनेके अव्वल करनेके आते है उसका सबब इतनाही है कि प्रथम यह क्रिया होवे तो निद्रा ज्यादे मुक्त हो जावे और उससे पाप पूर्णपणेसें ओलोये जावे; वास्ते राइप्रतिक्रमणमें पेस्तर आते हैं. वंदित्तु बाद कायोत्सर्ग करना है उसमें तप सम्बंधी भावना भावे कि–हे चेतन! तुं तपश्चर्या कर. भगवंतश्रीजीने छमासी तप करकें बहुतसे कर्मनाश कीए हैं वैसे तुंभी छमासी तप कर, वो न बन सके तो एक उपवास उस्सें कम कर. यौंभी न बन सके तो दो या तीन उपवास कम कर, ऐसें उनतीस उपवास कम करने तक भावना भावे. तदनंतर पांचमासी, चौमासी, त्रिमासी, द्विमासी, एकमासी तपकी उक्त संकल्प मुजब न्यूनोपवासें करते करते जो बन सके उसकी भावना भावे. पुनः हे चेतन! ऐसाभी न बन सके तो चौतीसभक्त अगर बत्तीस, अठ्ठाइस, छव्वीस और चोवीस भक्तका त्याग कर. और ऐसाभी न हो सके तो दो दो भक्त कम करते करते अंतमें चोथभक्त तकभी त्याग कर. और येभी न हो सके तो आयंबिल, नीवी, एकासना, बैसना, पुरिमड्ढ, साढपोरिसि, पोरिसि, नौकारसी–मतलबमें जो यथाशक्ति बन सके वो तप कर; मगर बिगर पच्चखाणसें मत रहा कर. ऐसा चिंतवन करे. तदनंतर काउस्सग पूर्ण कर प्रकट लोगस्स कहकर मुहपत्ति पडिलेहवे. वंदन कर तीर्थवंदना करके पच्चख्खाण कर लेकर विशाललोचनका पाठ प्रमोदार्थ पढकर चार स्तुतिसें देववंदना करनी. पीछे भगवान् प्रमुखकों वंदन कर अड्ढाइज्जेसु खामे. यदि पोषध पेस्तर लिया होवे तो बहुवेल प्रमुखका आदेश लेवे. इस मुजब हेतु मेरी समजमें आये हुवे है सो लिखे हैं. क्षमा मांगनेके वक्त हाथ नीचे रखकर खामनेका हेतु यही है कि गुरुके चरन पर रखता हुं ऐसा संकल्प सिद्ध करना. स्थापना करनेके वक्त हाथ स्थापनाजीके स्हामने रखते है उस्का हेतु यही है कि ये स्थापनाचार्यजीकी स्थापना करता हुं. वंदना करनेके वक्त मुंहपत्तिकों दोनू हाथोंकी दशों अंगुलियें लगाकर मस्तकसें स्पर्श करना; क्यौं कि गुरुके चरनकी धूरी सिरपर चढाता हुं ऐसा बतलानेका है वास्ते वैसे करना चाहियें. ये सभी विनयकी निशानी है, और वीतरागदेवका धर्म विनयमय है; वास्ते ज्यौं बन सके त्यौं बडेका विनय करनाही उचित है. विनयसें करके ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी वृद्धि होती है.

७२ प्रश्नः—प्रतिक्रमण कौनसे वक्त करना मुनासिब है ?

उत्तरः—दोनुं प्रतिक्रमण संध्यामैंही करने चाहियें यानी संध्याका प्रतिक्रमण (देवसि) अर्द्ध सूर्य ब्हार होवे उस वक्त वंदितुं कहना चाहियें. उस करते मोडा अगर जल्दी करनेका प्रायश्चित ज्ञानविमलसूरीजीकी बनाइ हुइ स्वाध्यायमें कहा है. कदाचित् किसी सववके लिये अपवादसें अैसीभी आज्ञा है कि–देवसि प्रतिक्रमण जल्दी करलेने की आवश्यकताही होवे तो दुपहरके बारह बजे बाद और मोडा करें तो रात्रिके बारह बजे तक किया जावे और राइ प्रतिक्रमण जल्दी करना हो तो रात्रिके बारह बजे पेस्तर किया जावे. इस मुजब प्रतिक्रमणहेतुगर्भितमें कहा है. उसका सबब यही है कि कुछ जरूरी कार्यमें फँस गया होवे और बिलकुल वक्त न मिल सका हो तो प्रतिक्रमण करनेका नियम भंग न हो जावे उस लिये ये फरमान किया गया है. क्यों कि जीवकी अैसीही आदत होती है कि एक दिन कामका क्रम छोड दिया जावे तो फिर हम्मेशां वैसाही प्रमाद हो आता है. वास्ते अपवादसें यह समयका फरमान किया गया है; लेकिन बनते तक मुकरीर वक्तपरही करना योग्य है. कुछभी उपाय समय हाथ करनेका न रहा होवे तभी अपवादका फरमान उपयोगमें लेना चाहिये; क्योंकि हरिभद्रसूरीजीने कहा है कि–समयपर खेती करनेसे सफल होती है; मगर बे मोसममें करे तो निष्फलता हाथ आती है. वास्ते अकालमें क्रिया करनेसेंभी वैसीही निष्फलता मिलती है, इस लिये जो जो धर्मक्रिया करना हो वो मुकरीर किये गये वक्तमें करे कि जिस्से फल प्राप्त होवे.

७३ प्रश्न—प्रतिक्रमणके भीतर षट् आवश्यक है उसमें कौनसे कौनसे आचारकी शुद्धि होती है ?

उत्तरः—सामायिक आवश्यक वा प्रतिक्रमण आवश्यक और काउस्सग्ग आवश्यकसें चारित्राचारकी विशुद्धि होती है; क्योंकि सामायिक लेनेसें सावद्य यानी पाप उसका त्याग होता है उससें चारित्रकी विशुद्धि होती है. प्रतिक्रमण पापकी निंदा गर्हा करनेसें अतिचारकी विशुद्धि होती है उस्सें चारित्रकी

विशुद्धि होती है. काउस्सग्ग करनेसें कायाका वोसिराना होता है, एक आत्माकी अंदर उपयोग स्थापित होता है उससें समभाव वृद्धि पाता है. ... गुणमें एकाग्रता होती है वही चारित्र है; वास्ते चारित्राचारकी शुद्धि होती है. चउविसथ्था यानी लोगस्ससें दर्शनाचारकी विशुद्धि होती है. पच्चख्खाण आवश्यकसें तपाचारकी विशुद्धि होती है और वंदन आवश्यकसें ज्ञानाचारकी विशुद्धि होती है; सबब कि गुरुजीका विनय करना ये ज्ञानका आचार है और छठें आवश्यकमें वीर्य स्फुरायमान करना है वास्ते वियाँचारकी शुद्धि होती है. हम्मेशां संसारमें वीर्य स्फरायमान कर रहा है वो वलवीर्य है. धर्ममें वीर्य श्रावकको स्फुरायमान करनाहे वो, श्रावकको वालपंडित वीर्य कहा है और मुनि आराधकपणेसें प्रवर्त्तते हैं वे पंडित वीर्य है. इस मुजब छठं आवश्यकसें पांचों आचारकी विशुद्धि होती है.

७४ प्रश्नः—ज्ञान पढनेसें वा श्रवण करनेसें अगर वांचनेसें क्या लाभ होता है ?

उत्तरः—ज्ञान दो प्रकारका है यानी एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर. उसमें जो बाह्य ज्ञान वो संसारके व्यौपार रोजगार धन पैदा करना, कला कौशल्यता, विपयसेवन इत्यादि बाबतका जो ज्ञान है वो आत्माका हित करनेवाला नहीं है; मगर भवभ्रमणा वढानेका कारणभूत है. और स्वर्ग नरकका स्वरूप जानना उससें वस्तुबोध होता है, तथा उत्तम पुरुषोंके चरित्र श्रवण करना और श्रावक, मुनिके बाह्यके व्रताधिकार जानना वोभी बाह्य ज्ञान है; मगर अंतरमें गुण होनेका कारणभूत है; क्यौं कि उत्तम पुरुषोंने जो जो मार्गसें अंतरंग ज्ञान मिलाकर आत्मा निर्मल किया वैसें करनेका आलंबन है, और अंतरंगविशुद्धिके कारण है. बाह्यसें त्याग हुइ भइ वस्तुका अभ्यास पढनेसें उनके पर इच्छा नहीं जाती है. ये सुज्ञजनके अनुभव गम्य है. ऐसा होनेसें उन चीजोंके संबंधी विकल्प नाश हो जाते हैं, तो आत्माकी निर्विकल्पदशा जाग्रत होती है. फिर व्रतोंसें संसार संबंध छूट जाता है, तो उस संबंधी कारण नाश हो जाते हैं, उससें उनके विकल्पभी नाश होते हैं. पुनः हिंसा असत्य भाषण प्रमुखका त्याग होता

है, तब किसी जीवके साथ क्लेश विकल्पभी नहीं होवै; वास्ते ये बाह्यज्ञानसें व्रतादिक अच्छी तरहसें पालन करै तो अैसे अंतरंग गुणका कारण होवै. अब दूसरा अंतरज्ञान उससें आत्मा क्या पदार्थ है? यह शरीर मालूम होता है वह क्या पदार्थ है? ये शरीरादिककी प्राप्ति काहेसें होती है? ये वर्त्तना होती है वो स्वाभाविक है या विभाविक है? आत्मा नित्य है या अनित्य है? छउं द्रव्यके भावके क्या धर्म हैं? छउं द्रव्यके क्या क्या गुणपर्याय हैं? निश्चय स्वरूप क्या है? व्यवहार स्वरूप क्या है? और विभाविक आनंद वो क्यां? इत्यादिं स्वपर स्वरूपका बोध यह बोध होनेसें होवै. बाद एकांतमै बैठकर अपने आत्मस्वरूपमै स्थिर चित्तकर बाह्यप्रवृत्ति उद्योग हठाकर एक आत्मज्ञानमै लीनता करै. पेस्तर श्रुतज्ञानके जोरसें अपने आत्माके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव शोचै कि द्रव्यसें आत्मा द्रव्य एक पदार्थ है. द्रव्य किसकों कहेवे? जिनका तीनों कालमै विनाश नहीं. जो विनाशी द्रव्य है वो उपचरित द्रव्य है. फिर द्रव्य किसकों कहेवे? गुणपर्यायसें युक्त सो द्रव्य कहा जावै. वो आत्मद्रव्य क्षेत्रसें असंख्यात प्रदेशमय है. सूक्ष्मजंतुमै सूक्ष्मजंतु जितने क्षेत्रमें रहते हैं सो जुगलियोंके तीन गाउ प्रमाण शरीर है, उसमें उन प्रमाणसें विस्तारयुक्त रहते हैं. पुनः केवलज्ञानी महाराज केवलिसमुद्घात करते हैं तब कुल चौदह राजलोकमै आत्म प्रदेश फैलाते हैं, तब अखिललोक प्रमाणसें क्षेत्र है. कालसें अनादिकालका है वो कोइ दिन अंत होनेका नहीं, उससें अनंत है. भावसें अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्रं, अनंतवीर्य, अव्याबाधसुखमय, अगम, अगोचर, अलक्ष्य यह यादि अनंतगुण वो आत्माका भाव है. अैसा भाव जानकर आत्मा परभावमैसें चित्तकों हठाकर भावे कि-धन कुटुंबादिक जो पदार्थ हैं वे मेरे नहीं हैं. यह शरीर है वोभी मेरा नहीं है; सबब कि जो मेरी वस्तु है वो नाश नहीं होती, मेरेसें अलग नहीं होवै. और यह शरीर तौ नाश होता है. मेरा और इसका स्वभाव अलग है. ये शरीर सो पुद्गल पदार्थ है, पुद्गलके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव न्यारे हैं. पुद्गल द्रव्य सो परमाणु है और वैसे अनंत पर-

माणु मिलकर जो पदार्थ हुवा है उनकों स्कंध कहा जाता है, उनका ये शरीर बना है. अैसेही स्कंध विखरकर पीछे परमाणु हो जाते हैं. फिर इसमै जडता स्वभाव है उससें मेरे द्रव्य और शरीरके द्रव्य न्यारे हैं. पुनः क्षेत्र जितना वडा शरीर वा स्कंध है उतना क्षेत्र अवकाश कररहते हैं. परमाणु है सो एक आकाश प्रदेश अवगाढकर रहते हैं; वास्ते आत्मा और पुद्गलका क्षेत्र भिन्न है. कालसें परमाणु अनादि अनंत है, शरीरादि स्कंधसादि सांत है. यानी आदिभी है और अंतभी है. भावसें अचेतन यानी जडभाव वर्ण गंध रस स्पर्शमय है तो भावसेंभी आत्माके गुणसें शरीर जो पुद्गल द्रव्य उसका भाव भिन्न है. इस तरह पुद्गल द्रव्यका स्वरूप जानता है. आप जडभावसें भिन्न होता है. अैसेही चारों निक्षेपेसें शोचै. नामसें जीव वा आत्मा अैसा नाम है. जीव और स्थापना निक्षेपा सो जीव अैसे अक्षर लिखना, वा मूर्ति वनानी. द्रव्य निक्षेपा सो असंख्यात प्रदेशमय-ये तीन निक्षेपे तो व्यवहार हैं. भाव निक्षेपेसें आत्माका अरुपि स्वरूप, अव्यावाधस्वरूप, अक्षयस्वरूप, सभी वस्तु जानने देखनेका स्वभाव अैसा आत्माका स्वभाव जानता है. जो जो पुद्गलदशाकी प्रवृत्ति मनका चिंतवन वन रहा है वो मेरे स्वभावका नहीं. अैसा निश्चय होनेसें जो जो जडप्रवृत्ति उसकेपर उदासीन वृत्ति होवै. यहांपर कोइ शंका करेगा कि-'उदासीन वृत्ति और वैराग्य भिन्न है?' इसके समाधानमै यही उत्तर है कि शास्त्रमै वैराग्य किसकों कहते है? जो परवस्तुपर भाव जाता है उनकों पीछे हठाकर अपने मनकों दूर हठा लेता है, उसकों उदासीन वृत्ति होवै तो कुछ चिंतवन नहीं करना पडता है; क्यौं कि जो जो वस्तुसें उदासवृत्ति हुइ है उसके पर दिल नही जाने पाता है वास्ते भिन्न है. अैसे विचार कर आत्मस्वरूप अनुभवगम्य है उस्से सहजसेंही उसकी वाह्यदशापर चित्तप्रवृत्ति नही जाती है. मात्र अपने स्वरूपमै मग्न होती है, सुख दुःख समान मानता है, वोहकी वोही वस्तु मानताही नहीं. सुख दुःख भुक्तनेकी तो चित्तवृत्ति होतीही है; क्यौं कि अपने स्वभावमैंही मग्न हो रहे हैं. विषयकी तो स्वप्नमैभी इच्छा नहीं. ये

कर्मसंयोग यह शरीरमें रहा है उसके आधारसें चाहियें वो निरवद्य चीज औसरपर मिल गइ तौभी आनंद है और न मिलगइ तौभी आनंद है. जैसें कि ऋषभदेवजीकों वर्षदिन तलक शुद्धमान आहार न मिला तौभी उनकों विकल्प न था और समभावसें वक्त व्यतीत किया. वैसैही उदासीन वृत्तिवंत होते हैं वो तो अपने स्वरूपकों अपनी वस्तु मानते हैं, उस्मै जितनी कसर है उतनी उतनी पुद्गलभावकी प्रवृत्ति करते हैं; मगर उनमैं कोइभी परभावकी इच्छा नहीं होती, अगर हो आवै तो वहांसें वैराग्य लाकर मनकों पीछा लोटाते हैं. यौं करनेसें ज्यादे विशुद्धि होती है तब उस वस्तुपरसें उदासीनता भाव होता है. पुनः अपनकों कितनी हद प्राप्त हुइ है वो देखनेके वास्ते परमात्माने सप्त नयसें स्वरूप बतला दिया है और सप्त नयके ज्ञानसें बाह्यप्रवृत्तिका अंतरंग वृत्तिका ज्ञान होता है उससे अपना स्वरूप शोचता है. उनमैंभी अपना स्वरूप भासन होता है. वो अनुयोगद्वार सूत्रकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२८-५२८-४१ मै है वहांसें देख लैना. यहांपर मात्र उनके नाम लिखता हुं. सप्त नय-नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय, एवंभूतनय, ये सप्तनय हैं. उसमै एक एक नयका विषय विशुद्ध है. नैगमसें संग्रह, संग्रहसें व्यवहार, व्यवहारसें ऋजुसूत्र, ऋजुसूत्रसें शब्द, शब्दसें समभीरूढ और उससे एवंभूतनय है, सो पूर्ण वस्तुकों माननेवाला है, तैसैं आत्माकी प्रवृत्ति संपूर्ण गुण प्रकट होवै तब एवंभूतनय धर्म मानै. वहांतक जो जो आपकी कसर है उसें मुक्त हो आत्माका शुद्ध स्वरूप प्राप्त करनेकी भावना भावै. ज्यौं ज्यौं अंतरंगमैं स्थिरता करनेका अभ्यास करै त्यौं त्यौं क्षयोपशमभाव वृद्धि होवै और ज्ञान विशुद्धि होवै, नवतत्वका स्वरूप शोचै उसमै त्याग करने और आदरनेके योग्य पदार्थका स्वरूप विचारै. आठों कर्मका विचार करै. उनके सत्ता बंध उदय उदिरणाका स्वरूप शोचै. नौ अनुयोगसें आत्माका स्वरूप शोचै. संतपय-आत्मपद है वो हयात है, वो कृतृम नहीं है. द्रव्य प्रमाणमैं शोचै कि जीव अनंत है वैं सत्तामै तुल्य हैं. अपने अपने स्वभावसें न्यारे हैं. क्षेत्र विचारमै जहां

तक शरीरमें रहा है वहां तक शरीर प्रमाणसें है. जब शरीरसे न्यारा होता है तब जो अवगाहना होवै उस मुजब उसका तीजा हिस्सा संकोचन कर सिद्धमें रहता है, उस मुजब आकाश प्रदेशकी स्पर्द्धा कुछ अधिक है. कालसें अनादिकालका है और जो जो सिद्धि पाता है तब संसारका अंत होता है और हम्मेशां सिद्धमें रहता है, अभवि जीव अनादि अनंत संसारमेंही रहता है. अंतरंगसें शोचते मालूम होता है कि जीवका अजीव होनेका नहीं. और पुद्गल भंगमें रहा है वहां तलक पुद्गलके रुप अनेक बनते हैं; मगर वस्तुपणेसें रुप बदल जाता नहीं. भाग-हिस्से शोचनेसें समस्त जीव अनत है, उसके अनंतवे हिस्से मैं हुं. भाव विचारनेसें पांच भाव है, उसमें उदयिक भावके इक्कीस भेद हैं, सो कर्मसंयोगसें हैं उसके नामः—अज्ञानपणा है जिस्से अपने आत्मा स्वरुपसें भूलपर जो पुद्गलिक पदार्थपर मेरेपणेका ममत्वभाव बन गया है, ये पहेला भेद. दूसरा भेद असिद्धता—सो आत्मा सत्तासें सिद्ध स्वभाव है सो अवराने के सबबसें असिद्धता हुइ है, तीसरा भेद जो असमयपणा—आत्म स्वभावमें समभावमय रहना सो छोडकर विषयादिकके अंदर राग द्वेषकी परिणती हुइ उससें धन शरीरमें, कुटुंबादिकमें मूर्छितपणा बन गया है सो छवं लेश्या के छ भेद उसमें प्रथम कृष्णलेश्या कही जाती है. नील-लेश्या सो कर्म संयोगसें बुरे परिणामका होना; जैसें कि छउं लेश्यावाले जामनके फल खानेकों गये, उसमें कृष्णलेश्या वालेनें कहा कि ये वृक्ष काट डालो ओर पीछे उनके फल खाओ. ऐसे दुष्ट परिणाम सो कृष्णलेश्या वालेने कहा कि इस दरख्तकी डालीयें काट डालो. ऐसे परिणाम होवै वो नीललेश्या. कापोतलेश्यावालेनें कहा कि जिन जिन डालीपै जामन लगे हुवे हैं उन उन डालियोंकों काट डालो. ऐसा शोचै सो कापोतले-श्या. तेजोलेश्यावालेने कहा कि डालियें काटनेकी कुछ जरूरत नहीं, फकत जामन लगे हुवे होवै वही पतली डाली नीच ल्यो, सो तेजोलेश्या पद्मलेश्यावालेने कहा कि फकत जामन जामन चुन ल्यो—ऐसे परिणाम होवै सो पद्मलेश्या. और शुक्ललेश्यावालेने कहा कि जामन पककर नीचे

गिर गये है उनकोंही वीनकर खाओ. झाडकों छुनेकीभी क्या जरूरत है? अैसें परिणाम होवें सो शुक्ललेश्या. इस मुजब छउं जातके परिणाम कर्म संयोगसें होते हैं सो छउं भेद. कषाय सो क्रोध-मान-माया-लोभ. चारों गति सो मनुष्य, देव, तिर्यंच ओर नारकी. तीनवेद सो-पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद. और मिथ्यात्व सो विपरीत बुद्धि-स्वरुपकों भूलकर विपरीत परसुखमे लीनता. ये इक्कीस भेद कर्म उदयसें बनते हैं अैसा मानकर जो जो वस्तु अपनी मान चित्त वदला देता है और ये स्वरुपकों परस्वरूप जाने इस रीतिसें ये भाव शोचै-विचारै. दूसरा प्रणामिकभाव उसके तीन भेद हैं-भव्यपणा, अभव्यपणा और जीवितव्यपणा है. तीनभेदमे जीवितव्यपणा है. तथा भव्यपणा अभव्यपणाके प्रणाम विचारें और जो हाथ लगै सो भावें. तीसरे उपशम भावके दो भेद है-उपशम चारित्र सो उपशम श्रेणिमें प्राप्त होवें तथा उपशम भावका समकित उस श्रेणिमेंभी होवें और उस विनाभी होवें सो है या नहीं वो विचारें क्षायक भाव, उसके नौ भेद है सो क्षायक समकित, यथाख्यात चारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग, अनंतउपभोग और अनंतवीर्य ये नौ भेद क्षायकभावके हैं सो प्राप्त करनेका भावें. क्षयोपशमभावके अठारह भेद हैं. सो चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीनं दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षयोपशमसमकित, देशविरती और सर्व विरती-यह अठारह भेदमेंसें जो जो भाव क्षयोपशमभावसें प्राप्त होते है सो क्षायकभावसें करनेका भावें. ये भाव विचारकें अल्प बहुत्व विचारें कि आत्मा पंदरह भेदसें सिद्धि प्राप्त करता है उसमें कौनसें भेदसें बहुतसे जीव सिद्धि प्राप्त करते है? वो आगमसें जान लेवें कि मुनिपणेसें १०८ अंक समयमें सिद्धि प्राप्त करते है. दूसरे सब लिंगसें कमसिद्धि प्राप्त करते हैं; वास्ते मुनिपणेमें प्रवर्तनेका भावें. मुनिभावमें जो जो कसर-न्यूनता है वो प्राप्त करनेका भावें. सम भावकी वृद्धि करें. फिर षट स्थानकों ध्यानमें लेवें अर्थात् प्रथम स्थानक चेतन लक्षण सो ध्यानमें लेवें कि आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, तप, उपयोग ये छउं लक्षणमय है. दूसरा स्थानक यही है कि-आत्मा

नित्य है, अविनाशि है. जन्म मरण पुद्गल संयोगसें बनता है वो मेरा स्वभाव नहीं है. तीसरा स्थानक शोचे कि-आत्मा अपने स्वभावका कर्त्ता है और कर्म संयोगसें पुद्गलिक भावका कर्त्ता बन गया है, वहांसें उपयोग बदल डाले. चौथा स्थानक भोक्तापणा शोचे कि निश्चयनयसें अपने स्वभावका भोगी है, परभावका भोगीपणा पर संयोगसें है. पांचवा स्थानक ध्यानमें लेवे परमपदका विचार करे कि आत्माका पद और सिद्धका परमपद समान है, कर्मके संयोगसें भेद पड गया है, वो भेदसें रहित आपका परमपद है. उस मुजब रहनेका भावे. छठ्ठे स्थानकमें शोचे कि ये परमपद प्राप्त होनेके कारण संयम और ज्ञान ये दो हैं; वास्ते दोनू वस्तुओंमे वर्त्तना करे. इस तरह भावनाओं भावनेका ज्ञान सो ज्ञान श्रवण करनेसें होता है और ऐसें भावसें स्वाभाविक अनुभव ज्ञान प्रकट हुवे बाद ज्यों ज्यों स्वभावकी अंदर स्थिर होवे त्यों त्यों आत्माकी निर्मलता अनुभव ज्ञानकी वृद्धि और निज तत्व प्रकट होवे; वास्ते हर हमेशां सुंदर भावनाओंका उद्यम करना. पुनः हेमाचार्यजीने ध्यानकी बहुतसी रीतियें योगशास्त्रमें बतला दीहै, वहांसें देखकर ये उद्यम विशेष प्रकारसें करना. अंतिम उद्यम यही है वास्ते आत्मार्थि पुरुष जो जो निवृत्तिका वक्त हाथ लगे वो वो वक्त पर ध्यानका अभ्यास करे यही श्रेय है.

७५ प्रश्नः—किसी गच्छवाले कहते है कि छउं पर्व और कल्याणक दिवस सिवा पौषध नहि करना उसके संबंधमें सत्य क्या है ?

उत्तरः—ये बात न्यायसें और शास्त्रसें विरुद्ध मालूम होती है; सबब कि परमात्मा श्रीका तो यही उपदेश है कि-'समय मात्र प्रमाद नहि करना.' वो उपदेश आत्मार्थि जनोंके दिलमें रमण कर रहा है. हर हम्मेशां भावना तो अप्रमादकीही वर्त्तती है; मगर कर्मके संयोगसें-पूर्व कर्मके जोरसें उन प्रकारकी विशुद्धि नहीं हो सकती है उससें संयम अंगीकार नहीं करते तो भी पर्वके दिन पोषध तो अवश्य करते हैं, और पर्वके दिन सिवा दूसरे दिनोंमेंभी वक्त हाथ लगे तो वो वक्त प्रमादमें क्यों गुजारें ? उस दिनभी अवश्य पौषध व्रत धारण करे, शास्त्रमें तो

जहां जहां अधिकार होवै वहां वहां पर्वके दिनकाही होता है; सबब कि गृहस्थ संसारके प्रबंधमें फंसा हुवाही होता हैं. यदि फंसा हुवा न होता तो संयमही अंगीकार करता; लेकिन फंसा हुवा होनेकेही सबवसें संयम अंगीकार नहीं करता है; उस वास्ते हम्मेशां न बन सकै वोही हेतुसें पर्व दिन अवश्य पौषध करैं. इसी लिये तिथियोंका दर्शाव किया है. अैसा आशय तत्त्वार्थके पत्र २४३ मै है कि–"सपौषधोपवासकोत्रयपक्षयोरष्ट-म्यादि तिथिमभिगृह्य निर्श्चत्य बुध्यान्यतमांचोते प्रतिपदादि, तिथि मनेन-वान्वासु तिथिषु अनियमं दर्शयति नावश्यतयान्यासु कर्त्तव्यः" इस मुजब तत्त्वार्थकी टीकामें हैं–यानी अष्टमी प्रमुखके दिन अवश्य (पौषध) करना-वास्ते अष्टमीदर्शाइ है, और दूसरी प्रतिपदादितिथिके दिन अवश्य कर्तव्य नहीं. इस्सें कुछ निषेध किया हैं अैसा नाहि कहा जाता है–मतलबमें अव-काश मिलै तौ वेशक पौषध और तिथियोंमैंभी करै. अगर जो शख्स इस बातका निषेध करते है उनका तौ इलाजही क्या है–उनकी बुद्धिकीही वि-चित्रता है. आत्मार्थियोंकों तौ जिस वक्त मोका हाथ लगै उसी वक्त धर्म प्रवर्ति करनी वही श्रेय हैं. पुनः प्रतिक्रमणेमैंभी तपचिंतवनका काउ-स्सग्ग आता है उस्में छ मासी तपसें न्यूनक्रमसें चिंतवन किया जाता है. वोभी तिथि विगरके दिनोंमें चिंतवन नहीं करना चाहियें; सबब कि उप-वास आहार पोषध है और पर्व तिथि विगरके दिनोंमें नहीं करना है तौ चिंतवन किस वास्ते करना चाहियें ? लेकिन ज्ञानीका मार्ग तो हर हम्मेशां धर्मकरणीकाही है. ज्ञानीयोंनें शास्त्रकी अंदर तप चिंतवन करनेका कहा है तप चिंतवनका अधिकार योगशास्त्रमें तथा प्रवचनसारोद्धारकी छपी हुइ किताबके पृष्ट ६७ में है. इस सिवाभी बहुतसें शास्त्रोंमें है, वास्ते वक्त मिल जावै उसी वक्त पोषध करना यही दुरस्त है. पुनः वैंही प्रवचन सारोद्धारके पत्र ४० मै अनागत तप पच्चख्खाणका स्वरूप कहा है कि– अगतत पर्यूषणादिक पर्वके दिन किसी सबबके लिये तप बन सकै वैसा योग नहीं है.तौ नस्सें पीछेसें करै. या तौ अतित तप यानी पेस्तरभी करै तौभी कुछ हरकत नहीं. इस अधिकारसें समझा जाता हैं, कि पर्वके पेस्तर

या पांछभी तप करें तो कुछ हरकत नहीं है. तप है सो आहार पोषध है वास्ते पर्वके दिन सिवायभी पोषध करनेमें कोइ नुकशान नहीं किन्तु लाभही है. फिर ये पञ्चवाले योंभी कहते है कि—'हम्मेशां उपवासका पच्चखाण करना; मगर ज्यादे एकदम पच्चख्खाण करना नहि.' ये बातभी शास्त्रसें भिन्नता बताती है; सबब कि येही तप चिंतवनमें जितने भक्तका अभी एकदम पच्चख्खाण किये जाते है उतनेही भक्तका चिंतवन है. दूसरा चिंतवन दूसरी तरहसें है. फिर पच्चख्खाण भाष्यमें और प्रवचनसारोद्धार आदि बहुतसी जगे पच्चख्खाणके अधिकार है, वहां चोथ भक्तादि पच्चख्खाण करनेके कहे है. ये आदि शब्दसें उपवाससें अधिक पच्चख्खाण सिद्ध होते है. वास्ते अधिक पच्चख्खाण चोत्रीस भक्त तक करनेमें हरकत नहीं है, और जो हरकत होवे तो ये चिंतवन झूटा हो जाता है. क्यों कि बन सके वहां तक जानेका कहा है और वहां तक ही चिंतवन करनेका कहा है. पीछे काउस्सग्ग पूर्ण करके पच्चख्खाण करनेका है; वास्ते बन सके उतनाही पच्चख्खाण करना यही रीति अच्छी है.

७६ प्रश्नः—पजुसणमें कल्पसूत्र ही वांचना ऐसी परंपरा प्रचलित है उस्का क्या सबब है?

उत्तरः—कल्पसूत्रमें मुख्यत्वतासें साधुका आचार है, वो वर्ष वर्ष दिन पर सुनने आवे तो समस्त मुनि महाराजोंका उपयोग स्फुरत रहवे. फिर जबसें सभाकी अंदर वंचाया जाता है तबसें श्रावक मुमुक्षकों प्रभुके अद्भुत चरित्र यानी कठिन तपश्चर्या, कठिन आचार, कठिन दुःख प्राप्त होने परभी अपने उपशांतपणेमें रहे हुवे, कठिन दुःख देनेवाले परभी समताभाव—किंचित्‌भी द्वेष नहीं, अतिशय ज्ञानशक्ति ऐसी दशा श्रवण करनेमें प्रभुपर आस्तिकता वृद्धि होवे; क्यों कि पुरुषकों देव माने उनके आश्चर्यकारक चरित्र सुननेसे अवश्य रागकी वृद्धि होवे और भगवान् गणधर मुनिमहाराजादिक ऊपर राग बढे और आज्ञा आराधे यही सम्यक्त निर्मल होनेका सबब है. ऐसे सबबसें उपकारी पुरुषोंने हम्मेश कल्पसूत्र वांचनेका रीवाज रख्खा मालूम होता है.

७७ प्रश्नः—अंजनशलाका कौन कर शके ?

उत्तरः—प्रभुकी अंजनशलाका आचार्य महाराज करैं-अैसी षोडशजीमें हरिभद्रसूरीजीने कहा है. ओर दूसरे भी प्रतिष्ठाकल्पोंमें मुख्यपणेसें वैसाही कहा है. फिर कुलप्रभसूरीजीके शिष्य नरेश्वरसूरीजीने समाचारी रची है उसमें आचार्य करे सो सूरिमंत्रसें करैं और आचार्यके अभावमें उपाध्यायादिक वर्द्धमान विद्यासें करैं अैसी रीति है. एक प्रतिष्ठा कल्पकी पुरानी प्रत मैंने देखीथी उसमें श्रावक करे अैसाभी कहा है, और वो मंत्रभी अलग बताया है. अब यहांपर कोइ शंका करेगा कि-'हीरविजयसूरिजीने हीरप्रश्नमें श्रावक प्रतिष्ठित प्रतिमाजीको अपूजनीय कही है. उसका क्या सबब ?' इसके समाधानमें यही है कि अैसी प्रतिष्ठित हुइ प्रतिमाजी मुनिके वासक्षेपसें पूजनीय होती है. उस्सें जाना जाता है कि जिस प्रतिष्ठा कल्पमें श्रावकका मंत्र बतलाया है,उसका यही सबब होगा कि आचार्य, उपाध्याय जीका योग न बने अैसा होवे और प्रभुभक्ति करनेकी जरुरत है तो खुद श्रावक प्रतिष्ठा कर लेवे. और जब आचार्यजी वगैरःका योग मिल जावे तब उन्होंकी पाससें वासक्षेप करा लेवे. इस तरह वो वार्त्ता वजूद भरी मालूम होती है. कोइ कोइ कहते हैं कि आचार्यजी वासक्षेप करैही नहीं, श्रावकही करे; मगर ये अयोग्य वार्त्ता है, सबब कि त्रेसठ शलाक पुरुषके चरित्रमें कापेल केवलीजीने प्रतिष्ठा की है. उसके पीछेभी बहुतसें आचार्योंने की है ये वार्त्ता विश्वविदित है; वास्ते मुख्य वृत्तिसें तो छत्रीस गुण युक्त विराजित आचार्य महाराजही योग्य हैं.

७८ प्रश्नः—इस कालमें धर्मसाधन करनेवालोंमें कितनेक दुःखी मालूम होते हैं और अधर्मीजन सुखी दृष्टिगोचर होते हैं उसका सबब क्या ?

उत्तरः—अधर्मी जीव हैं उनकों पिछले जन्मकी प्रायः अधर्मकी संज्ञा चली आती है उस्सें अधर्मकी वृद्धि होती है, पिछले जन्ममें अधर्म सेवन किया है, वो कुछ मनुष्यमेंसें बहुत करके मनुष्य नहीं होवे. अधर्मी प्रायः नरक तिर्यंचमें जावे, तब उन भवके पाप नरक तिर्यंचमें भुक्तकर मनुष्य होवे तब उसकों कितनेक दुःख कमती होते हैं; लेकिन वो सुख पानेसें फिरके

पापकर्म करता है उस्सें नरक तिर्यंचकी दुर्गति पावे. वहां दुःख भुक्ते औसें जीवोंकों मनुष्य भवमे सुख है, वैभी आगत कालमै दुःखके हेतु है; वास्ते अधर्मिकों सुखी देखकर मनमे सुख शोचनेकी जरूरत नहीं हैं और धर्मिष्ट जीव तो मनुष्य किंवा देवगतिमेंसें आता है, वहां धर्म तो किया हुवा हे; मगर कितनेक हिंसादिक पाप किये होवें वे यहां भुक्तता है उस्सें दुःखी मालूम होता है; लेकिन वो जीवकों धर्मके परिणाम है उससें वो समभावसें भुक्तता है उसी सबबसें वो निर्जरा करकें अति विशुद्ध होकर मुक्ति वा सद्गति पाता है; वास्ते गुणीकों देखनेमै दुःख है सो सुखका हेतु है और निर्गुणिका सुख है सो उसकों दुःखका हेतु है. औसा जानकर धर्ममै प्रवर्त्तना तथा दुःख आनेसें समभाव रखना वही आत्माको हितकारी है.

७९ प्रश्नः—श्रावक आराधक होवे तो कितने जन्ममै सिद्धि प्राप्त करै ?

उत्तरः—आयुरपचखाण पयन्नामें कहा है कि संथारा कर सब वस्तु वोसीराके सब जीवके साथ खमतखामणे करकें आराधना किये बाद काल करै तो उत्कृष्टे सात भव होवै. इस्से अधिक भव नहीं होवै; वास्ते अवश्य आराधक होनेकी भावना हम्मेशां करना और आराधना करनेका अंत वक्तमै उद्यम करना.

८० प्रश्नः—भगवंतजी विचरै तब मार्गमै क्या क्या वस्तुयें साथ होती हैं ?

उत्तरः—उवाइजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५९ मे नीचे लिखी हुइ वस्तुयें आकाशमे साथ चलती हैं:—

धर्मचक्र आगे चलता है, मस्तकपर तीन छत्र साथ चलते हैं, दोनु तर्फ चम्मर धरे हुएही रहते हैं, सिंहासन पादपीठ सहित साथ चलता है, और धर्मध्वज आगे चलता है. ये वस्तुयें साथ चलती हैं. तथा चौतीस अतिशय और पेंतीस वाणीके गुणोंसें विराजमान होते हैं. पुनः देवभी साथ बहुत रहते हैं. इस तरहसें विचरते हैं.

८१ प्रश्नः—गर्भमै जीव उत्पन्न होता है वो किस प्रकार उत्पन्न होता है ? और बढता है सो किसतरह बढता है ?

उत्तर—इस बाबतका अधिकार तन्दुलविआली पयन्नेमें है, वो शुरुवातसेंही चला है. स्त्रीकी नाभिके नीचे दो नाडीयें हैं उनकी आकृति—नाडी सहित—कमल फूलके सदृश होती है. उसके नीचे स्त्रीकी योनिं है. जीव उत्पन्न होनेका स्थान अधोमुख कमलके आकार होता है. नीचे आम्रकी मंजरी जैसी मांसकी मंजरीयें हैं वे ऋतुकालके वख्त खिलनेसें तब रक्तश्राव होता है, उसका नाम ऋतु कहाता है. वो ऋतु आये बाद पुरुषके संयोगसें वीर्य श्रवता है वो वीर्य तथा स्त्रीका रुधिर ये दोनुका—अधोमुख कमलमें संयोग मिलता है तब उसमें जीव उत्पन्न होता है. वो जीव प्रथम समयमें वीर्य तथा रुधिरका—आहार करता है. तदनंतर काल दरकाल व्यतीत होनेसें बढता है. सात दिन तक चावलके जल समान होता हैं, बाद सात दिनमें पानीके बुदबुदेकी समान होता है. तत्पश्चात् सात दिनके बाद मांस पेशी वत् एक मासमें आम्रमज्जासादृश होता है. दूसरें महिनेमें विशेष बढकर मजबूत पेशी—ग्रंथीवत् होता है. तीसरे महिनें उससेंभी ज्यादे बढता हैं और माताकों दोहले—मनोरथ उत्पन्न कराता है. पुन्यवंत गर्भ होवै तो अच्छे धर्मके काम करने—करवानेकी तथा अच्छे पदार्थ खाने पीनेकी इच्छायें होती हैं और पापिष्ट गर्भ होता है तो अधर्म और अयोग्य वस्तुयें खाने पीनेकी इच्छायें उत्पन्न कराता है. चौथे माहिने गर्भ बढनेसें माताके अंगोपांगभी बढते है. पांचवे महिने गर्भके पिंडमेंसें पांच अंकुर फटते हैं यानी दोनुं हाथ, दो पाँव और एक मस्तक ये पांच वस्तुयें होती हैं. यह देखकर अज्ञानी जीव कहते है कि पांचवे माहिने गर्भमें जीव संचरता है; लेकिन ऐसे अज्ञजनोंको सोचना चाहियें कि पांच महिने तक जीव कहां रहा था ? जीव न था तो आकृति कैसें हुइ और किस सबबसें गर्भ बढता था ? वास्ते जीव तो अव्वलसेंही उत्पन्न होता है और उस पीछे उपर बतलाये मुजब बढता है. छट्ठे महिने पित्त और रुधिर उपजता है. सातवे महिने सातसो नाडियें, पांचसो मांस स्थान और नौ बडी धमनी नाडीयें ये तैयार होते है. आठवे महिनेमें सब अंगोपांगकी पूर्णता बनती है. यह अधिकार भगवान् श्री वीरस्वामीजीने कहा कि तुरत गुरुभक्त गौतमस्वा-

मीजीने पुंछा कि-"भगवान्! गर्भमैं रहा जीव निहार करता है? या नहीं?" भगवंतश्रीने कहा "नहीं." तब फिर प्रश्न किया कि-"कवल आहार करता है?" तवभी प्रभुश्रीने कहा "नहीं." रोम आहार आदि करता है वो माताकी रसहरकी-रसवाहिनी नाडी कि जो नाभिके नीचे होती है सो गर्भके वालककी नाभिके साथ लगी हुइ रहती है, उस द्वारा वालककों आहार मिलता है और सब शरीरमें फैलता है. माताके रुधिरका भाग उत्पत्तिके वक्त यदि ज्यादे होवै तो पुत्री होती है और पिताके वीर्यका हिस्सा ज्यादे होता है तो पुत्र होता है; लेकिन रुधिर और वीर्य दोनु समान होवै तो नपुंसक पैदा होता है. वालकके शरीरमें मांस, लोही, मस्तककी अंदरका भेजा ये माताके रक्तसेंही होता है. इस लिये ये माताके अंग कहे हैं, और हड्डियें, हड्डिके अंदरकी मिंजी तथा रोम ये पिताके वीर्यसें उत्पन्न होते हैं; वास्ते ये पिताके अंग कहे हैं. इस मुजब उन ग्रंथमै बहुतसा स्वरूप दर्शाया है तथा योगशास्त्रमें हेमाचार्यजीने ओर भवभावना ग्रंथ कि जो मल्लधारी हेमचंद्र आचार्यका किया हुवा है उसमैंभी बहुत विस्तार पूर्वक विवेचन है सो वहांसें देख लैना.

८२ प्रश्नः—वासुदेव नरकमें जाता है उस्का सवव क्या?

उत्तरः—वासुदेव पुद्गलिक सुखका नियाणा करता है, उससें संयम धर्मकी आराधना नहीं हो सकती है. कृष्णवासुदेवनें श्री नेमिनाथजीसें पूंछा कि-'मुजकों दीक्षा लेनेका दिल क्यौं नहीं होता है?' तब भगवंतश्रीने फरमाया कि-'पिछले भवमें तुने नियाणा किया है वास्ते इस भवमै संयम उदय नहीं आयगा; मगर तुं नरकसें निकलकर तीर्थंकर हो मोक्षमै जायगा.' इस मुजब अंतगडदशांगजीकी लिखी हुइ प्रतके पत्र १२ मै अधिकार है. वासुदेवहिंडमेंभी पांच भव कहे है. तत्त्व केवली गम्य है.

८३ प्रश्नः—पिंडस्थ ध्यान किस प्रकार करना?

उत्तरः—योगशास्त्रमै हेमाचार्यजीनें बहुत प्रकारसें वतलाया है उनमैसें दो रीति लिखता हुं. अरिहंतजीका 'अ' नाभिके विषे सिद्ध महाराजकी 'सि' मस्तकके विषे, आचार्यजीका 'आ' मुखपर, उपाध्यायजीका 'उ' हृद-

यमै और साधुजीका 'सा' कंठमै स्थापन करना. इस तरह पांचो हुर्फ स्थापन कर एकाग्रतासें उन्होंका ध्यान करना ये १०८ वक्त ध्यान करना. उस्से एक चोथभक्तका फल मिलता है. दूसरी तरहसें पत्र १८८ मै चिंतन करनेका कहा है सो पिंडस्थ ध्यान है. वो पिंडस्थ ध्यानकी पांच प्रकारसें धारणा कही है. पृथिवी, अग्नि, वायु, वारुणी और तत्त्वभु ये पांच धारणा करनी यानी प्रथम जितना तीर्छालोक है वैसा क्षीरसमुद्र ध्यावै मतलब कि चोरों तर्फ जल है अैसा ध्यावै और वो जलके बीच जंबूद्वीप है उतना सुवर्णका सहस्र दलमय कमल चिंतवै, वो कमलके बीचमै सुवर्णमय मेरुपर्वत कार्णिकारूप चिंतवै, वो कर्णिकाके ऊपर श्वेत सिंहासनपर अष्टकर्म छेदन करनेकों उद्यमवंत अैसा मैं वहां बैठाहुं अैसा चिंतवै. इस प्रकार एकाग्रतासें चिंतवन करें सो पृथिवी धारणा कही जाती है. पीछे अपना नाभि कमलमै सोला पांखडीका कमल चिंतवै. ये सोला पांखडीके कमलकी मध्य कर्णिकाके मध्यभागमै महामंत्र सिद्धचक्र बीज 'अर्हं' एसा मंत्र स्मरण करें. बाद कमलकी सोला पांखडीयोंपैं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः एक एक एकस्व स्थापन कर उन्होंका स्मरण करैं. पीछे 'अर्हं' अैसा महामंत्र बिंदुकला सहित रेफ एसा अक्षर है, वो रेफ अक्षरमैंसें थोडा थोडा बहार निकलता हुवा धुम्रशिखा-धुम्र, चिंतवै और उसीका स्मरण करैं. पीछे धुम्र निकलती हुइ अग्निकी चिनगीका समूह निकलता हुवा ध्यावै. पीछे अग्निकी ज्वाला दिशि विदिशि आकाश व्यापित महाज्वाला स्मर लेवै और ज्वालाके समूहसें अष्टकर्मरूप अधोमुख कमल कि जो अष्ट पांखडीयोंका है उसकी हरएक पांपडीपै एक एक कर्म स्थापन करकै उनके रहनेका स्थान हृदयकमल उसकों जला देवै यानी इस मंत्रके ध्यानसें ध्यानरूप सबल अग्नि प्राप्त हुइ है वै अग्नि दहन करती है. उससें वे कर्म जलते हैं अैसा ध्यावै. तदनंतर देहसें बहार दूर प्रकाशवंत अग्निात्रकोण है उस्कों ध्यावै. वो त्रिकोणके तीनू कौनेमै एक एक स्वस्तिक स्मरण कर वो त्रिकोण अग्निरेफ स्मरण करकें पीछे अंतर्शरीरमै महामंत्रसें उत्पन्न हुवा जो अग्नि वो अ-

ग्निकी ज्वाला जाज्वल्यमान है उस्सें देह और अष्टदल कर्म, स्थापित किये गये कर्मकों जलाकर खाक कर देवै, जिस्सें आत्मा शांत होवै ऐसा ध्यावै, वो अग्निधारणा कहलाती है. अब वायुका स्मरण करै यानी वायु कैसा है ? तीन भुवन-स्वर्ग-मृत्यु-पातालकों पूरित कर रहा है, पर्वतकों भी उन्मूलन करता है, समुद्रकोंभी क्षोभ करता है, मर्यादा मुक्त कराता है. ऐसा अति प्रचंड वायुसें करकें अंगकी धारणासें देह तथा अष्ट कर्म रूप कमलकों जलाकर खाक किया है, उस भस्मकों ध्यानरूप वायुसें उडाये पीछे वायु स्मरण शांत कर देवै. ये वायु धारणा कहलाती है. बाद जल धारणाकों अमृत रूपिणी अति बहूल वर्गवंत वृष्टि करती हुइ मेघमाला परिपूर्ण आकाशमें स्मरण करै. वो कलाबिंदु सहित वरुणांकित मंडल वारुण बीज स्मरण करै. बाद वरुणबीजसें पैदा हुवे अमृतरूप जल प्रवाहसें आकाश भर देवै, अग्निधारणासें अग्निपूरसें देह तथा कर्म जल गये है उनकी भस्मकों ध्यानरूप जलकी वृष्टिसें प्रक्षालन करना सो वारुणीसें स्मरण करै. ये वारुणी धारणा कहलाती है. अब पांचवी तत्त्व धारणा सो सप्त धातुसें रहित, निष्कलंक, निर्मल, चंद्रबिंब समान उज्वल ऐसा सर्वज्ञ सब वस्तुके ज्ञाता उन समान अपने आत्मापनकों भावै बहुत तेज मय अज्ञानतिमिरसें रहित मणिमय सिंहासनपर बैठे हुवे देव दानव गांधर्व सिद्ध चारणादिकसें सेवित अनेक अतिशय करकें शोभायमान् सब कर्मोंसें करकें रहित, सहजसरूपी, परस्वरूपसें रहित, स्वभाव महिमा निधान ऐसा आत्मा अपने शरीरके बीच पुरुषाकारसें स्मरण करै, वो, तत्त्वभु धारणा कहलाती है. ये पिंडस्थ ध्यान योगीश्वर ध्याते हैं. उसमें अपने स्वरूपमें लीन होनेसें मुक्तिके सुखका अनुभव करते हैं पुनः वही ध्यानके प्रभावसें योगीश्वरकों दुष्ट विद्या, उच्चाटन, मारण, स्थंभन आदिसें पीडा नहीं होवै. शाकिनी, डाकिनी, लाकिनी, काकिनी, क्षुद्रयोगिनी, भूत, प्रेत, पिशाचादिक भी योगीश्वरोंका असह्य तेज मालूम होनेसें तुरंत भग जाते है. मदोन्मत्त गजेंद्र, व्याघ्र, सिंह, शरभ, अष्टापद, दृष्टिविष सर्प कि जो बहुतही भयंकर होते हैं वे सभी योगीश्वरकों उपद्रव नहीं कर सकते

है, इतनाही नहीं मगर देखनेही स्थंभित हो जाते है वा पलायन कर जाते है. अैसा पिंडस्थ ध्यानका महिमा है और उस ध्यानसें अंतमै निज सुखकी प्राप्ति होती है.

८४ प्रश्नः—पदस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तरः—योग्यशास्त्रके अष्टम प्रकाशके पत्र१९२ मै उस ध्यानकी रीति बतलाइ है–यानी नाभि कंदमें सोला पांखडीका कमल है वो दर पांखडीमें आगे बतलाये गये सोला स्वर क्रमसें स्थापन कर चित्तकी एकाग्रतासें चिंतवन करै. पीछे हृदय कमलमै एक चोवीस पांखडीका कमल चिंतवन करकें उसमै कार्णिका चिंतन कर और दर पांखडीपर 'क' से लगाकर 'भ' तकके चोवीस व्यंजन स्थापन कर कार्णिकामै 'म' स्थापन करै और पीछे उन्का ध्यान धरै. बाद मुखस्थान अष्टदल कमल चिंतन करकें दर पांखडीपर य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ये आठ व्यंजन स्थापन कर चिंतवन करै. इस तरह तीनू कमलके ध्यानमै एकाग्रता कर लेंवै ये ध्यानमय रहनेसें सब शास्त्रके पारगामी होंवै–त्रिकाळज्ञानी होवै. ये आदि बहुतसें फल बतलाये हैं. दूसरी तरह नवकार मंत्रका ध्यान करना सो भी पदस्थ ध्यान कहा है.उसके ध्यानसें भी खांसी वगैरः बडे १६ रोग नाश वचनसिद्धि प्रमुख होवै. हलुवे कर्मोंकी गति पावै, और परमानंद सुख प्राप्त होवैः पुनः प्रकारांतरसें कहा है कि अष्टदल उज्वल कमल चिंतवन करकें कार्णिकामै मध्य महान् पवित्र मुक्तिसुखदाता आद्यपद सत्याक्षर मंत्र 'नमो अरिहंताणं' चिंतवै. पूर्व दिशा दलमै 'नमो सिद्धाणं' चिंतवै, दक्षिण दलमै 'नमो आयरियाणं' चिंतवै. पश्चिम दलमै 'नमो उवज्झायाणं' चिंतन करै. उत्तर दलमै 'नमोलोअे सव्वसाहूणं' तथा अग्निकोण दलमै 'एसोपंचनमुक्कारो' नैऋतकोणमै 'सव्वपावप्पणासणो' वायव्यकोण दलमै 'मंगलाणंच सव्वेसिं' और इशानकोण दलमै 'पढमं हवइमंगलं' चिंतवन करै. इस तरह नवपदका ध्यान करना और मन वचन कायाकी एकाग्रता करनी इस्से महान फलकी प्राप्ति होवै. पुनः प्रकारांतरसें अष्टदल उज्वल कमल मुख मध्य स्थापे और दर दलपर अ, क, च,

ट, त, प, य, श, ये क्रमसें अक्षर स्थापन कर स्मरण करै. पीछे ॐ नमो 'अरिहंताणं' ये अष्टाक्षर अनुक्रमसें स्मरण कर लेवै. बाद ये कमलकी केसरामै सोला स्वर कि जो आगे बताये है उन्होंका स्मरण करै. पीछे मुखसे संचरता, कांतिमंडलमैं रहता निष्कलंक उज्वल चंद्रबिंब समान मायाबीज ह्रीँ कार मंत्रका स्मरण करै. तदनंतर उन पांखडीयों के बीच फिरता, आकाशमंडलमै संचरता, मनोमल विनासता हुवा, अमृत श्रवता हुवा तालुमार्गसें जानेवाला, भ्रममध्य हुल्लासित हुवा,जाज्वल्यमान् त्रिलोक्य विभुत्व "रसक अचिंत्य महिमाका देनेहारा अद्भुत आश्चर्यकारी चंद्र सूर्यके तेजको जीतनेहारा योतिमय साक्षात् तेजरूप अति पवित्र निःपाप-ये मंत्र एक चित्तसें-मन वचन कायाकी एकाग्रतासें ध्यावै तो जो पाप कर्म किये होवै वे सभीका नाश हो जावै और श्रुतज्ञान सकल वचनमय शब्द ब्रह्म प्रकट होवै. इस तरहसें निश्चल मन कर छ महीने तक अभ्यास करनेसें मुंहमेंसें धुम्रशिखा निकलती हुइ मालूम होवै और उससें भी ज्यादा एक वर्षतक अभ्यास करनेसें मुंहमैंसें अग्नि ज्वाला निकलती हुइ नजर आवे. और उनसेंभी ज्यादे अभ्यास शुरु रखवे तो सर्वज्ञका मुखकमल दृष्टिगोचर होवै. और उनसें भी आगे अभ्यास करै तो अष्टकर्म रहित कल्याण महात्म्य आनंदरूप समग्र अतिशय संयुक्त प्रभामंडल नजर आवे साक्षात् प्रकट सर्वज्ञ वीतराग देवको देखे.पश्चात् निश्चय मन होवै,मनका व्यौपार जीतकर परमेश्वरके स्वरूपकी अंदर एकाग्र मन करके संसाररूप भयंकर वनकों छोड कर सिद्धिमंदिर-मुक्तिमंदिरमें पहुंच जावै.प्रकारांतरसें योगीश्वर मंत्राधिराज हकारको उपर और नीचें रेफ संयुक्त कलाबिंदु सहित अनाहत नाद संयुक्त अर्हं कनक सुवर्णका कमलमें रहा निष्कलंक चंद्रबिंब समान निर्मल, अति उज्वल, चपल, आकाशमें फिरता, दशोदिशाओंमें व्यापित, मुखकमलमें प्रवेश करता हुवा, परस्पर भटकता, नेत्रप्रत्ये स्फुरता, ललाट मध्य रहता, तालु मार्गसें निकलता, अति बहुल शरीरको आनंद परमनिर्भर सुख उत्पन्न करता, अमृतरस श्रवता हुवा, अति उज्वलपणेसें चंद्रमंडलके साथ स्पर्द्धा करता हुवा और ज्योति शरीरमै स्फुरकर आका-

शमंडलमै संचरता शिव श्री मोक्षलक्ष्मीसु एक भावनाश्रीके सब अवयव सं-
पूर्ण कुंभक करके यानी श्वासोश्वास स्थिर कर एकाग्रतासें इस मुजब ध्यान करै, उससें साक्षात् तत्वकों, प्राप्त करै. दूसरेभी बहुत प्रकारसें ध्यान आठवे प्रकाशमै है. वो देखकर ध्यानमै लेना.

८९ प्रश्नः—रुपस्थ ध्यान किस तरहसें करना ?

उत्तरः—योगशास्त्रमै नवम प्रकाशके अंदर यह ध्यानका ब्योरा है, उनमैसे किंचित् मात्र यहां लिख बतलाता हुं. अव्वलमै भगवंत समोवसरणमै विराजमान है उन्होंका ध्यान धरना. वे कैसे हैं ? मोक्षलक्ष्मी जिनके सन्मुख है, अष्ट-कर्मके विनाश करनेहारे, अन्य जीवोंकों अभयदानके देनेवारे, निष्कलंक, अति उज्वल चंद्राबिंब समान, तीन छत्र मस्तकपर धारण किये हुवे हैं, उल्लासवत चकचकित भामंडलसें करके सूर्यका तेजभी न्यून मालूम होता है, देवदुंदुभी, भैरी, मृदंग, आदि अनेक वाजीत्रके शब्दसें कर किन्नर गांधर्वादिकके गीत देवांगना-अप्सरा के नृत्य, और देवेंद्रादिककी सेवा इत्यादि ऋद्धिसें संयुक्त, अशोकवृक्ष युक्त शोभित सिंहासनपर विराजित हुवे हैं. और चामर ढुल रहे हैं, देवदानव दैत्य गांधर्वादि नमन कर रहे हैं, मंदार पारिजातक हरीचंदन कल्पवृक्षादि दिव्यवृक्षोंके पुष्पोंसें सुगांधित हुआ समवसरण, उस समवसरणके कोटमैं मृग, वाघ, सिंह, सांप, हाथी, घोडे आदि तिर्यंच शांतपणेसें स्थित हैं, एक दूसरेका वैरभाव प्रभुके अतिशय प्रतापसें शांत हो गया है ऐसे अनेक अतिशय संजुक्त वीतराग भगवान्कों केवली महाराजभी वंदना कर रहे हैं-ऐसे सर्व जीवकों पूजनीय परमेष्ठी भगवंत अरिहंत वीतरागका स्वरुप देखकर-मनमै रमण कर ध्यान करै और वै प्रभुके गुणोंमैं एकाग्रता करै. उसकों रुपस्थ ध्यान कहा जाता है. दूसरी तरहभी किया जाता है सो भी कहता हुं-राग, द्वेष, मद, मत्सर, क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंकारादिक महा मोहके विकार-सें अकलंकित हैं, शांत हैं, कांति तैजसें करकें चकचकित हैं, मनहर महा सौभाग्यसें करकें संयुक्त हैं, समस्त १०८ लक्षणोंसें युक्त, अन्यदर्शनसें अगम्य योगमुद्रा महात्म्य है, आंखोंकों अमंद बहुत आश्चर्यकारी आनंद

परम आनंदका हेतु है. इंद्रियोंको जीतकर मन काबूमै रखन निर्मल चित्तसें और द्रष्टिका मेषोन्मेषसें दूर रखकर श्री वीतरागजीका प्रतिमाका रूप ध्यावै उसको रूपस्थ ध्यान कहते हैं.

अैसे अतिशय अभ्याससें योगीश्वर तन्मयपणा वीतराग प्रतिमापणा पावै. अपना सर्वज्ञपणा देख सकै. निश्चयतासें जो भगवंत सर्वज्ञ वीतराग सो मैंही हुं अैसें एक मनसें तन्मयता वीतरागपणा पाया तुं सर्ववेदी सर्वज्ञ मानकर ये वीतरागका ध्यान करनेसें वीतराग होकर मुक्ति प्राप्त करेगा. और रागी देवका ध्यान करनेसें क्षोभण उच्चाटनादिक कर्मका करनेवाला होवेगा. अज्ञानतासें यानी वस्तु धर्मको यथार्थ पढे विना जो ध्यान करैगा सो असत ध्यान गिना जावेगा और प्रयास निष्फळ होवैगा वास्ते यथार्थ वस्तुके कथन करनेवाले वीतराग देव उन्होंकी आज्ञा मुजब ध्यान करना चाहियें. इत्यादि बहुतसें ध्यानके स्वरूप योगशास्त्रमें हैं वो देखकर ध्यानमै लेना.

८६ प्रश्नः—रूपातीत ध्यान किस तरह होता है?

उत्तरः—योग्य शास्त्रके पत्र २०४ मै इस ध्यानके बारे मै कहा है कि—अमूर्ति चिदानंद स्वरूप नित्य अव्यय निरंजन निराकार शुद्ध परमात्माका ध्यान करना सोही रूपातीत ध्यान कहा जाता है. इस मुजब योगीश्वर निराकार स्वरुप अवलंबन करता हुवा—निराकार ध्यान करता हुवा ग्राह ग्राहक वर्जित निराकारपणा पावै. (जो कुछ पुद्गलिक इच्छासें जप ध्यान किया जावै उसें ग्राह ग्राहक कहा जाता है; और मनको तावे करके जप ध्यान द्वारा किसी देवका आराधन किया जावै उसें ग्राहक कहते हैं.) उससें रहित जो योगीश्वर—पर स्वरुपसे रहित और निराकार परमात्म स्वरूप चिंतवन करता हुवा अैस्य निराकारपणा पावै. मनको और परमात्माको जो समरस करै वैसे भावको एकीकरण कहते हैं, वही आत्मा परमात्माके अंदर एक करके लय करादेता है. इस प्रकारसें योगीश्वर इंद्रियोंको जीत मन वश करके तत्त्व अव्यय स्वरूप निरंजन निराकार चिंतवता हुवा निरंजनपणा पावै. यह ध्यान अनुभव ज्ञानके जोरसें होता है. ज्यौं ज्यौं आत्मा स्व स्वरूपमै लीन होता जावै त्यौं त्यौं विशेष विशुद्धिसें अपूर्वज्ञान प्राप्त होनेसें विशेष अनुभव होवै. ये ध्यान कृत्रिम नहीं है इससें इसका विस्तार

अल्पतासें बतलाया गया है.

८७ प्रश्नः—जैनमै समाधी चढानेका मार्ग है या नहीं ?

उत्तरः—योगशास्त्रमै वहुत विस्तारसें समाधि चढानेका लेख है और कपुरचदजीके स्वरोदयमैंभी समाधी संबंधी बहुत रचनायें कही गइ हैं. तथा दूसरे ग्रंथोमैंभी वहुतसी जगहपर इसका बयान है. आजकलभी इसके अभ्यासी हैं.

८८ प्रश्नः—कितनेक जैनधर्मि नामधारी तेरापंथी श्वेतांबरी कहते हैं कि-भगवतीजीमैं पत्र ६१३ की अंदर असंजमीको दान देनेसें केवल पाप होनेका कहा है, वास्ते दान न देना वो दुरूस्त है या नहीं ?

उत्तरः—जैनमार्गकी शैली स्याद्वाद है, उस शैलीके ज्ञानकी ठीक ठीक माहेती मिलाये विना जो सख्स एकांतमार्ग ग्रहण करता है उसके हाथमै सूत्रका परमार्थ नहीं आता है. सूत्रमैं जितने वचन हैं वे अपेक्षित हैं, वो अपेक्षा गुरूद्वारा ज्ञान लेनेसें होती है; लेकिन गुरूके सिवा अपनी स्वच्छंदतासें अर्थ करे उस्के हाथमै परमारर्थ किस प्रकार आ सके ? सूत्रके अर्थ निर्युक्तिकारने-भाष्यकारनें-टीकाकारनें कहें है, उसपरसें या वे अर्थ गुरुमुखसें धारण करै तब प्रभुके अभिप्रायका ज्ञान होवै. मगर पुर्वधर पुरुष अर्थ कर गये हैं उनसें विपरीत-दूसराही अर्थ स्वयंपडितशेखर बनके करलेवै और वैसे मंडुकबुद्धिवाले (अल्पमति) पंथ चलावे और उस कुपंथको प्रमाण कर लेवें तब तो उनकी अज्ञानताके आगे लाजवावी है-निरूपाय है. प्रभुजीनें वर्षीदान दीये हैं वै दानके लेनेवाले असंयमी थे, यदि दानमार्गका निषेधही होता तो प्रभुजी क्यों दान देते ? प्रभुजी सम्यक् दृष्टिवंत और तीन ज्ञानके ज्ञाताथे उन्होने जो जानवूझकर-गुण समझकर-कार्य किया है वो कार्य (दानधर्म) सबी गृहस्थोंको करनाही मुनासिव है. ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ८५४ मै मल्लिनाथजीने दान दिया था उसका अधिकार है. और उन्हीके पिता कुंभराजानेभी चारों प्रकारके आहारका दान दिया है उसकाभी वर्णन पत्र ८५९ मै है. जो दान देनेसें केवल नुकशानही होता तो मल्लीनाथजीही निषेध करते; मगर निषेध नहीं किया है. पुनः कृष्ण वासुदेवनें थावच्चाकुमार दीक्षा

लेनेकों तैयार हुवे तब सारी द्वारिकावासी प्रजामें उद्घोषणा कराइ-याली पिटवाइथी कि-" जो कोइ जन दीक्षा लेवेगा उसके पिछले कुटुं-बकी मैं प्रतिपालना करुंगा." अैसें आशयका अधिकार ज्ञाताजीके पत्र ५४६ मै है. उस्सें विचार करो कि पिछले लोक संयमी नहीं थे मगर असंयमी ही थे, तौभी उन्होंके संरक्षणमें लाभ समझ कर वो काम किया थाः वास्ते वो काम दूसरोंकोंभी हितकारक है. फिर तीर्थंकर महाराजभी जहां पारणा करते है. वहांभी साढे बारह क्रोड सोनैयों-अशरफियोंकी वृष्टि होती है-जैसे कि पूरणशेठके वहां श्री वीरस्वामिने पारणा किया तो वो कुछ समकिति न था तौभी वहां सोनैयोंकी वृष्टि हुइथी और वो लेनेहारा असंयमी ही था. और इसी तरह मुनियोंकाभी महिमा करनेके लिये सम्यक्दृष्टि देवता अैसीही भक्ति करते है; मगर ये सम्यक्दृष्टिके किये हुवे अैसे कृत्य प्रभुने निषेधे नहीं, तो उस्से सबुत होता है कि ये कृत्य गृहस्थोंके आचरने योग्यही है. पुनः रायपसेणी सूत्रमें परदेशी राजाकों केशि गणधर महाराजाने धर्म पाये पीछे कहा है कि-'हे परदेशी! तुं रमणिक होकर पीछे अरमणिक मत होना.' उस वक्त परदेशी राजाने कहा कि-'मैं मेरी ऋद्धिके चार हिस्से करुंगा उनमेंसें एक हिस्सा दान-शालामें दउंगा.' यह अधिकार रायपसेणी सूत्रकी छपी हुइ प्रतके मूल पाठ पत्र २८० मे है. इस्सेंभी खुल्ला मालूम होता है कि दान देना ये श्रद्धेकी बात है. हां, दानका निषेध है वो मात्र कुपात्रकों सुपात्र बुद्धिसें देना उसकाही है. बाकी अनुकंपासें दुःखी जानकर देना तथा शासन प्रभावनासें देना उनका किसी ठोर निषेध-मना नहीं है. आगमकी परु-पणा गुरु मुखसें धारण करकें करनेसेंही बरोबर समझा जावै. पुनः आ-त्माका दानगुण तो स्वाभाविक हैः मगर जहां तक दानांतराय होवै वहां तक वस्तु बराबर नही समुझी जाती है-दान नहीं देना अैसाही दिलमें विचार आवै. पुनः जहां जहां तीर्थंकर महाराज वा आचार्य महाराज समोसरे है अैसी बधाइ देनेवालोंकों बहुत प्रकारसें प्रीतिदान दीए है उनमेंसें एक अधिकार लिखता हुंः-चित्रसारथीनें केशि महाराज समोसरे

तव वधाइ ल्यानेवाले वनपालक (जंगल खातेका अमलदार) कों दान दिया था. ये अधिकार रायपसेणीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २३२ मैं है वहांसें दरकार हो तौ देख लिजीयें. यदि दानमैं लाभ न होता तौ सम्यक्दृष्टि क्यों दान देवै? उसमै प्रभु भक्तिके भावका उत्साह है वास्ते भारी लाभ है उस्सें दान दीये है. 'ये दानमै धर्म नहीं'—ऐसा कथन करै उसकों शोचना चाहियें कि-भगवंतकों वंदन करनेके लिये जानेके वक्त काममैं लिय जाता रथका नाम मूल पाठमें वहुतसी जगेपर 'धर्मरथ' ऐसा कहा गया है और ज्ञाताजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १४९ मैं वही वार्त्ता है. वास्ते हरएक वस्तु सव शास्त्रोंका विचार करकें ग्रहण करनी चाहियें. दानके वारेमें ऐसा कहते है कि—' असंयमीको दान देवै उस्सें वो पुष्ट हांवै और आरंभ करै उसकी हिंसा लगै वास्ते नहीं देना.' ऐसा कहनेवालेकों समझना चाहियें कि—तेरापंथी अपने गुरुकों दान देते हैं, और चलकर जायेंगे उसमें पाउंके नीचे कितनेक त्रसजीव तथा पेटमैं आहारके योगसें कृमि आदि पैदा होंगे और निहार—दस्त करेंगे उस वक्त वै नाश होंगें तो ये सव हिंसा लगेगी. तथा वडीनीत करेंगे उस विष्टामै जीवोत्पत्ति होगी और फिर नाश हो जायगी उसकीभी हिंसा लगेगी; वास्ते तुमारे गुरुवोंकोभी आहार नहीं देना चाहियें. लेकिन जरा गौरसें शोचो कि शुद्ध संयमी मुनिमहाराज अपना आत्मसाधन करते हैं वही अपने देखनेका है पर दूसरा विचार लेनेकी कुछ जरुरत नहीं. मात्र आहार पाणीके आधारसें सुखपूर्वक धर्मसाधन होगा. उसी तरह दुःखी जीवकों दान देनेसें आहार संबंधीके संकल्प विकल्परूप उस्का दुःख दूर होगा और उसकों संतोष होगा वही लाभ शोच कर दान देनेका है. अपन कुछ दुष्ट काम करनेके वास्ते आहार नहीं देते हैं, उस्सें वो दूषण अपनकों नहीं लगता है. फिर तेरापंथी लोगोंकों धर्मोपदेश करते हैं और वो उपदेश सुनकर अज्ञानपणेसें तपस्या करता है सो तपस्या करनेसें देवलोकमैं वा मनुष्यमैं उत्पन्न हो पुद्गलिक सुख भुक्तेगा वो पापभी धर्मोपदेशककोंही लगना चाहियें, वो कभी ऐसा कहैं कि

उन्हकों तो धर्मोपदेश देना है उस्सें वो पाप नहीं लगता है, तो हम कहते है कि दान देनेवालेकोंभी स्हामनेवालेकी भूखका दुःख दूर करना है–दूसरा विचार नहीं जीव छुडानेवालेकों जीवको मरता हुवा बचानेकी चाहत है–अभयदान करनेका भाव है, दूसरा भाव नहीं है; वास्ते करुणाभावका लाभ है. वो पीछेसें क्या करेगा? उसका दोष अभयदान देनेवालेकों नहीं लगता है. हरएकवस्तुमै भाव बलवान् है.गुरुवंदन करतेहै. वंदन करनेकों जाते है उनमैभी मार्गमै–उठने बैठनेमै हिंसा होभी जावै; मगर वंदनके लाभार्थ करते हैं उस लिये वो शोचना युक्त नहीं. तैसेही दान देनेमें भाव बलवान है. पुनः भगवंतजीनें सब दानोंमें अभयदान बलवंत कहा है. ये अधिकार सुयगडांगजीकी प्रतके पत्र ३१८ मै मूल पाठकी अंदर है और उसका अर्थ टीकाकारनें पत्र ३२० मै विस्तारसें किया है, उसमै बसंतपुरके राजाकी कथाभी है, उनका सार यही है कि–राजाकी रानीने चोरकों गर्दन मारनेसें देहांत शिक्षासें छुडाया है और चोर बच गया है. इसपरसें शोचो कि जीव बच जाय और पीछे वो जीव हिंसा करै उनका पाप यदि आता होता तो अभयदानकी भगवंत प्रशंसाही नहीं करते. जीवकों कोइ मारता होवै तो बचाना. और कोइ भूखसें मरता हो तो उस्कों खाना खिलाकर तृप्त करना वो अभयदान है. इस लिये शोचना चाहियें; सबब कि स्याद्वाद मार्ग ध्यानमें लेना. सूयगडांगजीके दूसरे श्रुत स्कंध–पंचम अध्यायमें छपी हुइ प्रतके पत्र ८७२ वे आलावेमें कहा है कि–' कोइ खुदग ऐसा कहे कि एकेंद्रियसें लगाकर पंचेंद्रिय तकके जीव-का विनास होनेका समान पाप है, या एकांत समान पाप नहीं है. ऐसा कहवै तो अनाचार. (ये दोनू बोल एकांतसें बोलनेमें. अनाचार कहा है). अब इसके शब्दका कुच्छ दूसरा अर्थ निकलनेका नहीं; मगर प्रभुजीने गणधर महाराजजीका परमार्थ दर्शाया है वही पाठ परंपरासें चला आया है उसी आधारसें पूर्व पुरुषोंनेंभी अर्थ भरे हुवे होवै उससें अर्थ पाते हैं–इसका खुलासा टीकाकारने किया है. वहां देखनेसें मालूम हो जायगा. फिर पत्र ८७३ की अंदर आलावा है उसमें कहा है कि:—

आधाकर्मी आहार करनेसें कर्मसें करकें लिप्त हो जाय अैसा एकांतसें कहना, अगर तो आधाकर्मी आहार करनेसें अलिप्त रहता है अैसाभी न कहना चाहियें-ये वातें एकांतसें वोले उससें अनाचार कहा जाता है. इसपर शोचेनाकि जो भगवतीजीके पाठके आधारसें दानका निषेध है; मगर टीकाकारने पाठके अर्थमें साफ साफ लिखा है और दूसरे स्थानकी गाथा रख्खी है कि-अनुकंपा दान जिनेश्वरजीने नहि निषेध किया है-अैसा स्पष्टार्थ है. उसी मुजव पूर्व पुरुषके अभिप्रायसें तो दानका निषेध किसी जगहपर नहीं है. सूयगडांगजीके शिरोलिखित पत्रका अर्थभी टीकाकारके खुलासेसें आ जायगा. वैसाही अर्थ अपनकोंभी ग्रहण करना चाहियें. जो अर्थ, सूयगडांगजीके पाठका मुँहसेंही प्रमाण सिवा कहा करे तो वो सच्चा क्यों माना जाय ? आधार क्या है ? और जिस जीवका मिथ्यात्व दूर न हुवा हो वो कल्पित अर्थ मान लेगा; मगर जिस जीवका थोडा थोडा क्षयाउपशम हुवा होगा वो तो महा पुरुषके किये हुवे अर्थ मुजवही प्रमाण करेगा. वास्ते आत्मार्थिकों रीतसर कहना और वो न समझ सके तो कंठशोष न करना वही श्रेष्ठ है. पुनः वे लोग आचारांगजीमें हिंसा निषेधका पाठ वताते हैं; लेकिन वो पाठ सव मुनिमहाराज सर्वथा हिंसा त्यागीकों है. आचारांगजीमेंभी पत्र २२४ में (छपी हुइ प्रतमें) जो आश्रवके सवव वही संवरके होते हैं. और जो संवरके सवव हैं वही आश्रवके होते हैं. इसमें परिणाम विशेषकी मुख्यता दर्शाइ है. वैसें हरकिसीमें परिणाम विशेष विचार लेना. फिर ठाणांगजीके पत्र ५११ की अंदर (छपी हुइ में) दशम स्थानांगमें दश प्रकारके दान वतलाये हैं, उसमें अनुकंपादान अभयदान कहा है, और अधर्मदान अलग वतलाया है.

फिर केवल अधर्ममें तुमारे विचार मुजव अनुकंपादान होता तो अधर्मदानमेंही उसका समास होजाता, अलग वतलानेकी फिर जरूरतही क्याथी ? परंतु अनुकंपादान और अभयदान अधर्ममें न होनेसें अलग दर्शाया गया है वास्ते जिस मुजव भगवंत आप खुद दान देते हैं उसी मुजव श्रावकके अभंगद्वार कहे हैं कि श्रावक शक्ति मुताफिक दान देवै सम्यक्त्वदृष्टिके सडसठ वोल कहे है-उसीके भीतर चोथा अनुकंपा लक्षण-कहा गया है, द्रव्यसें दुःखीकों दान देकर सुखी करै, और भावसें धर्म प्राप्त करवा कै धर्मसें सुखी करै. ये लक्षण होनेपरभी क्यों दान नहीं देवै ? अवश्य समकित दृष्टिवाला दान देवेही देवै. सुपात्रकों कुपात्र

बुद्धिसें देना वो महान् दोषरूप है और वैसेही कुपात्रको सुपात्र बुद्धिसें देना वोभी महान् दोष है. जिस सबबके लिये देना वो भाव विचार कर देना उसमें दोष नहीं है. उपासकदशांगजीमें सगडाल पुत्रने गोशालेकों दीया है वहां कहा है–तेरे तप संयमसें करके नहीं देता हुं; लेकिन वीरप्रभुके गुणग्राम करता है वास्ते देता हुं. अब गोशाला मिथ्याद्रष्टी था तोभी प्रभुगुणग्रामका पक्षकारक समझकर दीआ सो लाभही है. फिर वंदितु सूत्रकी गाथा २२ में अंतपदके भीतर कहा है कि 'असइपोसं च वज्जा' पापीकों पोषन करनेमें अतिचार है; मगर इसका अर्थ किया है कि व्यापारके निमित्त अैसे जीवोंका पोषन करे–वेचे–पैसा कमा लेवै उस बाबतका अतिचार है. अनुकंपासें करकें पोषन करनेका अतिचार नहीं है. हेमाचार्यजीनेभी इसी मुजब अर्थ किया है. इन सब बोलाका सारांश इतनाही है कि बहुतसें ग्रंथोंमें ये बात है; वास्ते अैसे मनुष्यकी वार्त्ता कमशक्तिवालोंकों नहीं सुझी चाहिये. महान् आचार्य हो गये हैं उनके वचनोपर लक्ष देना जिस्सें आत्माका हित होवै. और शक्त्यानुसार दानभी देना यही उत्तम मार्ग है.

८९ प्रश्नः—अैसे जैनमें बहुतसे मत हैं, क्या उन लोगोंकों आत्माका डर नहीं होगा?

उत्तरः—कितनेक जीव डर रखनेवाले होवै; मगर पूर्वकर्मकी प्रेरणासें उलटा अथैही सच्चा मालूम पडे इस्से विचारे क्या करें? फिर कितनेक लोगोंकी बुद्धिही मंद होती है उस्सें जो मतमें पडे हैं उसी मुजब चलते है–या बातें करते हैं–ये सब कर्मकी गति है. अपनभी जैनी नाम कहेलाकर जैनमार्ग क्या है उसकाभी चाहिये उतना ज्ञान नहीं मिला लेते हैं. फिर संसारकों असार जानते हैं; तदपि उसका त्याग नहीं करते हैं, वोभी अपने कर्मकीही गति है. और तमाम जीव कर्मकेही आधीन हैं. वास्ते जीवके उपर द्वेष न रखकर केवल अपने आत्माकी परिणती सुधर जाय वैसा उद्यम करना. ज्यौं बन सके त्यौं संसारकी उपाधी कम करनी. अपनी आजीविका थोडे विकल्पसें चलती होवै; तथापि जियादे धन मिलानेकी–खर्च करनेकी लालचके लिये उपाधी करनी वो लायक नहीं है. उपाधी ज्यौं बने त्यौं छोडकर रातदिन ज्ञानाभ्यास करना और उस ज्ञानसें आत्माका स्वरूप देखना. दो घडी एकांतमें बैठकर आत्माका

विचार करना यही श्रेयकर्त्ता है. आत्माकी परिणती बिगड बैठे ऐसे वादविवादमें व्यर्थ समय न व्यतीत करना, यही हमारी शिक्षा है.

९० प्रश्नः—आत्म प्रदेश हिलेहुवे रहनेका अधिकार आचारांगजीमें छपी हुइ टीकाके पत्र १०२ में है उसका सबब क्या है ?

उत्तरः—आचारांगजीमें उष्णोदकवत् उदवर्त्तना कररहे हैं ये बात सत्य प्रत्यक्ष समजी जाती है कि शरीरके सब भागोंमें नसें हिल रही हैं वे पीछी जीव रहित शरीर हो जाय तब कुछभी नहीं हिलती, उससे समझा जाता है कि आत्म प्रदेशके चलायमानपणेसेंही हिलती हैं. इस मुजब लोकप्रकाशमेंभी अधिकार है.

९१ प्रश्नः—मुनी कंखामोहनी कर्म बांधे यह अधिकार कहां-किस ग्रन्थमें है ?

उत्तरः—श्री भगवतीजीकी छपी हुइ टीकाके भीतर और बालावोधमेंभी पत्र ७० में है. तेरह प्रकारके अंतर कहे हैं. उस सबबके लिये मुनी शंका करे तो कंखामोहनी बांधे; वास्तेजिन वचनोंमें शंका नहीं करनी. कंखा शब्दसें मिथ्यातमोहिनी कही है, इस लिये ज्यों बन सके त्यों परमात्माके वचन पर दृढ विश्वास रखना.

९२ प्रश्नः—भुवनपति वगैरः नीचेके देवता देवलोकमें जावें या नहीं ?

उत्तरः—भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पाने २५६ में चमरेंद्र गया था ऐसा अधिकार है; लेकिन उसमें इतना विशेष है कि अरिहंतजीका, अरिहंतजीकी मूर्तिका या साधुजीका शरण लेकर जाय तो जा सकता है, उस विगर नहीं जा सकता.

९३ प्रश्नः—तामली तापसने साठ हजार वर्षतक तपस्या की वो मुफतमें गइ कहते हैं उसका क्या मायना है ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र २३२ में तामली तापसका अधिकार है वहां अल्प फल कहा है; मगर कुछभी न मिला ऐसा नही कहा है. फिर इशानेंद्र हुआ तोभी अल्प फल कहा है वो मुनीकी अपेक्षासें कहा है; सबब कि ऐसी तपस्या समकित युक्त की होती तो बहुतही निर्जरा होती; लेकिन वो न हुइ, उस अपेक्षासें अल्प फल कहा है. ऋद्धि तो बहुतसी पाया

है, फिर स्थानकभी असा पाया है कि समकित प्राप्त किया.

९४ प्रश्नः—तुंगीया नगरीके श्रावकका अधिकार कहां है ?

उत्तरः—भगवतीजीकी प्रतके पत्र १९१ में अधिकार श्रवन प्रमुखके फलका अधिकार है वहां तुंगीआ नयरीके श्रावकका स्वरूप है.

९५ प्रश्नः—अभवी कहांतक पढ सके ?

उत्तरः—नंदीसूत्रकी छपी हुइ प्रतमें पत्र ३९९ में साडे नौ पूर्व तक पढ सके, असा कहा है; मगर श्रद्धा न होनेके सबबसें आत्माका कार्य सिद्ध नही होवे.

९६ प्रश्नः—श्रावकके व्रत लिये बिगर दूसरे फुटकर नियम करनेकी मर्यादा है या नहीं ?

उत्तरः—भगवतीजीकी अंदर पत्र ४६१ में अधिकार है. वहां कहा है कि मूल गुन पच्चख्खानीसें उत्तरगुन पच्चख्खानी असंख्याते है; मगर तीर्यंचभी श्रावकके व्रत लेते हैं, उस्से असंख्यात गुने कहे हैं. टीकाकारने विशेषतासें कहा है कि सहत, मख्खन, मांस, मदिराका नियम करे वोभी उत्तरगुन पच्चख्खानी कहा जाता है, इस तरह वहां अधिकार है.

९७ प्रश्नः—छठ्ठे आरेमें जो जीव होवेंगे उन्होंका कितना आयुष्य ? और वे समकिती या मिथ्यात्वी ?

उत्तरः—छठ्ठे आरेके जीवोंका आयुष्य १६ से २० वर्ष तकका कहा है. बहुत करकें समकित रहित वहां रहेवेंगे वगैरः सब अधिकार भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ४७९ में है सो वहांसें देख लेना.

९८ प्रश्नः—पांच इंद्रियोंमें कामी इंद्रि कौनसी और भोगी कौनसी ?

उत्तरः—श्रोत्र, चक्षु ये दो इंद्रियें कामी और स्पर्श, रसेंद्री तथा घ्राण ये भोग इंद्रियें हैं; सबब कि ये इंद्रिसें भोगनेसें सुख है–इसका सविस्तर अधिकार भगवतीजीकी प्रतके ४८७ पत्रमें है.

९९ प्रश्नः—श्रावक संथारा करै तब सर्वथा पांचों व्रत अंगीकार करै ?

उत्तरः—वरुननाग नटुवेने सर्वथा प्राणातिपात प्रमुखका त्याग किया है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५१० में है, वास्ते कर सके असा मालूम होता है.

१०० प्रश्नः—श्रावक रात्रिपोषह करै तब दिया रख्खे या नहीं?

उत्तरः—श्रावक पोषहमें दिया न रखे; सबब कि श्रावक प्रतिक्रमण करता है तब दो घडीका सामायिक है, उसमें काउस्सग्ग करता है तबभी आगार रक्खा गया है कि दिया-विजलीकी उजेइ आ जाय तो वस्त्र ओढ लैना तो कायोत्सर्ग भंग न होवै, इस लिये आगार है. अब शोचो कि अकस्मात् कोइ दिया वगैरः ल्यावै तो कपडा ओढ लैना, तब रक्खा क्युं जाय? यहांपर शंका होगा कि उजेइ यानी उजाला उसमें किस वास्ते वस्त्र ओढना? उसका ऐसा समझना कि उजेइ है सो अग्निकायके जीव हैं, उनका अपना स्पर्श लगनेसें वे जीव विनाश पाते हैं ये अधिकार समयसुंदरजीके प्रश्नमें हैं. फिर महानिसिथ सूत्रजीमें चौथे अध्यायकी अंदर पत्र पांचवेमें सुमतिनागीलका अधिकार चला है, उसमेंभी एक मुनिराजने विजलीका प्रकाश हुवा तब वस्त्र न ओढा, उसीसें वहां कहा है कि अग्निकायके जीवोंकी विराधना हुइ, उस्सेंभी अग्निकाय सिद्ध होते हैं. फिर भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१८ में अग्नि सुलगानेहारा महा आरंभी या बुझानेवाला महा आरंभी? वहां आग सुलगानेवाला महा आरंभी कहा है—वगैरः अधिकार चला है, उस पीछे प्रश्न हुवा कि जैसें अचेतन अग्निकाय प्रकाश करता है वैसें अचित्त पुद्गलकी ऐसी प्रभा होवै या नहीं? तब भगवंतजीने फुरमाया कि—जब मुनि तेजोलेश्या किसीके पीछे छोडता है तब वे अचित्त पुद्गलका प्रकाश होता है इस्सेभी समझा जाता है कि अग्निकी प्रभा सचित्त कही. फिर मुनि पक्खी अतिचारमें तथा श्रावक पक्खी अतिचारमेभी उजेइ आलोयते हैं. पुनः श्राद्धजितकल्पमें उजेइका प्रायश्चित कहा है. बृहत्कल्पमेंभी जहां दिपका उद्योत हो वहां किसी सबबके मारे एक दो रोज रहै; मगर विशेष रहै तो प्रायश्चित लगे ऐसा कहा है. पुनः टीकामें सविस्तर अधिकार है कि अणसण क्रिया हो तो दीपक रक्खै. ऐसे सबबके वास्ते दीपक रखनेकी मर्यादा है; लेकिन सबबके सिवा निषेध है. तो फिर पोषधमें श्रावक पढनेके वास्ते रक्खै वो तो असंभव है; सबब कि 'समणोइव सावओ.' ऐसा पाठ है; वास्ते ज्यों रात्रिकों साधु दीपक नही रक्खै त्यों श्रावकभी रात्रीमें

दीपक न रख्खे, असी हमारी समझ है. उजेइके वास्ते कपडा ओढनेका अधिकार वृंदारुवृत्तिमें पत्र २८ के भीतर है, फिर सेनप्रश्नके अंदर प्रश्न १८ में पत्र ६४ के अंदरभी दीपककी उजेइका प्रश्न है, उसमेंभी काउस्सग्गनिर्युक्तिकी गवाह है. ये कुछ हकीकत देखनेसें दिया रखना बेमुनासीब मालूम होता है.

१०१ प्रश्नः—श्रावक जिनमंदिरका द्रव्य व्याजु रख सकता है? और पूजनके कार्यमें उनका व्यय करै तो कुच्छ हर्ज है?

उत्तरः—अभिके वक्तमें श्रावकोंको जिनमंदिरके कर्मचारी जबरदस्तीसें व्याजु देते है; मगर श्राद्धविधिमें पत्र १०१ के अंदर श्रावकको जेवर रखकरभी धीरधार करनेकी मना फ़ुरमाइ गइ है; सबब कि श्रावक कम व्याजसें लेवै और जियादे व्याज पैदा कर लेवै, वो फायदा देवद्रव्यके अंदरसें हांसिल किया. फिर श्राद्धविधियें सागर शेठकी कथा है, उसमेंभी फक्त जिनमंदिरके मनुष्यको पैसेके बदलेमें अनाज दीआ था. उसमें एक रुपैकी ८० कांगुनी होवै उनमेंसें फक्त १००० कांगुनीका लाभ हांसिल हुवा था उसमें कितना संसारमें भ्रमण किया? वो कथा जब पढोगे तो बेशक हृदय भेदा जायगा; क्यों कि उतने लाभकी एवजीमें क्या क्या दुःख उठाने पडे हैं! वास्ते श्रावकको संकटमें डालनेवाले रुपै देनेवालेही हैं. फिर जिस वक्त श्रावक पैसा लेता है उस वक्त तो अच्छी हालत होती है, लेकिन जब मुस्कीन हालत हो जाय तब बडी फजीती होती है सबब कें सब दिन एक समान नहीं रहते है जब दिन पलट जाय और खानेकेभी फाके पडनेका वक्त आ जाय तब शेठीयोंका लहेना यदि होवै, तो अव्वलमें आपका लहेना वसूल करले ने हैं. यदि आपका लहेना न होवै तोभी आपसें एकधर्मी होनेके सबबसें शरमके मारे उसपर जियादे तकाजा नहीं किया जाता है. उससें दूसरेका कर्जह वसूल हो जाता है; मगर जिनमंदिरका कर्जह युंही रह जाता है. इसमें मंदिरका द्रव्य जावे और लेने वालेको बहुत भवभ्रमण करना पडे. देवद्रव्य भक्षणके फल बहुतसें शास्त्रोंमें लिखा है. उपदेशपदमें हरिभद्रसूरीजीने

कोइ देवद्रव्य खाता हो उसकी संभाल न रक्खे, तो उस श्रावकके लिये कितने कटुफल बतलाये हैं और खानेवालेके भवभ्रमणका तो पारही नहीं. पुनः श्रावकको पैसे धीरनेका रिवाज होवे तो खुद शेठियेभी पैसे उठा जाते हैं. और अभीके वक्तमें तो इसी तरह होनेसें जगे जगे ओं स्वाहा कर जानेके बनाव बनते हुवे मालूम होते हैं. इस्से बहुतही देवद्रव्यका नाश हुवा है, वो सब भाइयोंके जानमेंही है. फिर षष्टीशतककी टीकामें इतने तक कहा है कि देवद्रव्य बढानेके वास्ते बहुत मूल्य देकरके भी मंदिरकी चीज लेते हैं और खुद बापरते हैं उस्को नरकगामी जीव कहे हैं; वास्ते देवद्रव्यसें तो ज्यों बन शके त्यों दूरही रहना.

फिर जिनपूजन करनेमेंभी सब उपकरण शक्तिवालेकों तो अपने घरसेंही ल्यानेका फरमान है. ओरसिया वगेरः पदार्थभी श्रावक खुद अपनी पदरका धन देकें बना लेवै. जो जियादे धनपात्र है वो अैसी वस्तुअें बना रखावै. साधारन धनपात्र अैसी चोजें नें बना सकै तोभी केसर-चंदन-पुष्प वगैरः तो हर्गीज वपरासमें न लेवै. वो चीजें तो घरके पैसोंकीही लेवै; क्यों कि मंदिरके द्रव्यमेंसें ल्याइ हुइ अैसी चीजें काममें लेनेसें लाभ नहीं होता है. आत्म प्रबोधमें कथा है कि-' एक समकितीको पीछले जन्ममें देवद्रव्यसें नुकसान हुवा है, उससें ये जन्ममें अैसा नियम किया है कि मैं मंदिरमें लाये जलसेंभी हाथ न धोउंगा.' फिर श्राद्धविधिमेंभी कथा है कि-एक लक्ष्मीबाइने देवद्रव्य बढानेके लिये बहुतसें उत्सव कियेथे, उसमें मंदिरके उपगरण वपरासमें लिये, यदि उसका नकराभी दिया, तोभी कुछ नकरा कम पडनेके सबबसें भोगांतराय बांधा जिस्सें दूसरे जन्ममें जन्म लिया जबसेंही पियरमें शोक पडने लगे, और सादी हुवे पीछे ससरेके घरमें शोक पडने लगे. पीछे मुनि मिले तब पुंछा कि-'महाराज! मेरे जन्म भरसेंही शोक पडताही मालूम होता है उसका सबब क्या?' पीछे गुरुजीने कहा-पूर्व जन्ममें मंदिरके उपगरण कम नकरा देकर वपरासमें लियेथे उसका ये फल है.' शाचो कि कम नकरेके लिये असा हुवा तो मुफतमें मंदिरकी चीजें घर काममें ल्याकर वपरासमें लेवै तब तो फिर नुकसानीका कहनाही क्या? वास्ते मंदिरकी या साधारनकी, ज्ञानद्रव्यकी चीजोंसें बहुत दूर रहना और कोइभी अंशमें अपने घर कार्यमें न आवे अैसा खूब खियाल रखना, ये द्रव्यकी न्यायसें वृद्धि करनेमें

तत्पर रहना, और पूजन सेवनमें पदरके पैसेसेंही चित्त प्रफुल्लित रहता है वास्ते सुंदर शुद्ध द्रव्य घरसेंही लेकर वापरना.

साकेतपुर नगरमें सागरशेठ नामक श्रावक रहताथा उसकों धर्मी जानकर दूसरे श्रावकोंनें मंदिरका द्रव्य सुंपरद किया और कहा कि-' इन द्रव्यमेंसें मंदिरके काम करनेवाले शिलवट, सूत्रधार, मजुदूरकों उनकी मिहनतके पैसे चुकाते रहना.' वो द्रव्य सागरशेठके हाथ आनेसें लोभमें पडा, उससें वो सुतार वगैरः कों नकद पैसें न देतें उसकी एवजीमें अनाज गुड कपडा वगैरः देने लगा. उनमेंसें एक रुपैकी ८० कांगुनी होती है इस तरह १००० कांगुनी उनने पैदा की और वो पैदास अपने घरमें रख्खी. उससें महा पाप उपार्जन किया और विगर आलोचे मरकर वो समुद्रमें जलमनुष्य हुवा. वो जलमनुष्यकों इंदगोली होती है. वो इंदगोली जो मनुष्य पास रखकर समुद्रमेंसें रत्न निकालनेकों जावे तो वो नही डूबता है. उससै समुद्रके उपकंठनिवासि वनियोंने सागरशेठके जीव जलमनुष्यकों पकडकर चक्कीके नीचे दवा रख्खा. छः महीने वाद चक्कीके नीचे दवाकर मर गया और तीसरी नरककों गया. वहां नारकीके दुःख भुक्तकर आयुष्य पूर्ण हुवे वाद पांचसो धनुषके शरीरका मच्छ हुवा. वहां मलेच्छोंने पकडकर अंगोपांग काट डाले उससें मरकर चौथी नरकमें गया. वहांसें निकलकर एक एक भवके अंतरसें पांचवी, छठ्ठी, सातवी नरकमें दो दो वक्त जा आया. ऐसें नरकके परमाधामीकी वेदना क्षेत्रवदना सहन कर पीछे फिर तीर्यंचके भव करके एक हजार कूतेके भव भुक्ते, और दूसरेभी एक हजार भव नीचे मुजब लेने पडे.

सूवरके, वकरेके, घेटेके, सस्सेके, हिरनके, सावरके, शियालके, वील्लीके, चूहेके, घूसके, छिपकलीके, पटलागोहके, सांपके, विच्छुके, विष्टाकेकीडेके, शंखके, सीपके, जोकके, कीडेके, पतंगीएके, मच्छरके, कछुआके, गदहेके, भेंसके, व्हेलके, ऊंटके, खबरके, घोडेके, और हथ्थीके ऐसे एक एक जातीमें १०००, हजार भव किये. फिर पृथिवीकाय, अपकाय, तेउ, वाउ, वनस्पतीकाय वगैरःमें लाखों भव भ्रमणकर किसी ठौर शस्त्र अस्त्रके महार सहन किये, वडी वडी पीडायें भुक्ति, और वहुत हैरान हुवा. वाद देवद्रव्य भक्षणका पाप वहुत क्षय होनेसें वसंतपुर नगरमें कोटीध्वज वसुदत्तश्रेठकी वसुमतिके कुखमें पुत्रपणेसें उत्पन्न हुवा. वो सागरशेठका जीव गर्भमें

आया जबसेंही वसुदेवशेठका द्रव्य नाश होने लगा. जिसदिन जन्म हुवा उस
वसुदेव मर गया. पांचवे वर्ष उसकी मा मर गइ. लोगोंने उसका निपुन्निया नाम रख
दरिद्रि रंककी तरहसें बडा हुवा. एक वक्त उसकों बुरी हालतमें उसके मामुने दे
तो वो अपने घर ले गया. उससें उसी रातमें उन् निपुन्नियेके पांउके सबबसें चो
घर लूंट लिया. वहांसें वो दूसरी जगहपर गया. वो जहां जावै वहां उसकों चोर
लेवै या आग लगै और आपत्ति पावै. हरकोइ विपत्ति उसकों आ भेटै. अैसी स्थि
देखकर कोइ उसकों खडा नहीं रहने देवै, और लोग निंदै कि ये तो जलती उप
है. अैसी अनेक तरहकी लोगनिंदा होने लगी. वो सुनकर उसका मन उद्वेगता
हुवा. उस सबबके मारे वो परदेशकों चला गया. तामलिप्त नगरमें रहने लगा.
विनयधरशेठ रहता था उसके घर चाकर बन कर रहा. मगर रहा उसी रोज
शेठके घरमें आग लगी, उसके लिये उसकों बावले कुत्तेकी तरह हकाल दिया.
पश्चाताप करता-शोचने लगा और पुर्वका किया हुवा निंदनीय कर्मकों निंदने लगा.
जो कर्म स्ववशपणेसें करता है वो कर्म उदय आवे तब परवशपणेसें भुक्तने पडते
अैसें निंदा करता हुआ वहांसें दूसरी जगहपर गया, और चलता चलता दरिया
किनारेपर पहुंचा. उसरोज धनवान नामक शेठ जहाजपर सवार होकर धन उपार्जन
विदेशकों जानेवालाथा, उसीका नौकर बनकर उनके साथ जहाजमें बैठ गया.
जहाज रवने होकर कुशलता पूर्वक दूसरे द्वीपकों पहुंच चुका, तब निपुन्निया शो
लगा कि-यह बडी आश्चर्यकी बात है कि मैं जहाजमें सवार हुआ तौभी जहाज
भागा ! न डूब गया ! ! अैसा शोचता है इतनेमें तो दुष्ट दैवने दंडसें करकें जहाज
भग्न कर डाला. निपुन्निया समुद्रमें डूबा किंतु वहां पाटीआ हाथ आ जानेसें उ
सहारे सहारे किनारे पहुंचा और बच गया. बहार निकलकर नजदीकके गॉ
वहांके ठाकुरके वहां नौकर बन रहा. तो उस जगे धाड पडी. निपुन्नीएकों ठाकुर
लडका समझकर चोर-धाडुलोग पकडकें ले गये और उसकों अपने रहनेकी जगह
रख्खा. वहां दूसरे पल्लीपतीने चडाइकर उन धाडपाडुओंकी पल्लीका नाश कर डा
अैसा होनेसें धाडपाडुओंने निपुन्नियेकों वहांसे मार हकाल दिया. तो बेलके
नीचे जा बैठा और बेलका फल गिरनेसें सिरमें चोट लगी, तो वहांसें भाग
हजारांह जगहपर भटका. जहां जावै वहां चोरका, पानीका, आगका, परसैन्य

और मरनका असे असे उपद्रव होतेही रहे. उसी सबबसें कही ठहरने न पाया. सभीने मार हकाल दिया. असे कष्ट उठाते उठाते एक अटवीमें जा पहुंचा. वहां सेलक नामक यक्ष कि जोर वडा प्रभाविक था, उसका उसने एकाग्रचित्तसें आराधन कर, अपना समस्त दुःखभी निवेदन किया, और एक्वीस रोजका छल्ला पूरा हुवा तो यक्ष प्रसन्न हो कहेने लगा-अय भोले आदमी! दर सायंकालके वक्त मेरे अगाडी सुन्नेके हजार चंद्रयुक्त वडा शुशोभित मोर नाच करेगा, उन मोरके निरंतर पर खीरते रहेंगे, वे पर लेकर मौज करना.' असा सुनकर निपुण्निया हर्षवंत हुआ, और हरहमेशां सुन्नेकेपर लेकर मौजमें रहने लगा. जब नौसो पर इकठे हुए तब वो शोचने लगा-'इस घोर जंगलमें कहां तक पडा रहुं? मोरके पर मुठीये भर भरके नौच लुं के बेडा पार हो जाय और चलेजानेकाभी मोका हाथ आ जाय.' दुष्टदैवकी प्रेरणासें उसने युंही किया, तो मोर उडकर सारे इकठे किये पर लेकर चलता हुवा. निपुण्निया वहुत शोचने लगा-'धिःकार है मेरे बदनशीबकों, जो मूर्खता करके सतावी की तो मिलाइ हुइ चीजभी चली गइ.' सच्च है कि दैवकी आज्ञा उल्लंघन करनेसें बेशक निष्फलता प्राप्त होती है. निपुण्निया आया था वैसाका वैसाही चला और जंगलमें भटकने लगा. वहां एक उपकारी मुनीराजका मिलाप हुवा तो नमस्कार कर उसने महाराजके आगे सारा हाल कहकर पिछले जन्मका वृत्तान्त पूछा. मुनीमहाराजने कहा-'हजार कांगुनी देवद्रव्यमेंसें खाइ है उसी पापके मारे तूने यह जन्ममें और दूसरे जन्मोंमें दुःख पाया है.' असा कहकर सारा पूर्वके जन्मोंका हाल सुनाया. और पीछे देवद्रव्य भक्षणके पापसे निवृत्त होनेका उपायभी कहा कि-'हजार कांगुनी खाइ है, उस्से जियादा धन दे देना, देवद्रव्यका रक्षण करना, और देवद्रव्यकी वृद्धि करनी, उससें दुष्कर्म दूर हो जायगा. सब जीवोंकों भोगलक्ष्मीसुखका लाभ होवे.' असा सुनकर उसने नियम लिया कि उससें हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यमें दउंगा. और वस्त्र आहारादिमेंसें जो धन वचेगा वोभी देवद्रव्यमें दे दुंगा. थोडाभी द्रव्य मैं पास न रख्खुंगा. असा मुनीराजके पाससें नियम लिया और शुद्ध श्रावकधर्म अंगीकार किया. उस पीछे जो जो व्यापार किया उसमें द्रव्य पैदा किया. उससें गत जन्ममें हजार कांगुनी खाइथी उसके वदलेमें दश लाख कांगुनी देवद्रव्यमें दी. तब देवद्रव्यके ऋणसें मुक्त हुवा और उसीसें वहुत उसने धन पैदा किया. पीछे अपना व्याज वढाने लगा और

-इतसा धन पैदा किया सो खोराकी पोषाकी करतें बचा सो कुल्ल देवद्रव्यमेंही दे दिया. इसमुजब बहुत देवद्रव्यकी वृद्धि की. इन वृद्धि करनेके पुन्यसें तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया. समय हाथ आनेसें दीक्षा अंगीकार करकें गीतारथ हुवे. धर्मदे-शनादिकसें, देवभक्तिके अतिशयसें करकें जिनभक्तिका पहिला स्थानक आराध कर तीर्थंकर नामकर्म निकाचित करकें कालधर्म पा सवार्थसिद्धिमें पहुंचे, वहांसें चवीके महाविदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर पदवी भुक्तकर सिद्धि पावेंगे. इस तरहकी कथा श्राद्धवि-धिमें पत्र १०१ सें १०२ तक है.

अब साधारन द्रव्य और ज्ञानद्रव्यपर कथा कहते हैं. भोगपुर नगरके अंदर धनवा नामक शेठ था वो चोवीश कोडी सोनैयेका मालिक था. उसकी धनवती स्त्रीने पुत्रकी जोडीकों जन्म दिया. एकका नाम करमसार और दूसरेका नाम पुन्यसार था. एक वक्त पिताने निमित्तियेसें पूछा कि-'ये पुत्र कैसे निकलेंगे?' निमित्तिया कहने लगा-कर्मसार जडप्रकृतिवाला निर्बुद्धि होगा, और विपरीत बुद्धिसें करकें घरका सब धन गुमा बैठेगा. नया धन पैदा न कर सकेगा. बहुत काल तक बडी दरिद्रतासें चाकरी कर दुःख उठायगा. और पुन्यसारभी है उसीके जैसाही, मगर व्यौपारमें विचक्षण निकलेगा. दोनूकों वृद्धावस्थामें धन पुत्रादिकका सुख मिलेगा.' तदनंतर दक्ष पिताने उन् दोनूकों चतुर उपाध्यायके पास विद्याध्ययनके लिये रख्खे. पुन्यसार सुखपूर्वक सब विद्या पढा; लेकिन कर्मसार बहुत मिहनत करनेपरभी एक अक्षर नहीं शीख सका. बिलकुल पशुतुल्यही रहा, उससें उपाध्यायनेभी पढाना मोकूफ किया. जब दोनू उमर लायक हुवे तब धनवानोंकी लडकियोंके साथ उसीके पिताने सादी करवादी और दोनूकों बारह बारह कोडी सोनैये बांटकर अलग कर दिये. उस पीछे मात तात दीक्षा लेकर देवलोकवासि हुवे.

अब कर्मसारने सज्जन लोगोंकी मना तरफ बेदरकारी बतलाते हुवे व्यौपार किया, अपनी बुद्धिके मारे धनकी हानी हुइ और थोडेही दिनोंमें पिताकी दी हुइ दौलत बरबाद कर डाली.

पुन्यसारकों जो दौलत मिलीथी उसकों चोर लूट ले गये. दोनू दरिद्री बन बैठे. स्वजनोंनें उन दरिद्रीओंकों छोड दिये औरतेभी भूखे मरती हुइ उनकों छोड छोडकर पियरमें जा रही. धनके सिवा गुणिजनभी निर्गुणि हो जाता है. अपने सं-

अंधोजनभी चाकरके मिसालभी निर्धन संबंधीको नहीं गिनते हैं. और धनवंतमें थोडीसी चतुराइ होवै तो उसें चतुर कहते हैं. मगर वे दोनू भाइ तो निर्धन होनेसें उन्होंकों निर्बुद्धि निर्भागी कहकर बुलाने लगे, तब उन्होंने लाजकेमारे विदेशका रस्ता पकडा और वहां जाकर अलग अलग रहना दुरुस्त मान लिया. कर्मसार किसी धनवानके वहां और उपायके अभावसें नौकर बन रहा. वो शेठ झूंठा बोलनेहारा, अदत्तका लेनेहारा और चाकरोंके पगारभी वक्तसर न देनेहारा होनेसें कर्मसारकों खानेपीनेकी बडी तकलीफ उठानी पडी. पुण्यसारने तकलीफ उठाकरकेंभी कुच्छ धन पैदा किया पर छुपा रख्खा तो धूर्तोंने छल करकें, धन उडा लिया इसतरह बहुत जगहपर चाकरी करकें, धातुर्वादीसें खान खोदकर रसायन सिद्ध किये, रोहणाचलपर रत्न लेनेकोंभी गया. मंत्रसाधना कर रुद्रवती वगैरः जडी लेनेका महा पराक्रमभी ११-१२ दफै करकें धन प्राप्त किया; मगर वो हाथ न रहा. कर्मसारकोंभी धन मिलकर फिर चला गया दैव विपरीत होनेसें मिहनत व्यर्थ जाती है. उस पीछे दोनू भाइ उदास-निरास हो जहाजपर स्वारी कर रत्नद्वीपमें जा पहुंचे. दोनूने सांमत्य रत्नद्वीपकी देवी जानकर मरण अंगीकार करकेंभी उन देवीका आराधन करना शुरु किया. जब आठ उपवास हुवे तब देवी प्रकट होकर कर्मसारसें कहने लगी-'तेरे भाग्यमें धन नहीं है; वास्ते ये काम छोडदे.' अैसा सुनकर कर्मसारने आराधना बंध की. पुण्यसारने एक्कीस रोज तक आराधना शुरुही रख्खी उससें देवीने प्रसन्न हो उसकों एक चिंतामणि रत्न बक्षा. वो देखकर कर्मसार पश्चाताप करने लगा. तब पुण्यसारने कहा-'खेद मत कर. इस रत्नसें तेराभी काम फतेह होगा.' अैसा सुननेसें कर्मसार खुश हुवा और दोनू भाइ प्रीतिपूर्वक जहाजपर स्वार हुवे. पूर्णिमाकी रात्री होनेसें पूर्णचंद्र उदय हुवाथा, तब कर्मसार बोला-'भाइ! तेरे पास रत्न है उसका तेज विशेष है या चंद्रका? वो अपन देख लेवें.' अैसा सुन पुन्यसारनेभी पूर्वकर्मकी प्रेरणासें रत्न निकालकर हाथमें रख्ख जहाजके किनारेपर बैठ चंद्र, चिंतामणीके तेजका मुकाबला करने लगा. अभाग्यवशसें रत्न समुद्रमें गिर पडा. मनोरथ निष्फल हुवे. दोनू भाइ जैसी हालतसें विदेश गयेथे वैसीही हालतसें दुःख पाते हुवे अपने वतन जा पहुंचे. वहां ज्ञानी गुरुका मिलाप हुवा, उन्हीके चरनमें शिर झुकाकर पीछे पूर्वभव वृत्तान्त पूँछने लगे, ज्ञानी महाराजने कहा-'चंद्रपुर नगरमें जिनदत्त और जिनदास

ऐसे दो श्रावक परमअरिहंतजीके भक्त थे. एक वक्त सब श्रावकोंने मिलकर बहुतसा ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य उन दोनु श्रावकोंको एक एक द्रव्य संभालनेके वास्ते दिया. और वे दोनु अच्छी तरहसें संभाल रखने लगे. जिनदासने अपने लिये पोथी पुस्तक लिखायाना और अपने पास दूसरे द्रव्यका अभाव था जिस्से शोचा कि मेरी पोथी लीखी गइ है वोभी ज्ञानकाही ठिकाना है. ऐसा शोचकर ज्ञानद्रव्यमेंसें बारह दाम लेखकको दिये. जिनदत्तने साधारण द्रव्यमेंसे अपने घर बहुतसे प्रयोजनके कार्यनिमित्त दूसरे द्रव्यके अभावसें अपने काममें व्यय कर डाला. यों दोनु श्रावक द्रव्यका विपरीततासें व्यय करनेके सबबसें मर कर पहेली नरकमें गये. नरकमेंसें निकलकर सर्प हुवे. वहांसे मरकर दूसरी नरकमें गये. वहांसें निकलकर गीधपंखी हुवे. वहांसे मरकर तीसरी नरकमें गये. एक एक दो भवके अंतर सातों नरककी सफर की. एकेंद्रि, बेरेंद्री, तेरेंद्री, चौरेंद्रि, पंचेंद्री, तीर्यंचके बारह बारह हजार भव करके वारंवार दुःख भुक्तकर बहुतसे कर्म क्षीण हुवे बाद वा दुष्टकर्मके लियेसें उन दोनूको बारह हजार भव बारह दामकी एवजीमें दुःखपूर्वक भुक्तने पडे. फिर इस भवमें बारह क्रोड सोनेये गुमा दिये. हर वक्त बहुतसी तदवीरसें धन पैदा किया मगर वो नाश हो गया. दूसरेके घरकी चाकरी कर दुःख भुक्तना पडा. कर्मसारके जीवने ज्ञानद्रव्यका भक्षण किया उस्से निर्बुद्धि हुवा—बुद्धिभ्रष्ट हुआ और बहुसा दुःख उठाया. पुण्यसारने साधारण द्रव्यके भक्षणसें वेर वेर धन गुमाया.' इस तरह मुनीमहाराजके मुँहसे पूर्वभवका चारित्र सुनकर दोनु भाइने श्रावकधर्म अंगीकार किया. और प्रायश्चितके बदलेमें बारह हजार दाम ज्ञानद्रव्यमें और साधारण द्रव्यमें देंगे ऐसा नियम ग्रहण कर लिया. तत्पश्चात् दोनु भाइयोंने पूर्वकर्म क्षय हो जानेसें बहुतसा धन पैदा किया. साधारण द्रव्य तथा ज्ञानद्रव्य बारह गुना दिया. और बारह बारह क्रोड सोनैयेके मालिक होकर अच्छे श्रावक हुवे. अच्छी तरहसें ज्ञानद्रव्य और साधारण द्रव्यका रक्षण किया. और इच्छा युक्त ज्ञानद्रव्य, साधारण द्रव्यकी वृद्धि की. श्रावकका धर्म प्रशंसनीय पनेसें आराधकर दीक्षा ले मुक्तिमें पहुंचे. यह कथा सुनकर ज्ञानद्रव्य, देवद्रव्यकी तरह श्रावकको नहीं कल्पे ऐसा खास ध्यानमें रखना. साधारण द्रव्यभी संघका दिया हुवा काम आसक्ता है. आपके हाथसें न ले लेना. संघकोभी सात क्षेत्रके कार्यमें व्यय करना दुरुस्त है; लेकिन याचकोंको देना नादुरुस्त है.

ज्ञान संबंधी द्रव्य या कागज वगैरः साधुकों दिया हो उनकों श्रावक अपने काममें न लेवै. अपने घरका पुस्तकभी उस द्रव्यमेंसें न लिखवावै. गुरुकी आज्ञा विगर गुरुके लहियेके पाससेंभी न लिखवा लेना चाहियें. थोडासा जीनेके खातिर प्रमाणसें अधिक कठोर पाप जानकर विवेकीजनकों थोडासाभी देवद्रव्य किंवा ज्ञानद्रव्य व्यय नहीं करना. वो ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य या देवद्रव्य देनेका कहा हो तो देनेमें विलंब न करना. तुरत देनेसें जियादा लाभ होवै और विलंब करनेसें कदाचित् दुष्ट भाग्योदयसें सब धन नाश हो जाय या मरण हो जाय और देना रह जाय तो भला श्रावकभी दुर्गतिकों पावे. उसपर कथा कहते हैं:—

महापुर नगरके अंदर धनवान् ऋषभदत्त शेठ था, और वो परम अर्हत्का भक्त था. वो पर्वके दिन जिनालयमें गया, मगर उस वक्त उसके पास नकद पैसे न थे उस सबबसें उधारसें मंदिरका द्रव्य लेकर प्रभुकों चडाया. लेकिन वो द्रव्य तुरंत वापिस न दे दिया; क्यों कि दूसरे कार्यमें व्यग्रचित्त था उससें देना रह गया. कितनेक दिन बीत चुके बाद धाडपाडुओंने धाड पाडकर उसका कुल धन लूंट ले उस शेठकों जानसें मार चल दियें. शेठ मर कर उसी नगरमें निर्दय दरिद्री भैंसेवाले बीहीस्तीके वहां भैंसा हुवा. वो हमेशां पानीकी पखाले उठाया फिरताथा. नंदी नीची जमीनमें थी और शहेर बडी उंची जमीनमें था, उससें उतना ढाल चडकर रातदिन भार उठाया करताथा. बीहीस्ती निर्दयतासें चमडेकी साटका मार देताथा वो और भूख प्यासभी सहन करताथा. इस तरह रातदिन ऐसा दुःख उठाया करताथा, उस अरसेमें जिनमंदिरका कोट नया बनताथा उसमें चुना, वगैरःमें पानी डालनेके वास्ते वही भैंसा मारफत पानी लाया जाताथा. उस मंदिरमें श्रावकलोग पूजा करतेथे, उसें देखकर उन भैंसेकों जातिस्मरण ज्ञान हुवा, उससें पिछले जन्मका स्वरुप समझनेमें आया. मंदिरका द्रव्य देना रह जानेसें मैं भैसा हुवा हुं. ऐसा समझमें आनेसें वो भैंसेने वहांसें एक कदमभी न उठाया. दरम्यान एक ज्ञानी गुरु आ पहुंचे, उन्होंने उन भैंसेका पूर्वजन्म वृत्तान्त जाहिर किया. उस्से उन शेठके पुत्रने एक हजार गुना द्रव्य देवद्रव्यके देवेमें वसूल करवा दिया. भैंसेके मालिककों पैसे देकर भेंसेकों छुडा लिया. पीछेसें उन भैसेनें अनशन किया और अनशन आराध कर देवलोकमें देवपना प्राप्त किया. और क्रमसें मोक्षमें जायगा. यह कथा सुनकर

मंदिरके, साधारणके अंदर जो देनेका कहा हो वो तुरंत दे देना. मंदिरके उपगरण उजमणेमें या उत्सवादिकमें उपयोगमें ले उसका पूरापूरा भाडा-किराया-नकरा न देनेसें लक्ष्मीवतीकी तरह महा हानि होती है. वो कथा इसतरह है कि:—

लक्ष्मीवती बाइ महान् ऋद्धिवंत थी और धर्मवतीभी थी. वो बाइ देवद्रव्य बढानेके लिये उद्यापनादिक पुण्यकार्यके बहुत आडंबर किया करतीथी. लेकिन जो मंदिरके उपगरण लेतीथी उसका नकरा कुछ कम देकर उन उपगरणोंका उपयोग करतीथी. और जन्मभर ऐसाही श्रावकधर्म उत्साहपूर्वक आराधन करके आयु क्षय होनेसें देवलोकमें गइ. मगर हीनबुद्धिसें करके नकरा कम दियाथा उससें हीनजातीकी देवांगना हुइ. अनुक्रमसें वहांसें देवायु पूर्ण कर धनवंत अपुत्रिये शेठके वहां पुत्रीपणेसें उत्पन्न हुइ. जबसें वो माताके गर्भमें आइ तबसें यानी श्रीमंतोत्सवमें परचक्रका भय उत्पन्न हुवा उससें उत्सव बराबर न हो सका. फिर जन्मोत्सवादिकके अंदरभी राजाके वहां शोक पडा उससें उसके पिताने भारी भारी आडंबर कियाथा सब निष्फल हुवा. फिर मणि रत्न सुवर्णादिकके दागीने करवाये, मगर चोरोंका भय बढ जानेसें उनका वो उपभोग न कर सकी. पुनः भोजन वस्त्रादिकका उपयोग करनेकाभी वक्त न आ सका; क्यौं कि पूर्वकर्मके संयोगसें शोक आ पडा. इस तरह कोइभी कार्यमें उत्सव पूरा न हो सका. तब उसके पिताने पुत्रीके विवाहके वक्त बडा भारी ठठारा किया; मगर जब लग्नका दिन नजदीक आ पहुंचा तब उसकी मा मर गइ, उसीसें लग्नभी उत्साह रहित हुवा. बाद सासरेमें गइ, वहांभी पूर्वकी मांफिक नये नये भय शोक उत्पन्न हुवे, उससें सासरेमेंभी मनोवांछित भोगसुख प्राप्त न हुवा. तो बाइने बडी उदासी युक्त संवेग पाकर केवलज्ञानी महाराजसें पूँछा, तबज्ञानी फ़रमाये कि–'तूंने पिछले जन्ममें उद्यापनके अंदर मंदिरके लिये हुवे उपगरणोंका नकरा कम दिया और बहुतसा आडंबर दिखलाया; उससें ये दुष्ट कर्म भोग अंतराय उपार्जन किया.' ऐसा उपदेश सुनकर उन्हने दीक्षा ली और क्रमशः मुक्तिमेहलमे पहुंचकर शाश्वतसुख प्राप्त किये. इस मुजबकी कथा श्राद्ध विधिके पत्र ११० में है. वास्ते हरएक उपगरण अपने घरके रखने चाहियें, और कदाचित् मंदिरके लेने पडे तो उन्होंका पूरापूरा नकरा देकर उपयोगमें लेवे.

मंदिरमें दीपक कर वो दीपक घरपर लाकर घरके काममें उसका उपयोग न

करना. अगर मंदिरके दीपकसें कागजभी न पढना. रुपैभी न परख लैना. और मंदिरमें धूप कर उस किये हुवे अंगारेकोंभी घरपर लाकर उपयोगमें न लैना. उसपर श्राद्धविधिमें कथा नीचे मुजब है:—

इंद्रपुर नगरमें देवसेन नामक व्यापारी था, उसके वहां धनसेन नामका ऊंटवाला चाकर था. उस चाकरके वहांसें हरहमेशां एक सांढनी देवसेनके मकानपर आया करती थी. धनसेन बहुतभी मारपीट कर घर पर छोड आता था तौभी वो पीछी आये विगर नहीं रहती थी. सांढनी पर देवसेनका, और देवसेनपर सांढनीका वहुत प्यार मालूम होताथा. दरम्यान कोइ ज्ञानी महाराज आकर समोसरे तो उन्सें देवसेनने सांढनी और आपके बीच प्यार था उसका खुलासा पूंछा. ज्ञानीने फ़रमाया कि, वो सांढनी तेरी पूर्वभवकी माता है. उनने गतजन्ममें प्रभुके अगाडी दीपक कर पीछे वो दीपक घरकाममें लियाथा, और फिर प्रभुके आगे धूप किये हुवे धूपधानेमेंसें अंगारे लेकर घरपर ला चूल्हेमें आग सुलगाइथी. उस कर्मसें सांढनी हुइ है. और पूर्वके स्नेह संबंधसें तुम दोनूके बीच स्नेहभाव बना रहता है. इस मुजब कहकर फिर कहा कि-मंदिरके चंदनसें तिलकभी अपने भालमें न करना. और मंदिर तरफसें लाये गये जलसें हाथभी न धोना. देव संबंधी शेषभी (प्रसाद) न लैना. देवकी झालरभी गुरुके आगे न बजानी चाहियें.' इस तरह श्राद्धविधि पत्र १०८ में लेख है. और पत्र ८० में लेख है कि कची पुष्पकली न छेदनी चाहियें. मालीभी कबी कली नहीं नौच लेता है, तो अपनकों कची कली तोडकर चडानी वो कैसें योग्य होय? वास्ते कची कलीयें चडानी उचित नहीं.

१०२ प्रश्नः—गृहमंदिरमें नैवेद्य-फल-अक्षत वगैरः रखते हैं उसका क्या करना?

उत्तरः—गृहमंदिरमें जो चीज भगवानके आगे रख्खी जावे वो बडे मंदिरमें भेजवा देनी चाहियें. फिर नैवेद्य माली वगैरःकों दिया जाता है उसके बदलेमें माली फूल देवे तो दूसरेकों कहकर वडे मंदिरमें चडावे और कह देवे कि ये मेरे पैसेके फूल नहीं है. नैवेद्यके बदलेमें आये हैं वही हैं. गृहमंदिरमें अपने पदरके पैसेसें भक्ति करनी, ये अधिकार श्राद्धविधिमें पत्र ११२ में है और वहां उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या है.

१०३ प्रश्नः—सचित्त, अचित्त, मिश्र क्या क्या समझना?

है. किरायता, हर्र, छोहारा, छोटी द्राक्ष, बडी द्राक्ष, खजूर, मिरी, पीपर, जायफल, बादाम, अखरोट, नीमजे, जरगो, पिस्ते, कवाबचीनी ये अचित्त हैं. फिटकरी जैसा सुफेद सिंधानोंन, सज्जी, भट्ठीमें पकाया गया नोंन वगैरः बनावटी क्षार, शोधी हुइ मीट्टी, इलायची, लोंग, जायपत्री, सूकी मोथ, कोकन वगैरः पके हुवे केले, उवाले गये शिंघोडे, सोपारी वगैरः ये अचित्त होते हैं. और आदि शब्दसें हरताल, मनशिल, पींपर, खजूर, द्राक्ष, हर्र येभी सो सो योजन जलमार्ग वहन किये वाद अचित्त हो जाते हैं; लेकिन उपयोगमें लेने लायक नहीं होते हैं. इस मुजब श्राद्धविधिमें है. फिर दूसरे काल, पत्र ५५ में है वो निम्न लेख मुजब हैः—

सॉंवन और भादो मासमें चार दिन मिश्र.

काती, मिगशर और पोषमें तीन दिन मिश्र.

अघहन और फागुनमें चार पहेर मिश्र.

चेत, वैशाख, जेठ मासमें तीन पहेर मिश्र.

इतना काल व्यतीत हुवे वाद अचित्त होते हैं. छाना हुवा आटा दो घडी बाद अचित्त होता है. छाना हुवा आटाभी वर्ण, गंध, रस बदल देवै तो अभक्ष होता है. चातुर्मास [वर्षाकाल] में पंद्रह दिन, और शियालेमें एक महिना आटा रखनेकी मर्यादा है. बाद ग्रहण करने लायक नहीं रहता है. पकान्न वगैरःका काल वर्षाकालमें पंद्रह दिन, उन्हालेमें वीस दिन, और शियालेमें एक महिना काम लगें, पीछे ग्रहण करना वेमुनासिव है. तोभी ये कालके पेस्तर कभी वर्ण-गंध-रस-स्पर्श वदला हुवा मालूम पडे तो ग्रहण करना अयोग्य है. दहीं दो दिनके उपरांतका न खाना, कच्चा दूध या दहीं या छांसके साथ द्विदल खानेसें बेरेंद्रीय जीव पैदा होते हैं; वास्ते वो न खाना. गइ रातका बचा हुआ भोज्य पदार्थ, गीला हो गया हुवा पदार्थ वगैरः चीज दूसरे दिन खाने लायक नहीं रहै, ऐसा प्रभुका फरमान है. ३ तीन दफै उछाला देने तकका उबाला गया पानी वर्षाकालमें तीन पहेर, और उन्हालेमें पांच पहेर तक अचित्त रहवे, पीछे सचित्त होता है. वास्ते पीछे पीने योग्य नहीं रहता है. ऐसा श्राद्धविधिमें लेख है.

१०४ प्रश्नः—बकुश कुशील दो नियंठे-ये कालमें कहे है. उसमें कुशील तो भगवतीजीके पचीशवे शतकमें मूल गुनस्थानकके अंदर प्रतिसेवी कहे हैं. जब मूल गुनमें दूषण लगै तब संयम गुणठाणा कैसे रह सके?

उत्तरः—हरीभद्रसूरी महाराजने आवश्यककी टीका की है उसमें कहा है कि-मूल गुण प्रतिसेवीकों संजलके कषायसें होवे और वो अतिक्रम व्यतीक्रम, अतिचार ये तीनों भांगे तक होवै. अनाचार नहीं होवै, उससें समझा जाता है कि ओलोयकर पडीकमीके शुद्ध होवे. अनाचार सेवीकों संजलके कषाय शिवा दूसरं कषाय वर्त्तते हैं, तब गुणस्थान जावै.

१०५ प्रश्नः—अठारह भाव दिशा किस प्रकार हैं ?

उत्तरः—आचारांगजीमें पत्र ९ के अंदर [छपी हुइ प्रतमें] है. १ सम्मुर्छीम मनुष्य, २ कर्मभूमिके मनुष्य, ३ अकर्मभूमिके मनुष्य, ४ अंतरद्वीपके मनुष्य, ५ वेइंद्री, ६ तेरेंद्री, ७ चौरेंद्री, ८ पंचेंद्री, ९ पृथ्विकाय, १० अपकाय, ११ तेउकाय, १२ वायुकाय, १३ वनस्पतिकाय सो मूलबीज, १४ स्कंध बीज, १५ पर्वबीज, १६ अग्रबीज, १७ देवता और नारकी ये अठारह भावदिशा कही, उसका सबब कि जीव उतनी (१८) जगहमें संसारमें भ्रमण करता है; वास्ते आप शोचै कि-में कोनसी दिशासें आया ? यानी कोनसी गतिमेंसे आया हुं ? आदि शोचे और संसारसें विमुख होवै.

१०६ प्रश्नः—नौ प्रकारसे पुण्य बांधे वो किस ग्रंथमें लेख है.

उत्तरः—ठाणांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ५१४ में नौ प्रकारसें पुण्य बांधनेके कहे हैः—

१ अन्नपुण्य यानी अन्न देनेसें होता है.

२ पाणपुण्य यानी पानी देनेसें होता है.

३ वस्त्रपुण्य यानी वस्त्र देनेसें होता है.

४ शयनपुण्य यानी मुनिकों संथारा देनेसे होवै.

५ लेणपुण्य यानी मुनिकों उतरनेका स्थल देनेसें होवै.

६ मनपुण्य यानी मन शुभ प्रवर्त्तनेसें होवै.

७ वचनपुण्य यानी गुणी पुरुषके गुण गानेसे होवै.

८ कायपुण्य यानी कायासें देवगुरुकी भक्ति करनेसें पुण्य बांधा जाता है.

९ नमस्कारपुण्य यानी देवगुरु स्वामी भाइकों नमस्कार करनेसे होता है.

इस तरह नौ प्रकार हैं. यहांपर किसीकों शंका हो आयगी कि-"जिन-प्रतिमाकी पूजा कौनसे प्रकारमें आ समा गइ?" उसका खुलासा यह है कि-मनवचन क्यासे करके भक्ति करनी उसीमेंही जिनपूजाका समावेश हो गया है; क्यौं कि किसी जीवकों दुःख न देना और सर्व जीवोंकों सुख करना या देवगुरु उपकारीकी भक्ति करनी इसमें त्रिकरणकी शुद्धतासें पुण्य बंधाता है. इसीसेही जिनपूजा वगैरःका समावेश होहि जाता है.

१०७ प्रश्नः—व्याख्यान करनेके योग्य कौन है?

उत्तरः—आचारांगजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १९५ में सोलह वचन समझनेवाला हो वही उपदेश देनेके योग्य होता है. वे सोलह वचन नीचे मुजब हैः—

१ एक वचनः—वृक्ष, घट, पट, नर, सुर, ये संस्कृत है, रुख्खो, घडो, पडो, नरो, सुरो ये प्राकृत है. जो जो एक वचन हो सो उसकों ध्यानमें रख्खै.

२ द्वी वचनः—वृक्षौ, घटौ, पटौ, सुरौ ये संस्कृतमें है और रुख्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा ये प्राकृतमें है-उसकों जाने.

३ बहु वचनः—वृक्षा घटा, पटा, नरा, सुरा ये संस्कृत भाषामें और रुख्खा, घडा, पडा, नरा, सुरा, ये प्राकृतभाषामें हैं वोभी समझै.

४ स्त्री लिंग शब्द.

५ पुरुष लिंग शब्द.

६ नपुंसक लिंग के शब्द.

७ अध्यात्म वचन सो अंतरंग वचन.

८ उपनीत वचन सो प्रशंसाकारी वचन.

९ अपनीत वचन सो परनिंदाके वचन.

१० उपनीत अपनीत वचन सो पहेली प्रशंसा और पीछे निंदा होवै.

११ अपनीत उपनीत वचन सो पहेली निंदा और पीछे प्रशंसा करनी.

१२ अतित वचन सो गुजरे हुवे समयका वचन जैसें गतकालमें अनंत तीर्थंकर हुवेथे.

१३ वर्त्तमान वचन सो चलते हुवे समयकी व्याख्या.

१४ अनागत वचन सो भविष्यकाल वचन, जैसे कल ऐसा करेंगे-आते कालमें तीर्थंकर होवेंगे.

१५ प्रत्यक्षवचन सो इसने मुझको कहा है.

१६ परोक्षवचन सो भगवंतजी कह गये हैं.

यहरूपके सोला वचन समझे वो शुद्ध उपदेश दे सके. ये ज्ञान बिगर शुद्ध परुपणा नही बन सकती है.

१०८ प्रश्नः—सिद्ध भगवान् कौनसे अनंतमें है ?

उत्तरः—समकितविचार गर्भित महावीरस्वामीके स्तवन [छपे हुवे दूसरे भागमें पत्र ७४९] के अंदर दूसरे शास्त्रकी गाथा रख्खी है, उसमें अभवी चौथे अनंतमें, पडवाइ पांचवे अनंतमें और सिद्धादि आठवे अनंतमें कहे हैं. मतांतरमें सिद्ध पांचवे अनंतमें है ऐसा कहा है. मगर विज्यानंदसूरी महाराजके कहनेमें था कि आठवे अनंतमें समझना सुगम पडता है. दिगंबरके शास्त्रमेंभी आठवे अनंतमें सिद्ध हैं.

१०९ प्रश्नः—पौषध कब लेना ? और उसका काल किस तरह है ?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें फक्त दिनके चार पहेरका समय-काल कहा है. और अहोरात्रिके पौषधका आठ पहेरका काल कहा है. पौषध लेनेका विधि पत्र २४१ में बतलाइ है, सो प्रथम पौषध लेकर पीछे राइप्रतिक्रमण पडिलेहन करनी इसतरह है. और इसीतरह करनेसेंही चार पहरका काल पूर्ण हो सकता है. और मौडा लेवे और मौडा पारे वो बात पाठमें नहीं है; वास्ते सूर्योदयके पेस्तर पौषध लेना वही योग्य है. और पंचाशकजीमें पौषध पारकर पूजा कर पीछे पौषध लेनेकी मर्यादा बतलाइ है. मगर वो प्रतिमाधर श्रावकके संबंधमें है. सबब कि पडिमाधरको पीछली पडिमा सहित है. वास्ते वो पडिमा संभालनी उनसे वो विधि बतलाइ है. पडिमाधर शिवाके श्रावकके वास्ते तो श्राद्धविधिमें कहा है उसी तरहसें है.

११० प्रश्नः—पौषधकी अंदर वर्षाकालमें श्रावक जमीनपर संथारा करे या पाटके उपर ?

उत्तरः—वर्षाकालमें तो पाट परही संथारा करना कहा है. विचार रत्नाकर ग्रंथ

जो कीर्तिविजयजी महाराजका बनाया हुवा है उसमें आवश्यककी चूर्णीका पाठ लिखा है. वहां काष्ट आसनके आदेश लेनेंका कहा है. उसी तरह श्राद्धविधिमेंभी कहा है. फिर श्रावकके वास्ते पाट पटले कराकर उपाश्रयके अंदर श्रावकही कराकर तैयार रख्खे असाभी अधिकार श्राद्धविधिमें है. फिर हुंडीपत्र करकें प्रश्नरुप ग्रंथ है उसमें वर्षाकालमें पाट पटले न काममें लेवै उसें पासत्था कहा है.

१११ प्रश्नः—साधुजी पुस्तक रख्खें या नहीं ?

उत्तरः—इस कालमें साधुजी पुस्तक रख्खें ये अधिकार तत्वार्थके पत्र २८१ में है, उसमें वतलाया है कि दुषमकालमें धारणाकी खामीके लिये आज्ञा की है. वास्ते पुस्तक रखनेंमें कुछ हरकत नही है; लेकिन शिष्य अच्छे न हो तोभी [कु शिष्यकों] वो पुस्तक देकर जाना और वो बेच देवै सो योग्य नहीं. ये पुस्तक संघकै रुपेसें लीया है, उससें पुस्तकपर मालिकी संघकी रखनी कि जिस्सें बिगाडा न हो सकै. शिष्यकों पढनेंके लिये जरुरत हो तो श्रावक उसें देवें; मगर बेच खावे वैसे शिष्य हो तो श्रावक उसे पुस्तक न देवै. इस तरह साधुजीकों पुस्तकके संबंध रखना चाहियें.

११२ प्रश्नः—देवता और देवीके संग काम भोग किस तरह होवै ?

उत्तरः—भुवनपति-व्यंतर-योतिषि और सुधर्म, इसान देवलोक तकके देवताकों तो मनुष्यकी तरह भोग है. और सन्तकुमार, माहेंद्र देवलोकवालोंकों मात्र स्पर्श करनेका है. ब्रह्म, लांतक देवलोकवालोकों रुप देखे उतनाही काम है. शुक्र, सहस्रारके देवोंकों शब्द सुनेका विषय है. आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार देवलोकवालोंकों एक दूसरेके मन मिलापका विषय है. दूसरे देवलोकपर स्त्री नहीं है, उससें वहांसे दिलमें चाहत करै और स्त्रीभी वैसीही चाहत करै उस्सें संतोष होवै; सबब कि ज्यौं ज्यौं दूसरे देवलोकसें उपर चढते जाय त्यौं त्यौं विषयकामना कमी हो जाती है और बारहवे देवलोकके पीछे नव ग्रैवेयक या पांच अनुत्तर विमानके देवोंकों तो बिलकुल कामकी इच्छाही नही है. यह अधिकार पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ७७८ में है.

११३ प्रश्नः—देवता मनुष्यके साथ भोग करै और मूल स्वरूपमें आवे ?

उत्तरः—पन्नवणाजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र ६२१ में तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी कही है. उसका कारण यही है कि पूर्वभव संबंधी मनुष्यकी स्त्रीके उपर गाढ अनुराग हो तो देवता देवलोकसें आकर स्त्रीसंग करता है. और भोग करते मरजाय तो उसी स्त्रीके उदरमें तुरंत पैदा होवै. इसतरहका अधिकार है. इससे समझनेमें आता है कि मूल शरीरसें आ सकै तो तेजस शरीरकी अवगाहना अंगुलके असंख्यात भागकी हो और भोगकी वातभी उसीमेही है.

११४ प्रश्नः—चंद्रमा पूर्णिमाके बाद थोडा थोडा ढकाया हुवा चला जाता है और शुकल पक्षकी प्रतिपदासें खुलता हुवा चला आता है उसका क्या सबब ?

उत्तरः—जीवाभिगमसूत्रमें (छपी हुइ प्रतके पत्र ७७८ में) यह अधिकार है और वहां कहाहै कि-नित्य राहु ओर पर्वराहु ऐसे दो प्रकारके राहुके विमान है. उसमें नित्यराहु है सो चंद्रके विमानसें नीचे है, और उसकी गति ऐसी है कि वदि १ सें चंद्रविमानके नीचे थोडा थोडा आयेजाता है और चंद्रमा उससें ढकाहुवा चलाजाता है. अमावशके रोज पूर्ण प्रकारसें नीचे आजानेसे चंद्रमा तमाम उसके नीचे ढंकजाता है तो चंद्र मालूमही न हो सकता है. और शुदि प्रतिपदासें हमेशां नित्य राहु दूर हठता चलाजाता है सो पूर्णिमाके दिन बिलकुल हठजानेसें पूर्ण चंद्र प्रतीत होता है. पर्व राहु कोइ वक्त नीचे आता है तब ग्रहण हुवा कहाजाता है. ग्रहणके वक्त भोजन नही करना. ऐसा श्राद्धविधिमें कहा है. वो निमित्त अच्छा नहीं है वास्ते भोजनकी मना की है.

११५ प्रश्नः—आचार्य पंचमहाव्रत रहित होवें तो वो आचार्य कहे जावे या नहीं ?

उत्तरः—पंचमहाव्रत रहित आचार्य होवैही नहीं. पंचमहाव्रत रहितकों आचार्य पदवी देनेकी किसी जगह रजा नहीं. व्यवहारसूत्रमें मूल पत्र २७ के अंदर ऐसा कहाहै कि-जो बहु श्रुत होनेपरभी मृषा बोलै, उत्सूत्र बोले, पापकर्म करीकें आजीविका निभावें उसकों आचार्यकी, उपाध्यायकी और प्रवर्त्तक स्थिविर-गणि आदिकी पदवी न देनी. जावजीवतक

नहीं देनी चाहिये-ऐसी मर्यादा है. फिर पंचमहाव्रत रहितकों साधुभी न कहाजावे तो आचार्य होनेकी बातही कैसी ?

११६ प्रश्नः—ऐसे गुनवंत आचार्य न हो तो क्या करना ?

उत्तरः—बहुतसें गुणि पुरुष क्रिया उद्धार कर शुद्ध रीतिसें आप प्रवर्त्तते है. जैसेंकि सर्वदेवसूरिमहाराज चैत्यमार्गी थे उन्होंने क्रिया उद्धार करकें शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया फिर आनंदविमलसूरि महाराजके वक्तमेंभी मार्ग शिथिल पडाथा तो उन्होंने क्रिया उद्धार करके शुद्ध मार्ग चलाया फिर व्यवहारसूत्रमें ऐसाभी कहाहै कि जो आचार्य पदवीके योग्य पुरुष न हो तो गच्छके साधुमेंसें जहांतक योग्य आचार्य न प्राप्त हो वहांतक उसकोंही आचार्य स्थापन कर मार्ग चलाना. जब योग्य पुरुष हाथ लगे तब उसकों आचार्य पदवी देवे. उस वक्त जो वो पाटधारी साधु न उठे तो उसकों गच्छ बहार कर देना. ऐसा अधिकार व्यवहारसूत्रके पत्र ३१ में है; वास्ते गुणवंतकों आचार्य पदवी देनी. अबीभी संवत १९४१ के काती वदि पंचमीके रोज मुनिमहाराज श्री आत्मारामजी महाराजकों श्री सिद्धाचलजीके उपर बहुत देशके श्रावक साधुओंने मिल एकमता करकें गुणवंन जानकर उन्होंको सूरिपद दिया गयाथा. (मेंभी दर्शा हाजिर था.) पचीश हजार जैनी इकठे हुवेथे और मुख्य मुख्य शहेरोंके विद्वान् श्रावकवर्गभी हाजिर था. उस वक्त आत्मारामजीकों विज्यानंद्सूरि महाराज अैसे नामसें आचार्य पदपर नियत किये गयेथे. इसतरह लायक पुरुष मिल जावे तो आचार्यपद देकर पीछे साधुमंडल विहार करे-अैसा; व्यवहारसूत्रका फरमान है. वास्ते समस्त साधुसमुदायमेंसें जो पुरुष उत्तम-त्यागी, विरागी, ज्ञानवान् हो उन्कों आचार्य बनाकर उन्हके हुकम मुवाफिक चलना चाहियें. इस पंचमकालमें शुद्ध परंपरा चल सके वो तो दुष्कर है. श्री महानिशीथसूत्रमें युगप्रधान स्वामी होनेका अधिकार चला है वहांभी कहा है कि युगप्रधानस्वामी शुद्ध मार्ग चलावेंगे-और मेरी आज्ञाका हायमानपणा टाल देंगे फिर युगप्रधान स्वामी निर्वाण पहुंचे बाद मेरी आज्ञाका हायमानपणा होयगा. इस मुजब

कहा है. वास्ते जिस वक्त जो उत्तम पुरुष विद्यमान हो उन्को आचार्य पदवी देकर मार्ग चलाया रख्खें. क्यों कि इक्कीश हजार वर्ष तक शासन जयवंत रहेवेगा अैसा मेरा समझना है.

११७ प्रश्नः—एक परमाणमें कितने वर्ण होवे ?

उत्तरः—एक परमाणुमें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होते हैं. अैसा कथन अनुयोगद्वारसूत्रकी छपी हुइ प्रतके पत्र २७० में है. पर्यायके पलटनेसें पांच वर्णका होता है; क्यों कि सत्ताके विषे पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, और आठ स्पर्श रहे हैं. ये द्वादशनायरनयचक्रमे कहा है. वास्ते सत्तामें होवें उसमें पुनरावृत्तिमें पांचों वर्णमेंसें एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श होवे सो पर्यायके पलटनेसें होते हैं.

११८ प्रश्नः—गौतमपडघा तप करते हैं और चंदनबालाका अट्ठम करते हैं और जतीजीकों व्होंराते हैं सो क्या करना ?

उत्तरः—गच्छाचार पयन्नाके बालावबोधमें कुगच्छके लक्षनमें कहा है कि विम तारनेके लिये लोगोंके पाससें इसतरहके तप करवाकर पैसा लेते हैं वो कुगच्छ है.

११९ प्रश्नः—एक स्थितिस्थानकमें अध्यवसाय स्थानक कितने होवे ?

उत्तरः—कम्मपयडीमें ५२ गाथेकी टीकामें असंख्यात अध्यवसाय कहे हुवे हैं–तीव्र–तीव्रतर–मंद–मंदतर आदि होवे.

१२० प्रश्नः—जो गतिका आयुष बांधा हो वो कायम रहेवे कि फार फार हो सके ?

उत्तरः—भगवतीजीकी टीकामें अपवर्त्तनका अधिकार चला है वहां कहा है कि सातवी नरकका आयु बांधा है; मगर अध्यवसायके फेरफारसें छठ्ठ नरक कमी जास्ती हो सकती है. जैसे कृष्णमहाराज–वासुदेवने सातवी नरकका आयु बांधाथा, वो अठारह हजार मुनिके पद वंदनसें तीसरी नरकका हो गया. इसी तरह चारों गतिमें फेरफार होवे; मगर इतना विशेष है कि देवलोकका बदलकर मनुष्यका न होसके, और नरकका बदलकर दूसरी गतिकाभी न होसके. जो गतिहो उसीमेंही फेरफार हो सकता है.

१२१ प्रश्नः—वर्त्तमानकालमें आयुष कितना होवे ?

उत्तरः—जंबुद्वीप पन्नतिमें तो मुख्य वृत्तिसें १२० वर्षका कहाहै. और बहुतसे जीवोंका उतनाही आयु होता है. और नजरभी आताहै. क्वचित इस मर्यादासें विशेष आयुभी सुननेमें आता है ते इश उदयके यंत्रमें पहेले उदयमें अंतिम युगप्रधान स्वामीका १२८ वर्षका आयु कहा है. उससे मालूम होताहै कि किसि किसि पुरुषका आयु १२० सेंभी विशेष वर्षका होता है. यह बात शताविधानी शा. रायचंद रवजीभाइए भद्रबाहु संहिता देखीथी उसमें उन्होंके कथनसें ऐसा था कि धन लग्नमें जिसका जन्म हो और उसमें चौथे मिनराशिका गुरू हो, ग्यारहवेमें तुलका शनि हो शुक्र हो और वो अपने योग्य अंशोंसे करके बलवान् हो, और आठवेमें कोइ ग्रह न हो, शनी और शुक्रकी दशामें जन्म हो तो २१० वर्षका उस जन्मकुंडलीवालेका आयु होवे. इससे साबित होता है कि कोइ जीवका विशेष आयुभी होता है और शास्त्रभी साक्षी देते हैं. फिर आवश्यककी-बाइस हजारी टीकामें आर्यरक्षितसूरि महाराजने इंद्रका हाथ देखा, उसमें दोसो तीनसो वर्षतकका हाल देखकर-कहकर कहा कि 'यह तो इंद्र है.' वास्ते विशेष आयु हो तो कुछ विरुद्ध नहीं है. परमात्माके वचन कितनेक बहुत जीव आश्रित हैं. कितनेक जीव अपेक्षित हैं वो गुरु परंपरासें परंपरागत ज्ञानवाले पुरुष जानते है. सो वर्त्तमानकालमें परंपराका यथार्थ ज्ञान नहीं रहा है. आत्मार्थी पुरूषकों परंपरागत ज्ञान जाननेवाले गुरूका योग नहीं मिलता है. शास्त्रमें जो टीकाकारोंने ज्ञान दर्शायाहो वही जान सकते है. दूसरा क्या इलाज है ? ये पंचमकालका प्रभाव है. वास्ते दो शास्त्रमें भिन्न भिन्न अधिकार देखर श्रद्धाभ्रष्ट न होजाना. उन दोनुंके आशय खोजनेकी मिहनत करनी योग्य है. यों करनेसें किसी शास्त्रके अंदरसें या किसी पंडित द्वारा खुलासा मिल जायगा.

१२२ प्रश्नः—शुद्ध अशुद्ध क्षायक समकितके भेद किस ग्रंथमें किस जगह बतलाये है ?

उत्तरः—तत्वार्थकी टीकामें पत्र २० के अंदर या नवपद प्रकरणकी टीकामें केवल ज्ञानी महाराजका शुद्ध क्षायक समकित कहा है, और छद्मस्थका-श्रेणिकादिकका अशुद्ध कहा है.

१२३ प्रश्नः—चार अनुयोग हैं उनमें निश्चय कौनसा और व्यवहार कौनसा ?

उत्तरः—आगमसार और नयचक्र तथा द्रव्यगुणपर्यायके रासमें चरणकरण अनुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथा अनुयोग ये तीन व्यवहारमें कहे हैं. और फकत द्रव्यानुयोग सो निश्चयमें कहा है और आचारांगजीकी शिलांगाचार्यकृत टीकामें तो चरणकरण अनुयोगकों निश्चयमें कहा है. और दूसरे तीन योग व्यवहारमें गिने हैं. अब इन दोनुकी मतलब अपेक्षित समझी जा सकती है. आचारांगजीका कहना है कि द्रव्यानुयोगसें स्वपरका ज्ञान हुवा; मगर परका त्यागना वो चरणकरण अनुयोगसें है. वो परवृत्ति छांड देवै तभीही आत्म प्रवृत्ति होवै, और वही आत्मधर्म है वास्ते ये सिद्ध निश्चय है. फिर आगमसार वगैरःका कथन है कि द्रव्यानुयोगका जानपना नहीं किया है और द्रव्य चारित्र पालता है, तो वो स्वपरका ज्ञान नहीं उस्सें आत्मा निर्मल क्यौं कर होगा ? वास्ते द्रव्यानुयोगका ज्ञान होनेसें स्वपरका धर्म जान सकता है उसीसें वो निश्चय है, ऐसा अपेक्षासें है. बाकी वस्तुपनेसें तो अंध पंगू अलग अलग काम करनेकी इच्छा करै वो सफल नहीं हो सके. जैसें कि पंगू आंखसें देखता है कि आग लगती है; मगर पाँव नहीं उससें वो चल सकता नहीं उसलिये वोभी आगमें जलबलके खाक हो जाता है. और अंधा आग लगी देख नहीं सकता है उससें उसके पॉव तो हैं मगर चलनेका उसके दिलमें नहीं आसकता उसीसें वोभी जलबलके भस्म हो जाता है, वैसे अकेला ज्ञानवाला पंगू जैसा है. जैसें पंगू, अंधकों कहेवै कि आग लगी है वास्ते तुं मुझे यहांसें उठा ले तो मैं तुझे भागनेका रस्ता बताउं कि जिस्सें अपन दोनू बच जावै. ऐसा करै तो दोनू बचै. इसतरह द्रव्यानुयोग और चरणकरण अनुयोग इन दोनुका योग मिल जानेसें शिघ्र मुक्ति फल मिल जाय.

१२४ प्रश्नः—नौकारशीका काल सूर्योदयसें दो घडी ? या हथेलीकी रेखा मालूम हुवे बाद दो घडी ?

उत्तरः—धर्मसंग्रहग्रंथ कि जो मानविजयजीका बनाया हुवा है, और यशविजयजी

उपाध्यायजीने उसका संशोधन किया है. उसमें कहाहै कि चौविहारवाला श्रावके वक्त जब पिछला दो घडी दिन होवै तब चौविहार कर लेवैं और प्रातःकालमें नौकारसी सूर्योदयसें दो घडी बाद करे. कदाचित् ऐसा योग न बनसकै तो नौकारसी न करै; लेकिन सूर्यका धूप देखे बिगर दंतधावन करै तो रात्रिभोजनके नियम भंग होनेका दोष लगै. इसपरसें समझ लेनेका है कि सूर्यका धूप मालूम होवै वहांतक तो नौकारसीका काल होताही नहीं, तो फिर सूर्योदयसेंही दो घडी साबित होचुकी. फिर शेन प्रश्नमें पत्र ५६ के अंदर प्रश्न ९१ वेमें लेख है कि सूर्योदयसें दो घडी कही है. और उसपर योगशास्त्रकी गवाह दी है. फिर उसी मुजब प्रवचन सारोद्धारकी टीकामें और पंचाशकजीकी टीकामें तथा श्राद्धविधिमेंभी सूर्योदयसें दो घडी पूर्ण हुवे बाद नौकारसी व्रत पूर्ण होवै. ऐसा अर्थ मालूम होता है; वास्ते नौकारसी करके जल्दी दतवन करना सो दुरस्त नहीं.

१२५ प्रश्नः—प्रभुजीकों वस्त्र पहनानेका अधिकार शास्त्रमें आता है और नहीं पहनाते हैं उसका क्या सबब है?

उत्तरः—शेन प्रश्नमें इस विषयका प्रश्न २४ पत्र १७ में है कि जिनबिंबकों वस्त्र पहनानाः परंतु प्रधान वस्त्र-आंगी प्रमुख आभरणकी तरह उचित करना दुरस्त है; मगर मस्तकपर रखना योग्य नहीं-इस मुजबका खुलासा है. इससें समझाजाता है कि कितनेक वर्षोंसें प्रवृत्ति बंध होगइ है; लेकिन आंगी प्रमुखमें वपरास होती है. फिर शास्त्रमें किसी आचार्यने बंध किये एसा अधिकार मालूम नहीं होता है.

१२६ प्रश्नः—देवताकों अवधिज्ञान कहांतकका होवै?

उत्तरः—सौधर्म और इशान देवलोकके देवताओंकों नीचा-पहेली रत्नप्रभा नरकतक होता है. सनत्कुमार और माहेंद्रके देवताओंकों दूसरी शर्कप्रभा नरकतक होता है. ब्रह्म और लांतकके देवोंकों (नीचा) तीसरी वालुप्रभा नरकतक होता है. शुक्र और सहस्रारके देवोंकों नीचा-चौथी पंकप्रभा नरकतक होता है. आणत और प्राणत देवलोकके देवोंकों पांचवी धूम-

प्रभातकका अवधिज्ञान होता है. आरण और अच्युत देवलोकके देवोंको ६ तमप्रभा नरकतक होता है. और पहेलेसें लेकर छट्ठे ग्रैवेयकके देवोंकोभी धूमप्रभातकका ज्ञान होता है; लेकिन वो बारहमे देवलोकके देवोंसें विशुद्ध विशुद्ध देखै. ७-८-९ ग्रैवेयकके देव सातवी तमतमा नरकतक देखें. अनुत्तर विमानके देव भिन्न चौद राजलोक देखें यानी चौद राजलोकमें कुछ न्यून देखें. वै देव तीर्छो असंख्यात द्वीप समुद्रतक देखै; मगर उंचा अपने विमानकी ध्वजा तलक देखे. भुवनपति व्यंतरदेवोंमें अर्द्ध सागरोपममें कुछ कम आयुवालेको तीर्छो संख्यात योजनका ज्ञान होवै. अर्द्ध सागरोपमसें उपरके आयुवालेको तीर्छो असंख्यात योजनका ज्ञान होवे दस हजार वर्षका आयु होवै उसें पचीस योजनका ज्ञान होय. असंख्यात वर्षके आयुवालोंको असंख्यात योजनका तीर्छो ज्ञान होता है. इस मुजब नंदीसूत्रजीकी टीकामें पत्र १७८ (छपी हुइ प्रतके अंदर) में. और आवश्यकजी प्रतमें कहा है.

१२७ प्रश्नः—तीर्थंकरजी कौनसे आरेमें होवें ? और कौनसे आरेमें सिद्धि वरें ?

उत्तरः—छपीहुइ नंदीसूत्रजीकी प्रतके पत्र २०८ में कहाहै कि ऋषभदेवजी अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेमें तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वक्त मोक्ष पधारेथे. और दूसरे सभी तीर्थंकरजी चौथे आरेमें हुवे. अंतिम प्रभु महावीरस्वामीजी चौथे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महीने बाकी थे उस वक्त निर्वाणपद पा चुकेथे. त्योंही आती चौवीसीमें तीसरे आरेके तीन वर्ष साढेआठ महिने व्यतीत हुवे बाद तीर्थंकरजीका जन्म होगा और तीसरे आरेमें तेइस तीर्थंकरजी होवेंगे. चौथे आरेमें चौइसवें तीर्थंकरजीका जन्म होगा और निर्वाणभी होगा. और दूसरे सामान्य केवली दूसरे आरेके जन्मे हुवे तीसरे आरेमें केवलज्ञान पावें सो वर्त्तमानकालमें चौथे आरेके जन्मे हुवे पांचवे आरेमें केवलज्ञान पाये यह मर्यादा है.

१२८ प्रश्नः—मनुष्य गर्भजकी संख्या कितनी कही है ? और सामान्य मनुष्यकी कितनी ?

उत्तरः—अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकाके पत्र ४८८ में मनुष्य गर्भजकी संख्या छः

वर्गसें जितनी रकम होवै उतनी कही है. उस वर्गकी समझ ऐसी है कि एकका वर्ग होता नहीं, उससे दोका वर्ग चार होवै ये पहिला वर्ग. चारका वर्ग सोला होवै ये दूसरा वर्ग. सोलाका वर्ग २५६ होवै ये तीसरा वर्ग. २५६ का वर्ग ६५५३६ होवै ये चोथा वर्ग. इसका पांचवा वर्ग करनेसें ४२९४९६७२९६ होवै. ये पांचवा वैका वर्ग करनेसें १८४४६७४४०७३७० ९५५१६१६ होवै ये छठा वर्ग. इसके साथ पांचवे वर्गकी अंदरका वर्ग करनेसें ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ संख्या होवै. इतनी संख्यासें उत्कृष्टपदसें गर्भज मनुष्य कहे हैं. और उत्कृष्टपदसें समूर्छिम गर्भज एकत्र गिननेसें असंख्यात कहे हैं. ये मनुष्य अढाइ द्वीपमें मिलकर होवैं.

१२९ प्रश्नः— अढाइ द्वीप किसतरह कहे है ?

उत्तरः—अपने निवास करते हैं सो जंबूद्वीप है. उनकों बीचसें नापो तो लाख योजनका होवै. ये गोलाकार है. इसके चोगिर्द लवण समुद्र है वो दो लाख योजनका है. उसके पीछे धातकी खंड नामक द्वीप है वो चार लाख योजनके विस्तारका है. उस्में मनुष्य हैं. उसके चोगिर्द आठ लाख योजनका कालोदधि समुद्र है. उस पीछे सोला लाख योजनका पुष्करावर्त्त द्वीप है—उसमें अर्द्ध विभाग मनुष्यकी वस्तीवाला है. इस सबवसें अढाइ द्वीप है. अढाइ द्वीपके सिवा मानवकी वस्तीही नहीं, उस्सें दूसरेकी गिनती लक्षमें लेने योग्य नहीं—आगे असंख्यात द्वीप समुद्र मनुष्यकी वस्ती बिगरके है.

१३० प्रश्नः—जिन मंदिरमें दीपक खुल्ले रखेजाते हैं सो योग्य है या नहीं ?

उत्तरः—इकीस प्रकारकी पूजामें सकलचंदजी उपाध्यायजीने लालटेनमें दीपक रखनेका कहा है फिर भद्रबाहुकृत पूजाप्रकरणमेंभी कहा है कि दीपक इस तरकीबसें रखना कि प्रभुजीकों गरमी न लगै. जैसें अपनकों गरमी लगती है वैसाही समझकर प्रभुजीकों दीपककी गरमी न लगे उस तरह रखकर दीपक पूजा करनी. गृहस्थ अपने मकानमेंभी खुल्ले दीपक नहीं रखते है और जिनमंदिरमें खुल्ले रक्खैं तो अन्यदर्शनीभी कहने लगें कि-

' श्रावकलोग देवके आगे तो दीपक खुल्ला रखते है और मकानमें ढके-हुवे रखते हैं ये क्या? यहभी लघुताका कारण है फिर पंचाशकजीमें कहांहै कि जिनपूजनमें जितनी यतना होवे उतनी करनी-उसमें प्रमाद नहीं करना. इसपरसे किसीके दिलमें आयगा कि क्या विल्कुल दीपक करनाही नहीं? पानी पुष्प नही चडाना ये समझना भूलभरित है. सवव कि स्थावरकी हिंसाका कुछ श्रावकके त्याग नहीं-त्रसकी हिंसाका त्याग है. पुनः प्रमाद करै तो त्रसकी हिंसा होवे. और प्रमाद छोडदेवै तो प्रभु भक्तिमें त्रसजीवकी हिंसा नहीं होवे. स्थावर विगर तो भक्तिही नहीं वन सकती. फिर श्रावकको अष्टद्रव्यसें भक्ति करनी महा निशित्थजीमें और आवश्यकसूत्रजी वगैरःमें योग्य कही है; वास्ते विस्तारयुक्त भक्ति करै तो वहुत लाभ उपार्जन करै-जिस्सें प्रमाद छोडकर भक्ति करनी.

१३१ प्रश्नः—मंदिरके खात मुहूर्त करनेकी जगह देखनेकी रीति जैनोंकी और अन्य दर्शनियोंकी समान है या अलग है?

उत्तरः—विक्रम राजाके वक्तमें कालीदास पंडित हुवाथा उसने ज्योतिर्विदाभरण नामके ज्योतिषशास्त्रका ग्रंथ वनाया है ओर उसकी टीका जैनाचार्यने कि है उसमें जैनकी रीति अलग वतलाइ है. उसी मुजव आरंभसिद्धिनामक जैन ग्रंथभी है. पुनः ज्योतिर्विदाभरणमें प्रतिष्ठाके नक्षत्रोंमेंभी जैनोंके नक्षत्र अलग वतलाये है. (इसपरसें ढुंढीए लोगोंकोभी खियाल करना चाहियें कि अन्यदर्शनीभी दो हजार वर्ष करीव पर जैन चैत्य सिद्ध करते है.)

१३२ प्रश्नः—सामायिकमें घडी रखते हैं वो आज्ञा है?

उत्तरः—वृंदारवृत्तिमें घडी रखनेकी कही है और उसमें नीशीथजीकी चूर्णीकी गवाह दी है.

१३३ प्रश्नः—श्रावकको चरवला और मुहपत्ती रखनेकी मर्यादा शास्त्रसंमत है?

उत्तरः—यशविजयजीकृत आवश्यकका वालाववोध है उसमें, और अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ टीकाके पत्र ७८ में वो संमती है. फिर श्राद्धविधि निश्चय ग्रंथमें अचलगच्छकी चर्चामेंभी अच्छीतरहसे वो वात स्थापित की है.

१२४ प्रश्नः—श्रावककों सूत्र पढनेकी आज्ञा है या नहीं? क्षपकश्रेणी मांडते है

उत्तरः—श्रावक अथवा साधुकों हरएक चीज गुरुके पाससें प्रकट होते हैं, आपसेंही नही पढनी. उसके लिये विशेषावश्यजीमें कारण श्रुतज्ञान है, अध्ययन पढना वोभी गुरुके पाससें पढना. नहींके ज्ञानावर्णी क- पढना, तो आपही आपसें पढनेका-वांचनेका तो मंज्ञनवानका-पुस्त- गुरुके सिवा सूत्र वांचै तो उसका पूरापूरा आशयभी लेखवानेसें या सकै, तो उत्सूत्र दोष लगै. फिर श्रावककों आवश्यकसूत्र बनकी जैसी वैकालीकके चारही अध्ययन तक, तथा आवश्यकसूत्र पढने होसकै वैसी आज्ञा दी है. पुनःश्रावककों अर्थ ग्रहण करनेहारे कहे है-यार ज्ञान प्रकटै. सुनावें वो सुने इसपरसें श्रावककों सूत्र पढने-वांचनेकी आज्ञसकी शरीर नही है. प्रकरण ग्रंथ बहुतसे हैं. उसमें पूर्वाचार्योंने सब रचजितनी वने रख दी हैं वो पढतेभी हैं. यहांपर किसीकों शंका हो आवेगी कि मिहनत नंदादिक श्रावक क्या पढते होंगे? इस संबंधमें विशेषावश्यकजीसो दूस- ज्ञानके भेद चले हैं उसमें उपांगसूत्रका अधिकार पत्र १७१ में हुआ उद्यम प्रश्न हुवा है कि उपांगादिककी रचना किस लिये की? उसके र्डः वास्ते कहा है कि साध्वीजीकों दृष्टिवाद नहीं पढाना—और उस दृष्टिवादके के का- समझे पढे सिवा क्योंकर बोध हो सकै? उस वास्ते साध्वी श्रावकके लिर हैं वै उपांगादिककी रचना की है. इस जगेपर श्रावक शब्द है; मगर उपांगछेन्होंने सूत्र वगैरः पढानेके वास्ते व्यवहार सूत्रमें मुनीकों कितने कितने वर्षकी पढने दीक्षापर्याय होवै तब पढाने कहे हैं. उससें उपांगकीभी श्रावककों आज्ञा की नहीं; लेकिन श्रावकपयन्ना पढते होंगे ऐसा मालूम होता है. वर्त्तमान समयमेंभी चउसरणपयन्नादिक श्रावक पढते हैं, युंही तरह वै लोगभी पढते हुंगे ऐसा मालूम होता है. यहांपर कोइ सख्स मुझकों पूछेगा कि जब सूत्र पढे बिगर तुमने सूत्रकी साक्षीयें दी वो किस तरहसें तुमकों समझनेमें आइ' उसका खुलासा यही है कि बालकबुद्धिके वक्तमें मेरे मनमे ऐसा आयाथा कि अर्थके ग्रहण करनेवाले श्रावक कहे हैं वास्ते अपनकों मूल सूत्र न पढना; लेकिन अर्थ पढनेमें क्या हरकत है? ऐसा

कर सूत्र पढेथे; मगर सूत्रके गहन अर्थ देखकर अब मेरे मनमें आया
वीतरागजीके आगमकी गहन शैली मलीन आरंभी संसारमूर्छित
क क्योंकर समझ सके? कुछका कुछ धारणामें आ जाय तो श्रद्धा
हो जावे; वास्ते भगवंतजीने निषेध किया है वही योग्य है. एक
वश्यक पढे तो उसमें बहुत प्रकारका ज्ञान हो जाय. वास्ते प्रभुजीकी
आज्ञा बहारका काम कभी नहीं करना. और मेंने रामा समक्ष तो सूत्र
पढकर नही सुनाया है. फकत ग्रंथ हो वही पढाकर सुनाता हुं और उसके
वास्ते शास्त्रमेंभी आज्ञा है. लेकिन विरुद्धता इतनी है कि वो ग्रंथ गुरुके
पाससें पढकर सुनाने चाहियें; परंतु पंचमकालके प्रभावसें वैसे गुरुओंका
योग न मिलवे युंही वांचना पडता है वो प्रभुजी स्वीकारें तो सत्य है;
सबब कि उद्यम छोडनेसें अज्ञानता दूर नहीं होती उससें न छूटकेसें करना
पडता है. जो पुरुष गुरुमुखद्वारा पढकर उपदेश देते हैं उन्होंकों धन्य है!
मेराभी वैसा भाग्योदय होगा उस दिन धन्य मानुंगा. अबीभी कोइ कोइ
उत्तम पुरुषका संयोग प्राप्त होता है तो उनकी समीपमें जो जो धारणा
हो सकती है उन्हकों में कल्याणकारी मानता हुं और उस विगर अपने
आपहीसें जो पढता हुं उसमें प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध होता होवे तो त्रि-
विध त्रिविधसें मिथ्या दुष्कृत देता हुं. फिर योग शास्त्रकी टीकाके पत्र
१०७ में सामायिकके अतिचारमें कहा है और शास्त्रकी गाथा रक्खी है
उसमें कहा है कि-न करना उस करतें अविधिसें करना वो श्रेष्ठ है. इस
आधारसें गुरुके पास पठन किये विगर चूपचाप बैठकर प्रमाद कीये क-
रते तो गुरुमहाराजके समीप पढनेकी इच्छा रखकर योग न मिले वहांतक
प्रमादमें काल न जाय उस वास्ते वांचता हुं और उसकों हितकारी मानता हुं.

१५ प्रश्नः—जैनमें लक्खों रुपै दूसरे शुभ मार्गमें व्यय करते हैं वैसे ज्ञानमें व्यय नहीं करते हैं उसका सबब क्या?

उत्तरः—जैनधर्मका मूल स्वरुप नहीजाना वही ऐसा समझताहै. जैनमार्ग जान लिया या जैनधर्मका जानपना होनेका समीप होय या थोडेही भवमें पार जानेका होय उसकों तो अवश्य ज्ञानपरही लक्ष होवे; सबब कि आ-त्माका केवल ज्ञान ढकागया है सो प्रकट करना, उसका मुख्य साधन

ज्ञान–श्रुतज्ञान है. क्यौं कि केवलज्ञान पानेके पेस्तर
उसमे प्रथम श्रुतज्ञानसें चिंतन करते हैं उससें अपूर्व.
और स्वाभाविक ज्ञान होता है; वास्ते ये सब होनेका
और वो श्रुतज्ञान ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपशमसें होता क्षपकश्रेणी मांडते है
र्मका क्षयोपशम ज्ञान पढनेसें–पढानेसें–पाठ करनेसें–ज्ञ व प्रकट होते हैं,
कका–ज्ञानके उपकरणोंका विनय करनेसें या पुस्तक कारण श्रुतज्ञान है.
विद्याशालाऐं खोलनेसें और श्रावकोंको पढानेसें तन मन ज्ञानावर्णी क-
शक्ति हो उस मुजब खुदकों और दूसरोंकों ज्ञानकी वृद्धि नवानका–पुस्त-
प्रवर्त्तना करनी, उस्सें ज्ञानावर्णी कर्मका क्षयोपशम होवै औ लिखवानेसें या
जिसकी धन संबंधी ताकत:हो तो धन ज्ञानमें व्यय करै. जि धनकी जैसी
संबंधी ताकत हो तो शरीरसें ज्ञानकी संभाल रख्खे. जितनी होसकै वैसी
उतनी शरीरसें सेवा भक्ति करै. जो जो ज्ञान संबंधीके कामक ज्ञान प्रकटै.
करनेकी हो सो करै. फिर मनकी शक्तिवाले यानी पढेले होवै सकी शरीर
रोंकों पढावे. दृष्टांत युक्तिसें करके ज्यौं समझसकै त्यौं समझानेक जितनी बने
करै; मगर स्वार्थही क्रिया न करै. ये लक्षण ज्ञान निकट होनेके मिहनत
नजदीकमें ज्ञान होनेवाले तो इस तरहसें वर्त्तन रख्खै यानी ज्ञान गो दूस-
ममें जरुर पैसा व्यय करै. लेकिन जिनकों ज्ञान प्रकट होना दू उद्यम
जीव तो विचित्र काम करते है. कितनोंकों तो मैंने समझाये है वास्ते
मुझकों जवाब दिया कि शास्त्र तो बहुत है, उन्हकों इस दुनियामें का-
–वांचनेवालाभी कौन है ? बहुतभी पुस्तकें सड फट पसारीके दुकान है वै
पुडियां होनेका संस्कार पाते हैं. फिर कोइ कहते है कि हमकों कुछ पढते आ होंने
नहीं तो पुस्तकोंकों हम क्या करे ? ऐसे अज्ञानताके जोरसें अनेक तरह होंने
जवाब देते हैं. फिर शासनमें कितनेक कारभारी होते हैं उनके तावेगी
पैसे होते हैं, वो पैसे इकठे कर बढायेजाते हैं; मगर उन पैसेके अंदरसे
ज्ञानके काममें खर्चते नहीं. व्याज उपार्जन कर रकम बढायेजाते हैं. कोइ
ज्ञानमें खर्चनेकी प्रेरणा करै तौभी आपकों ज्ञानावर्णी कर्मका उदय है उ-
सके प्रभावसें उत्साहयुक्त पिराये पैसेभी ज्ञानमें नहीं खरचते हैं और

कारण सिवा जीव ज्ञानावर्णी कर्म बांधता है. उस जीवपरभी
तो करुणा ल्यांनी चाहिये; मगर द्वेष नही ल्याना; क्योंकि वो
करै? कर्मराजा मार्ग देवै नहीं और इस भवमें तो समकित विग
गिनाये हैं; लेकिन उसकी भवितव्यता ऐसीही है कि आते भ
विक्षेप आच्छादन होजानेका है उसें उन विचारेकी बुद्धि ऐसी
फिर ज्ञानवंतोंने ऐसोंकों समझाने चाहिये. मगर प्रायः कितनेक का
धनवान होवै उस्सें उनको कहनेकों जाय तो उलटा ज्यादे द्वेष प्राप्त
इससें ज्ञानवानकोंभी मौन होकर बैठना पडता है. अब पैसेके देनेवाले
पुण्य तो ज्ञानमें खर्चनेकों देते हैं; तथापि वो पैसे न खर्चनेसें उन्हका
विश्वास उठजाता है. फिर ऐसी खबर पडनेसे जो पैसेके खर्चनेवाले
होते हैं वैभी ज्ञानके काममें खर्चते नहीं–और कहते है कि ज्ञानके पैसे
हम देते हैं सो गोलकमें गुम होजाते हैं. ऐसे अनेक कारण मिलजानेसें
ज्ञानमें पैसे खर्चनेके बंध होगये हैं; मगर लाइलाज हैं. तथापि आत्मार्थी-
ओंकों तो सातों क्षेत्र हैं उनमें छठे क्षेत्रकों पहिचान करानेवाला ज्ञान है
वास्ते ज्ञान जैसा कोइभी क्षेत्र नहीं है. मरणके समयभी जीव लक्खो रुपै
मान प्रतिष्ठाके मारे शुभ काममें व्यय करते हैं; मगर ज्ञानमें व्यय नहीं
करते हैं, युं आत्मार्थीकों न करना. आत्मार्थीयोंकों तो ज्यादे भाग ज्ञा-
नमें व्यय करना, सबबकि दूसरे क्षेत्रमें कितनेक आत्मार्थ और कितनेक
मानके खातिरभी खर्चते हैं; उस्से वे काम तो चलतेही रहते हैं, उसमें
हरकत नहीं और ये ज्ञानक्षेत्रमें तो बडी अडचण है कि ज्ञानके पुराने भं-
डार है, उसमेंसें कितनेक भंडार ऐसे शेठिये या साधुवोंके अखत्यारमें हैं
कि कोइ कुछ वाचनेकेलिये मत मंगै तो एक पत्रभी नहीं देते हैं. पुस्तक
सडजाते हैं; मगर उस पुस्तकसें किसीका उपकार होनेवाला नहीं. फिर
कितनेक भाग्यशालीओंके हाथोंमें भंडार हैं तो वो पुस्तक आत्मार्थीओंके
उपयोगमें आता है; लेकिन कुछ चीजकी कालस्थिति है वास्ते पुस्तकों-
कोंभी विशेष वक्त होनेके सबबसें उन्हका नाश होनेका संभव है. तब जो
नये लिखाये जाते होवै तो अगाडी पिछाडी तैयार होतेही रहैं. और ऐसा

न होवै तो अबी जो शास्त्रोंके नाम कायम हैं; लेकिन वो पुस्तक मिलतेही नहीं, या तो कितनेक अपूर्ण पुस्तक हैं, और कितनेक पुस्तकोंकों दीमग लग जानेसें निकम्मे होपडे हैं अगर जीर्ण होगये हैं ऐसा हुवा है. फिर वैसा जास्ती जास्ती हुवा करै तो अखीरमें क्या हाल होय सो आपही शोच लीजीयें. फिर ऐसाभी कोइ स्थल नहीं है कि सबी पुस्तक एकही जगह मिलजावे. ऐसी पुस्तकोंकी दशा हुइ है; वास्ते आत्मार्थीओंकों तो ज्यों बनसके त्यों ज्ञानमें खर्चकर सबी पुस्तक एकही जगहसें प्राप्त होय ऐसा करना चाहियें. ये काम बडे धनवानोंका है, अगर तो विशेष मनुष्य मिलकर करै, या तो ज्ञानद्रव्य होय उनमेंसें करै. लेकिन यह विचार जिनकों निकट ज्ञान होगा उनकोंही मालूम होयगा, दूसरोंका तो उधर ध्यान नही नहीं जायगा. मुझकों तो मेरे भाग्योदयसें में दस वर्षका हुवा जबही सें ज्ञानमें पैसा व्यय करनेकी बुद्धि ऐसी हुइ कि जितने पैसे ज्ञानमें खर्चुं उतने दूसरे काममें खर्चनेका चितही न होवै; मगर ऐसी बुद्धि होनेसें मेरे गांवमें कोइ पढानेवालेका योगही नहीं. मुनिमहाराजका आगमनभी नहीं और पढेहुवे श्रावक प्रेरणा करनेवालेभी मिले नहीं; तोभी नाम मात्र कुछ जैनधर्मका ज्ञान प्राप्त हुवा, वो सबी फल ज्ञान पर प्रेम होनेकाही है.

फिर इंग्रेजलोग परदेशी हैं, धर्मभी भिन्न है तोभी इस देशके लोगोंको कला-हुन्नर शिखलानेके वास्ते हजारां रुपे खर्चते है तो उससें उन्ह लोगोंकों कितना क्षयोपशम हुवा है कि अनेक प्रकारकी बिगर देखी हुइ कलाओं ढुंढ निकालकर नइ वस्तु अनेक हाथ हुइ है-होती जाती है और जिसका कृत्य समझमेंभी नही आ सकता है. इतनी बुद्धि मिलनेका कारण येही है कि ज्ञानका उत्तेजन करनेमें अत्युत्साह है. इसपरसें शोचनेका है कि संसारी ज्ञानके उत्साहसें इतना लाभ मिलता है तो वीतरागके ज्ञानकी वृद्धि करनेसें कितना लाभ होवे? वास्ते आत्माका हित करनेके लिये, अपने लडकेकों और दूसरेकों हित होय उस वास्ते जैनशास्त्र पढाना. जैनशास्त्र पढनेसें सब काममें बुद्धि बढेगी और पढानेवालेकों लाभ

होगा. फिर पुस्तक विगडते होवैं तो उसकी संभाल रखनी. जैनके तमाम शास्त्र अमरपद पावैं अैसा करना चाहियें. पंजाबसें आत्मारामजी महाराज गुजरातमें आये और शास्त्र थे सो देखे और वो देखकरकें ज्ञान मिलाकर समस्त देशोंका उन्होंनें उपकार किया. यवनके मुल्कमेंभी उन साहवने जैनधर्म प्रसिद्ध किया और जैनका वहुत मान्य करवाया. उसमें निमित्त कारण शास्त्र थे तो अैसा हुआ. न होते तो वैसा न हो सकता. अपनकों पढने-वांचते न आता होवै तो कुछ हर्ज नहीं. पुस्तक होगा तो वांचनेसें वहुतसे पुरुषोंकों लाभ होगा.

११६ प्रश्नः—नातरे-गांधर्वविवाह करनेका रीवाज हिंदुवोंमें न होनेसें स्त्रीए वालहत्या करती हैं तो वैधव्य हुवे पीछे दूसरा पती करनेका रीवाज हो तो अच्छा कि नहीं ?

उत्तरः—दूसरा पती करना सो तदन शास्त्र विरुद्ध है. फिर तुम वालहत्या होतीं है उसलिये विधवाविवाह शुरु होनेसें वो हत्या रुकजाना मानतेहो; लेकिन मेरे एक शेसनजज्जके साथ गुफतगो हुइथी जव मैंनें पुछाथा कि-'आपके हजूर खूनके मुकदमे आते हैं उसमें स्त्रीओंकी खटपटके खून वावत जियादे मुकदमे आते है ? या उस सिवाके जियादा आते है ?' उन्होंने जवाव दियाथा कि-' स्त्रीओंकी खटपटके खून संवंधी जियादे मुकदमे आते हैं.' फिर मैंनें दूसरा सवाल किया कि-'जिसकी ज्ञातीमें नातरे होते है उसमें स्त्रीओंकेलिये विशेष खून होते हैं या नातरे विगरकी ज्ञातीमें विशेष खून होते हैं ?' जवाव मिला कि-' नातरेवाली ज्ञातीमें स्त्रीके संवंधी विशेष खून होते हैं.' अव इसपरसें शोचनेका है कि-स्त्रीओं जैसी निर्दय जाति दूसरी नही है. शास्त्रमें एक कथा वांचीथी जिसमें-एक राजा दशहरेके दिन माताकों नमन करनेकेलिये गयाथा, वहां माताने आशिर्वाद दिया कि ' स्त्री जैसी छाती (कठोर) होना.' राजाकों वो वचन नापसंद होनेसें राजाने मातासें पूछा कि-'ऐसी आशीष क्यों दी?' माताने कहा-'स्त्री जैसी कठोर छाती पुरुषकी नहीं होती है उससें ऐसी कठोर छाती होनेका आशिर्वाद दिया-उसका मतलव-यही है कि-तुं हुकम

कर कि जो अपनी औरतका शिर काटकर ल्यावे उसकों मैं आधा राज्य दुंगा. 'पीछे आशीषका मायना पूरा पूरा मिलजायगा.' राजानें वैसाही किया; मगर किसी पुरुषने अपनी स्त्रीका शिर काटकर हाजिर न किया. दूसरी दफे ढंढेरा फिराया कि-'जो औरत अपने खाविंदका शिर काट लावै उस्कों आधा राज्य दियाजायगा.' वो सुनकर बहुतसी स्त्रीयें अपने खाविंदके शिर काटकाटकर लेआइ. राजाके दिलमें खियाल हुवा कि स्त्रीके समान कोइ क्रूर नहीं. इस कथापरसें समझनेका है कि स्त्रीकों नातेरेकी छूट्टी दीजावै तो ऐसी क्रूरता अमलमें लेवै. पुरुषकों पाणीग्रहण करनेकी (दूसरी दफे) छूट्टी है, तोभी क्रूरता अमलमें नहीं लेवै और स्त्री निर्दयता तुरत अमलमें लेवै; वास्ते नातरेकी छूट्टी नहीं दी है. क्यों कि आपके खाविंदका खून करनेमें या करानेमें अपना लाभ तपासती है कि जन्मभर पहनने-ओढनेका और खानेपीनेका सुख चलाजायगा और वैधव्यपना भुक्तना पडेगा उस्से बने वहांतक खून न करै. और नातेरेकी छूट्टी होवे तो खाविंद मरजायगा तो मैं नातरा करलुंगी-दूसरा खसम कर बैठुंगी-यानी आपके सौभाग्य सुखमें न्यूनता होनेकी नहीं उस्सें धणीकों मारडालनेमें नहीं डरै-और बडे लोगोंकाभी खून करै. फिर बालहत्या तो कमती होती नहीं; क्यों कि अभी नातरे नहीं करते हैं तोभी वर न मिलनेसें कितनीक ज्ञातीमें कन्यायें बडी उमरतक कुंवारीही रहती हैं और नातरे होवै तो उसकी एवजीमें उतनी कन्याका विशेषपणा होवै, वै बडी होवै तब बदचलनवालीही होवै-उस्से गर्भपात करै. मेरे सुननेमें आयाहै कि अभी इंग्लॅंडमें कुंवारी कन्याये बहुत हैं और वै बालहत्यायें करती हैं. त्योंही यहांपरभी इज्जतदार उच्चकोमके अंदर नातरे न होनेसें अच्छा है, नहींतो बाल-हत्या औरं बडोंके खून ये दोनुं जारी रहैं; वास्ते पूर्व पुरुषोंने जो रीवाज रख्खा है वोही अच्छा-बेहेतरी है. कोइ ऐसा सवाल करेगा कि ब्राह्मणोमें पेस्तर नातरे होतेथे, तो उस विषयमें समझना कि जैसें अभी कितनेक मनुष्य नातरे-पुनर्लग्नमें फायदा मानते हैं वैसें उसी वक्तमेंभी माननेवाले होंगे उन्होंने वैसा किया होगा. और

बालहत्या, जुवानहत्या इन दोनुका शोच करनेवाले सुज्ञ जनोंने यह बात अंगीकार न की उससें वही रीवाज चालु रहा सो अद्यापि चलता है, वो फिरानेमें कुछ फायदा नहीं मगर नुकशान है. पुनः अपन जैनधर्मीओंको तो ज्यौं बनसकै त्यौं विषयवासना कमती हो काम सें मुक्त हुवा जाय वैसा करना योग्य है, और वो प्रत्यक्ष देखतेही हैं कि-जितनी विधवाऐं धर्मसाधन करती हैं और संसार छोडकर दीक्षा लेती हैं उतनी सौभाग्यवती स्त्रीए नहीं करसकती है. जबराइसें शील-कुलकी मर्यादासें पालन कियाजाय तोभी महा नीशीथजीमें धन्य कृतार्थ कहेगये हैं; वास्ते शील पालनेमें बडा फायदा है-वो नातरेकी छूट मिलनेसें बंध होजाता है. बहुतसी विधवाऐं तो चिंतन करती है कि मेरे जहांतक खाविंदका योग था वहांतक तो मेरा चित्त विषयसें विरक्त न हो सकताथा; मगर अब आपही आप स्वामी न होनेसें शील पालन किया जायगा ऐसी सुंदर भावनाका चिंतन करती है और आत्माको निर्मल करती हैं वो नजरसें देखतेही हैं. फिर जिसकी न्यातमें नातरे होते है उनमें ऐसी उत्तम भावना आनेकीही नहीं. और उन्हमेंभी जो विशेष खानदान होती हैं, वो दूसरा घर नहीं करती है वोभी देखते है; वास्ते नातरेमें लाभ दर्शाते है सो बेमुनासीव है.

१३७ प्रश्नः—आत्मा निर्विकल्प है कि सविकल्प है?

उत्तरः—आत्मा निर्विकल्प है. विकल्प करना सो जडकी सोवतसें आत्माका उपयोग बिगडनेसें होना है.

१३८ प्रश्न—बारह भावना और चार भावनाका चिंतन उपयोगमें लैना उसमेंभी विकल्प करनेमें आता है?

उत्तरः—वे विकल्प हैं सो निर्विकल्पदशाको ल्यानेवाले हैं, वे प्रथम अवस्थामें आदरने योग्य है. जब शुकलध्यानका दूसरा पद ध्यावै उस वक्त अभेदज्ञान होता है, तब विकल्प दूर हो जाते हैं. मगर शुकलध्यानका प्रथम पद ध्यानेके अव्वल श्रुतज्ञानका चिंतन होता है उससें असंग अनुष्ठान रूप यानी कुम्हार जैसें चक्र हिलावै और उससें वो पीछे आपहीआप

फिरने लगता है,। वैसें श्रुतज्ञानसें शोचे बाद सहज दशा प्रकट होती है तब स्वाभाविक ध्यान होनेसें अभेद ज्ञान प्रकट होवे. वहांसें निर्विकल्प दशाके अंश प्रकट होते जाते हैं; लेकिन जब दूसरा पद ध्यावें तब विशेष निर्विकल्पदशा प्रकटती है और जब केवल ज्ञान प्रकटता है तब पूर्ण निर्विकल्प दशा प्रकटती है.

१२९ प्रश्नः—केवलज्ञान तो निर्विकल्प दशासेंही प्रकटता है, तब विकल्परूप भावना और पूजा प्रतिक्रमण करना वो तो विशेष विकल्प सहितें रहा वो करनेसें क्या लाभ?

उत्तरः—भावना वगैरः जो जो करणी हैं उसमेंभी अंश अंशसें निर्विकल्पदशा होती है. पूजनसामग्री लानेमें द्रव्य व्यय किया जाय वो द्रव्यपरसें मूर्छा उतरती है और निर्विकल्प दशाके अंश प्रकटते हैं. फिर संसारका राग छूट जावे तब प्रभुपर राग होता है. तब संसारके उपरसें जितना जितना राग कमती होवे वो निर्विकल्प अंश है. पुनः देह पूजनमें काम आती है वो वख्त विषयमें नहीं काम आती है तो विषयमें काम लगानेकी इच्छा दूर हुइ वो निर्विकल्प अंश है. वैसेंही पडिक्कमणेंमेंभी संसारपरसें चित्त हठाकरकें पुद्गल दशासें भाव उतारकर व्रत अंगीकार किये हैं तथापि चित्तके पलटनेसें कुछ परभावकी वृत्ति करनेके सबब दूषण लगता है वो चित्त स्वात्म दशाका होनेसें अरुचि मालूम होती है उससें परभाव वृत्तिकी निंदा करता है. तब वो निंदा करनेमे पुद्गल दशाका अरुचकपना बनता है और निजस्वभाव सन्मुख होता है वोभी निर्विकल्पदशाके अंश हैं. वैसेंही पौषधमें और भावना भावे उन भावनाओंमें भावनेका सबब इतनाही है कि पुद्गलदशा जो विभावदशा विकल्पमय है उसमें अनादिके अभ्याससें मेरापना मान लिया है वो हठ जाय, तब विभाववस्तु आत्माकों अच्छी न लगी, और अनादिकी अच्छी लगतीथी वो कुछ मिथ्यात्व पुद्गल हठ जानेसें होता है. जितने मिथ्यात्वके पुद्गल हठ गये वो स्वात्मभावमें वर्त्तनेका भाव हैं उतने निर्विकल्प अंश प्राप्त होते हैः वास्ते जो वो जीव धर्मसाधन आतम सन्मुख होकर करते हैं

उनमें अंश अंशसें निर्विकल्पदशा प्राप्त होती है. वैसेंही ज्ञान जो शास्त्र वांचना येभी आत्माकी स्वदशाका शोच करे तो निश्चय नयसें आत्मा केवलज्ञानमय है उनकों पढनाही क्या? मगर आत्मा केवलज्ञानमय है वो शास्त्र सुनेसें-वांचनेसें जानता है याने ज्ञानद्वारा वो बात समझनेमें आती है. अब यहांभी अनादिकालका जीवका उपयोग शास्त्र सुन्ने वांचनेका आत्माकी पहिचान होनेके लिये नहि था; मगर जब आत्माकी साथ आवरण करनेवारे मिथ्यात्वके पुद्गल थे वो हठ गये तब आत्मधर्म जान्नेके लिये शास्त्र सुनने वांचनेकी रुचि हुइ. तब यहांभी आत्मा निर्विकल्पमय था उसके अंश खुल्ले हुवे बाद अनुक्रमसें ज्यौं ज्यौं शास्त्र सुन्ने-वांचने-मनन करनेका विशेष दिल हुवा, त्यौ त्यौं आत्माके आवरण हठते चले और जीव निर्विकल्प हुवा. लेकिन जीवकों प्रथमसेंही निर्विकल्पदशा नहीं होती है; वास्ते निर्विकल्पी पुरुषोंनें ज्यौं अनुक्रमसें गुणस्थानक बतलाये है उस मुजब क्रमसें गुणस्थानक चढकर निर्विकल्पी पुरुष जो भगवन् उन्होंने व्यवहाररूप चढनेकी रीति दर्शाइ है. उसके अर्थी जीव वर्त्तते हैं उसकों उसीमें जितनी जितनी निर्विकल्प अंशकी दशा प्रकटती है उससें वो आनंदमान होते हैं. और देवपूजा श्रावकके व्रत-मुनिके व्रत-प्रतिक्रमण-भावना-ध्यानादिक तमाम करणी अपनी निर्विकल्पदशाके लियेही करते हैं. ऐसा करते करतेही अनुक्रमसें निर्विकल्पदशा पूर्ण होती है.

१४० प्रश्नः—आत्मा परभावका अकर्त्ता कहा है और ये प्रवृत्ति तो कर्त्ता पनेसें होती है वो कैसा?

उत्तरः—तुम्हारी बात सची है. निश्चयनयसें आत्मा परभावका अकर्त्ता है. और व्यवहारनयसें कर्त्ताभी कहा है. व्यवहारनयसें कर्त्ता मान्य न करे तो आत्माकों आवरणभी न लगैं. और आवरण न लगैं तो उसकों मुक्त होनेकाभी नहीं. जब मुक्त होनेका बाकीमें रहा नहीं तब तो सब जीव सर्वज्ञ जैसे होने चाहियें, वो तो मालूम नहीं होते! तब प्रभुजीने व्यवहार नयसें कर्त्ता कहा है सो सिद्ध होता है. आत्मा व्यवहारनयसें कर्मके

योगसें कर्ममय परिणत हो विभावमय पुद्गलकी करणी विषयकषायकी कररहा है. अब व्यवहारनयसें कर्मबंधके कारण सेवन करता है; मगर उसमेंसें भवितव्यताके योगसें कछुक स्वाभाविक कर्मसें हलका हुवा और जैसें कोठारमें अनाज कम भरै और ज्यादे निकाला करै तो सहजही कोठारमें अनाज कमती होजावै वैसेंही जीव विशेष कर्म भुक्ते और अकाम निर्जरा करै—उससे नये कर्म थोडे बांधै उससें हलका होवे. वीतराग सर्वज्ञ पुरुषपर प्रीति जाग्रत होवै और सत्संग करै. सत्संगसें अपने आपका स्वरुप सुने कि निश्चयनयसें तो मेरा आत्मा सर्वज्ञतुल्य है. जो ऐसा आत्मा न रहा होवै तो आत्मा कोइ दिन शुद्ध न होवै. आत्मा आच्छादित होता है वो जैसें स्फटिकके नीचे जैसा डांख रख्खाजाय वैसे रंगका वो मालूम होता है; मगर वो डांख निकलजावै तो जैसा निर्मल है वैसाही मालूम होवै, लेकिन ऐसा डांख एक रुप न हुवा है कि पुनः स्फटिकका रुप प्रकटही न होसकै. उसी तरह आत्माकों ऐसे कर्म नहीं लगे है कि कभी विशुद्धि होवेही नहीं. कर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं दूर हठते जाय त्यौं त्यौं विशुद्ध होवे और वो प्रत्यक्ष अनुमान होता है कि जैसें कोइ जीव ज्ञानका विशेष अभ्यास करता है तो विशेष विद्वान होता है तो यदि अभ्याससें आवरण दूर नहीं हठते होवे तो बुद्धिमान क्यौंकर होय ? मगर ऐसे आवरण है कि आत्मतत्त्व प्रकट करनेका अभ्यास करै तो आवरण नाश होवै; वास्ते आत्माकी स्वाभाविक दशा कायम है, जाती नहीं रही वो प्रकट करनेकेलिये व्यवहारनयसें गुणस्थानका व्यवहार प्रभुजीनें बतलाया है त्यौं करना, और वैसा अभ्यास करनेसें आत्मा शुद्ध होवैगा. और निश्चयनयसें अकर्त्ता कहा है वोभी है. यदि अकर्त्तापनेका निज स्वरुप न जाने तो शुद्ध करनेकी बुद्धि होवैही नहीं. और जो विभाविक करणी है वो तो मेरे कर्त्तापनेसें करने योग्य नहीं ऐसा समझै. वास्ते निश्चयनयकी तर्फदारी हृदयमें अच्छी तरहसें रख्खै; मगर निश्चयनयसें आत्माविभावका कर्त्ता है ऐसा जब तलक जीव जाने तब तलक आत्मा शुद्ध करनेकी बुद्धि होवैही नहीं. जहांतक आत्मा पुद्गल भावका समझै वहांतक शरीरकों दुःख होवै तो मुझकों दुःख

हुवा है, धन गया तो मेरा धन गया है, स्वजनका वियोग हुवा तो मेरे सगे मरगये हैं अब क्या करुंगा? मेरा घर जातारहा, मेरा वस्त्र विगड-गया, मुझको मारा, मुझे गालियां देता है, ऐसें परवस्तुमें मेरापना मनमें मानरहा है वो जड पदार्थमें मेरापना मानता है-उसका कर्त्तापना मानता है. मैंने सुखी किया-करवाया, मैंने दुःखी किया, ऐसा मानता है उसका त्याग करके निज स्वभावमें रहना. निश्चयनयसें स्वभावका कर्त्ता जानकर विभावका कर्त्तापना छोड देना.

१४१ प्रश्नः—आत्मा निर्विकल्प और अकर्त्ता होनेपरभी कर्त्तापनेसें व्रत, पच्चख्खान, प्रतिक्रमण करै, शास्त्र वांचे और उससें अकर्त्ता निर्विकल्पता होवे वो क्यौं घटना हो सके?

उत्तरः—कर्म है सो परवस्तु है. जैसें कोइ मनुष्यकों कांटा लगा है, वो कांटा परवस्तु है, फिर नाखुन उतारनेके ऑजारसें कांटा निकालता है वो ओजारभी परवस्तु है, तो परवस्तुसें परवस्तु निकलती है, वैसें आत्माकों जो कर्म लगे हैं वो परवस्तु परवस्तुके योगसें निकलजावे और हरएक वस्तु अनुक्रमसें शुद्ध होती है. वस्त्रकों मैल लगा है वो परवस्तु है उसकों क्षारादिक परवस्तुके योगसें शुद्ध-साफ करे तो शुद्ध होवे. हीरे वगैरः रत्न पदार्थ हैं वो खानमेंसें निकालेजाते है तब मैले होते हैं, उनकों घिस-कर साफ करनेके ओजार लगें तब वो मेल दूर होजाता है और शुद्ध रत्न प्रकट होते हैं. उसमेंभी तमाम मैल पहेला नहीं चलाजाता है, पहेलें तो अल्प अंश जाता है, मगर घिसनेका अभ्यास करनेसें क्रमसें करके सब मैल चलाजाता है; लेकिन मैल दूर करनेमें परवस्तुका योग चाहियें, वैसें आत्माभी कर्मसें आच्छादित हुवा है उससें आत्माकी निर्विकल्प दशाभी मालूम नहीं होती, अकर्त्तापनाभी मालूम नहीं होता वो आच्छा-दित हुवेका प्रभाव है. वो ढकन दूर हठानेके वास्ते जिस तरह कपडा धोनेमें पंहेले क्षार लगाते हैं, उससें ज्यादे मैला मालूम होता है; मगर व-स्तुपनेसें वो खार मैलकों निकालनेवाला है, उसतरह व्यवहारकरणी दे-खनेमें तो परभावकी मालूम होती है, किंतु वस्तुपनेसें अंश अंशसें आत्माकों

शुद्ध करती है. ज्यों ज्यों अंशसें शुद्धता होतीजाती है त्यों त्यों व्यवहारकी करणीयें छूटतीजाती हैं. जैसेंकि श्रावक पौषध करता है तब पौषधमें पूजा प्रमुख नहीं करता है, मुनीकों पूजा, श्रावककों स्वामीभक्ति ये सभी छूटजाती हैं. इसतरह क्रमसेंकरकें समस्त करणीयें छूटजावे और आत्माका अकर्त्ता गुन निर्विकल्प गुन प्रकट होता है, वास्ते कुछ करणी निर्विकल्प दशा लानेके वास्ते करनी योग्य हैं. पेस्तर अशुभ क्रियाका त्याग कर शुभ क्रिया करती है. पीछे ज्यों शुद्ध दशा प्रकट होती जाय त्यों शुद्ध क्रियाका त्यागकर अक्रियपद प्रकट होता जाता है.

२४२ प्रश्नः—ज्ञानीनें तो पुण्य पाप दोनु त्याग करने योग्य बतलाये हैं और तुम तो एककों छोडकर एककों आदरनेका बतलाते हो वो किस तरह समझना ?

उत्तरः—ज्ञानी जीने कहा सो सत्य है. जैसें कोलीकी कोम चोरी करनेका धंदा करती है, उससें सामान्य वचनसें कोलीकी सोबत करनेका त्याग कहाजाता है; मगर चोरके डरसें रक्षण करनेके वास्ते यदि कोलीकों रक्षक करकें रखलेवें तो अपना रक्षण होता है. और रक्षकनें जब चोरकों मार हकाला तब निर्भय हुवे, पीछे चौकीदारकी जरुरत नहीं तब चोर और चौकीदार दोनुका त्याग होवे. उसतरह अशुभ प्रवृत्तिकों दूर करनेकेलिये शुभ करणीरुप चौकीदार है वो सब अशुभ प्रवृत्ति दूर हुवे बाद शुभ करणीकाभी त्याग होवे; वास्ते ज्ञानीने दोनुका त्याग कहा है सो सच है. सर्व कार्यमें आत्मा अज्ञानपनेसें अनादि कालका कर्त्तापना मानरहा है, और उसीसेंही आत्माके ज्ञानकों आवरण होते जाते हैं. जब जीव प्रभुके आगम सुनता है और स्पर्शज्ञानरुप ज्ञान जीवकों परिणमता है तब आत्माकों आत्माका स्वरुप अनुभवगम्य होता है तो जानताहै कि—अहा ! मेरा आत्मा अरुपी, अनंतज्ञानमय, सर्व भावका जाननेहारा, निर्विकल्प ज्ञानी है. जड भावका जोजो कर्त्तव्य कियाहुवा है, वो मेरा स्वभाव नहीं. जब मेरा कर्त्तव्य नहीं तब उनका मैं कर्त्ता बनताहुं वोभी अज्ञानता है. ये वस्तु अनुकूल प्रतिकूल जिसकों मिलें उसमें मैं सुख दुःख मानता हुं वोभी

अज्ञान है. मेरा स्वभाव तो समझने देखनेका है. वो स्वभावका मैं कर्त्ता हुं और वो करने योग्य है ऐसा ज्ञान होता है. वास्ते निश्चयनयसें आत्मा स्वभावका कर्त्ता है. व्यवहारसें विभावका कर्त्ता है. ज्यों ज्यों निश्चयगुण प्रकट होता है त्यों त्यों अशुद्ध व्यवहार त्याग हुवाजाता है और परभावका कर्त्तापना दूर हुवाजाता है, और जैसें आत्माका स्वरुप है वैसा प्रकट होता है.

११२ प्रश्नः—तुम जो जो भावना करनेकी कहते हो वो आत्म घरकी है कि परघरकी ?

उत्तरः—जितना व्यवहार वर्त्तता है उतना पुद्गलसें करके वर्त्तना करनेकी है और उसी वास्ते भावना चितनेकी है, वो सब व्यवहार परघरका है यानी पुद्गल मिश्रित है; सबब कि आत्माके स्वाभाविक गुण तो समझनें देखनेके है; मगर विचार करना सो आत्माका धर्म नहीं है. जहांतक संपूर्ण केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहांतक पुद्गल करकें सहित विचार है. क्योंकि मति श्रुतज्ञान हैं वो इंद्रियजनित ज्ञान है. इंद्रियोंका बल है. अवबोध होवे सो पांच इंद्रि और छट्ठा मन उन्होंके संयोगसें ज्ञान होता है. वो ज्ञान आत्मा और परके संयोगसें होता है, वोभी जींवका आत्मा आच्छादित होजानेसें मति श्रुतज्ञानका जितना बोध है उतना नहीं होता है. ज्ञानकी भक्ति-ज्ञानवानकी भक्ति-ज्ञान प्रकट करनेकी अतिशय उत्कंठा और पढाने वंचानेके काममें अतिशय अभ्यास, जिस जगह ज्ञान मिलनेका हो, या दूर हो, या नजदीक हो और उसका वक्त समालना पडै वो सहन करना पडताहो, किंवा जो हुकम फरमावे वो अमलमें लेनापडताहो, वो कुछ हुकम और दुःख सहन करकें-ज्ञान मिलानेमें आलस छोडकरकें रात दिन उद्यम करता है, तब ज्ञानावर्णी कर्म थोडे थोडे ज्यों ज्यों क्षय होते जाँय त्यों त्यों मति श्रुतज्ञानका बोध बढताजाता है, तब जीव मेरा स्वरूप और पराया यानी जडका स्वरूप पहिचानता है. शास्त्रमें जडकी संगति छोडनेके जो जो उपाय बतलाये हैं वो जानता है उससें उसकी विचारणा करता है, वो विचारणा ऐसी है कि जिसें आत्मा अपने

स्वरूपकी सन्मुख होताजाता है, और परभावसें चित्त हठाता जाता है. जितना परभावसें चित्त हठगया उतना आत्मा शुद्ध होताजाता है. जैसें कि अपने कुटुंबके मनुष्य सिवाके मनुष्यकों घरमें मुनीम करके रखवै तो उसकों द्रव्य व्यवहारसें तो कमती हुवा लगता है; मगर दूसरी तर्फ शोच करै तो अपना जो धन है उसका रक्षण करता है और नया व्यान वगैरः पैदा करकें धन वढादेता है. उसी तरह ज्ञान और भावनाअें जो पुद्गलमें मिलकर करनी सो आत्मरुपसें पररुप देखनेमें वहारसेंही है, मगर वस्तुतासें आत्माकों आत्मस्वरूपसें जानै, जडकों जड स्वरूपसें जानै, आत्माका निरावरण करनेका उद्यम कररहा है, विषयकषायके काम कमती होतेजाते है और पूर्वके कर्म क्षय होतेजाते हैं. ये सव काम परवस्तुसें होता हैं. वास्ते जहांतक केवलज्ञान प्रकट नहीं हुवा वहांतक भावनाअें आदि वहुतही उपकार करती हैं. लेकिन जैसें लडके और मुनीमकों वस्तुपनेसें वाप अलग जानता है, वैसेंही वस्तु धर्म पहिचानसें जो ज्ञान आत्म उपयोगके हैं वो अवधि, मनपर्यव, केवलज्ञान या मति श्रुतज्ञान इंद्रियजनित है उसकों वो स्वरुपसें जानलेवै; मगर आत्मजनित ज्ञान प्रकट न हुवा वहांतक ये ज्ञानका अभ्यास छोडदेवै तो उसके आवरण किसतरह नाश होसकै? ऐसें जिस जिस तरह सर्वज्ञ महाराजने वतलाया है उस तरह सेवन करकें आत्माका आत्मभाव प्रकट करना. ज्यों ज्यों आत्म विशुद्ध होवै त्यों त्यों नीचेकी प्रवृत्ति छोडते हुवे जाना है और समभाव वढातेजाना है. जो जो परभावके संयोगसें सुख दुःख अनुकूल प्रतिकूल शरीरमें होता है उसमें अपना समभाव नहीं छोडदेता है. कोइ मार मार जाता है, कोइ पूजन करजाता है, कोइ गालियें देजाता है और कोइ गुण ग्राम करता है वो सवमें समवृत्ति है. ऐसे गुण ज्यों ज्यों वढें त्यों त्यों समझना कि मैं चडती पायरीपें हुं. उससें गुणस्थानपर चडाभी समझाजाय और ज्यों ज्यों गुणस्थानपर चडताजाय, त्यों त्यों ज्ञानीने नीचेकी प्रवृत्ति छोडदेनेकी वतलाइ है वैसेंही छोडदेवै. ऐसे पुरुष तो मर्यादा मुजवही चलेंगे और वीतरागजीके ज्ञानसें स्वचेतनकों चेतनरुपसें जानेंगे, परपुद्गल-

कों पुद्‌गलरूप जानेंगे, आत्मा अक्रियपनेसें जानेंगे, और क्रिया पुद्‌गलके संगसें होती है वोभी जानेंगे. जहांतक आत्माका अक्रिय गुण प्रकट नही हुवा, वहांतक नीचेसें ज्यों ज्यों उंचे चडता है और जितना जितना शुद्ध स्वरुप प्रकट होता है, उतनी उतनी क्रिया छोडता जाता है. दशा तो अक्रियपदकी भावता है, स्वधर्म तो जितना आत्मधर्म प्रकट होता है उसमें स्थापन किया है. साधनरूप धर्मकों साधनरूप मानता है. जैसें कोइ मनुष्यके घरमें लाख रुपैकी दौलत है; मगर वो जीव नही जानता है. उसकों किसी दूसरे पुरुषने उस दौलतके गुणोकी माहेती दी कि तेरे घरमें ये बडी दौलत है, उसकेपर सब फूस-धूल-मिट्टी-पत्थर वगैरःका थर चडगया है उससें वेमालूम है; वास्ते उद्यम कर, उद्यम करनेसें तेरी सब दौलत तेरे हाथ आवेगी. अब जिस पुरुषकों माहेतगारी देनेवाले पुरुषकी प्रतीति है उसने तो, वो दौलत तो जमीनमें रही है, उससें और द्रव्य विगर कुछ काम होसकता नहीं. और आपके पदरमें पैसा नहीं था, उसलिये कर्जा करकें खर्च किया-मजदूर बुलवाये-खोदनेकी मिहनतकी और आखिर द्रव्य हाथ किया. उसीतरह सर्वज्ञ महाराजने आत्मद्रव्यका स्वरूप दर्शाया है उससें आत्माका स्वरुप समझलिया; मगर अभी तो जडकी संगतिमें है वास्ते वो स्वरुप मालूम नहीं होता है. उसकों प्रकट करनेमें जिस तरह धन निकालने वालेने कर्जा किया और फतेह मिलाइ, उसी तरह आत्माकों अज्ञान संगतिमेंसें मुक्त करनेके उपाय जो जो ज्ञानीने बतलाये हैं वो अमलमें लेवे तो बेशक आत्मधर्मरूप धन प्रकट होवे पुनः एक पुरुषकों एक दौलतकी माहेती वालेने दौलत बतलाइ; मगर उस पुरुषके वचनकी प्रतीति न की उससें उसकों दौलत हाथ न लगी. एक पुरुषने कहा कि-' दौलत है तोभी में दूसरेकी-पराये मनुष्यकी मदद न लुंगा. दूसरेका कर्जा कौन करे ? आपही आपसें दौलत निकलेगी तो लुंगा.' उन दोनु पुरुषोंकों द्रव्यकी प्राप्ती नहीं हुइ. उसीतरह सर्वज्ञके वचनसें श्रद्धा नहीं करते हैं उनकों आत्मधर्मका ज्ञान नहीं होता है. आत्मधर्म है ऐसा नाम मात्र जानलिया; मगर उसके साधनकी श्रद्धा सर्वज्ञ-

के वचनसें विपरीत करकें निरुद्यमी हुवे. आत्माकी बातें करनी; लेकिन काम-क्रोध-विषय-कषाय नहीं छांडते है-किंतु विषय कषायकी वृद्धि करते हैं वैसे जीवकों धर्म कहांसें होगा? कितनेक जीव अकेले व्यवहार मार्गकोंही सत्य मानते हैं. कितनेक जीव अकेले निश्चय मार्गकों सत्य जानते हैं; मगर प्रभुका मार्ग तो निश्चय और व्यवहार सहित है. उसें स्याद्वादमार्ग कहाजाता है. दूसरे धर्ममें ऐसा स्याद्वाद धर्म नहीं है उसी-सेही मिथ्यात्व कहा है. उतनेपरभी जैनधर्ममें रहकर स्याद्वाद मार्गका ज्ञान न हुवा तो आत्माका कार्य कैसें होसके? वास्ते ज्यौं बनसकै त्यौं सर्वज्ञजीने दोनु (निश्चय व्यवहार) मार्ग कहे हैं उसी मुजब प्रवृत्ति कर-नेसें निकटमें आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति होवै. इसलिये अव्वलमें अशुभ प्र-वृत्ति छोडकर शुभ प्रवृत्ति करनी. पीछे ज्यौं ज्यौं आत्मा शुद्ध होवै त्यौं त्यौं शुभ क्रिया छूट जावै.

१४४ प्रश्नः—आत्माकी शुद्ध प्रवृत्ति किस तरह हो सकै?

उत्तरः—सर्वज्ञजीने आत्माका स्वरूप बतलाया है वो जान सकै; मगर आत्माके अनंत गुण हैं वो सब छद्मस्थपनेसें नहीं जान सकता है. कितनेक स-र्वज्ञके मुख्य गुण सिद्धांतसें जान लेवै कि आत्मा अरूपी, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, अव्याबाध, अगुरु लघु, अक्षय ये गुण आत्माके हैं. इन्सें विपरीत वो जडके गुण हैं. रूप, गंध, रस और स्पर्श ये चार मुख्य गुण जडके हैं. तीक्ष्ण बुद्धिवालेनें ये दोनु स्वरूप चेतन और जडके जान लिये, उससेंही विचार करता है कि-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित सो चेतन है, ज्ञानशक्तिवान है उससे समझे सो चेतन है, तब मैं अभी मेरे गुणमें वर्त्तता हुं कि परगुणमें वर्त्तता हुं? उ-सका शोच करै. प्रथम यह मेरा शरीर देखनेमें आता है उस्सें रूपी है. श्वासोश्वास लेता हुं उसका स्पर्श-उष्ण वा शीतल होता है तो वोभी रूपी है. शब्द बोलता हुं वोभी कानोंमें शब्दके पुद्गल स्पर्श करते हैं वोभी रूपी है. इस शरिरमें लोही मांस है वोभी रुपी है; वास्ते ये कुल्ल शरीर जड है. इस लिये मेरा नहीं है. लडकेका स्वरूपभी दिखता है उस्सें

वोभी मेरा नहीं है. स्त्रीभी मेरी नहीं है, ये मकानभी मेरा नहीं है, बैठताहुं वोभी मै नहीं हुं, चलताहुं वोभी मै नहीं हुं, आहारके पुद्गलभी रूपी हैं और मेरा गुंण अरूपी है तो वोभी मेरे ग्रहण करने लायक क्यों हो सकें? भूख लगी कहताहुं वोभी मै नहीं, मुझकों खट्टा लगा, कषायला लगा, खारा-तीखा लगा, वोभी मेरे करने योग्य नहीं है. उसमे जो मोहवंत होताहुं-घभडाताहुं वो अज्ञानता है, मुझकों सुगंध, दुर्गंध आती है, मुझकों ये राग अच्छा मालूम होता है या बुरा मालूम होता है, ये स्पर्श सुकोमल या कठोर लगता है-ये सब पुद्गलकों होता है; तथापिं मुझकों होता है अैसा मान लेता हुं वो मेरी अज्ञानता है. मेरा स्वरूप मेने न जाना, उस्सें मै मानता हुं. मुझकों मारता है वो मै नहीं हुं. मुझकों गालियें देता है अैसा मानता हुं सो मेरी अज्ञानता है, मेरा धन चला गया, मै धन पैदा करता हुं, मै कपडे पहनता हुं, मैने कपडे ओढे हैं, मैनें बिछाये हैं, मै सोता हुं, मै बैठा हुं, ये मै करता हुं, वो अज्ञान है. मै सुखी करता हुं, मै दुःखी करता हुं, मै धनवान हुं, मै ऋद्धिवंत हुं, मै परिवारवाला हुं, मेरा सब कहा मानते हैं, मै सबकों शिक्षा करता हुं, मै सबके ऊपर हुकम चलाता हुं, मै प्रधान हुं, मै राजा हुं. ऐसें जो जो गर्व करता हुं वो मेरी अज्ञानदशाके प्रभावसेंही करता हुं. मैने मकान बंनवाये, मेरा मकान गिर गया, लेकिन वस्तुतामें वो वस्तुही मेरी नहीं है तोभी मेरी मानकर बैठा हुं, वो अज्ञानता है. मैनें धन दिया, मैनें धन लिया, मैनें शास्त्र वांचे, मैनें पढाये, मैनें चेले किये, मैन व्रत दिये, मैनें गृहस्थ किये, मैनें समझाये, ये सब विकल्प अज्ञानतासें करताहुं. अज्ञानताके योगसें अहंकारदशा प्रकट होनेसें होती है. परवस्तु मेरी नहीं. पर जो पुद्गल है उसकों में क्या करुं? और वो अहंकारके मदसें करके जडकर्त्तव्यकों मेरा या मै शब्दसें बुलाता हुं; मगर बोलना वो मेरा धर्म नहीं है. रोग आनेसें मुझकों बीमारी आइ-दर्द हुआ कहता हुं; लेकिन अरुपी आत्माकों रोग होता है? नहीं नहीं कबी नहीं होता! जो रोग होता है वो तो इस उदारिक शरीरकों होता है. ये उंदारिक शरीर मेरा

नहीं और मेरा मानलिया उस्सें मुझकों रोग हुवा अैसा मानता हुं सो अज्ञानता है. मुझकों जगतजन नमन करते हैं-सत्कार करते हैं. महत्त्वता करते हैं; मगर जो मेरा नाम है सो तो पुद्‌गलका है वो पुद्‌गल सो मै नहीं; तो नमन करते हैं, ऐसा मानना सो अज्ञानता है. अनेक प्रकारके आभूषण धारण कर मनमें मानता हुं कि मैंनें दागीने पहने हैं. वो पहननेवाला तो शरीर है, मै तो अरुपी हुं वो ज्ञान नहीं हुवा उस्सें मै मान रहा हुं. स्त्रीओंके मुंह देखकर मानता हुं कि-अहा! क्या सुंदर स्वरूप है! इसके संग कब सोबत करुं! कितनीक वक्त योग बनता है तो उस्सें आनंदित होता हुं-ये मेरी कैसी मूढता है? जो शरीर जडपदार्थ है वो मै नहीं. फिर स्त्रीओंका शरीर वोभी जड है, इन दोनु जडपदार्थके संयोगमें मेरे क्या आनंद करना? उसका कुछ शोच न करतें मेरी मूढता छा रही है वो कैसी धिःकारने लायक है? कोइभी परसुखमें लीन होना वो मेरा धर्म कैसें होवे? अहा! अैसा स्वरूप जानता हुं तोभी अनादिके अभ्याससें वो विषयादिकमेंसें मूर्छितपना नहीं जाता है. पूर्वसमयमें अनेक महापुरुष हो गये उन्होंनें अपने आत्माकों जडसें मुक्त करकें निज रूपमेंही आनंदितपना अंगीकार कियाथा. अहा! तेरेमें कर्मके आवरण कैसा जोर करते हैं कि वीतरागजीकी वानी स्वपर स्वरूपकी सुन ली तोभी उसकी असर होतीही नहीं! और अब तकभी आत्मा ढकाया जाय अैसी प्रवृत्ति किये करता हुं; मगर अब तो मेरे अरूपी स्वरूपमें रहना वही उत्तम है. जैसें कोइ दीवाना मनुष्य चाहे वैसा बकवाद करे, चेष्टाअें करे; मगर सच रीतिसें वो नहीं जानता है कि मुझकों क्या करना लाज़िम है? उसी तरह मैभी कर्मके संयोगसें मूढ हो मेरे आत्मस्वरूपकों भूल कर जड पुद्‌गलकी प्रवृत्ति रात दिन दीवानेकी तरह कररहा हुं. संसारमें अनेक प्रकारके कर्त्तव्य होते हैं, वो सब मेरेही समझके किये करताहुं और जडके कर्त्तव्य करकें अहंकारमें मशगुल बन हिरताफिरताहुं-अहा! क्या अज्ञानता है? अनेक जीवोंकों अनेक प्रकारके दुःख देताहुं. धिक्कार है अज्ञान दशाकों!! ये मै जड

संगतिसें क्या कृत्य करताहुं ? स्त्रीओंके महा दुर्गंधमय स्थानक जिसकी विभाविक जीवभी दुगंछा करते हैं ऐसे स्थानकोंको जीव चुंवनादि अनेक चेष्टा करता है ! ये सब कृत्य आत्माके स्वरूपसें भिन्न हैं. व्यापारादिकमें लुचाइ-ठगाइ-चोरी आदि अनेक प्रकारके कृत्य जडकी सोवतसें करताहुं ऐसी जड प्रवृत्ति अनादि कालकी पड रही है, वो मेरे स्वरूपसें भिन्नपना है. और ये नजरके आगे वडी वडी रौनकदार हवेलीअें देखताहुं-नइ नइ रचनाकी उस्में कारीगिरी देखकर आनंदित होताहुं वो मेरे करने लायक है ? नहीं! नहीं ! ये सब जडसंगतका प्रभाव है. मेरे मकानमें क्या उमदा रंग कियागया है ? कैसी सुंदर विछायत या विछौने विछाये है ? ऐसी वस्तु देखकर मुझकों जो आनंद होता है वो कैसा आश्चर्य है ! जो वस्तु जड सो मेरा धर्म नहीं, विनाशी है वोभी नहीं शोचताहुं, जडकी संगतमेंभी वो चीज स्थिर रहनेकी नहीं, तुं उसकों छोडकर जायगा या तो वो तुझकों छोडकर चली जायगी उसकाभी तुझे ज्ञान नहीं होता, और आसक्तता होता है-निज स्वरूपसें भूला पडता है. अव मैनें मेरे आत्माका स्वरूप जानलिया; वास्ते अव तो उससें मै न्याराहुं. ऐसा चोकस होता है,तोभी ज्ञानीके कथन मुजव अवतक स्पष्ट ज्ञान नहीं हुवा है-इसलिये अद्यापि पर्यंत उसपरसें विचार बंध नहीं पडता है; वास्ते अव मेरे क्या करना, सो चेतन ! तुं विचार कर. वीतरागदेवका उपदेश सुना, मेरे आत्माका स्वरूप जानालिया, जडका स्वरूपभी जाना; तोभी जडसें चित्त हठता नहीं; उसके वास्ते भगवंतजीने उपाय वताये हैं वो मेरे करना योग्य है. जैसें ये सब विचार होते हैं, वैसे वोभी विचार होने चाहियें यानी आत्माके स्वाभाविक धर्ममें निश्चयनयसें स्वरूप प्रकट हुवा नहीं वहांतक अनुभवसें विचार करना योग्य लगता है. और आत्माका हरहमेशां विचार करना-रोज शास्त्रकाभी अभ्यास करना. जैसें कूपके उपर पत्थर या लकडे गडे-जडे हुवे होते हैं उसके साथ रस्सीका निरंतर घसारा लगनेसें उसमें वडे वडे खड्डे पडजाते हैं, उसी मुवाफिक निरंतर अभ्याससें कर्मकोंभी घसारा लगेगा तो आत्मा निर्मल होवेगा. वास्ते

अहर्निश और तमाम उपाधियोंको छोडकर ज्ञानका अभ्यास करुं. मगर जहांतक संसारकी उपाधि है वहांतक एक चित्तसें शास्त्रका अभ्यास ठीक ठीक नहीं होसकता. वास्ते संसारको छोडकर संयम लेलुं तो संसारी कुटुंबकी उपाधि, व्यापारकी उपाधि छूटजाय तो पीछे निर्विघ्नपनेसें ज्ञानाभ्यास होसके लेकिन इत्ती सारी मेरी विभावदशा छूटगइ नहीं कि जिस्सें मं साधुपना पालन करसकुं. तब मेरा जो श्रावकधर्म जिस तरह बारह व्रतरूप कहा है उसतरह अंगीकार करुं; उससें जितनी श्रावककी मर्यादा करुंगा उतनी उतनी निरुपाधिकता होवेंगी. जैसें कि श्रावक सामायिक करुंगा उतनी देर शास्त्राध्ययन करनेमें मेरा संसारी काम हरकत न करेगा. सारे दिनका या अहे रात्रिका पौषध करुंगा तो सब वक्त ज्ञानाभ्यास बन सकेगा. फिर जितनी जितनी चीजें व्रत लेकर त्याग करुंगा उन संबंधीकी उपाधियें मेरी हठजावेंगी. और जितनी जितनी जड प्रवृत्ति कमती होवेगी उतनी उतनी निरुपाधिकताका सुख होवैगा. अनेक प्रकारकी विषयवांच्छना होती है वे सब-इच्छा तो रुकती नहीं; मगर जितनी जितनी रुकीजाय उतनी रोककर स्त्रीके विषय, खानपानके विषय, पहननेके विषय और सुगंधीके विषय रात दिन मुझको हो रहे है वो सब छोडदुं ऐसी विशुद्धि नहीं मालूम होती है, तो जितने जितने छूटजावे उतने छोडकरके व्रत धारण करुं. ऐसा शोच करकें श्रावकके व्रत लेवै, प्रभुभक्ति करे, प्रभुभक्ति करनेको जाय उतने वक्ततक संसारके कार्य छूट जाय. प्रभुके स्हामने बैठकर भावना चिंतन करै. (भावनाका स्वरूप इस पुस्तकमें आगे आगया है उस मुजब करै.) उन भावनासें बहुत विशुद्धि होगी ऐसा शोच करकें भाव. यहांपर कितनेक मनुष्योंके दिलमें आवै कि संसारपरसें राग कमती किया और प्रभुजीपर राग बढाया-विषयका राग छोड व्रतपर राग बढाया तो वो आत्माको बंधन है-पीछा उपाधिमें पडना है. फिर व्रतका अहंकार होवै, दूसरे नही करते हैं उन्होंकी निंदा होवै-वगैरः बहुतसें कारणोंसें आत्माकी मलीनता होती है. उस विषयमें समझना कि-संसारपरसें राग उतारकर प्रभुजीपर राग कायम किया, वो राग प्रभुपर न कायम करै तो संसारका राग कायम रहजाय, तो बंधन

न छूटै-घरमें बैठाहुवा जितनी विभाविक प्रवृत्ति करेगा उतनी वर्त्तना कुछ जिनमंदिरमें जाकर करनेका नहीं-प्रभुजीके गुण वगैरः गायगा, जो उससें विभावमेंसें चित्त हठानेका साधन हाथ रहेगा. जहांतक पूर्ण विशुद्धि न हुइ है वहांतक जीवकों चढनेका मार्ग यही है. इसलिये वीतरागजीने बताया है, तोभी ऐसी अपनी विकल्पनासें कल्पे कि येभी रागबंधन है सो कहनेरूप है. वस्तुतासें तो विभावपरसें राग दूर हुवा नहीं, उससें ऐसा बतलाकर प्रभुगुण गाने नहीं. जिनकों आत्माका कार्य करना है उन्हकों तो जितनी विशुद्धि होवे उस मुजब करनेका प्रभुजीने बतलाया है वैसेंही करेगा.

पेस्तर बहुतसें दृष्टांत दियेगये हैं-जैसें कि कोइ मनुष्यनें विष खाया है. अब उस मनुष्यकों खबर हुइ कि विष मेरे खानेमें आया है वो मिटनेके वास्ते कुछ औषध सेवन करुं. पीछे विष दूर होनेके औषध खानेसें निर्विष हुवा. एक मनुष्य कहता है कि औषध तो कटु है ये कुछ खानेका पदार्थ नहीं कि उसे मै खाउं. तो उस मनुष्यका विष न उतरेगा. वैसेंही प्रभुभक्ति वगैरः है सो विषहर औषधरुप हैं. विष उतारडाले बाद औषधका काम नहीं, रागद्वेष रहित होवे उसकों शुभ रागकी जरुरतभी नहीं; मगर संसारके राग नहि उतरे हैं और शुभ रागकों बंधनरूप माने यह तो जैसें विषवाळे कटु औषध जानकर उसका उपयोग न करे जिस्सें निर्विष न होवे, वैसें अशुभ राग छोडकर शुभ राग नहीं आदरता है उसकों आत्माकी विशुद्धि होनेकी नहीं. फिर अहंकारादिक विषयमें कहना है सो अहंकार कुछ शुभ करणीसें नही आते है; मगर उसकी परिणती अबतक जड भावमेंसें हठगइ नहीं वो करवाते हैं. अभी ज्ञान नहीं हुवा उससें वो खुद अहंकार करता है कि हम प्रभुजीकी भक्ति करते हैं. व्रत करते है. हजारह रुपै खर्च करते हैं-वडे वडे शासनके काम करते हैं. हमारे जैसा कौन है ? ये दशायें होती है वो महा अज्ञान दशाका जोर है उससें उन विषयमें तो जिन्होंकी समझमें आया है कि-अहा! मेरे आत्माकी स्वभावदशा तो जानना देखना है. जड प्रवृत्ति कुछभी करनी वो मेरा

आत्मधर्म नहीं. फिर यह शुभ करणीभी मात्र अभी जड भावपरसें चित्त नहीं हठता है वो हठानेके वास्ते करनेकी है-वस्तुतासें मेरा धर्म नहीं है. जिनकों ऐसी बुद्धि प्राप्त हुइ है उनकों क्यों अहंकार आयगा ? और यूं करते थोडी विशुद्धि होगी उससें मनमां आयगा तो उसकोंभी परवृत्ति जानकर उस अहंकारकी निंदा करेगा. उससें पीछे हठनेकी भावना भावेगा. अहा ! यह मेरी दशा क्या जड संगतीसें होती है ? जगत्में यह जड शरीरकों मान मिलता है तो वो शरीर में नहीं. तो वो मानसें मेरे क्या ? ऐसी भावना आत्मार्थी भावता है. रात दिन कषायसें पीछे हठनेकीही दशा जिनकी वनी है और जितना जितना पीछा नहीं फिरा जाता वोभी आत्माकों प्रतिकूल है ऐसा भाव रहे हैं. पुनः जडकी दशा दूर करनेकेलिये व्रत नियम धारण करते हैं. वो वस्तुओंका जहांतक खाने पीनेका अभ्यास है वहांतक वो खानेकी वस्तुयें न मीलेंगी, या प्रतिकूल मिलेंगी तो मुझकों विकल्प आयगा. वास्ते जो जो वस्तु त्याग करुंगा उसका अभ्यास छूटजानेसें वो वस्तुपर चित्त न जायगा, तो उसका विकल्पभी नहीं होवेंगा. ऐसा समझकर आहार-पानी-वस्त्र-आभूषण वगैरःका नियम करकें वाकीकों वापरनेकेलिये त्याग करता है. व्यापारभी वहुत पापके हैं वो पंदरह कर्मादान वगैरःका त्याग करता है. दूसरेभी व्यापार विकल्पके कारण हैं वास्ते अपना निर्वाह होवै उतना व्यापार रखकर दूसरे व्यापारका त्याग करता है. स्त्रीयादिकके विषयकीभी मर्यादा कर वाकीकी त्यागकें-यह प्रवृत्ति जड भावकीकमती होयगी तभीही मेरा आत्मा स्थिर होयेगा. जहांतक संसारके काम करनेके हैं, वहांतक वो वो काम धर्मध्यान करते वक्त याद आयगा और आत्माकी परिणती विगाडेंगे; वास्ते जो जो कारण संसारके कमती होनेंगें उतने उतने विकल्प कमती होवेंगे. ध्यानमेंभी समाधी रहेगी. जैसें कि जो मनुष्य राजा नहीं है तो उसकों लश्कर वगैरःका विचार चित्तमें नहीं आयगा, क्योंकि उस काममें उसकी प्रवृत्ति नहीं है; वास्ते जितनी जितनी प्रवृत्ति शुरु है उतनी उतनी विकल्पता आवेगी. ऐसा समझकर खाने-पीने-बैठने-सोने-फिरने

तमासे देखने व्यापार करने और स्त्रीयोंके विषय संबंधी जितने जितने कारण छुटजाय वो छोड दे कि जिस्सें तेरा आत्मा समाधीमें रहै. न छूटे उसमें अपने आपकी अज्ञानता विचारता है कि-अबतक मेरा मन जडसें दूर नहीं हठता है; वास्ते सत्पुरुषकी सेवा करुं, और संसारसें दिल हठजाय वैसे शास्त्रोंका अभ्यास (सुनने वांचनेका) करुं कि कोइ वक्त वो उपदेशरुप अमृतसें करकें मेरा चित्त सुंदर होजाय, और विभावसें चित्त हठजाय-स्वभाव सन्मुख होवै. ऐसा चिंतन कर तनमन धनसें ज्ञानादिकका अभ्यास करता है, वो ज्ञानसाधनमें कोइ विघ्न न आवै उस वास्ते सामायिक पौषध देशावगाशिक करै. फिर विशेष सामर्थ्य जाग्रत होवै तो ध्यान करुं. ऐसा शोच कर आर्त्त रौद्र ध्यानका त्याग करकें धर्मध्यान करै कि जिस्से आत्मा निर्मल होवै, और निजस्वरूप सन्मुख हो जाउं. ऐसा चिंतन कर ध्यानादिकका उद्यम परवस्तुसें हठनेके वास्ते करै. ऐसें अनेक प्रकारके उद्यम आत्मार्थी कर रहे हैं. हरएक प्रकारसें आत्माकी प्रवृत्ति विभावसें छूट जावै उस सन्मुख दृष्टि बन रही है. संसारका स्वरूप विचारनेसें, जैसें कोइ पुरुष घरमें होवै और चारों ओर आग लगे तो उस घरमेंसें निकलनेका जैसा उद्यमवंत होवै, वैसें आत्मार्थीको संसारदावानल जैसा लगता है. जो जडप्रवृत्ति करता है उसमें आनंदता नहीं होती है. एक विटंबना समझकर करता हैं. वो दशाभी आत्मा निर्मल होनेकी है. यह संसारमें सब चीज हैं, उसमें स्त्रीयादिकके काम सबसें जियादे दुःखदायक हैं; सबब कि कामदेव जिसके वश्य हो गया उसको पीछे दूसरी उपाधि छोड देनी कुछ मुश्कील नहीं पडती और जिसको काम न छूटे उनको कुछ उपाधि नहीं छूट सकती है. कामदेवके लिये स्त्री चाहियें, स्त्रीके लिये वस्त्राभूषण चाहियें, वस्त्राभूषणके लिये द्रव्य चाहियें, द्रव्यके लिये व्यापार करना चाहियें, व्यापारके लिये उलटासुलटा करना-ठगाइ-अन्याय-अनेक आरंभ करना चाहियें, स्त्री होवै तो लडका लडकी होवै और वै होवै तो उन्होंकी सादी करवानी चाहियें. उन्होंके लिये न्यात जातसें हिलमिलके चलना चाहियें, उन्होंकी दाक्षिण्यता रखनी

दूसरेका घर जलता होवै उसमें आप फिकर नहीं करता है, वीसी तरह यह जडशरीरकों काटते हैं उसमें तुमकों विकल्प करनेका कुछ मतलवही नहीं. तुं तेरे आनंदमें रहै-अैसा शोचते हैं. फिर कपडे फटे हुवे हैं या मैले हैं, जाडेकी जरुरत हो और महीन-पतले मिले हो, अगर पतलेकी जरुरतमें बोजदार मिले हो अैसा वस्त्र संबंधी कारण मिलनेसें अपने समभावसें दूर हठते नहीं और शोचें कि-वस्त्र पुद्गलकों पहननेके हैं. आत्माकों वस्त्र पहनने नहीं हैं, तो उसमें मैं किस वावतका राग द्वेष करुं ? जैसा कर्म पूर्व समयमें बांधा है उसके उदय माफक मिलते हैं उसमें अच्छा क्या ? और बुरा क्या ? आत्माकों तो परिधान करनेही नहीं है तो आत्मा किसलिये विकल्प करें ? ऐसे भावसें समभावमें वर्चते हैं. फिर शरीरमें पीडा होनेसें किसी प्रकारकी अरति उत्पन्न होनेके कारण मिलजाय; मगर जिसने स्व परका स्वरूप जानलिया है वे पुरुष अरति चिंतवतेही नहीं; सवव कि स्वभाव वहारके काम वने उसमें आत्माकों अरति करनेकी मतलव नहीं उसलिये अरति नहीं करते हैं. फिर खुबसूरत अलंकारित औरत कभी इंद्रकी इंद्राणी आकर मुनीके आगे हावभाव करती है-विषयकी चेष्टा करती है-नेत्रकटाक्ष चलाती है-हास्यविनोदी शब्दप्रयोग करती है, वो सुनकर मुनी शोचते हैं कि अहा ! जीव पुद्गलके रंगमें क्या रंजित होगया है ! पुद्गलकों सुभिता करकें आनंदित होता है, पुद्गलकी चेष्टा करकें खुश होता है ! क्या जीवकों अज्ञान पीडता है ! मेरे तो इसके स्हामने देखनेकीभी दरकार नहीं है; क्यौं कि अनादि कालका मैभी पुद्गलका रंगी था उस्सें औरतोंका रागी था. मैभी अज्ञानवासे इन स्त्रीकी तरह चेष्टा करताथा, वो चेष्टा शायद याद न आ जाय ! और पीछी इनके जैसी प्रवृत्ति होजाय ! वास्ते मेरे तो कामिनिके साथ वोलनाही नहीं-इसके अंगोपांग देखनेभी नहीं, मै इसकों देखुं तो मेरे आत्माका आत्मतत्त्व भूलजाउं वास्ते नहीं देखना है. इसलिये ज्ञानीनेभी जैसें सूर्य सन्मुख दृष्टि पडगइ हो तो फौरन पीछी हठालेते है, वीसी तरह दृष्टि हठालेनेका कहा है, वोभी सत्य है. इस स्त्रीकी संगतिसें मैनेभी

पूर्वे समयमें बहुतसी अज्ञानता की है; वास्ते इसके कर्मकी विचित्रता मुजब करनी है उसमें मेरे क्या ? ऐसा शोचकर स्त्रीपरिसह जीतता है. ऐसें स्त्रीयादिकके रागबंधन होवै उसवास्तेही मुनीविहार करते हैं. एक जगहपर नहीं ठहरते. विहार करनेमें चलना पडै उसका थक मार्गमें लगै, पांव दूखने लगै, तो उसवक्तभी मुनी शोचै कि-अहा आत्मा ! थक तो पुद्गलकों लगता है. दूखता है वोभी पुद्गलकों दुःख होता है, तुं किस-लिये विकल्प करता है ? ऐसा शोच अपने आत्मस्वभावमेंही मग्न रहते हैं मगर अपने आत्मभावसे चित्त चलायमान नहीं करते हैं. और उस संबंधी कुछभी विकल्प नहीं करते हैं. वो प्रभुजीके वचनसें और आपके अनुभवसें अपने आत्मधर्मकी श्रद्धा की है उसके फल हैं. हरकोइ मकान निरवद्यतासें मिलता है.उस मकानमें रहते हैं. वो मकान यदि प्रतिकूल हो या बहुत सुंदर होनेसें अनुकूल हो तोभी उन संबंधी राग द्वेष नहीं धरते है. प्रतिकूल करतें अनुकूल परिसह जीतना बडा कठीन है. लेकिन आत्मज्ञानी पुरुष तो चाहे वैसा हो; मगर निज स्वरुपसें दूर नही हठते हैं उससें विकल्प आताही नहीं. बिछानेका संथारा अनुकूल या प्रतिकूल मिलजाय, उसमेंभी कुछ चिंतन नहीं करते हैं, और आत्माका उदासी भाव होगया है सो अनुकूल प्रतिकूलमें चित्त जाताही नहीं, उस सबबसें कोइभी विचार करना पडताही नहीं. चाहे युं होवै मगर आप अपनेही स्वरूपमें रहते हैं, और जड प्रकृतिकी और लक्ष देतही नहीं. समझ लेने-का धर्म है सो उसका स्वरूप जानलिया जाता है. आक्रोष परिसह उपजे सो कोइ आकर कटु वचन-मर्मवचन-द्वेषमय वचन-यद्वातद्वा बोलै या मकार चकार बोलै; तोभी बिलकुल निजस्वरूपसें चलित नहीं होते हैं. आप जिस आनंदमें वर्त्तते हैं, उसी आनंदमें वर्त्तते कोइ आकर वध करै तोभी समभाव नहीं छोडते हैं, जैसें कि मेतार्य मुनिवरकों चमडेकी रस्सी लपेटकर सिर चीर दिया और प्राण गये. गजसुकुमालजीकों सोमिल सस-रेने अग्निके अंगारेकों सिरपर मिट्टीकी पाल बांधकर भरदिये बाद सिं-चन किये तोभी बिलकुल अपने आत्मभावकों चलायमान न किया;

मगर ध्यानधारा वढाकरकें केवलज्ञान पाकर सिद्धिपद पाये. पांचसो मु-नियोंकों पापी पालकने घाणीमें घालकर पीलवा दिये तोभी वे समभावमें रहे उससें केवलज्ञान पाये. इसतरह जो कोइ मारकूट करे उसकी दया शोचते हैं कि-यह विचारा अज्ञानतासें कर्मबंधन करता है; लेकिन आ-पकों दुःख होता है उस तर्फ लक्ष नहीं देता है. इसतरह मुनीमहाराज समभावमें रहवे. मारनेवालेपर किंचित्भी द्वेषभाव नहीं ल्याते है. भगवान् श्री वीराधीवीर महावीरस्वामीजीकों संगमादेवने बहुतही कठीन और बहुत उपसर्ग किये, तोभी भगवंतजी चलित न हुवे. उसीतरह आत्मज्ञानीकों अध्यात्मज्ञान प्रकट हुवा है उसके प्रभावसें चाहेसो उपसर्ग आता है वो समभावसें सहन करता है. लेकिन स्हामनेवालेकों स्वप्नमेंभी दुःख देनेका शोचते नहीं. आहार विगर रहा जाता नहीं उस्सें शरीरकों आधार देनेके-लिये आहारपानी लेनेकों जाते हैं उसमें ऐसा चिंतन करते नहीं कि मैं गृहस्थाश्रममें चक्रवर्ती-वासुदेव-मांडलिकराजा या शाहूकार था सो मै याचना करनेकों क्यौं जाउं ? फक्त उतनाही शोचे कि यह शरीर आहा-रके आधारसें चलता है, उससें इसकों आहार न दुंगा और शरीर बीमार पडजायगा तो मेरा समभाव कायम नहीं रहेगा; वास्ते यह शरीरकों आ-हार देनाही है उसवास्ते तीर्थंकर महाराजजीने याचना करनेकी मर्यादा बतलाइ है वो करनी उसमें मै बडा राजाहुं ये विचार कुछ करनेका नहीं क्यौं कि राजा और रंकपना तो पुद्गलकों है. आत्माकों तो राजा और रंकपना कुछभी हैही नहीं-- आपके आनंदमय है. पुद्गलकों आहार पो-षनेके लिये पुद्गल फिरते हैं याचना करते है उसमें मेरे कुछ विकल्प क-रनेकी आवश्यकता नहीं है. पूर्वकर्मके योगसें जो जो क्रिया करनेकी है वो होती है. याचना करनेसेंभी शायद आहार न मिला वो अलाभ प-रिसह उत्पन्न हुवा तोभी अलाभसें राग द्वेष नहीं करते हैं और शोचते है कि-आहार संबंधी पूर्वसमय अंतराय बांधा है वो उदय आया है उससें आहार नहीं मिलता है; वास्ते उसमें कुछ विकल्प करनेका कारण नहीं. ऐसा विचारकें अपने स्वभावमें रहते हैं. फिर पूर्वकर्मके प्रभावसें

शरीरमें रोग उत्पन्न होवे तो वोभी अपनी आत्मदशामें रहकर भुक्तता है; लेकिन रोग संबंधी कुछभी चिंतन नहीं करता. जानता है कि रोगकी पीडा पैदा हुइ है उसमें मैं विकल्प करुंगा तो पीछे ऐसे कर्म बंधेंगे, तो आत्माकों कर्ममें मुक्त करनेकों प्रवर्त्तताहुं उसके वदलेमें कर्मके बंधनमें पड जाउंगा ऐसा उपयोग वनगया है, उसीसेंही अपने समभावकी धारा-वर्त्तन कियेकरती है और जो होता है वो जानलेता है; मगर उसमें लीन नहीं होता. कदापि पॉवमें घांस वगैरःका तृण-कंकर चुभता है; क्यौं कि मुनीकों जूते पहननेकों नहीं उससें पाँवमें चुभें. फिर आप सुकोमल भाग्यशाली होवें, तोभी किंचित् उसमें खेद नहीं धारण करते हैं. मात्र कर्म स्वरूप जानलिया है, उससें उन संबंधीका विचारही चित्तमें नहीं आता. कदाचित् थोडी विशुद्धिवालेकों विचार आवे तो फिर विचार करता है कि पांवकों चुभता है. आत्मा अरुपीकों कुछ नहीं चुभता है; वास्ते किस लिये मैं विकल्प करुं? यूं करकें समभावमें रहता है. शरीरमें मल वगैरः होता है; तोभी शरीरकी विभूषा वा सुश्रूषा कुछभी न करनी, उससें शरीर पर मैल होवें तोभी शरीर सो मैं नहीं. ये भाव होनेसें विकल्प नहीं होता. सत्कारपरिसह सो वडे वडे राजालोग आकर वहुत मान करते हैं. अहा महात्मा! आपके जैसें सत्पुरुष इस दुनियामें नहीं. पंचेंद्रिय वश करली है, विलकुलभी शरीरकी ममता नहीं. केवल आत्मभाव आपने सचा जाना है, कोइभी वक्त आप आत्मभाव नहीं चूकतेहो. आपके जैसे ज्ञानी इस जगत्में नहीं, आपके समान उपकारीभी कोइ नहीं. आपने जो मुझकों धर्म वतलाया है, और जो उपकार हुवा है वोभी मेरे शिरोधार्य है. आप साहवजीकी जितनी भक्ति करुं उतनी कमती है. ऐसी अनेक प्रकारकी स्तुति करैं; मगर किंचित्भी अहंकार नहीं करते हैं. मनमें शोचते हैं कि-अभितक्में पुद्गल दशामेंसें तो दूर हुवा नहीं, ये लोग तो इतनी वडाइ वतलाते हैं तो मुझकोंभी जोजो पुद्गल दशामें उपयोग जाते हैं वो पीछे हठाने चाहियें. ये ज्ञानदशाके महान् मान्य करते हैं वैसी ज्ञानदशा अवतक हुइ नहीं; वास्ते जो जो ज्ञान संवंधी खामी है वो प्रकट

करनेका उद्यम करना चाहिये. अहा ! सर्वज्ञके ज्ञान मुजब अबतक तो मेरेमें ज्ञानकी बहुत न्यूनता है. ऐसे विचारसें अहंकार नहीं आता है और आपके समभावमें कायम रहता है. ज्ञानपरिसह यानी दूसरोंसें आपमें बहुत बोध हुवा होवै उससें दिलमें आवै कि मै ज्ञानी हुं वैसा कोइ जगतमें ज्ञानवान नहीं है. ऐसे विचार करीके कर्म बांधकर आत्माकों मलीन करता है; मगर ये कौन करता है ? जिसनें अपना आत्मधर्म जाना नहीं है और बहारसें ज्ञान मिलाया है वैसे जीवकों ज्ञानीपनेका अहंकार आता है और वै जीव आगामिक भवमें अज्ञानी होवेंगे. मगर ज्ञानीजीव तो ऐसा शोचते हैं कि-मेरे आत्माका स्वभाव तो केवलज्ञानमय है, उसमेंसें तो अबतक कुछ ज्ञान प्रकट हुवाही नहीं है. फिर श्रुतज्ञानीभी पूर्वकालमें चौदह पूर्वधर हुवे हैं, उसकी अपेक्षासें मुझकों क्या ज्ञान हुवा है कि मैं अहंकार करुं ? ऐसें आपकी अपूर्णता चिंतन कर ज्ञानका अहंकार नहीं करते हैं-आप आपकी दशामेंही निमग्न रहते हैं.

अब अज्ञानपरिसह सो आप अपने आत्मभावकों गुरु मुखसें जानलिया है. पुद्‌गलभावकों जानता है उस्सें स्वपर भेदका ज्ञान हुवा है, और जैसें गुरुमहाराज करते हैं वैसें आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करकें अपनी आत्मदशामें प्रवर्त्तता है; मगर तर्कवितर्कका बोध नहीं. षट्‌शास्त्रका ज्ञान नहीं उस्सें किसीके साथ वाद करनेकी शक्ति नहीं, दूसरेकों बोध करनेकी शक्ति नहीं, उसलिये दूसरे जीव निंदा करते हैं. अहा मूढ ! अज्ञानी ! शिर मुंडवाया मगर कुछ ज्ञान तो है नहीं. ऐसे कठोर वचन कहते हैं, तब समभावी मुनी थोडा पढे हैं; लेकिन आप अपना विचार कर ऐसा शोचते हैं कि-ये जो कहते हैं सो सत्य है, मेरेमें ज्ञान नहीं और पिछले भवके आवरण हैं उससें मुझे बोध नहीं होता है तब ये कहते हैं, ये तो मेरे सद्‌गुरु हैं तो मै इसमें खेद किसलिये करुं ? फिर दूसरीतरह शास्त्र पढता है; मगर आवरणके लियेसें मुखपाठ नहीं होता है तब उसकों आत्मार्थिपना प्रकट नहि होता है. वो क्या शोचता है किं मुझकों याद नहि होता तो फिर पढनेका वक्त निकालके क्या करुं ? ऐसा शोच कर

ज्ञानाभ्यास बंध करता है उसकों ज्ञानावरणी कर्म बंधातेजाते है. मासतुस मुनि सरिखे आत्मार्थी है वे तो पढना याद नहीं होता तोभी उद्यम नहीं छोडते है और उद्यम नहीं छोडनेसे कदापि ज्ञान नही आता, तोभी समय समयसें ज्ञानावरणी कर्म क्षय होतेजाते है; वास्ते आत्मार्थी पुरुष तो ज्ञान नहीं आता तोभी ज्ञानका अभ्यास नहीं छोडते ओर हमेशां ज्ञानका उद्यम-मेंही प्रवर्त्तते हैं. ऐसे पुरुष अज्ञानका परिसह जीतते है.

सम्यक्त्वपरिसह सो यह चौदह राजलोकके अंदर छःद्रव्य रहे हैं उसमें पांच द्रव्य अरुपी और पुद्गल रुपी हैं; तोभी पुद्गल परमाणु बहुतही छोटा है. दृष्टिमें नहीं आता. ऐसे बहुतसे परमाणु इकठे हो बादरस्कंध होता है, वो देखनेमें आता है. मगर सूक्ष्मस्कंध देखनेमें नहीं आते. अरुपी पदार्थभी देखनेमें नहीं आते. वो पदार्थोंका वर्णन सर्वज्ञ कर गये हैं वे सर्वज्ञ तो रूपी अरूपी सर्व पदार्थ जानते हैं. उनकों जानना कुछ मुश्केल नहीं. सहजसें जानलेकरकें वो प्रकाशित किये हैं. अब ऐसे षट् द्रव्यके भावोंका वर्णन शास्त्रमें है, वो देखकर अज्ञानपनेसें अनेक प्रकारकी शंका होती हैं और सर्वज्ञके वचनोंपरसें आस्था उठ जाती है; लेकिन जिनकों सम्यक्त्वज्ञान हुवा है उन पुरुषनें अनुमानसें कितनीक वस्तुओंका निर्णय किया है उस्सें वो जानता है कि यह सर्वज्ञ निष्पाक्षपाती है जिनकी बहुतसी बातें सत्य मालूम होती हैं, और कोइ कोइ सूक्ष्म बातें नहीं समझी जाती तोभी प्रभुवचनोंके ऊपर श्रद्धा रखनी योग्य है. श्री महावीरस्वामीजीने आत्मधर्म प्रकट करनेका जो मार्ग बतलाया है उससें अधिक किसी धर्मवालेकों नहीं देखते हैं, तो मैं किसवास्ते अश्रद्धा करुं? कितनीक बातें तो प्रत्यक्ष सिद्ध होती है. तो जैसे भरे हुवे वर्त्तनमेंसें चावल पकानेकों आगपर रख्खे हांवे उनमेंसें एक दाना पका हुवा देखकर सब चावल पक गये मानते है, वैसें ये पुरुषके बहुतसे वचन न्यायसें सिद्ध होते है और दूसरे कुछ नहींभी समझमें आते हैं, उसका सबब मेरा अज्ञान है. कारण कि अज्ञानके जोरसें यथार्थ न्याय

जोडा नहीं जावै उसमें कुछ सर्वज्ञकी भूल नहीं. ऐसा विचार करकें सूक्ष्म वातेंकी श्रद्धा करै. वो पुरुष सम्यक्त्वपरिसह जीता युं कहा जाता है. और कितनेक अज्ञानी जीव दूसरे जीवोंकी वाक्यकी वावत संबंधी तकरारे सुनकर उसमें घभडा जाते है-मोहवंत होते हैं. जैसें कि अभी इंग्रेजलोग पृथिवी फिरती है और सूर्य स्थिर है ऐसा कहते हैं और उसपर अनेक दुर्बीनोंसें देखकर मनुष्यकों समझाते हैं, वो समझमें लेकर मनुष्य कहते है कि शास्त्रमें तो सूर्य फिरता कहा है, वो वात मिलती नहीं आती; वास्ते जैनशास्त्रपर क्या श्रद्धा करे? ऐसी दशा होती है. मगर उसके अंदर विचारनेका है कि, जैसें लख्खो रुपै इंग्रेजलोग ऐसे काममें खर्चते हैं और वैसी मिहनत करते हैं, मिहनत करनेवालोंकोंभी हजारां रुपैका पगार वा इनयाम मिलते हैं, वैसी तरह वर्त्तमान समयमें जैनमें कोइ राजा नहीं. और वैसे पैसे खर्च करना वो राजाओंका काम है. और पैसे खर्चे विगर पृथिवीपर फिर सकै नहीं और उसका निर्णय हो सकै नहीं. और जहांतक निर्णय हो सकै नहीं वहांतक प्रभुके वचन पर प्रतीत रखनी चाहियें. अपनी शक्तिकी कमूरके वदलेमें शास्त्रपरसें आस्ता उतारनी योग्य नहीं. पुनः इंग्रेजलोक कहते हैं वो वात न्यायसेंभी जुडती नहीं; तोभी उन्हके वचनोंकी मनुष्य श्रद्धा करते हैं उस करतें प्रभुजीके वचनोंकी श्रद्धा करै वो श्रेष्ठ है.

इंग्रेज कहते हैं कि यहांसें सूर्य तीन करोड माइल दूर है और इस पृथिवीका व्यास-घेरावा २४ हजार माइलका है. उसकरतें सूर्य चौदहलाख गुना वडा है-इसतरह मानते हैं. अव शोचो कि-पृथिवीसें सूर्य चौदह लाख गुना वडा है तो पृथिवीमें रात पडनीही न चाहियें; क्यौं कि वाजुपरसें सव जगेपर प्रकाश आना-पडना चाहियें. जैस एक इंचकी सुपारी एक वाजुपर होवै, और एक वाजुपर चौदह लाख इंचका उजाला होवै तो सुपारीकी किसी वाजुपर उजाला न होसकै ऐसा होसकताही नहीं, तैसेही पृथिवीका गोला मानते हैं, वो गोलेपर सव जगे प्रकाश होना चाहियें-रात पडनीही न चाहियें. इस विषयमें कितनेक युंभी कहते हैं कि

तीन करोड माइल दूर है उससें गोलेकी एक बाजुपर उजाला न आसके-हम कहे तहै कि वो कथन अकलसें विरुद्ध है. वो २४ हजार माइल तो गोलचक्र भरनेसें हैं; मगर एक जाडाइकों लंबाइ गिनलेवै तो आठ हजार माइल होवै. अब जो तीन करोड माइलतक प्रकाश आ सकता है उसकों आठ हजार माइल आनेमें कुछ हरकत होय ये वार्त्ता संभवित नहीं. कदाचित वो लोग कहे कि पृथिवी श्याम है जिस्सें उसका परछाया या परदा पडता है. ये वार्त्ताभी असंभवित है. गोल वस्तुकी चारों और प्रकाश व्याप्त होवै उसमें कुछ हरकत होसकै ये बातभी अकलसें दूर है. युं होनेपरभी कितनेक लोग इंग्रेजोंकी कलाकौशल्यता देखकर श्रद्धा करकें धर्मश्रद्धा उठा डालते हैं वो अज्ञानता है ऐसा समझना चाहियें. सांसारिक कलाओं करनेका जीवकों अनादि कालका अभ्यास है वो कलाऐं आवैं उसमें कुछ नवाइ-ताजुबीकी बात नहीं, मगर धर्मकी कला आनी वो बहुत दुष्कर है. हजारों मनुष्यमेंसें धर्मप्रवर्त्तक बहुत कम होते हैं-धर्मज्ञपना बहुत मुस्कील है. इंग्रेज लोग दूर देश रहे और सर्वज्ञ इस देशमें हुवे, उस्से इस देशके लोगोंकों तो कुछ कुछ वासनाभी सर्वज्ञकी आइहुइथी; लेकिन दूर देशवालोंकों कुछभी वासना आइ नहीं उस सबबसें धर्मकी बाबतमें वो लोग कुछभी नहीं समझते हैं. व्यवहारिक कलाऐं तो अपने हाथसेंभी शीख लेनेसें आ सक्ती हैं; मगर अरुपी पदार्थका ज्ञान सर्वज्ञके वचनसेंही हो सकता है. वास्ते सर्वज्ञके वचनपर जिनकी श्रद्धा कायम रहती है उनने सम्यक्त्व परिसह जीतालिया है युं कहेना योग्य है. यहांपर कोइ शंका उठावेगा कि-भगवंतजीने फरमाया वही कबूल करना और कुछ विचारही नहीं करना. उसके बारेमें ऐसा समझना कि सर्वज्ञकी पहिचान अव्वलसेंही करनी, उसमें सब प्रकारसें शुद्धता देखनी, वो देखलिये बादभी किसी ठौर विरोधपना न मालूम होवै तब उन्होंके ऊपर आस्ता रखनी वही योग्य है. मनुष्य सूर्य पृथिवीकी बात प्रत्यक्ष गिनते हैं; मगर वो प्रत्यक्ष नहीं है; क्यौं कि ये लोगने तीन करोड माइल सूर्य दूर है उसका मुकरर करना अनुमानसें किया हैं-सूर्यका और पृथिवीका मानभी अनुमानसें करते

हैं; वास्ते अनुमानमें बहुत फरक रह जाता है जैसें कि पहाड हैं सो ऊंचे हैं; मगर ' रें देखें तो नीचे मालूम होते हैं. एक मनुष्य नीचे खडा है और उसकों सात मजलेकी हवेलीमेंसें देखेंगे तो वो मनुष्य छोटासा दिखाइ देगा. फिर कुछ चित्र चित्रे है वो दोनु आंखें खोलकर देखेंगे तो चित्रही मालूम देगा. सब अंग नहीं मालूम होगा. वही चित्र यदि एक आंख मुंदकरकें निगाहपूर्वक एक आंखसें देखेंगे तो चित्रमें चित्रा हुवा मनुष्य साक्षात जैसा मालूम होवैगा. सब रीतिसें देखे तो चित्र है वो कुछ वस्तुतायें मनुष्य नहीं तथापि मनुष्य मालूम होता है-असेंही दुर्बीन-सेंभी विचित्र प्रकार मालूम होवे उसमें भ्रम रह जाय, वास्ते जहां जहां जो वस्तु हैं वो वस्तु उस ठिकानेपर जाकर नहीं देखी वहां तक वो बात मान लैनी वो; वाजब नहीं. किसीके कथनसें सर्वज्ञके वचनकी आस्ता छोड देनी नहीं. सब जगह फिरकर निर्णय करना चाहियें, वो बन सकता नहीं तब इंग्रेजोंका कथन अनुमानवाला माननेसें तो सर्वज्ञकथित मानना वही अच्छा है. अैसे विचार करकें आत्मार्थीकों तो कुछभी व्यामोह होता नहीं. दूसरी तरह तो आत्माकों तो संसारसें मुक्त होना है वो मुक्त होनेके उपाय जो सर्वज्ञने बतलाया है उसका अभ्यास करनेसें सर्वज्ञता प्रकट होवै, तब सब कुछ मालूम हो सकै. अभी उस तकरारमें मैं मेरी शक्ति बिगर कहां पडुं ? वो तकरारमें पडुं तो उसमें सब तपास करनेसें मेरी उम्मरभी खलास हो जाय, तो फिर मेरे आत्मसाधन करना उसका वक्तभी हाथ न रहै. वास्ते अभी तो आत्मसाधन करकें जडभावमें जो मेरी प्रवृत्ति है उनसें मुक्त हो जाउं, और समभावमें रहनेका उद्यम करुं. ऐसा विचार करकें दस प्रकारका यतिधर्म है वो पालन करै-उसमें प्रथम क्षमा यानी क्रोधपर जीत मिलानी. कोइ जन अनेक प्रकारका तिरस्कार करै-कठोर-मर्मवचन कहदै-कोइ चीज ले जावै-नुकशान करै; मगर क्षमागुण आया है उस्सें उनकेपर द्वेष नहीं होता; क्यौं कि सब वस्तु बहार बनती है-तिरस्कार मेरे नामकों करता है या शरीरकों करता है, तो शरीर सो मैं नहीं. अैसा ज्ञान ·ालयी है. कुछ चीज ले जाता है वो

ऐसा जानना और जो जो बनता है वो वो कर्मके योगसें बनता है वो देखना है. उसमें कुछ रागद्वेष करनेका कारण नहीं? ये दशा हो जानेसें क्षमागुण आता है उस्सें गुस्सा होताही नहा. वैसेंही मानका जय करता हैं. मान कौनसी बाबतका करना? यह शरीर, धन, स्त्री, पुत्रादि पदार्थ कुछ मेरे नहीं ऐसा निर्धार किया है उस्सें किस बातका मान हांवे? फिर आप ज्ञानवान है उस विषे आपके मनमें है कि मेरे आत्माकी शक्ति तो केवलज्ञानकी है वो अभीतक प्रकट न हुइ और आच्छादित हो गइ है वो मेरी वस्तु होनेपरभी प्रकट न हुइ तो मेरी लघुताका स्थान है, तो अब मैं किस बातका मान करुं? ऐसी दशा बनी है उस्सें मार्दव गुण आया है उसीमें मानदशा सहज छूट जाती है. मान-छोडनेका विचारभी अपूर्णकों करनेका है. पूर्ण पुरुषकों तो विचार करना पडताही नहीं; क्यों कि मान आवे तो छोडनेका विचार करे; लेकिन ऐसी दशामें मान आताही नहीं. अब आर्जव सो मायाका त्याग वो कपट रचनापना सहजही छूटगया है. मुनीने आत्मपना जानलिया है. उसमें सब जड पदार्थ पर जानलिये हैं उसमें कितनीक प्रवृत्ति करते हैं, सो मात्र निज स्वरूप आच्छादित हुवा है उस्कों प्रकट करनेके लियेही करते हैं तो अब कपट किस वास्ते करना चाहियें? चेलेकी इच्छा नहीं, श्रावककी इच्छा नहीं, धनकी इच्छा नहीं, ये मेरे और ये मेरे नहीं ऐसाभी करनेका नहीं. फक्त पूर्ण ज्ञान उत्पन्न नहि हुवा वहांतक पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होनेका उद्यम करता है. उसमें निर्वाह करना चाहियें वो वस्तु मिलजाय तो ठीक और न मिलजाय तोभी ठीक. ये दशाके वर्त्तनेवालेकों कपट करनेकी क्या जरुरत पडे कि करे? वास्ते निष्कपट आर्जवगुण प्रकट होनेसें सहजसें वर्त्तते हैं. निर्लोभता गुण सो अपने शरीरकों मेरा नहीं जाना है तो लोभ किस बातका रहे? शरीर मेरा नहीं और शरीरसंरक्षणके पदार्थ मेरे नहीं, ये सब जड पदार्थोंके ऊपरसें राग उतरगया है इससें लोभ किस बाबतका करे? वास्ते निर्लोभता उत्पन्न हुइ है. कोइ वस्तु शरीरके निर्वाह वास्ते चाहियें वो मिलगइ तो लेवे और न मिलगइ तो उस

बाबतका विकल्प नहि करते, ऐसा विचारते हैं कि पुद्गलकों वस्तु चहीती है और पुद्गलकों मिलती नहीं-ऐसा विचारके पुद्गलिक वस्तुका लोभ नहि करते हैं. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि-ज्ञान पढनेका लोभ होवै कि नहीं ? उसके जवाबमें ज्ञान पढने-वांचनेका लोभभी निश्चय दाचमें आता है, और जब ध्यानी पुरुष होते है और आठवे गुणस्थानकमें क्षपकश्रेणी मांडते हैं तब ज्ञानका लोभभी नहीं रहता है. मेरे आत्मामें अनंत शक्ति है उसमें मेरे क्या प्राप्त करना है ? जिसके पास वस्तु न हो वो वस्तु प्राप्त करनेका लोभ करै; मगर मौजूद होवै वो किस वातका लोभ करै ? और इन पुरुषनें अपना सच्चा धर्म जानलिया है और उसमें सहज सुखका अनुभव हुवा है, अपूर्व ज्ञानभी प्रकट हुवा है इससें ज्ञान प्राप्त होनेकी इच्छाभी वहां रुकजाती है; मगर वो दशा केवलज्ञानप्राप्तिकी अंतर्मुहूर्त-काल वाकी रहता है तब प्राप्त होती है-उसके अव्वल नहीं, बनसकती हैं, तोभी वो लोभ करते हैं वो निर्लोभता प्राप्त करनेके वास्तेही है. वास्ते नी-चेकी हदमें त्यागने योग्य नहीं; मगर ज्ञानके लोभसें नीति छोडकर न चलै. न्यायसें चलै. एक ज्ञान मिलानेकी इच्छा वर्त्तती है-उस रुप लोभ है; लेकिन वो इच्छाकेलिये संसारी जीव अन्यायकी प्रवर्त्ती करते हैं वैसे नहीं करते हैं; मात्र सब काम छोडकर मुख्यतासें ज्ञानका उद्यम कर रहे हैं. वाकी सब पुद्गलिक चीजोंपरसें लोभ हठगया है. फिर तप सो वारह प्रकारका करते है वो सहज भावहीसें होता है. आत्माका अणाहारी गुण समझलिया है. आहार करना सो मेरा धर्म नहीं ऐसा समझनेसें आहार-परसें इच्छा हठगइ है, उससें तप करते हैं. संयम सो स्वगुणमें रहना और पुद्गल प्रवृत्ति रोक देनी. वो संयम गुण प्रकट हुवा है उसीसें इंद्रियोंके विषयकी इच्छा नहीं वर्त्तती है. अव्रतकी प्रवृत्ति नहीं करते हैं. कषाय रहित वर्त्तते है. मन-वचन-कायासें बुरी प्रवृत्ति रुकगइ है उसकोंभी आत्मा निर्मल होवै वैसी प्रवृत्तिमें वर्त्ताते हैं-इसरुप सतरहा प्रकारसें संयम धारण करते हैं. बाह्य संयम सतरहा प्रकारसें पालनेके सबबसें अंतरंग निज स्वभावमें स्थिर होता है. ये रूप संयमगुण वर्त्तता है. सत्य सो

सच्चा बोलना. जिसको आत्मज्ञान नहि है वो शरीरको मेरा कहता है. आत्मज्ञानी मुनी वैसा नहीं कहते हैं. व्यवहारसें तो जैसा बोलाजाय वैसा बोले; मगर वस्तुधर्मसे पिराया जानलिया है उससें बोलते हैं. लेकिन अंतरंग उपयोग मेरा नहीं ऐसा चलरहा है. जो पुरुष पुद्गलकोंही मेरा नहीं मानते है वो पुरुष दूसरी बाबतमें असत्य बोलेही क्या ? प्ररुपणाभी सहजसें यथार्थही होवै-ये सत्यगुण प्रकट हुवेका फल है. अब शौचगुण सो निरतिचार वर्त्तते हैं. अतिचारादिक दूषण लगै नहीं इस्सें पवित्रपना वर्त्तता है-यानी निज आत्मतत्त्वमें वृत्ति रही है.-ये रुप पवित्रता होरही है, उस्सें पुद्गल प्रवृत्तिके दूषण नहीं लगते हैं इससें सहजसें निरतिचार वर्त्तते हैं, कुछभी पुद्गलीक कायमें राग द्वेष नहीं करते है. जो होवै उसमें कर्मोदय समझकर वर्त्तते हैं. अकिंचन गुण सो बाह्यपरिग्रह त्याग-धन धान्यादि नौ प्रकारसें और आभ्यंतर परिग्रह-शरीरादिकपर मेरे पनेका ममत्वभाव वो सब प्रकारसें त्याग किया है उससें बाह्यपरिग्रहपरसें सहजही मूर्छा उतरगइ है-वस्त्र वगैरः रखते हैं वो निर्मूर्छापनेसें जगतका व्यवहार समालनेके लिये रखते हैं, मगर वो अच्छे बुरे-जैसे मिले वैसें पहनते हैं-किंतु विकल्प नही करते हैं ये मूर्छा गइ उसके फल है. ये रुप मुनी अकिंचन गुण प्रकट करते हैं. ब्रह्मचर्य सो बाह्यसें सब तरहसें स्त्री-का त्याग किया हैं. अंतरंगसें पंचेंद्रियके विषयकी तृष्णा नाश होगइ है-स्वात्मज्ञानमेंही आनंदपनेसें वर्त्तते हैं. ज्ञानाचारमेंही उपयोग लगरहा है. स्वप्नमेंभी कामकी वांछना नहीं, अंतरंगके सुख अगाडी तुच्छ स्त्रीओंके विषय सुख दुःखरुप जानलिये हैं उनको कामकी इच्छा क्यौं होवै ? उस सबबसें सहजसें ब्रह्मचर्य गुण प्रकट हुवा है. इसतरह दस प्रकारका यतिधर्म प्रकट हुवा है. और आत्मार्थी इसतरहके उद्यम करके पुद्गलभावसें मुक्त होता है. प्रथम थोडीसी शुद्धता होती है तब मार्गानुसारी होता है, उससें विशेष विशुद्धियुक्त सम्यक्त्व दृष्टि होती है. और विशेष विशुद्धिसें श्रावकपना प्रकटता है, उससेंभी विशुद्धि होवै तब मुनिपना प्रकटता है. उनमेंभी ज्यौं ज्यौं विशुद्धि बढती जावै त्यौं त्यौं गुणस्थान चढ-

ते जावे, और केवलज्ञान प्रकट करता है. ऐसें अनुक्रमसें शुद्ध होता है.

१४५ प्रश्नः—निर्जरा तत्त्वके भेद अरुपी गिने हैं, और कर्म है वो तो रुपी हैं, उसकी निर्जरा होवे वो अरुपी क्यों होवे ?

उत्तरः—कर्म हैं वो दो प्रकारके हैं. एक द्रव्य कर्म सो आठ कर्म रुपी हैं. और दूसरे भावकर्म सो अरुपी हैं. अब भावकर्म सो क्या पदार्थ है ? द्रव्यकर्मके योगसें आत्माकी अशुद्ध परिणती रागद्वेषमय होती है, वही भाव कर्म कहेजाते हैं. उन भावकर्मोकी निर्जरा होती है. उनकोंही निर्जरातत्त्वमें गिनी है. वो निर्जरा सम्यक्दृष्टि आदि पुरुष करते हैं. सम्यक् ज्ञान विगर सकाम निर्जरा नही होती. चौथे गुणस्थानसें लगाकर चौदहवे गुणस्थानतक होती है वो निर्जरातत्त्वमें है. उस सिवाके जीव अज्ञानपनेसें द्रव्यकर्मकी निर्जरा करे; मगर भावकर्मकी निर्जरा नहीं करसकते हैं; वास्ते द्रव्यकर्मकी निर्जरारुपी और भावकर्मकी अरुपी कहते हैं.

१४६ प्रश्नः—जीव अरुपी है और नवतत्वमें जीवके भेदरुपीमें गिने है उसका हेतु क्या है ?

उत्तरः—जीव तो अरुपी है; मगर शरीर बहार मालूम होता है वो शरीर, इंद्रिये पुन्य योगसें मिली हैं. उन शरीर इंद्रियोंसें जीव पहिचाना जाता है कि यह एकेंद्रि, यह पेचेंद्रि है; वास्ते कर्मके संयोगसें जैसी जैसी कर्मकी मलीनता वैसे वैसे शरीरादिकके अलग अलग भेद पडे हैं, उससें शरीर, इंद्रि अपेक्षितरुपी भेद गिने हैं.

१४७ प्रश्नः—संवरके सत्तावन भेद अरुपी कहे हैं, और संवरकी प्रवृत्ति बहारसें मालूम होती है वो तो शरीरसें है तो अरुपी कैसे कहे ?

उत्तरः—वाह्यसें पुद्गलपरसें मोह उतरजाय, तब बराबर वाह्यवर्त्तना होवे और ज्यौं ज्यौं संवरकी वाह्यवर्त्तना होवे त्यौं त्यौं पुद्गल दशामेंसें प्रवृत्ति रुकतीजाती है और निज आत्मस्वरुपमें लीनता होती है. ज्यौं ज्यौं निज ज्ञानमें लीन होवे कि आते हुवे कर्म रुकजाते हैं. आत्मस्वरुपमें रहनेसें

द्रव्यकर्म, भावकर्म दोनुं रुकजाते हैं, जो भावकर्म रुकगये वो अरूपी हैं वास्ते संवरभी अरुपी है उस्सें संवरके भेद अरुपीमें गिने हैं.

प्रश्नः—संवर निर्जरा मिथ्यात्वी करै या नहीं?

उत्तरः—मार्गानुसारी मिथ्यात्व गुणस्थानमें अंशसें संवर, अंशसें निर्जरा करै ऐसा हेमाचार्यजीने योगशास्त्रमें कहा है; वैसेंही विचारबिंदुमें यशविजयजी उपाध्यायजीनेभी कहा है.

प्रश्नः—जिनमंदिरमें प्रभुजीके अंगलूहने मैले वा फटेलेका उपयोग किया जाय तो उसका दोष कार्यभारीकों लगै या सब श्रावकोंकों लगै?

उत्तरः—प्रभुजीकों तो सर्व उत्तमोत्तम चीज चडानी चाहियें. अपना शरीर पुंछनेकों किसीने फटेला मैला टुवाल दिया होवै तो वो अनुकूल नहीं आता है और देनेवालेपर द्वेष आता है. फिर अपने घरपर कोइ विदेशी महेमान आये होवै उनकों फटेला वा मैला टुवाल नहीं देते हैं, तो प्रभुजीके अंगलूहने फटेले या मैले वापरे तो अपनेकों अपने महेमान करते प्रभुजी अधिक हैं ऐसा दिलमें न आया, और जब प्रभुजीकी आधिक्यता मनमें न जमी तब आत्माकों लाभभी किसतरह होगा? और मुंहसें प्रभुजी बडे हैं युं कहते हैं, पर चित्तमें मोटाइ न आइ, तब लाभ तो न होगा, मगर अवश्य मिथ्यात्व लगेगा. फिर दूसरी रीतिसें शोचें तो-प्रभुजीका महत्वपना मनमें न आया तो मिथ्यात्व गयाही न समझना. जब मिथ्यात्व गया नहीं तब दूषणका तो कहेनाही क्या? लेकिन ऐसा विचारकर थककर बैठ रहना नहीं, किंतु प्रभुमंदिरमें गये, और वैसे फटेले मैले अंगलूहने नजर आये तो तुरंत धोनेकी तजवीज करनी; अगर नये ला देनेकी योजना करनी. यदि साधारन पुन्यवाला हो तो उन अंगलूहनोंकों आप धो डाले और पुन्यवंत होवै तो अपने मनुष्योंके द्वारा धुलवावै. मंदिरके कार्यभारीकों मालूम पडै तो वो तुरंत धुलवाके साफ करावै या नये ला देवै. किसी औरकी नजर पडै तोभी उसका वैसाही बंदोबस्त करै. लेकिन ऐसा न करै कि-कार्यभारी समझे कि दूसरे भाइ उसकी तजवीज करेंगे. दूसरे भाइ समझे कि कार्यभारी तजवीज करेगा. ऐसा होनेसें काम

नहीं होता और आशातना जारी रहती है. वास्ते जीसकी वैसे अंगलूहने पर नजर पडे कि वो फौरन उनके लिये योग्य बंदोवस्त कर लेवै. कुछ बडे खर्चेका काम नहीं. अब कोइ कहेगा कि-जिनके नजर आया नहीं, या जो नजर करकें किसी रोज देखताही नहीं उसको दोष नहीं. जो ऐसा कहै वो निध्वंस परिणामके लक्षण हैं. जिसकों देखना नहीं उसकोंभी प्रभुजीपर प्रीति होती तो क्यों न देखता? वा पूजाकी प्रवृत्ति क्यों न करता? मगर प्रमादी है वास्ते उसकों देखनेमें न आया. उसकों कुछ कम दूषण है ऐसा न समझना. जितना प्रमाद ज्यादा है उतना दूषणभी ज्यादा है. वास्ते जो संसारसें तिरनेकी इच्छा करते हैं उन सबकों तो ये काम करना योग्यही है. अंगलूहने बराबर धुले हुवे नहीं होते है तो कडक हो जाते है, तो उन अंगुलहनोंसे प्रभुजीकों घसारा लगै उनका दूषण लगै; वास्ते मुलायमदार-सुकोमल-अच्छी तरहसें धुले हुवे अंग-लूहनेका उपयोग करना, उससें सुंदर भक्ति होगी. पुन्यवंतोंकों ऐसा विवेक अवश्य रखना, और कभी पुन्यवंत वेदरकार रहेवै तो पंच मिलकर सामान्य पुन्यवाले करलेवैं. हरएक प्रकारसें अच्छे, उमदा द्रव्य चढाया जाय वैसाही करना. ऐसा न करै तो तमाम श्रावकोंकों अशुद्ध वापरनेकी आशातना लगै.

१५० प्रश्नः—मंदिरमें बरतन साफ किये विगर उपयोगमें लेवै तो क्या होवै?

उत्तरः—मंदिरमें संसारी काममें वपरास किये विगरके बरतन साफ करकें उपयोगमें लेना. अच्छे द्रव्य होवै तो मन प्रसन्न रहेवै, और लाभभी होवै; और वैसा न होवै तो दूषण लगै ये अधिकार श्राद्धविधिमें है.

१५१ प्रश्नः—मंदिरमें मकडी वगैरःके जाले होवैं उसकों न निकालडाले तो आशातना लगै? और उनकों रखकर पूजा करै तो क्या होवै?

उत्तरः—मंदिरमें जाकर प्रथम आशातना टालनी चाहियें. पहेली निसीही कहे बाद वोही काम करनेका है; वास्ते मकडीके जाले वगैरः जो जो आशातना हो सो पहेली दूर करकें और क्रिया करनी. मंदिरकी आशातना दूर करनेमें ऐसा सोचै कि 'ये काम तो नौकरका है' तो ये बुरे परिणा-

यका कारण है. आपके वहां नौकर होवै तो नौकरकी मारफत काम करा लेवै, और नोकर न होवे तो आप खुदही आशातना दूर करै. अपने घरमें कुछ अनिष्ट वस्तु पडीहो तो वो तुरंत निकालडालते हैं उसीतरह मंदिरमेंभी न करैं तो प्रभुजीपर प्रेम घर जैसा न रहा, वही बडा दूषण है; वास्ते पहेली आशातनाऐं दूर करकें पीछे पूजा करनी. आशातना दूर किये विगर पूजन करनेका काम नहीं किये जैसा हो पडता है.

१५२ प्रश्नः—प्रभुजीकों जहांपर केसरके तिलक कियेजाते हैं वहांपर सुन्ने चांदीके पतरे लगायेजाते हैं वो वाजव है या नहीं ?

उत्तरः—प्रभुजीकों सुन्ना चांदीके पतरे लगायेजाते हैं वो रीत अच्छी है; क्यों कि भाविक श्रावकवर्ग बहुतला केसर चडाते हैं उस्सें जां जहां पतरे नहीं लगायेहुवे होते हैं वहांपर जिनबिंबमें खड्डे पडजाते हैं, और जो चकते-पतरे लगायेहुवे होते हैं तो केसर नहीं लागु होसकता है, उससें बिंब दुरस्त रहता है, वो बडा लाभ होता है, और पतरे न लगाये होवै तो बिंब बिगडजानेसें आशातना लगती है, वो बडा दूषण है. फिर थोडी समझवालोंकों पूजा किस किस अंगपर करनी वोभी खबर नहीं होती है उसकों वो पतरोंके निशानसें नव अंगकी पूजाभी सहजसें समझमें आती है ये फायदा है. मुख्यतासें तो अंगमें खड्डा पडे नहीं ये लाभ शोचकर पतरे लगानेका योग्य लक्ष रखना और तमाम जिनबिंबकों वैसे पतरे लगादेना. खड्डे पडे पीछे लगाये करते पेस्तरसेंही लगाना कि जिस्सें आशातना होवेही नहीं.

१५३ प्रश्नः—पुष्पकी जगे केसरवाले चावल चडावै तो कैसा ?

उत्तरः—स्नात्र भनाते वक्त दूसरे फूल यदि न मिलसके तो वैसे चावल चडानेमें कुछ हरकत नहीं; क्यों कि आपकी पुष्प चडानेकी भावना है; मगर पुष्प मिलते नहीं तो अपनी भावना पूर्ण करनेके बदलेमें केसरवाले चावल चडानेसें कोइ हर्ज नहीं.

१५४ प्रश्नः—जिस जीवने मरणके समय शरीर वोसिराया नहीं. वो शरीरसें शुभाशुभ जो क्रिया होवै उसका शुभाशुभ दोनु फल होवै या नहीं ?

उत्तरः—जो शरीर वोशिराये विगर मरता है और उनके शरीरसें जो जो दुष्ट क्रियाओं होती है उसके कर्म उन शरीरके मालिककों आते हैं. ऐसा भगवतीजीमें पांच क्रियाके अधिकारमें कहा है. वास्ते हरएक प्रकारसें आयुष्यका ज्ञान मिलाकरकें मरन समय संथारा कर सब वस्तु वोशिरानी और वोशिरा करकें मरजानेसें आराधक होवै उससें तीसरे भवमें मुनी और सप्त भवमें श्रावक मोक्षमें जाता है. फिर वो शरीरसें शुभ कर्म होवै उस संबंधीभी वासुपूज्य स्वामीजीके चरित्रमें जो जो एकेंद्रियपनेसें शरीर भगवंतजीकी भक्तिके काममें आये है, उनकी अनुमोदना की है वो देखनेसें अनुमोदना करनेसें शुभ कर्मकाभी लाभ होता हैं.

१५५ प्रश्नः—जो जो वस्तु वोशिरानेमें आती है वो इस भवके अंत तक वोशिरानेमें आती ह तो आते भवमें उसका पाप आवै या नहीं ?

उत्तरः—इस भवमें जो जो वोशिराते हैं तो उनके ऊपरसें रागदशा छूट जाती है और रागदशा छूटनेसें उन वस्तुपर मेरेपनेकी संज्ञा नहीं रहती है, उससें उन वस्तुकी क्रिया उनकों नहीं जाती है. और जिसनें युं वोशिराया नहीं उसकों रागद्वेषकी संज्ञा कायम रहती है, और वो संज्ञा कायम रहनेसें रागद्वेषके कर्म बंधे जावै. और जिसने वोशिराया है उसकों दूसरे भवमें अव्रत प्राप्त होता है. अव्रतकी क्रिया अव्रत होवै वहांतक आवै; मगर संज्ञा संबंधी नहीं आवै. संज्ञा उदासीन भावसें वोशिरानेसें उठ जाती है; वास्ते वोशिरानेवालेकों पाप नहीं आता है.

१५६ प्रश्नः—विवेक सो क्या ?

उत्तरः—देवकों, अदेवकों, मुक्तिकों, संसारकों, जडकों, और चेतनकों जानै. और आत्माका तथा जडका क्या स्वभाव है ? आत्माकों ग्रहण करने और अग्रहण करने योग्य क्या है ? इस तरह जो जो द्रव्य है, उसके धर्म जानकर आपके आत्मासें जो जो परवस्तु जानै उसकों ग्रहण न करै. उसमें मग्न न होवै, जडवस्तुका कर्त्तापना न करै, आत्माके धर्ममेंही आनंदित रहै. जडधर्ममें किंचित्‌भी राग करै सो जडकी संगती नहीं छूट गइ है, और किसी तरहसें परकों ग्रहण न करे एसी विशुद्धि नहीं बनी उससें

जो जो क्रिया करता है वो जडकी वृत्ति हठानेके लियेभी जडकी क्रियामें मग्न नहीं होता है. आहार विगर चित्त शांत नहीं होता उस लिये आहार करता है; मगर उसमें प्रसन्नता नहीं. और वने वहांतक तपस्या करता है. आत्माका अणइच्छा धर्म चिंतवता है. जो जो पुरुष आत्मधर्म वतला गये है, उसके आधारसें वर्त्तमानमें जो आत्मधर्म वताते हैं उसका उपगार चिंतन करता है. आपकी आत्मदशा प्रकट नहीं होती उससें लघुता चिंतवते हैं ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी सदा संगति करता है. जो जो आत्मधर्म निर्मल होता जाता है, उसीमेंही मात्र खुशवक्ती है. उद्यम निमित्तभी जो जो सेवन करनेसें आत्मधर्म प्रकट होवे वैसाही सेवन कर रहे हैं. विषयादिकके निमित्त आत्माकों घातकर्त्ता जान लिया है. उससें उन निमित्तोंसें हमेश दूर रहता हैं, और जितना दूर नहीं रहा जाता वो दूर होनेकी मनोवृत्ति रहती है. जो जो काम करता है, उसमें जड्कामकों जडपनेसें और आत्माके कामकों आत्मपनेसें जानता है.

१५७ प्रश्नः—शांतपना सो क्या ?

उत्तरः—कोइ शांत-पुरुषकों उपद्रव करै-मारै-कूटै-अयोग्य वचन वोलै, जो भूल होवै सो कहदेवै, कोइभी अयोग्य काम किया होवै तो कहकर निंदा करै या विगर कारणसें निंदै; तोभी उनके ऊपर द्वेषभाव न होवै. उसकों मारनेका या कटुवचन कहनेका भाव न उठै और उसका बुरा करनेका भावभी न होवै; क्यों कि शांतपुरुषने कर्मका स्वरूप जानलिया है कि इस शरीरने मार खानेका कर्म बांधाहोगा तो मारता है. गालियां खानेका कर्म बांधा है तो गालि देता है. निंदनीकपणेका कर्म बांधाहोगा तो निंदता है. 'ये जीव तो निमित्तमात्र है, इसमें इन जीवोंका क्या दोष हैं ? ऐसें आत्मामें चिंतन कररहा है, उससें कोइ वैसे जीवपर द्वेष-खेद नहीं आता है. और चिंतवता है कि खेद करुंगा तो पीछे नये कर्म वंधे जायेंगे तो फिरं आगे उदय आनेसें ऐसेही भुक्तने पडेंगे, और समभावसें भुक्त लेउंगा तो ये कर्मकी निर्जरा होवेगी. फिर स्वाभाविक धूप लगता है, ठंडी लगती है, हवा चलती है, नहीं आवै तो वो सव ऋतुका स्वभाव जान-

लेवै; मगर उसमें विकल्प न करै. आहारपानी वस्त्र वगैरः जो कुछ जरु-रतकी चीज हो, पर न मिले तो उसका बिलकुल विकल्पही नहीं. मात्र अंतराय कर्मका उदय विचार लेवै, और अपने आत्मस्वरूपमेंही आनंदित रहै. अनुकूलतामें प्रसन्नता नहीं और प्रतिकूलतामें अराति नहीं. जडभाव जानलेवै वो पुरुषकों शांतपना कहाजाता है. वास्ते उत्तम पुरुषकों ये दशा लानी योग्य है.

१५८ प्रश्नः—दांत सो क्या?

उत्तरः—पंचेंद्रिय वश की है. कोइ भी इंद्रि छुट्टी नहीं. आहारपानी फक्त शरीरकों आधार देनेकेलिये देते हैं और वोभी चाहियें वितना हरकोइ पुद्गल मिले हैं वो देते हैं. उसमें अच्छा बुरा नहीं देखते. मात्र शरीरकों व्याधि उपद्रव न होवै वैसे पुद्गल ग्रहण करते हैं. इसीतरह फरसेंद्रियकों वस्त्र मिलते हैं वो मुलायमदार या करें मिलें उन दोनुमें समभाव है. जानता है कि यह शरीर मेरा नहीं, तो मुलायमदार और करें वस्त्रकाभी मेरे विकल्प क्यौं करना? ऐसें पंचेंद्रियके विषयमें चिंतन कररहा है. कोइभी इंद्रिकों पोषन करनेका भाव नहीं. कोइभी विषय जोर करता नहीं. विषयपरें उदासीनभाव हुवा है, उससें दिलकों खींचकर नहीं रखना पडता है. आत्माकी दशा सहज प्रकट हुइ है उनके सबबसें इंद्रियोंके विषयका मन होताही नहीं—उन पुरुषकों दांत कहाजाता है.

१५९ प्रश्नः—कामका जय सो क्या?

उत्तरः—स्त्रीकों पुरुषका अभिलाष, पुरुषकों स्त्रीका अभिलाष और नपुंसककों स्त्री पुरुष दोनुका अभिलाष—इसतरह कामकी इच्छा है. अपने आत्मस्वरूपका जानपना हुवा है उससें पर स्वरूपमें नहीं वर्त्तना है; वास्ते सहजसें अभिलाषा बंध पडगइ है—होतीही नहीं. स्वप्नमेंभी स्त्री याद नहीं आती. स्त्री सामने दृष्टि पडती है उसीवक्त अपनी दृष्टि खींचलेता है; मगर नजर लगाके देखता नहीं. जैसें सूर्यके स्हामने नजर पडती है तो ताप न सहन होनेसें फौरन पीछी हठालेते हैं वैसें निष्कामी पुरुषनें स्त्रीका स्वरूप देखना दुःखकारी मानाहुवा है, उससें सहजसेंही नजर पीछी हठजाती

है. स्त्रीका संगभी नहीं करते. और कदाचित कोइ स्त्री चालत करनेकेलिये यत्न करै तोभी वो निष्फल होती है. कभी स्पर्श करलेवै तोभी पुरुषचिन्ह जाग्रत होताही नहीं; और उसकी दशा बदलातीही नहीं. जिसतरह सुदर्शन शेठकों अभयाराणीने कितनेंही उपसर्ग किये, पुरुषचिन्हकों बहुतसी विटंबना की तोभी नपुंसक जैसा कायम रहा. एसे पुरुषने काम जीतलिया है ऐसा कहाजावै; वास्ते काम जीतकर ऐसी दशा बनानीः योग्य है.

१६० प्रश्नः—मुक्तिमें क्या सुख है कि मुक्तिका प्रयास करना ?

उत्तरः—मुक्ति जैसे सुख इस दुनियामें नही, और वो विचार करोगे तो तुमकों संसारमें खात्री होगी. संसारमें रहाहुवा जीव अज्ञानतासें संसारमें सुखः मानता है. जो सुख संसारमें होता है वो तपासके देखो—सारादिन संसारी मौज शोख व्यापार करता है, उन व्यापारमेंसें फरसुद मिलती है. और जब कुछभी काम न हो तब सोनेका वक्त मिलता है. और जब सोता है तब प्रसन्न होकर कहता है कि मुझकों निवृत्ति मिली. लेकिन लडके वगैरः कुछ सोरगुल मचादेवै तो सोनेवाला कहेगा कि मै आनंदसें सोताहुं वास्ते अभी मुझकों क्युं पीडा देतेहो ? वो लडके जावै उतनेमें फिर कोइ नइ उपाधि आ खडी रहवै—कामकी चिंता याद आवै, तो निंद नाहि आती. कुछभी बात यादीमें न आवे तो निंद आती है.

अब वाचकवर्ग ! विचार करो कि जितनीवक्त कामकी निवृत्ति मिली, उतना वक्त सुखका मिला. कामके वक्त अज्ञानतासें सुख मानताथा वो सुख झूँठाही था. क्यौं कि उसवक्त सुख होता तो आनंदसे सोया उसवक्तें सुख नहीं मानता ? और आनंदित नहीं होता ! लेकिन जीव काममेंसें फरसुद पाता है तबही आरामसूचक शब्द मुंहमेंसें निकलता है. वास्ते इस संसारमेंभी संसारके कामोंसें और विकल्पोंसें रहित होता है तबही सुख होता है. वो मुक्तिमें तो कुछ कामही नहीं है. काम करनेका नहीं तोभी विकल्प चिंतन करनेकाही नहीं, उससें सारा वक्त सुखमेंही जायगा. वास्ते मुक्तिके बरोबर इस फानि दुनियामें सुख हैही.

नहीं. फिर इस जहांमें अज्ञानतासें पदार्थ देखकर, जानकर सुख होता है अच्छे मकान, आभूषण और बागबगीचे देखकर खुशी होता है; लेकिन उसके साथ कोइ अंधा होवें तो वे पदार्थ उसके देखनेमें न आनेसें नाखुश होता है; मगर अंधेकों देखनेवाला वो हकीकत सुनावे-समझावे तब उसकी समझमें आता है तो उससें वो खुश होता है. सोनेकी बिछायत मुलायमदार होवें और अंधा हाथ फिरावे तब मुलायमदार मालूम होवें उससें वो अंधा खुश होता है. अब यो चलो कि-कितनेक पदार्थ देखनेमें समझनेमें आते हैं तब उसीका सुख होता है; मगर जो देखा-समझा नहीं उसका सुख होनेका नहीं; लेकिन सिद्ध महाराज तो जगतभरमें जितने पदार्थ हैं वो सब रूपी अरूपी जानकरके देख रहे हैं. अपन तो सिद्ध महाराजजीके अनंतमें भागकाभी नहीं जानते हैं. वे अपनसें अनंते पदार्थ जान देख रहे हैं, वो अनंत सुखभी सिद्ध महाराजजीको है वो सिद्ध होता है.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि नजरसें लड्डु देखे; मगर खाये विगर क्या सुख मिले? उसके जबाबमें यही खुलासा है कि-लड्डु खानेमेंभी रसेंद्रिको विषय ग्रहण करनेकी शक्ति न हो तो स्वादका सुख नहीं मिलता है. जेसें कि कुछ रोग हुवाहोता है तब नमकीन चीजकों फीकी बतलाता है और फीकीकों नमकीन बतलाता है, ऐसी विषय लेनेकी शक्ति बिगडजाती है तब लड्डु कैसे हैं? वो विषय लेनेकी शक्ति न हो उसकों लड्डु अच्छे बुरेका सुख नहीं होता है. जिनकों लड्डुके अच्छे बुरे विषय समझनेकी शक्ति हो वही लड्डुका सुख जानसकता है. वास्ते खानेसें सुख नहीं-लड्डुका स्वाद जाननेसें सुख है. निंदमें कोइ मनुष्यके मुंहमें मिसरी डालदेवे; लेकिन उसे कुछ मिसरीका सुख नहीं मिलता. दर्दी बेहोशमें हो उसके मुंहमें अमृत रखवें तो कभी निकलजायगा; मगर समझमें आये विगर अमृतका सुख नहीं मिलता; वास्ते जो जो वस्तु जाननेमें आती है उनकाही सुख जगतमें है. मुक्तिमें तमाम वस्तु जाननेमें आती है उससें तमाम सुख है. फिर क्षुधातुर जन खानेमें सुख

मानते हैं. भोजनसें तृप्त हुवे बाद जबराइसें कुछ खिलायाजाता है तो वो तृप्तिवंतजन नाखुश होता है; लेकिन सुख नही मानता है, वैसेंही मुक्त आत्माकों भूख लगतीही नहीं उससें भोजन करनेकी इच्छा होतीही नहीं. तृप्त हुवे जन खानेकी इच्छा नहीं करते हैं हरहमेशां- तृप्तही हैं. कोइरोज भूख लगतीही नही और खानेकी इच्छा होती नही. इच्छा ये जडकी संगतिसें होती हैं, वो जडकी संगति छूटगइ है और स्वात्मदशा है वैसी प्रकट हुइ है. स्वदशामें जडकी किसी प्रकारकी इच्छा हैही नही. विकल्पभी जहांतक जडकी संगति होवै वहांतक होते हैं. सिद्धमहाराजजीकों वो जड संबंध नही, उससें किसी प्रकारका विकल्प नहीं. जगतमें संसारी जीवकों संसारमें है वहांतलक विकल्प है और सर्वथा संसार छूटजानेसें सिद्धमहाराजजी हुवे कि विकल्पका नामभी नहीं. वहां निर्विकल्पदशाका पूर्ण सुख है सो ऐसा है कि मुखसें कहाभी नहीं जाता. सारे जगतका सुख इकट्ठा करै उसकरतेंभी अनंतगुना सुख है वो सुखका वर्णन केवलज्ञानी मुखसें आयु पर्यंत न कहसके उतना है; वास्ते सिद्धके सुखका पार नहीं. मगर जीव आत्मसुखका अंश सम्यग् पावैगा तब उसकों अनुभव मिलनेसें समझसकेगा कि सिद्धजीकों कितना सुख हे वो प्रत्यक्ष मालूम होवैगा.

१६१ प्रश्नः—मनुष्य मरणके समय संथारा करै सो किसतरह करै ? और उसमें क्या चिंतन करै ? और उससें क्या लाभ होवै ?

उत्तरः—वर्त्तमान समयमें आयुषकी चोकस खबर नहीं पडती है, उस्सें जावजीवका संथारा नहीं बनसकै; क्यौं कि भत्तपच्चख्खाण पयन्नेमें कहा है कि—केवलज्ञानी—मनपर्यव ज्ञानी—अवधिज्ञानी और पूर्वधर मुनीराजके कथनसें वा निमित्त शास्त्रसें, वा देववाक्यसें आयुषकी खबर पडे और प्रतीति होवै तो जावजीवका अनशन करै. और ऐसे महापुरुषोंका इस कालमें विरह होनेसें आयुषका निर्णय नहीं हो सकै तो सागारी अनशन करै. सागारी अनशन यानी एक दिन वा दो दिन, एक पहेर वा दो पहेर यावत् दो घडी—चार घडी वा अभिग्रह रख्खे कि मुठी वालकर नौकार

गिनों वहांतक सर्व आहारका त्याग और सब संसारी काम करनेका त्याग है, कुछभी पापारंभ काम नहीं करुं–इसतरह संथारा करनेका विधि सबने कहा है. वो औसर न मिलै तो द्रव्य–क्षेत्र–काल और भाव देखकर उच्चराना उसके आलेवेकी विधि नीचे मुजब है:—

अहन्नं भंते तुम्हाणं समीवे, भवं चरिमं सागारियं पच्चख्खामी, जइमे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए. (किंवा) इमाइ वेलाए आहारमुवहिदेहं. सव्वंतिविहेण वोशिरियं. १ अरिहंत सख्खियं, सिद्ध सख्खियं, साहू सख्खियं, देव सख्खियं, अप्पसख्खियं, उवसंपज्जामि, अनथ्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिया गारेणं वोसिरामि. २ नौकारपूर्वक ३ वार उच्चरावै. विशेष सागारिक–अहवं भंते तुम्हाणं समीवे, सागारियं अणसणं, उवसंपज्जामि, दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, दव्वओणं इमं सागारियं, अणसणं. खित्तओणं, इच्छंवा, अनिच्छंवा, कालओणं, अहोरत्तंवा, बीयदिन्नंवा, तइय दिनंवा, पासखमणंवा, मासखमणंवा, भावओणं, जावगहणं न गहिज्जामि, जावछलेणं, नछलिज्जामि, जावसन्निवाएणं, अन्नेणय केणइ रोगायं केणं एसपरिणामो नपरिवडइ तावमेयं इमं सागारियं अणसणं उवसंपज्जामि, तिविहंपि आहारं असणं खाइम साइमं अन्नत्थ० सहसा० महत्त० सव्व० वोसिरामि० पाणहार गंठ सहिय, पच्चख्खामी, अन्न० सहसा० महत्त० सव्व० अरिहंत सख्खियं, सिद्धस० साहूस० देवस० अप्पस० उवसंपज्जामि नित्थारपारगहोहं. जं जं मणेणबद्धं, जं जं वाएणभासियं पावं; जं जं काएणकयं, मिच्छामिदुक्कडं तस्स.१ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो; जिणपन्नतं तत्तं, इयसमत्त मए गहियं. २ ये सब आलावा नौकारपूर्वक तीन दफै उच्चराना.

इस आलावेमें प्रथम पाठ वो जावजीवका संथारा करनेका है. और थोडे कालके वास्ते करनेका पाठ विशेष सागारिक कहा है वहांसे है. वर्त्तमान समयके जीवोंको उच्चरना अनुकूल होवै वैसे उच्चरै. (मैंने अनशन विधिके पत्रमें जैसा था वैसा लिखा है) महानिशीत्थजी सूत्रमें कहा

है कि जो करना सो इरियावही पडिक्कमीकें करना; वास्ते वक्त मिलै ता इरियावही पडिक्कमी जधन्य मध्यम उत्कृष्ट ये तीनमेसें जो बन सकै सो करना. देववंदन कारकें गुरुवंदन कर ये पाठ उच्चारना तो विशेष श्रेष्ठ है; मगर जैसा औसरहो वैसा करना. औसर मिलै तो सब जीवके साथ खमतखामणे कर लै. मुनि होवै तो मुनीके और श्रावक होवै तो श्रावकके व्रत उच्चरै, और चउसरणपयन्ना और आउरपच्चख्खाण, भत्तपच्चख्खाण, संथारापयन्ना, आराधनाप्रकीर्णक, आराधनापताकाका अध्ययन करै वा सुने उससें अध्यवसाय बहुतही सुंदर होवैगा. चउसरण आउर पचख्खाण पयन्नादिक सुन्नेसें समाधि मरण होता है उसका मुझकों अनुभव है. आयुष आ रहा होवै तो मरणसें तो नहीं बचता; मगर रोग शांत पडता है और धर्मश्रवण करनेसें चित्त पिरोया जाता है वो मैनें देखा है. वास्ते वो पयन्नका अभ्यास मरणके वक्त जरुर करना. वो पयन्नेमें ऐसा भावार्थ है कि धर्ममें जीव जरूर दृढ हो जाता है, और आत्मामें अच्छी भावना होती है. और वोभी इसतरहकी होती है कि- अहो! मैंने पैस्तर इस भवमें और पिछले भवमें पाप किये हैं वा जिससें पाप होवै वैसा मकान-दुकान-खेत्र वगैरः और कुदाले-पावडे-बरतन-शस्त्र-तलवार प्रमुख हरकोइ पापोपकरण [जिन वस्तुसें पाप होवै वैसे पदार्थ) बनाये है वो सब वोशिराता हुं. कोइभी पुद्गलीक वस्तुके साथ मेरेपणेका संबंध मान लिया है वो सब वोशिराता हुं. कोइ वस्तुपर मेरा कुछभी राग रहे तो वो रागवाली वस्तुसें पाप होवै तो उस पापकी क्रिया मुझकों आवै; वास्ते कुछ जडपदार्थपरसें मेरे ममत्वभावकों त्याग करता हुं-कोइभी वस्तु मेरी है ही नही. मेरी वस्तु तो मेरा आत्मधर्म है. और जो जो पुद्गलीक पदार्थ है उनकों अज्ञानतासें मैंने मेरे मान लियेथे उससें अज्ञानपनेसें अनेक पाप उपार्जन किये. अब पुन्योदय जाग्रत हुवा उससें मैं कुछ वीतरागजीका मार्ग जाना कि वो सब चीजों-जडपदार्थके साथका मेरा संबंध तपासनेसें मालूम हुवा कि कोइभी तरहसें संबंध रखना लायक नहीं. वास्ते मेरे अज्ञानपनेसें जो जो भावने मेरापना मानाथा

को त्याग करता हुं और उस पापकों निंदता हुं. मैंनें अज्ञानतासें अनादिकाल तक ये शरीर धनकों मेरा मान लियाथा, उससें मैंनें चारोंगतिमें भ्रमण किया और अनेक दुःख भुक्ते. वास्ते अब मेरे आत्मा सिवा स्त्री—पुत्र-पुत्री जो जो मेरे मान लिये हैं उन सबकों अज्ञानता और अज्ञान भावकों वोसिराता हुं. और एक आत्माका अवलंबन ग्रहण करकें मरणका डर छोडकर अदीनतासें मेरा आत्मा अविनाशी है उसकों आलंबन लेता हुं. उसके सिवा मेरा कुछ पदार्थ नहीं. आत्मा आपके आचारमें रहकरकेंभी मरता है और अज्ञानतासेंभी मरता है. मरण किसीकों छोड देता नहीं, तो अज्ञानपनेसें मरन करनेसें आत्मा कर्म करकें लिप्त हो जावै और भव भवके अंदर उसकों अनेक प्रकारके दुःख भुक्तने पडें; वास्ते मेरे आत्माका आचार जो जो शरीरकों होवे सो जानना; मगर वो दुःख सुख मुझकों होता है ऐसा मानलेना अयोग्य है. इसलिये मैं मेरे आत्मस्वभावकों जाननेरूप रहकर मरन करुं कि जिस्सें मेरा आत्मा निर्मल रहवै और मलीन न होवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि प्रत्यक्ष दुःख होवै. और वो शरीरकों होता है ऐसा क्यों मानाजाय? उसके समाधानमें यही है कि जहांतक अपना आत्मस्वरूप नहीं जाना और उसका स्पर्शज्ञानभी न हुवा वहांतक तुमारे दिलमें सुख दुःख होता है ऐसा लगेगा; मगर तुमको तुमारे आत्मस्वरूपका ज्ञान अनुभवगम्य होवैगा-जैसें प्रभुजीने फरमाया है वैसाही मेरा आत्मस्वरूप है, वो न्याययुक्तिसें करकें चित्तमें शुद्ध होगा कि तुमारे भाव ऐसे होवैंगे कि-अब मेरे आत्मधर्मसें दूसरीतरह में नहीं चलुंगा. ये शरीर प्रमुख सब जड पदार्थ हैं इसके साथ मेरा कुछभी संबंध नहीं ऐसा होवैगा. पीछे शरीरकों कोइ काट देवैगा या रोगकी वेदना होवैगी, उसमें तुमारा चित्त नहीं जायगा. तुमारे दिलमें मुझकों दुःख होता है ऐसा आयेगाभी नहीं. जैसें कि कोइ मनुष्य नाटिक देखनेकों जावै और सारी रात जगै; मगर निंद नहि लीगइ उसका खेद दिलमें नहीं आवेगा, खडे खडे पाँव दुखै; मगर विवाहके हर्षसें वो दुःख ध्यानमें

नहीं आता. आभूषण पहने उसका भार पहननेके सुख अनाडी मनमें नहि आता, व्यापारमें पैदाश होवे उसकी पीछे मिहनत करनी पडे उसका दुःख निघाहमें नहीं आता. उसी वजहसें तुम तुमारे आत्मसुखके रागी वनोगे-आत्मसुखमें मग्न रहोगे तो शरीरकों वेदना होयेगी वोभी मुझकों होती है ऐसा खियाल नहि आने पावेगा. जहांतक शरीरके दुःखमें मन लय होता रहता है, वहांतक तुमारा भाव तुमारे आत्मभावपर तुमारी दशा नहीं हुइ उससें मश्न होता है कि-जब तुमारी दशाके सन्मुख होवोगे तब तो तुमारे मनमें आवेगा कि मैंने अज्ञानपनेसें जो जो कर्म बांधे हैं वो कर्म शरीरमें रहकर बांधे हैं, सो शरीरकों भुक्ते विगर छूटकारा नहीं और आत्मा निर्मल होनेका नहीं. पुनः वो दुःखकों दुःख मानुंगा तो फिर नये कर्म बंधेजायेंगे और आत्मा मलीन होवेगा. शरीरके सुख दुःखकों मुझकों सुख दुःख होता है ऐसा मानलेना वो मेरे आत्माका धर्म नहीं. मैं सच्चिदानंदहुं, अनंत सुखका धणीहुं, अरागीहुं, अद्वेषीहुं, अछेदीहुं, अभेदीहुं, अगमहुं, अलखहुं, अगोचरहुं, पूर्णानंदहुं, सहजानंदीहुं, अचलहुं, अमरहुं, अमलहुं, अतिंद्रियहुं, अशरीरीहुं, अविनाशिहुं, ये मेरा स्वरूप है. तो मेरा आत्मा विनाशवंत नहीं. मरनसें शरीरका नाश होवेगा उससें में किसलिये डर रखखुं ? शरीर तो सडने पडने विद्धंसनेके धर्मवाला है वो विनाश होवै उसमें मुझे क्यौं चिंता करनी चाहियें ? मेरा आत्मा अमर है, उससें मरनेका नहीं; वास्ते मुजकों मरनका भय नहीं. जितना जितना भय आवे वो तो अज्ञानदशा है सो मेरे अब अज्ञानदशाके विचार किसलिये करना ? मुझे आत्मधर्ममें रहना वही उत्तम है. पूर्वभवोमें अज्ञानतासें मरन किये और जीव भवचक्रमें भटका, अनेक प्रकारसें नरकादिककी वेदना भुक्ती, उंचे शिरसें गर्भावासकी वेदना भुक्ती, इस भवमें भाग्योदयसें वीतरागका धर्म मिला जिससें मैने मेरे आत्माकों स्वरुप जाना. अब रोगादिककी वेदनासें मैं नहीं डरता हुं. रोगके औषध अनेक प्रकारके करुंगा तोभी जो कर्मकी स्थिति पकी नहीं तो वहांतक रोग मिटनेका नहीं. रोगका सच्चा औषध तो समभाव है.

जो समभावमें रहुंगा तो जो जो वेदना होती है वो तो पूर्वके कर्म भुक्ते-जाते है उससें आत्मा निर्मल होता है, तो रोगकी वेदना मुझे होती है एसा विकल्प किसलिये करुं? ऐसा शोच में रोगका विकल्प बिलकुल न करुं तो वेदनी कर्मकी स्थिति और रस कमती होवेगा. निकाचित मध्यम स्थानवृत्ति होगी वो शिथिल होजायगी. शिथिल कर्म होंगे वो नाश होजायेंगे; वास्ते मेरे आत्मस्वभावमें रहना वही औषध है. दूसरे औषधका अभिलाष किसलिये करुं? मेरे कुटुंबादिककी फिक्र करनी वोभी व्यर्थ है क्यों कि सब जीव आप अपने पुन्यानुसारसें सुख भुक्ते हैं. किसीको कोइ सुख दुःख करनेकों समर्थ नहीं, तो मैं किस वास्ते शिरफोड करुं? अगर मैं क्या करसकताहुं? फिर अनादि काल गया वो भवोभवमें कुटुंब मिले तो मैं कितने कुटुंबकी चिंता करुंगा? और पूर्वमें अज्ञानतासें, कर्मके स्वरुप नहीं जाननेसें चिंता करताथा; मगर इस भवमें कर्मके स्वरुप जानलिये उस्सें जानताहुं कि कुछ सुख दुःख कर्मो-नुसारसें होते हैं; वास्ते मेरी मुझे चिंता करनी या पिरायेकी फिक्र करनी फजूल है. मै मेरे आनंदमेंही वर्तुंगा. मेरी कुटुंब चाकरी करता है वोभी पूर्व समयमें पुन्य उपार्जन किया है उसके फल हैं. मैने उन्होंकी चाकरी की है, और वै जीव मेरी चाकरी नहीं करते है सो मेरे पापोदयके फल हैं. उसमें उन्ह जीवोंपर द्वेष करना अयोग्य है. मरन समय कीसी जीवपरभी द्वेष करनेसें वो जीवके साथ वैरभाव होता है. वास्ते मेरे अब जो जो सुख दुःख उत्पन्न होवे सो समभावसें भुक्तना. पूर्वमें मुनीओंने, शिरपर खदिरांगार भरदियेथे तोभी वो वेदनाकी तर्फ नजर न कीथी, मेतार्य मुनीके शिरपर चमडेकी रस्सी लपेटकर बहुत दुःख देनमें आया तोभी समभावमें रहे; वास्ते इन मरणकी वेदनाभी उन्ह मुनिमहाराजोंकी तरह समभावसें भुक्तनी. किंचित्भी परभावमें मेरे प्रवेश न करना. और मेरा चित्त परभावमें जायगा तो आत्मा गिरफतार हो जायगा. फिर मैंने शरीर धन-कुटुंब सबकों वोसिराया है, उसमें मेरा चित्त किसीमें जायगा तो मेरी आराधना निष्फल हो जायगी. इसलिये ज्यौं राधावेध साधनेवाला

राधावेध साधनेमें तत्पर रहता है, त्यौं मेरेभी मेरे आत्मस्वभावमें रहना और उसका शोच करनाऔर उसीमेंही कायम रहना. इसतरह आरा- धनपनेसें मरन करनेसें अवश्य तीसरे भवमें या सातवे भवमें जीव सिद्धि वरता है ऐसें प्रभुजीने आगममें फुरमाया है. वास्ते प्रमाद छोडकर केवल मेरे आत्मामें वर्त्तनाही योग्य है. अहा! प्रभुजीने यही मार्ग कहा है. यह मार्ग ग्रहण करनेसें आत्माकों आनंद होता है कि अब मेरा भव- भ्रमण बंध पडेगा. थोडासाभी पुद्गलपर राग धरुंगा-धनकी ममता क- रुंगा या कुटुंबपर राग रखुंगा तो मेरी आत्मदशा बिगड जायगी, और भवभ्रमणा वढजायगी. और मैं मेरी आत्मदशामें रहुंगा तो थोडे कालमें मेरी कार्यसिद्धि होजायगी. केसरी चोर जैसे बडे बुरे चोरी वगैरः अकार्य करनेवालेनेंभी समभाव अंगीकार किया तो फौरन केवलज्ञान प्राप्त हुवा तो अब मैंभी मेरे आत्माके उपयोगमें रहुं. मेरे आत्मगुणपर्यायमें मैं वि- चार करुं. ज्यौं ज्यौं मैं स्वगुणमें लीन होउंगा त्यौं त्यौं कर्म नाश होवेंगे, और मेरा आत्मा निर्मल होवेंगा. फिर मेरे आत्माके अपूर्व भाव प्रकट होवेंगे. मेरे आत्माके सहज सुखका अनुभव होवेगा. और वैसा होनेसें पुद्गल सुखकी वल्लभता नाश पावेगी. परसुखकी इच्छा नाश होगा त्यौं त्यौं कर्म हठते जायेंगे, उससें विशेष विशुद्धि होगी. पीछे चाहेसो वेदना होवेगी-कोइ काटडालेगा-कोइ मारेगा तोभी कुछ विकल्प नहीं आवेगा. जहांतक आत्माकी मलीनता है, वहांतक शरीरादिककी विकल्पना आवे- गी; वास्ते अब तो मेरें अविनाशी सुखकों भारमें यह मरणावउं साधनेकों तत्पर होउं. परभावपर उदासीन दशा मेरी प्रकट होवेकि जिससें कुटुंबा- दिकपर चित्त नाहि जाने पावे. पूर्व समयमें ज्ञानियोंने अपनी आत्मदशा चिंतन कर केवलज्ञान प्राप्त कियाथा, वैसी दशा अबतक मेरी नहीं हुइ है; तोभी श्रावकदशा मुजब विशुद्धि होवेगी तथापि सातवे भवमें मुक्ति- सुंदरी वरुंगा. वास्ते मेरे आत्मानंद सिवा दूसरा कोइभी आनंद जगतमें नहीं. जो जो बने सो जानना वही मेरा धर्म है. शरीरादिकमें जो जो उ- पाधि होती है उसमें मेरे कर्म शुकनमान होते हैं और मेरा आत्मा निर्मल

होता है; इससे वोभी आनंद होनेका कारण है; मै किसलिये दिलगीरा होउं ? या विकल्प करुं ? भगवान् श्रीमत् महावीरस्वामीजीकों संगमे देवने अत्यंत उपसर्ग किया; तोभी समभाव नहीं छोडा वोसीतरह मैंभी समभावमें रहुं. कोइभी चीज मेरी नहीं है तो मैं किस वावतका विकल्प करुं ? इसतरह निर्विकल्पतासें सर्वथा रहेगा तो केवलज्ञान पाकर सिद्धि वरेगा. और उस्सें उतरती विशुद्धिवालेभी गुणस्थानककी हदमें रहवेंगे तो सातवे भवमें सिद्धि वरेंगे. वास्ते संथारा करना और समभावसें रहनेका उद्यम करना. सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याणकारणं; प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनं. फिर भत्त पच्चख्खाणमें संथारा करनेवालेकेलिये गाथा ४१ वीमें शीतल समाधिके वास्ते नागकेसर, दालचीनी, तमालपत्र, इलायची और मीसरी ये दूधमें डालकर गर्म करकें ठंडा हुवे वाद अनशन करनेवालेकों वो दूध पीना, इस्सें उसकों शीतलता रहती है–इस मुजब कहा है. श्रावक धनवान होवै तो सप्त क्षेत्रमें धन व्यय करकें–देवगुरुको वंदन करकें अनशन करै. अनशनका लाभ उस ग्रंथमें वहुतसा कहा है. इस मुजब सामान्य अनशन विधि है.

१६२ प्रश्नः–आत्मारामजीमहाराज–विजयानंदसूरीजीकों प्रश्न लिखेथे उन्होंका क्या जवाव है ?

उत्तरः–आत्मारामजीमहाराजका पत्र नीचेके लिखान मुजव आयाथा:–

शहर अंवाला. संवत् १९५१ के भादो कृष्ण ११ रविवार–पून्यपाद श्री श्री श्री १०८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी–आत्मारामजी महाराजजी आदि साधु १० के तर्फसें धर्मलाभ वंचना.

भरुच वंदरे श्रावक पुण्यप्रभावक देवगुरु भक्तिकारक शेठ अनूपचंद मलुकचंद वगैरः अत्र सुखशाता है. धर्मध्यान करनेमें उद्यम रखना. तुमारी चोपडी तपासकर पीछी भेजदी है वो पहुंचनेसें पहुंच लिखना. तुमारे लिखेहुवे प्रश्नोंका जवाव नीचे मुजब है:–

१ केवलज्ञानीमें पांच इंद्रि प्राण–वर्जकें वाकीके पांच प्राण जानना; क्यौं कि केवलज्ञानी महाराज केवलज्ञानसें सव पदार्थ जानते हैं. जितनी इंद्रियोंका काम नहीं उससें वो प्राण गवच्छे नहीं.

२ केवलज्ञानीमें उदारिक, तेजस और कार्मण यह तीनुं शरीर और मन वचन काया यह तीनुं योग एक समयमें प्राप्त होवै; परंतु मनयोगमें द्रव्य मन समझना.

३ चय उपचयकों प्राप्त होवै और औदारिकादि वर्गणाका बनाहुवा होवै वो शरीर और शरीरका व्यापार वो काययोग समझना.

४ तीनु योगकी स्थिति अंतर्मुहूर्त्त और अवगाहना शरीर प्रमाण.

५ जहां शरीर होवै वहां काययोगकी भजना. शैलेशि अवस्थामें कायाका व्यापार न होवै उससें.

६ शरीर बंधकभी है और अबंधकभी है. वो अबंधक शैलेशि अवस्थामें.

७ तेरहवे गुणस्थानमें नोसन्नि नोअसन्नि.

८ केवलज्ञानी महाराजकों आहारादिक चार संज्ञामेंसें कोइभी संज्ञा न होवै.

९ कायबल नाम शरीरका सामर्थ्य है. और स्पर्शेंद्रि शीत उष्णादिककी परीक्षा करनेवाली है.

१० ज्ञानीकी अवगाहना आत्म प्रमाण.

११ तीर्थंकरजीके वचन, केवलज्ञानीकों कोइभी ज्ञानपनेसें न प्रणमें. क्षायकभावका ज्ञान है उससें प्रणमना ये क्षयोपशमका धर्म है.

१२ देवताकों आहार करनेके वक्त कोइ देखसकै और कोइ न भी देखसकै.

१३ जीव आहार लेवै सो शरीर लेवै और इंद्रियें तो फक्त रसादिकका ज्ञान करनेवाली हैं.

इसतरहका पत्र महाराजजी साहबका था. यह जवाब विजयानंदसूरीजीके सिवा दूसरेसें लिखने बडे कठिन थे. वांचकर हम बडे खुश हुवे. और इस कितावमें दाखिल करदिये गये.

१६३ प्रश्नः—मरणके वक्त समाधिमें चित्त रहै इस वास्ते कोइ जाप करनेका कहा है ?

उत्तरः—लोगस्सके कल्पमें ॐ ॐ अंबराय किचिय वंदिय महीया जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धाः आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु. इस मंत्रके १५००० जप करना. धूप दीप करकें स्थिर आसन रखना. सुजाल आवे-मच्छर काटे तोभी उंचा हाथ न करना. (चलितासन न रखना.) मालापर नजर लगानी मगर फिरानी नहीं. जीभ होठ गिननेके वक्त न हिलाना. एक ध्यानसें गिनलेनेसें मरनके वक्त समाधि रहेंगी. ऐसा लोगस्स कल्पमें कहा है. बीमारीके वक्तमें इस गाथाका अवश्य ध्यान रखना. आउर पच्चख्खाण पयन्नेमें कहाहै कि-बारह अंगके जाननेवालेभी मरनेके वक्त विशेष ध्यान नहीं करसकते हैं. उससें एक गाथाका ध्यानभी भवसमुद्रकों तिरानेवाला है; वास्ते वीतरागके धर्मकी हरकोइ गाथाका ध्यान धरना. समाधीमें रहनेकी भावनाभी जीवकों तिरानेवाली है. वास्ते ये जाप करलेना बहुत फायदेमंद है.

१६४ प्रश्नः—साधारण द्रव्यसें धर्मशाला बनवाइ गइ हो उसकों श्रावक वापरे या उसमें संघ वगैरःको जीमावे तो श्रावककों मुनासिब है ?

उत्तरः—धर्मशाला बनवाइगइ है वो श्रावकके उतरने-विश्रामके लियेही बनी है. उसमें मुकाम करनेका कुछ बाध नहीं; लेकिन अपनी अपनी शक्ति मुजब कुछ साधारणमें रकम-पदार्थ देना चाहियें. श्राद्धविधिके पत्र ११० में साफ साफ कहागया है कि-कमती किराया देवै तो प्रकट दोष है. क्यों कि धर्मशाला बनवानेवालेकी दीर्घ कालतक एक जैसी स्थिति-हालत नहीं रहती है, तो उस धर्मशालेकी मरामत वगैरःका खर्च कहांसें निकालना ? वास्ते श्रावक दे जावें तो वो मकान अच्छी हालतमें रहने पावे. फिर स्वामी-भक्ति करनेका पैसा जमा करगये हैं उसका भोजन पदार्थ बनवाकर भोजन करना उसमें कुछ हरकत नहीं है; परंतु स्वामीका माल तृष्णापनेसें इंद्रियोंके विषयके वास्ते अतिशय आकंठतक न खाना. फक्त स्वामीभाइका दिल रखनेकेलिये जीमनेकों जाना है उससें जीमानेवालेका बहुत मान करते हुवे जो वस्तु हाजिर हो वो निर्वाह रीतिसें जीमलेवे, वो हर्जा नहीं. मगर उसके कार्यभारी हो उसमेंसें कोइ चीज घरपर ले

जावे या अपने स्नेही संबंधी वसीलेदारोंकों देदेवे या हरकिसी प्रकारसें अपने संसारी काममें साधारणकी चीज वपरासमें लेनी या पैसा बिगाडना उससें तो श्राद्धविधिमें नुकशान कहा है. वास्ते साधारण द्रव्यभी बिगाडदेना महा पापका कारण है; साधारण द्रव्यके उपरकी कथा आगे आचुकी है वो यहांपर ध्यानमें लेनी.

यह कथायें सुनकर तुच्छ श्रद्धावालोंकों व्यामोह होवैगा कि इतना देवद्रव्य या साधारणद्रव्य, ज्ञानद्रव्य खाया उसके इतने सारे कर्म बांधे जावे? उसकों शोचना योग्य है कि-जैसें कोई लडकीके पैसे खाते हैं उन्होंकी कितनी निंदा होती है? उसका सबब यही है कि लडकीकों देना लायक है; मगर उसका लैना नालायक है. वैसें इस द्रव्यमें अपना द्रव्य दैना-व्यय करना योग्य है; लेकिन उसकी एवजीमें उनका द्रव्य खा जावै तो पापही होवै; वास्ते ज्ञानीनें ज्ञानसें विशेष पाप देखा सो बतलाया है.

१६५ प्रश्नः—पुद्गल कितने प्रकारके कहे हैं?

उत्तरः—पुद्गल तीन प्रकारके कहे हैं. जीवने जो ग्रहण किये हुवे हैं उसमें जीव है वहांतक प्रयोगशा कहा जावै. जीव नीकल गये बाद जो पुद्गल रहे वो मिश्रशा कहा जावै, और स्वाभाविक पुद्गलके स्कंध होते हैं—जैसें कि आकाशमें हरे पीले रंग होते मालूम होते हैं वो अगर अंधेरेके पुद्गल या बदलके पुद्गल जीवके ग्रहण न कियेसें होते हैं वो विश्रशा कहा जाता है. इस तरह तीन जातीके पुद्गलका अधिकार भगवतीजीमें पत्र ५२१ में है.

१६६ प्रश्न—परिहार विशुद्धि चारित्र कितने पूर्व पढे हुये अंगीकार करे?

उत्तरः—नौ पूर्वकी तीसरी वस्तु तक पढे हुवे होवें वो परिहार विशुद्धि संयम आदर सकै. नौ जने गच्छमेंसें निकलें, उसमें चार जने छ महिने तक तपश्चर्या करें और चार जने उनकी वैयावच करें और एक गुरु स्थापन करें. तपश्चर्या करनेवाले छ मास तक कर रहें तब वैयावच करनेवाले छ महिने तक तपश्चर्या करें. पीछे छ महीने तक गुरुतपश्चर्या करें. दूसरे आठ मेंसें एककों गुरुस्थापन करकें सात जने वैयावच करें. इस तरह अठारह

महीने तक तपश्चर्या करें उसका नाँव परिहारविशुद्धि चारित्र कहा है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ५७१ में है.

१६७-प्रश्नः—सिद्धमहाराजजीकों चारित्र कहा जाय या नहीं ?

उत्तरः—सिद्धमहाराजजीकों व्यवहाररूप चारित्र नही जिससें भगवतीजीके पत्र ५७६ में नोचारित्र नोअचारित्र कहा है.

१६८ प्रश्नः—विभंग ज्ञानवालेकों दर्शन होवे या नहीं ?

उत्तरः—कर्मग्रंथमें तो ना कही है. मगर भगवतीजीके पत्र ५८८ में विभंगज्ञानवालेकों अवधिदर्शन कहा है. पन्नवणाजीमेंभी अवधिदर्शन कहा है. अब ये दो मतांतर हैं—तत्त्वकेवलीगम्य है.

१६९ प्रश्नः—मुनीकों अशुद्धमान आहार पानी देनेसें क्या फल होवे ?

उत्तरः—मुनीकों मुख्यतासें तो शुद्धमान आहारपानी देनेकाही भाव होवे; मगर कितनेक सबबोंकेलिये अशुद्धमानभी देदेवे. फिर गुरुपर राग है. उससें कुछ कुछ चित्तमेंभी आजाय. परंतु मुनीकों प्रतिलाभनेका अतिशय भाव है उसलिये अल्प दोष और बहुत निर्जरा भगवतीजीके पत्र ६१० में कही है.

१७० प्रश्नः—प्रायश्चित लेनेका भाव है और उस अरसेमें काल करजाय तो आराधक होवे या नहीं ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ६१५ में मुनी गोचरी गये है और वहां कुछ दोष लगा हैं वो गुरुके पास जाकर आलोयणा लेनेका भाव है ओर अधवीच काल करे तो उसकों आराधक कहे हैं.

१७१ प्रश्नः—बडेमें बडा दिन कोनसा या कितना होवे ? और रात्री कितनी होवे ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र ९३८ में कममें कम दिन बारह मुहूर्त्तका यानी चोवीस घडीका और कममें कम रात्रीभी उतनीही होवे. और ज्यादेमें ज्यादे दिन अठारह मुहूर्त्तका यानी छतीस घडीका और रात्रीभी ज्यादेमें ज्यादे उतनीही होवे.

१७२ प्रश्नः—श्रावक पौषध लेकरकें धर्मकथा करे सो अधिकार किसतरह है ?

उत्तरः—भगवतीजीमें पत्र ९७० के अंदर ऋपिभद्र पुत्रका अधिकार है. वहां श्रावक आसन लेकर बैठे हैं और ऋपिभद्र धर्म मरुपता है. उसमेंसें श्रावककों शंका हुइ है उससें भगवंतजीकों पूंछा कि ऋपिभद्र इसतरह मरुपता है. भगवंतजीने फरमाया कि ऋपिभद्र मरुपता है सो सत्य है इस मुजब अधिकार है. और उपदेशमालामें गाथा २३३ के अंदर श्रावक दूसरे श्रावकोंकों धर्मोपदेश करै ऐसा कहा है.

१७३ प्रश्नः—भव्य जीव है सो सवी सिद्धि वरै तव सव अभविही बाकीमें रहे या नहीं ?

उत्तरः—जयंती श्राविकाने भगवतीजीमें प्रश्न पूछे है उसमें ये प्रश्न है, उसका जवाव पत्र ९९१ में हैं कि-गत काल अनंता गया उसका अंत नहीं तोभी एक निगोदके अनंतमें हिस्सेके सिद्धि वरे हैं. युंही आते कालकाभी अंत नहीं; वास्ते दोनु तुल्य हैं. उससें आते कालमेंभी दूसरे एक निगोदके अनंतमें हिस्सेके सिद्धिपद प्राप्त करेंगे. उसके सबबसें भवि खाली नहीं होनेके.

१७४ प्रश्नः—समकित सहित कौनसी नरक तक जावे ?

उत्तरः—समकित सहित छट्ठी नरक तक जावै और सातवी नरकमें समकित वमन करके जावै-ये अधिकार भगवतजीके पत्र १०८७ में है.

१७५ प्रश्नः—पुस्तक और प्रतिमाजी होवै वहां हास्यविनोद करनेसें आशातना लगै या नहीं ?

उत्तरः—जहां ज्ञान और प्रतिमाजी होवै वहां आहार निहार स्त्रीसंयोग और हास्यादिक क्रीडा करनेसें आशातना होती है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११७७ में है. सौधर्मसभामें स्तंभे है उसमें पुस्तक और प्रभुजीकी दाढायोंके डिब्वे हैं, उससें इंद्राणीके साथ हास्यविनोद सुधर्मेंद्र वहां नहीं करते हैं, उसीतरह मनुष्यकोंभी न करना.

१७६ प्रश्नः—क्षयोपशमभावके समकित और उपशमभावके समकितमें क्या तफावत है?

उत्तरः—क्षयोपशमभावका समकित है उसको समकित मोहनीविपाकका उदय है, और मिथ्यात्व मोहनीप्रदेश उदय है. और उपशम समकितवालेकों मि-

ध्यात्व और समकित मोहनी विपाक उदय तथा प्रदेश उदयसें हठजाता है. ये अधिकार भगवतीजीके पत्र ११८२ में है.

१७७ प्रश्नः—श्रावक खुल्ले मुँहसें बोले तो उचित है ?

उत्तरः—श्रावकको अवश्य मुखपर कपडा या हाथ या मुहपत्ति रखकर बोलना. खुल्ले मुंहसें न बोलनाँ चाहियें. इस संबंधी भगवतीजीमें गौतमस्वामीजीने प्रश्न पूँछा है कि-इंद्र सावद्यभाषा बोलता है या निरवद्यभाषा बोलता है ? उसका उत्तर भगवंतजीने दिया है कि इंद्र जिस वक्त मुँहपर कपडा या हाथ रखकर बोलता है उस वक्त निरवद्यभाषा बोलता है और खुल्ले मुँहसें बोले उस वक्त सावद्यभाषा, बोलता है. इस तरह पत्र १३०२ में अधिकार है.

१७८ प्रश्नः—पूर्वका ज्ञान कहां तक रहा ?

उत्तरः—पूर्वका ज्ञान भगवंतजीके निर्वाण बाद एक हजार वर्ष तक रहा. ये अधिकार भगवतीके पत्र १५०१ में हैं.

१७९ प्रश्नः—प्रभुजीका शासन कहां तक रहेगा ?

उत्तरः—इक्कीस हजार वर्ष तक रहेगा यह अधिकार भगवतीजीके पत्र १५०४ में है.

१८० प्रश्नः—विद्याचारण जंघाचरण मुनी नंदिश्वरद्वीपमें जिनप्रतिमाजीका वंदन करनेकों जावे ये अधिकार किस ग्रंथमें है ?

उत्तरः—भगवतीजीके पत्र १५०१ में है.

१८१ प्रश्नः—श्रावक, श्रावककों और श्राविकाकों व्रत उच्चराय सकै या नहीं ?

उत्तरः—श्रावक, श्रावक-श्राविकाकों व्रत उचराते हैं. ज्ञाताजीमें पत्र १०१९ (छपी हुइ प्रत) में है. जितशत्रु राजाने सुबुद्धि मंत्रीके पास धर्म सुनकर प्रतिबोध पाकर श्रावकके बारह व्रत (सुबुद्धि प्रधानके पास) लिये हैं. फिर पच्चख्खाणके करानेवाले जाननेवाले और अनजान उसके चार भांगे कहे हैं-वो इसतरह हैं:-पच्चख्खाण कराने और करनेवाला दोनु जाननेवाले होवै वो शुद्ध पच्चख्खाण है. करानेवाला जाननेवाला हो और करनेवाला अनजान हो; मगर करानेवाला जाननेवाला होनेसें व्रतकी रीति बतलावे वास्ते यहभी शुद्ध है. करानेवाला अनजान और करनेवाले

जानकार होवै वोभी शुद्ध कहे हैं; मगर वहां दर्शाया हैं कि तथाविध गुरुके अभावसें पिता-दादा-मामु-भाइ-या कोइभी मयाहदार रखकर करना. क्यौं कि वै अनजान हैं. मगर आप जानता है उससें शुद्ध है. चौथा भांगा करानेवाला और करनेवाला-दोनु अनजान होवै-वो अ-शुद्ध पच्चख्खाण कहा है. इसतरह प्रवचनसारोद्धारजीकी टीकाके पत्र २९ में कहा है. उसपरसें तीसरे भांगेसें सिद्ध होता है कि पिता वगैरः अनजान हैं, उनके समक्ष पच्चख्खाण लैना, तो जानकार श्रावकके पाससें लैना वो तो ज्यादे योग्य है. ऐसी चौभंगी योगशास्त्रमें और पंचाशकजीमें भी है; वास्ते मुनीमहाराजके अभावसें श्रावकके पास पच्चख्खाण लैना योग्य है.

१८२ प्रश्नः—श्रावककों फासुक पानी पीनेसें क्या फायदा है? क्यों कि आरंभ तो करना करवाना रहा है, तो सचित्तका अचित्त करकें पीवै उससें क्या फल है?

उत्तरः—श्रावककों सचित्त वस्तुकी मूर्छा उतर गइ ये बडा लाभ है. कर्म बंधन है सो इच्छासें करकें है. वो सचित्त वस्तुकी इच्छा बंध हुइ वो बडा लाभ है. फिर सचित्त जल जगतभरमें है वो उन सब जलके ऊपर चित्त छूटा रहता है, वो फासुक जल पीनेवालेकों बंध होजाता है. फासुक पानी जहां जावै वहां नहीं मिलता है, तो वो परिसहभी शायद सहन करना पडता है. फिर सचित्त जलमें समय समय जीव पैदा होते हैं और नाश पाते हैं उनकाभी आरंभ दूर होजाता है, उससेंकरकें श्रावककों सचित्तका त्याग होता है. उसके अतिचारभी कहे हैं. फिर महंत श्रावक आनंदजी आदिनें सचित्तका त्याग किया है और आरंभ छूटा है. यह सचित्त त्याग ७ वी पडिमामें किया है और आरंभका त्याग ८ वी पडिमामें किया है. यह अधिकार उपासकदशांगजीकी छपीहुइ प्रतके पत्र ६६ में है. पुनः आ-ठवी पडिमामें आपकों आरंभ करनेका त्याग है; मगर आरंभ करवानेका त्याग नहीं. आरंभ करवानेका नौवी पडिमामें त्याग है. वास्ते आरंभ छूटा है; तोभी आनंदिक श्रावकोंने सचित्तका त्याग किया है. उसीतरह

वर्त्तमान समयके श्रावकोंकोभी त्याग करना मुनासिब है.

१८३ प्रश्नः—श्रावक जिनमंदिरमें जावै वहां अच्छी आंगी रचीगइ हो तो, या प्रभु गुणगान होता होवै तो वहां उनकों क्या चिंतन करना ?

उत्तरः—जिन जिन पुरुषोंने आंगीमें पैसे खर्च किये हैं उन उन पुरुषोंकी अनुमोदना करनी;कि धन्य है ! संसारके कार्यमें पैसा खर्चना मोकूफ करके प्रभुभक्तिमें पैसा व्यय किया है या करते हैं ! मेरा चित्त ऐसा कब होयगा कि मैंभी ऐसी प्रभुभक्ति करुंगा फिर आंगीके बनानेवाले पुरुषकी अनुमोदना करै कि अपना घर काम छोडकर आंगी रचनामें कालव्यतीत किया है-करते हैं ऐसा मेरा भाव कब होवैगा ? पुनः गायन होता हो तो जो जो प्रभुजीके गुण गाते हैं उसमें लीन होना-नहीं कि गायनके विषयमें लीन होना. फिर नजरभी प्रभुजीके सन्मुख स्थापनी; लेकिन गानेवालेके साामने न देखना; क्यों कि प्रभुके सिवाकी तीन दिशामें देखना दशत्रिकमें वर्जीत करनेका कहा है; वास्ते प्रभु सन्मुख दृष्टि रखनी फिर राग-हलक अच्छाहो तो उसकेलिये ऐसा चिंतन करना चाहियें कि मुझकों ऐसा गाते आता होता तो मैंभी प्रभु गुणगान करता. ऐसा शोचना; नहि कि रागमें लीन होना. बालजीवोंकों तो प्रभुकी जो जो प्रशंसना है वो परंपरासें गुनदायक है; मगर विवेकीकों तो प्रभुजीके गुणगान करना वही गुनकारी है. यशोविजयजी महाराजने सवासो गाथेके स्तवनमें कहा है कि " जिनपूजामां शुभ भावथी, विषय आरंभतणो भय नथी. " वास्ते जिनमंदिरमें जाकर विषयकी दृष्टि न रखनी वही गुणकारी है. वहां परभावना छोडनेकों जाना है ओर विषयकी दृष्टि होवें तो फिर विषय कहांपर छूट्या होजाने पावे ! वास्ते पुद्गलीक पदार्थमें दृष्टि न रखते प्रभुके गुण यादकर प्रभुकी आज्ञा संभालकर शुभ भावकी वृद्धि करनी और पुद्गल राग घटाना वही धर्म है.

१८४ प्रश्नः—पिछले भवमें आयुष बांधाहोवै उसी मुजब पूरा होवै या. किसीतरहसें टूटे ?

उत्तरः—शास्त्रमें आयुष दो प्रकारसे कहे हैं-एक उपक्रमी और दूसरा निरुपक्रमी

उपक्रमी आयु है उसको उपक्रम यानी विष शस्त्र प्रमुख लगजानेसें आयु कम होता है—उसें अकाल मृत्यु कहाजाता है. वो उपक्रमी आयुवालेने जो आयु बांधलिया है वो शिथिल है उससें उसको उपक्रम लगता है. यह अधिकार तत्त्वार्थमें दूसरा अध्याय पूर्ण होनेके वक्त पत्र १०८ समें शुरु होकर अध्याय दूसरा पूर्ण होने तक है. पुनः विशेषावश्यकमेंभी अधिकार है. और आचारांगजीकी शिलांगाचार्यकृत छपीहुइ टीकाके पत्र १११ में है. बाकीभी बहुतसी जगहपर है. वास्ते उपक्रमकी अच्छीतरह संभाल रखनी, सबब कि बहुतकरके इस कालमें बहुतसें मनुष्यके उपक्रमी आयु होते हैं वास्ते उपक्रम लगा हो तो उसको दूर करनेका उद्यम करना. उसलिये मुनीमहाराजभी औषधादिक करते है; लेकिन सारा जन्मभर व्रत पालन करके छेल्ले वक्तमें दूषण लगै या व्रत भांगै ऐसी दवा वापरनी वो अच्छा नहीं. ज्यौं बनसकै त्यौं व्रत रखना और रोगका विकल्प न करना. रोगका विकल्प न करनेसें रोग जल्दी दूर होजाता है; वास्ते अपना आत्मधर्म न बिगडे ऐसा उद्यम करना.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि हरएक व्रतोंमें चार आगार हैं. उसमें सव्व समाहिवत्तियागारेणं यह आगार है वास्ते कदापि अयोग्य वस्तु त्यागकी हुइ उपयोगमें लेवै तो क्या उससें व्रत भंग होवै ? उस विषयमें समझना कि आगार रक्खे हैं; मगर उसके बारेमें शास्त्रमें कहा है कि दृढ प्रतिज्ञवान आगार सेवन नहीं करते हैं. जिसका मन चलित या बेढंगा है उससें रागादि सहन हो सकते नहीं. परिणाम बिगड जाते हैं. ऐसा लगै तो व्रतपर परिणाम रखनेके लिये प्रायश्चित लेनेकी भावना सह उपयोगमें लैना. यो आगारवाली वस्तु सेवन कियेकाभी प्रायश्चित कहा है. तो वो अपवादमार्ग है; परंतु जो आगार नहीं सेवन करते हैं और शुद्ध स्वरूपपर नजर रखते हैं उसकी अपेक्षासें तो ये उतरते दर्जेका है. पुनः कितनेक जीव पैसेके लोभसें यानी निर्दोष दवाका खर्च ज्यादा लगता है उस कृपणतासें दूषित दवाइयें वापरते हैं वो तो बहुतही दोष है. ऐसे मनुष्य पैसेकी कसरसें अभक्ष दवाओं वापरते हैं और पीछा शुभ

खाते द्रव्य वापरै, उस करतें शुभ खातेमें कमी खर्च करके भक्ष दवामें वापरै तो विशेष उत्तम नीति है. वास्ते व्रत अखंडित रहे वैसें करना वही कल्याणकारी है. और जिसके परिणाम बिगडते होवै उसकों आगार सेवन करनेकी मना करनी वोभी अयोग्य है.

१८५ प्रश्नः—साधुजी गाँवमें प्रवेश करै तो उन्होंकों वाद्य गीतके साथ स्हामैया करके ल्यानेका शास्त्रमें कहा है?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २६८ में ऐसा अधिकार है कि श्री धर्मघोषसूरीके नगर प्रवेशके उत्सवमें बहोत्तर हजार टके श्रावकने खर्च कियेथे. पुनः व्यवहार सूत्रके भाष्यमें पत्र १८२ के अंदर प्रमाण दिया है कि प्रतिमाधर मुनी प्रतिमा पूर्ण होवै तब नगर बहार रहीके गुरुकों खबर कि मैं आया हुं. बाद गुरु, राजा वगैरः जों श्रावक होवें उसकों जाहिर करैं, और पीछे उसें श्रावक बडे आडंबरके साथ प्रवेश करावैं उससें शासनकी प्रभावना होवै और बहुतसे जीव धर्मानुरागी होवैं. इत्यादि बहुतसा दर्शाव श्राद्धविधिमें है; वास्ते बडे ठाठसें गुरुमहाराजजीकों नगरमें प्रवेश करवाना.

१८६ प्रश्नः—वर्षाकालमें चीनी वगैरःका त्याग करनेका कौनसे शास्त्रमें है?

उत्तरः—श्राद्धविधिमें पत्र २५४ के अंदर वर्षाके चौमासेमें चीनी, खजूर, द्राक्ष, मेवे, सुरुवनीके शाख-भाजी वगैरः अभक्ष्य कहे हैं. वहां देखोगे तो साफ मालूम हो जायगा; क्यौं कि चातुर्मासमें उन चीजोंमें त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है वास्ते त्याग करनीही चाहियें.

१८७ प्रश्नः—गुरुद्रव्य किसकों कहेना?

उत्तरः—श्राद्धविधिके पत्र १०० में उव्वेवाली मतके अंदर वस्त्र पात्र प्रमुख उपगरणकों गुरुद्रव्य कहा है.

१८८ प्रश्नः—जिनबिंबकी प्रतिष्ठामें और दीक्षामें मुहूर्त किस तरह देखना चाहियें?

उत्तरः—मैंने लग्नशुद्धि वगैरः जैनके मुहूर्त संबंधी ग्रन्थ देखे हैं. उनमेंसें सामान्य रीति नें निम्न लिखित मुहूर्त देखना दुरस्त है. विशेष विचार और शास्त्रोंसें जान लेना.

पेहले महिने देखने-सो मिगशर, अघहन, फागुन, वैशाख, ज्येष्ठ और अषाढ इन्ह महीनोंमें प्रतिष्ठा करनी लग्नशुद्धिमें कही है. और ज्योतिर्विदाभरण ग्रंथमें जिनप्रतिष्ठाकी संक्रांतियें कही हैं यानी वृश्चिक, मकर, कुंभ, मेष, वृषभ, मिथुन यह छ. संक्रांति कही हैं. (वो कालीदासकृत ग्रंथकी टीका जैनाचार्यने की हैं.) पुनः प्रतिष्ठाविधिके पंचांगमें सावन महीनाभी लिखा है, और सावन महीनेमें प्रतिष्ठा बड़ेबड़े भी मंदिरोंमें देखनेसें मालूम होती है. तत्त्व केवलीगम्य अपने सिद्धांतोंमें पूर्णमासीके दिन पूरा महीना होनेकी मर्यादा है, उससें मुहूर्त्तभी उसी मुवाफिक लेना.

तिथियें सामान्य रीतिसें शुक्लपक्षकी १० मीसें लगाकर कृष्णपक्षकी पंचमी तक उत्तम कही हैं. और १-२-५-१०-१३-१५ ये शुक्लपक्षकी और १-२-५ यें कृष्णपक्षकी सुंदर कही हैं.

वार—सोम, बुध, गुरु और शुक्र ये सुंदर कहे हैं. तथापि दूसरी तीथि और वार सिद्धियोगसें युक्त होवे तो लग्नशुद्धिमें सुखदायक कहे हैं.

फिर आरंभसिद्धिकी बडी टीकामें एक मंगलवारको छोडकर सब वार प्रतिष्ठामें लिये हैं; वास्ते बलवान् योग होवे तो तिथि वारका नियम नहीं है.

प्रतिष्ठामें-मघा, मृगशिर्ष, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, अनुराधा, रेवती, श्रवण, मूल, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, स्वाती, और धनिष्ठा ये नक्षत्र लेना.

कुंभस्थापनमें रवि नक्षत्रसें प्रथमके पांच नक्षत्र छोडकर पीछेके आठ नक्षत्र और उस पीछेके आठ छोडकर उस पीछेके छ नक्षत्र यह चौदह नक्षत्र कुंभचक्रके हैं. उसमें कुंभस्थापनका मुहूर्त्त करना. पहेले पांच और आठ पीछेके आठ वर्जित करने योग्य है.

ऊपर प्रतिष्ठा नक्षत्र कहे हैं, उस अंदरका प्रतिष्ठा करानेवालेके जन्मनक्षत्रसें १०-१६-१७-१८-२३-२५ होवै तो काममें न लेना.

आडल योग सो रवि नक्षत्रसें १-७-९-१६-२१-२३-२८ यह नक्षत्र होवै तो आडलयोग होता है. वो परदेश जानेके वक्त वर्जित है. ओर दूसरे कामोंमेंभी वर्जित किया जाय तो अच्छा है.

वार तिथि नक्षत्रोंके संयोगसें जो जो कुयोग होते हैं वोभी वर्जित है. वो योग नीचेके कोष्टकसें ध्यानमें लिजीयेः—

	रवि	सोम.	मंगळ.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	कुयोगो.
तिथि.	७	६	५	४	३	२	१	कुलिकयोग
,,	५	४	३	२	१	७	६	उपकुलिकयोग.
,,	३	२	१	७	६	५	४	कंटकयोग.
,,	४	७	२	५	८	३	६	अर्धप्रहर.
,,	८	३	६	१	४	७	२	कालसमय.
,,	१२	११	१०	९	८	७	६	कर्कयोग.
नक्षत्र.	मघा.	विशा.	आर्द्रा.	मूल.	कृति.	रोहि.	हस्त.	यमघंट.
,,	विशा.	पू. षा.	धनि.	रेव.	रोहि.	पुष्य.	उ. फा.	उत्पातयोग.
,,	अनु.	उ. षा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	मृत्युयोग.
,,	ज्येष्ठा.	अभि.	पू. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	चित्रा.	काणयोग.
तिथि.	७	७	०	१-२	६	३	७	संहत योग.
नक्ष.	मघा.	चि.	उ. षा.	धनि.	उ. फा.	पुष्य.	रेव.	वार, नक्षत्र निषेध.
,,	ज्ये.मघा	पू. षा.	शत.	पू. भा.	रो. मृ.	रो. मृ	उ. षा.	
,,	वि. अ.	विशा. उ. षा.	आर्द्रा. धनि.	मू. आ. भरणी.	आर्द्रा. शत.	अश्ले. पू. षा.	ह. चि. पू षा.उ.	
तिथि.	९ ह.	६ मृ.	७ अश्वि.	८ अनु.	९ पुष्या.	१० रेव.	११ रो.	महा मृत्यु योग.

उपरके कोष्टकमें बुरे योगोंका संयोग बतलाया है. जिसमें कुलिकयोग होता है सो चार्‌ घडी होता है सो प्रतिपदाके रोज पहेले चोघडीयेमें, बीजके रोज दूसरे चोघडियेमें, ऐसे सातमके रोज सातवे चोघडियेमें होता है. और उपकुलिक, कंटक, अर्धप्रहर, कालसमय, ऐसे ऐसे कोष्ट-कमें तिथिके संयोगसें कुयोग होते है वो जिस तिथिके संयोगसें हो उस तिथिकी संख्यावाले चोघडियेमें वो योग रहता है. उस वक्तके सि-वाका वक्त अच्छा गिना जाता है. दूसरेभी कुयोग निचे मुजब है:—

रवि.	सोम.	मंगळ.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	(कुयोग)
भर.	आर्द्रा	मघा.	चित्रा.	ज्येष्ठा.	अभि.	पू. भा.	कालदंडयोग.
आर्द्रा.	मघा.	चित्रा.	ज्येष्ठा.	अभि	पु. भा.	भर.	ध्वांक्षयोग
अश्ले.	हस्त.	अनु.	उ. षा.	शत.	अश्वि	मृग.	वज्रयोग.
मघा.	चि.	ज्ये.	अभि.	पु. भा	भर	आर्द्रा.	मुद्गरयोग
चित्रा.	ज्ये.	अभि.	पु. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	कंपयोग.
स्वा.	मूळ.	श्रव.	उ. भा.	कृति.	पुनर्व.	पु फा	लुंपकयोग.
वि.	पु. षा	धनि.	रेव.	रोहि.	पुष्य	उ फा	प्रवासयोग.
अनु.	उ. षा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त	मरणयोग.
ज्ये.	अभि.	पु. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	चि.	व्याधयोग
पू. षा.	धनि.	रेव.	रोहि-	पुष्य	उ. फा	विशा.	शूलयोग.
अभि.	पु भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	चि.	ज्ये.	मूसलयोग.
शत.	अश्वि	मृग.	अश्ले.	हस्त.	अनु.	उ. षा	क्षययोग.
पु. भा.	भर.	आर्द्रा.	मघा.	चि.	ज्ये.	अभि	क्षिप्रयोग

यमलयोग वर्जित है, सो गुरु, मंगल और शनि इनमेंसे कोइ वार और तिथि २-७-१२ होय, और मृग, विशाखा, धनिष्ठा इनमेंसे कोइ नक्षत्र होवे जब होता है सो तीनूके योगसे वर्जित है.

त्रिपुष्कर योग-सो २-७-१२ तिथि, गुरु, मंगल, शनिवार, और कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र होवे इन तीनू योगसे होता है सो त्यागने योग्य है.

गुरु शुक्रके अस्तमें प्रतिष्ठा, उद्यापन करनेका निषेध है. और दीक्षा शुक्रके अस्तमें देनी संभवित है; क्यों कि लग्नशुद्धिमें शुक्र निर्बल लेना ऐसा कहा है. (तो अनिर्बल है.) और प्रतिष्ठादिमें गुरु, शुक्र बाळ या वृद्ध हो वो दिनभी त्यागने योग्य हैं.

गुरु, शुक्रका पूर्वदिशामें उदय होवै तो तीन दिन तक बाल समझना और पश्चिम दिशामें उदय होवे तो दस दिनतक बाल समझना.

गुरु, शुक्रका पूर्व दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पंद्रह दिन वृद्ध समझ लेना. और पश्चिम दिशामें अस्त होवै तो उस पहेलेके पांच दिनको वृद्ध जान लेना. उन दिनोंमें मुहूर्त नहीं देना.

आरंभसिद्धि ग्रंथमें गुरु आश्री बाल और वृद्ध दोनुके पंद्रह दिन त्याग करनेका कहा है. और अन्यदर्शनमें गुरु और शुक्रके दिन समान कहे हैं. १०-७-३ दिन. इस तरह मुहूर्तसिद्धिमेंभी कहा है.

गुरु मंदिरमें प्रवेश करते जिन दिशामें उदय होवे सो सन्मुख भावसे और दक्षिण-दाहिना हो तो अवश्य त्याग देना;मगर कभी अंध शुक्र होवै तो हरकत नहीं. ऐसा आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है. दूसरे दो प्रकारके शुक्र त्याग किये जांय तो त्याग देने चाहियें यानी संक्रांतिमें वर्त्तता हो-[जिस संक्रांतिमें हो सो देखो] और सन्मुख आवे तो त्यागने-योग्य है. और नक्षत्रमें वर्त्तता हो सो कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा-इन नक्षत्रोंके दिन पूर्वदिशामें शुक्र होवै, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा-इन नक्षत्रोंमें दक्षिण दिशामें होवै, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्त-

राषाढा, अभिजित्, श्रवण–इन नक्षत्रोंमें पश्चिम दिशामें. और धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी–इन नक्षत्रोंमें याने इन नक्षत्रोंके दिनमें उत्तर दिशामें शुक्र होवै. मुहूर्त नक्षत्र जो होवै वो देखनेसें सन्मुख शुक्र आवे तो त्यागदेना.

रविनक्षत्र चलतां होवै उससें सातवा नक्षत्र होवै सो भस्मयोग कहा जाता है; वास्ते वो नक्षत्र नहीं लैना. धूलसें आकाश ढक गया हो याने सूर्य धूलसें आच्छादित हुवा हो वो दिनभी मुहूर्त्तमें निषेध है. संक्रांति लगे उसका पहेला और पीछेका एक दिन और संक्रांति लगे वो दिन छोड देना चाहियें.

बदल उमंड आकर गर्जारव होता हो, विजुली चमती हो या कडाके होते हो, या इंद्रधनुष मालूम होता हो, सूर्य चंद्रके पीछे [चोगिर्द] जलकुंडा–गोल चक्र मालूम देता हो और आकाश रक्तवर्णका बन रहा हो तो वो दिन या अकालवृष्टि हुइ हो वो दिन त्याग देनाही योग्य है.

ग्रहणके सात दिन याने ग्रहण हुवे पहेलेके तीन दिन, एक ग्रहण हुवा हो वो दिन और ग्रहण हुवे बादके तीन दिन युं मिलकर सात दिन ग्रहण दग्ध तिथिके कहे जाते है उन दिनोंमेंभी मुहूर्त्त नहीं लैना. मगर खग्रास याने चंद्र सूर्य पूरा ढक गया हो तो या आधा ढक गया हो तो तीन दिन गोचरशुद्धि देखनी–उसकी हकीकत नीचे मुजब है:—

जिस राशिमें गुरु होवै सो राशि प्रतिष्ठा करानेवालीकी जन्मराशिसें २–५–७–९–११ वें ठौर हो तो श्रेष्ठ है.

जिस राशिका चंद्र हो सो जन्मराशिसें १–३–६–७–१०–११–२–५–९ वे ठौर हो तो वोभी अच्छा है. [प्रभुजीकी राशिसें प्रभुजीकाभी देखना.]

जिस राशिका रवि हो सो जन्मराशिसें ३–६–१०–११ वें ठौर हो तो अच्छा समझना.

इस तरह प्रतिष्ठा करानेवालेको गुरु, चंद्र और रवि ये तीनू देखने चाहियें. प्रतिमाजी महाराजको चंद्र बल देखना; मगर जो कृष्णपक्ष हो

सो तारा बल देखना सो नीचे मुजब है:—

जन्म नक्षत्रसें गिनना—सो जन्म नक्षत्र आश्विनी है तो दसवा नक्षत्र मघा आया ऐसें गिनना.

तारा.	नक्षत्र.	नक्षत्र.	नक्षत्र.	अच्छी, निर्बल तारा.
१	१	१०	१९	शुभ तारा, नक्षत्रमें मुहूर्त्त देना.
२	२	११	२०	शुभ.
३	३	१२	२१	अशुभ.
४	४	१३	२२	शुभ.
५	५	१४	२३	अशुभ.
६	६	१५	२४	शुभ.
७	७	१६	२५	अशुभ.
८	८	१७	२६	शुभ.
९	९	१८	२७	शुभ तारा कही उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करना.

समझ यह है कि जन्मनक्षत्रसें १–१०–१९ वा नक्षत्र हो तो १ तारा—इसी तरह दो तीनँ वगैरः समझ लैना.

अब जिसका जन्म नक्षत्र हो तो उसका जो नाम हो उस परसें अक्षर—अवकहोडा चक्रसें देखकर नक्षत्र निकालना सो निचें मुजबः—

चू, चे, चो, ला, अश्विनी. ली, लु, ले, लो, लौ, ले, भरणी. अ, ई, ऊ, ए, ऐ, कृतिका. ओ, वा, वी, वु, रोहिणी. वे, वो, का, की मृगशिरा. कु, घँ, ङ, छ, आर्द्रा. के, को, ह, ही, पुनर्वसु. हु, हे, हो, डा, पुष्य. डी, डु, डे, डो, अश्लेषा. म, मी, मु, मे, मघा. मा, टी, टु, टे,

पूर्वाफाल्गुनी. टे, टो, प, पी, उत्तराफाल्गुनी. पु, प, ण, ठ, हस्त. पे, पो, र, री, चित्रा. रु, रे, रो, ता, स्वाति. ती,तु, ते, तो, विशाखा. न, नी, नु, ने, अनुराधा. नो, य, यी, यु, ज्येष्ठा. ये, यो, भ, भी, मूल. भू, ध, फ, ढ, पूर्वाषाढा. भे, भो, ज, जी, उत्तराषाढा. जु, जे, जो, खा, अभिजित्. खी, खु, खे खो, श्रवण. ग, गी, गु, गे, धनीष्ठा. गो, स, सी, सु, शतभिषा. से, सो, द, दी, पूर्वाभाद्रपद. दु, श, झ, थ, उत्तराभाद्रपद. दे, दो, च, ची, रेवती. इस मुजब नामके अक्षर है याने एक नक्षत्रके चार पाये होते है और उन चारों पायेमेंसें जिस पायेमें जन्म हुवा हो उसी पायेके अक्षर मुजब नाम रख्खा जाता है जैसें अश्विनीके पहेले चरणमें जन्म है तो चूनीलाल नाम आयगा. सदूरेमें जन्म होगा तो चेतराम आयगा. तीसरेमें होगा तो चोथमल्ल आयगा और चौथे चरणमें जन्म होगा तो लाभचंद्र नाम आयगा. इस मुजब नक्षत्र पांद देखकर नामका नक्षत्र निकाल लेना.

मुहूर्तके दिन विष्टि होवे तो वो संक्रांतिमें देखना. उसमें स्वर्गमें भद्रा हो तो जो कार्य करे सो सिद्ध होवे. पातालमें भद्रा हो तो कार्यकी सिद्धि होवे; मगर मनुष्यलोकमें भद्रा हो तो कार्य न करना–करनेसें हानी होती है.

योगिनी देखनी सो सन्मुख हो तो अवश्य छोड देनी. दाहिने हो तोभी त्याग देनी और पृष्ट भाग बाए आगकी हो तो लेनी योग्य है.

काल और पास सन्मुख हो तो त्याग देना. (वो तिथियोंमें बतलाया है सो वहांसें देख लेना.) यह वास्तु शास्त्रमें देखनेका कहा है. विशेष जिनमें देखना नहीं कहा है–ऐसा प्रतिष्ठा टीपणीमें लेख है.

घातचंद्र, घातनक्षत्र, घाततिथि और घातमहीना त्यागदेनेका हुकम है.

राहु सूर्योदयसें चार घडी पहेलें पूर्वदिशामें रहे, बाद चार घडी वायुकोनेमें, बाद चार घडी दक्षिणमें, बाद चार घडी इशान कोनेमें, बाद चार घडी पश्चिममें, बाद चार घडी अग्नि कोनेमें, बाद चार घडी उत्तरमें, और पीछे चार घडी नैऋत कोनेमें–इस तरह दिन और रातमें अष्ट दिशामें फिरता हुवा रहता है.

संक्रांतिमें क्या देखना ? सो नीचे मुजब हैः—

राहु सन्मुख वर्जित है. तथा वच्छ सन्मुख और मंदिरमें प्रवेश करते पीछे हो सो त्याग देना.

मेष संक्रांतिमें-राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें और विष्टि स्वर्गमें, तथा छट्ट रविदग्ध.

वृष संक्रांतिमें-राहु दक्षिनमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र उत्तरमें, विष्टि स्वर्गमें और चौथ रविदग्ध.

मिथुन संक्रांतिमें-राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, विष्टि पातालमें, शुक्र उत्तरमें और अष्टमी रविदग्ध.

कर्क संक्रांतिमें-राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र उत्तरमें, विष्टि पातालमें और छट्ठी रविदग्ध.

सिंह संक्रांतिमें-राहु पश्चिममें, वच्छ उत्तरमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध.

कन्या संक्रांतिमें-राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पातालमें और अष्टमी रविदग्ध.

तुला संक्रांतिमें-राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र पूर्वमें, विष्टि पातालमें और द्वादशी रविदग्ध.

वृश्चिक संक्रांतिमें-राहु उत्तरमें, वच्छ पूर्वमें, शुक्र दक्षिनमें विष्टि मनुष्यलोकमें और दशमी रविदग्ध.

धन संक्रांतिमें-राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें विष्टि पातालमें और बीज रविदग्ध.

मकर संक्रांतिमें-राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र दक्षिणमें, विष्टि स्वर्गमें और द्वादशी रविदग्ध.

कुंभ संक्रांतिमें-राहु पूर्वमें, वच्छ दक्षिणमें, शुक्र पश्चिममें, विष्टि मनुष्यलोकमें और चौथ रविदग्ध.

मीन संक्रांतिमें-राहु दक्षिणमें, वच्छ पश्चिममें, शुक्र पश्चिममें, विष्टि मृत्युलोकमें और बीज रविदग्ध.

तिथियोंके साथ कुयोग होवें सो त्यांग देनेका खुलासा नीचे मुजब है:—

प्रतिपदाके रोज मूल नक्षत्रके योगसें ज्वालामुखी योग होता है सो वर्जित है. योगिनी पूर्वमें, पाश शूदिमें पूर्वमें वदिमें वायुकोनेमें, काल शूदिमें पश्चिममें और वदिमें अग्निकोनेमें रहता है.

बीजके रोज अनुराधा नक्षत्रके संयोगसें वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. धन और मीनके चंद्रसें चंद्रदग्ध बीज, योगिनी उत्तरमें, पाश शूदिमें अग्निकोनमें वदिमें उत्तरमें, काल शूदिमें उत्तर और वदिमें वायु कोनमें होता है.

त्रीजके रोज उत्तरा (उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये तीनु) के योगसें वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है. योगिनी इशानमें, पाश वदिमें इशान और शूदिमें दक्षिणमें, काल शूदिमें उत्तर और वदिमें नैऋतमें होता है. तीज और अनुराधा नक्षत्रके योगसें कालमुखी योग होता है सोभी वर्जनीय है.

चतुर्थीके रोज तीनु उत्तराके संयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. वृषभ, कुंभके चंद्रसें चंद्रदग्ध तिथि, योगिनी नैऋतमें, पाश शूदिमें नैऋतमें, वदिमें अधोलोकमें; काल वदिमें उर्द्ध और शूदिमें इशानमें होता है.

पंचमीके रोज भरणी नक्षत्रके संयोगसें ज्वालामुखी और मघाके संयोगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शूदिमें पश्चिम और वदिमें अधोलोकमें, काल शूदिमें पूर्व और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

छठ्ठके रोज रोहिणीके संयोगसें वज्रपात योग होता है सो वर्जनीय है. कर्क और मेषके चंद्र साथसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी पश्चिममें, पाश शूदिमें वायुकोन और वदिमें पूर्वमें, काल शूदिमें अग्निकोन और वदिमें होता है.

सप्तमीके रोज हस्त और मूल नक्षत्रके योगसें वज्रपात योग होता है सो त्याग देना. योगिनी वायव्य कोनेमें. पाश शूदिमें दक्षिण और वदिमें अग्नि कोनेमें, काल शूदिमें दक्षिण और वदिमें वायुकोनेमें होता है.

अष्टमीके रोज कृत्तिका नक्षत्रसें ज्वालामुखी और रोहिणीके योगसें कालमुखी योग होता है सो त्याग देना. मिथुन कन्याके चंद्र संगसें चंद्रदग्ध तिथि होती है, योगिनी इशानमें, पाश शुदिमें इशानमें और वदिमें दक्षिणमें, काल शुदिमें नैऋत और वदिमें उत्तरमें होता है.

नौमीके रोज रोहिणीके योगसें ज्वालामुखी और कृत्तिकाके योगसें कालमुखी योग होता सो वर्जनीय है. योगिनी पूर्वमें, पाश शुदिमें उर्द्धलोक और वदिमें नैऋतमें, काल शुदिमें अधोलोक और वदिमें इशानमें होता है.

दशमीके रोज अश्लेषाके योगसें ज्वालामुखी योग होता है सो त्याग देना वृश्चिक, सिंहचंद्रसंगसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी पूर्वमें, पाश शुदिमें अधोलोक वदिमें पश्चिममें, काल शुदिमें उर्द्धलोक और वदिमें इशानमें होता है.

एकादशीके रोज योगिनी अग्निकोनेमें, पाश शुदिमें पूर्व, वदिमें वायुकोनेमें होता है. काल शुदिमें पश्चिम और वदिमें अग्निकोनेमें होता है.

द्वादशीके रोज तुला, मकरके चंद्रसें चंद्रदग्ध तिथि होती है. योगिनी नैऋतमें; पाश शुदिमें अग्निकोन और वदमें उत्तरमें होता है. काल शुदिमें वायुकोन और वदिमें दक्षिण दिशामें होता है.

तृयोदशीके रोज चित्रा नक्षत्रके योगसें यमकांत योग होता है सो त्याग देना. योगिनी दक्षिणमें, पाश शुदिमें दक्षिणमें और वदिमें इशानमें होता है. काल शुदिमें उत्तरमें और वदिमें नैऋतमें होता है.

चतुर्दशीके रोज योगिनी पश्चिममें, पाश शुक्लपक्षमें नैऋतमें और कृष्णपक्षमें उर्द्धलोकमें होता है. काल शुक्लपक्षमें इशानमें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

पूर्णमासीके रोज योगिनी वायव्य कोनेमें, पाश शुक्लपक्षमें पश्चिममें वदिमें अधोलोकमें होता है, और काल शुदिमें पूर्वदिशामें और वदिमें उर्द्धलोकमें होता है.

चंद्रदग्ध तिथि लग्नशुद्धि प्रकरण मुजब लिखी गइ है. दूसरे ग्रंथोमें दूसरी तरहसेंभी चंद्रदग्ध तिथिका लेख है.

चंद्रमा देखना सो मंदिरमें प्रवेश करनेके दिन दाहिनी बाजु या सन्मुख लैना. सो मेष, सिंह, धनका चंद्र पूर्वदिशामें वृषभ, कन्या, मकरका दक्षिणमें. मिथुन, तुला, कुंभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चंद्र उत्तर दिशामें रहता है.

सत्ताइस योगमेंसे अशुभ योगोंकी घडी त्यागनी सो विष्कुंभकी, शूलकी और गंड योगकी पहेली पांच घडी, अतिगंजकी छ घडी, व्याघात, वज्रयोगकी नौ घडी, परिघकी १० घडी और वैधृत, व्यतिपातकी सवी घडी त्याग देनी चाहियें

आरंभसिद्धिके अनुसारसें सिद्धियोग और अमृतसिद्धियोग नीचे मुजब होता है:—

तिथि	वार.	नक्षत्र.	नक्षत्र.
१–८–९	रविं.	हस्त.	पुन रे. रो. मृ. ३ उत्तरा. पुष्य. मू. अश्वि. ध.
२–९	सोम.	मृग.	रो. अनु उफा. हस्त. श्र. विशा. पुष्य. शत.
३–८–१३–६	मंग.	अश्वि.	रो. उभा. मू. उफा. कृ. मृ. पुष्य. अनु. अश्ले.
२–७–१२–६	बुध.	अनु.	श्र. ज्ये. पुष्य. ह. उफा. कृ. मृ. रो पुफा. उभा.
५–१०–१५–११	गुरु.	पुष्य.	अश्वि. पुन. पूर्वा. ३ अश्ले. ध. रे. स्वा. वि. अनु.
१–६–११–९	शुक्र.	रेव.	अश्वि. पुषा. उषा. अनु. श्र. ध. पुफा. हस्त.
४–८–१४–९	शनि.	रोहि.	श्र. ध. अश्वि. स्वा. पुष्य. अनु. मघा. शत.
१	२	३	४
ये तिथि और वारके संयोगसें सिद्धियोग होता है.	ये वार और नक्षत्रके संयोगसें अमृतसिद्धियोग होता है.		ये वार और इन नक्षत्रोंके संयोगसें सिद्धियोग होता है. औरभी सिद्धियोग लग्नशुद्धिके मुजब आगे लिख दिया गया है आरंभसिद्धि और लग्नशुद्धिमें सिद्धियोगका मिलाप नहीं मिलता है–सो तत्त्व केवलीगम्य है.

लग्नशुद्धि ग्रंथ मुजब सिद्धियोग.

तिथि.	वार.	नक्षत्र.	तिथि.	वार.
८	रवि.	हस्त. ३ उत्तरा. मू.	१-६-११	शुक्र.
९	सोम.	रो. मृ. पुष्य. अनु. श्र.	२-७-१२	बुध.
१-६-८-१३	मंग.	उभा. अश्वि. रेव.	३-८-१३	मंगल.
७-२-१२	बुध.	कृत्ति. रोहि. मृ. पुष्य. अनु	४-९-१४	शनि.
१०-२-१५	गुरु.	अश्वि. पुष्य. पुन. अनु. रे.	५-१०-१५	गुरु.
७-६-११-१३-१	शुक्र.	रेव. अनु. श्रवण.	नारचंद्रके मतसें इन " तिथि वारांके संयोगसें " सिध्धियोग होता है.	
१-९-१४	शनि.	रो. श्रव. स्वाति.		
ये तिथि वारके संयोगसें और ये वार नक्षत्रके योगसें सिद्धियोग होता है.				

आनंदादिं शुभ योगका कोष्टक.

रवि.	सोम.	मंग.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि	शुभ योगके नाम.
अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	अनु	उपा.	शत.	आनंदयोग.
कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा.	मूल.	श्रव.	उभा.	प्रजापतियोग.
रो.	पुष्य.	उफा	विशा.	पुष्य.	धनी.	रेव.	शुभयोग.
मृग.	अश्ले.	हस्त.	अनु.	उपा.	शत.	अश्वि.	सौम्ययोग.
पुन.	पुफा.	स्वा.	मूल.	श्रव.	उभा.	कृत्ति.	ध्वजयोग.
पुष्य.	उफा.	विशा.	पुपा.	धनी.	रेव.	रोहि.	श्रीवत्सयोग.
पुफा.	स्वा.	मूल.	श्रव.	उभा.	कृत्ति.	पुन.	छत्रयोग.
उफा.	विशा	पुपा,	धनी.	रेव	रो.	पुष्य	मित्रयोग.
हस्त.	अनु	उपा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	मनोज्ञयोग.
मूल.	श्रव.	उभा.	कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा.	सिद्धियोग.
उपा.	शत.	अश्वि.	मृग.	अश्ले.	हस्त.	अनु	अमृतसिद्धियोग.
श्रव.	उभा.	कृत्ति.	पुन.	पुफा.	स्वा.	मूल.	गजयोग.
उभा	कृत्ति	पुन.	पुफा.	स्वा	मूल.	श्रव	स्थिरयोग.
रेव.	रो.	पुष्य.	उफा.	विशा,	पुषा.	धनी	वर्द्धमानयोग.
धनी	रेव.	रो.	पुष्य.	उफा.	विशा	पुपा	मातंगयोग.

रवियोगकी, कुमारयोगकी और राजयोगकी महत्त्वता अपने योतिषके ग्रन्थोंमे बहुतसी की है. ये योगोंमें काम करनेसें अतिशय उत्तम फल कहा है ये योग होवे और दूसरे कुयोग होवें तो वो कुयोग हरकत नहीं कर सकता है.

रवियोग सो-चलते सूर्यनक्षत्रसें ४-६-९-१०-१३-२० इस अंकका कोइ नक्षत्र हो तो रवियोग होता है.

कुमारयोग सो-मंगलवार, बुध, सोम, शुक्र, तिथि १-६-१०-११-५, नक्षत्र अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, इन वारमेंसें कोइ वार, इन तिथिमेंसें कोइभी तिथि और इन नक्षत्रमेंसें कोइभी नक्षत्र आवे तो कुमारयोग होता है.

राजयोग सो-रविवार, मंगल, बुध, शुक्र, २-७-१२-३-१५ ये तिथिके दिन भरणी, मृगशिर्ष, पुष्य, पुर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पुर्वाषाढा, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद-इन नक्षत्रोंमेंसें कोइ नक्षत्र और उपर बतायेगये वारका संयोग हो जानेसें राजयोग होता है, सो बहुतही उत्तम माना जाता है.

स्थिविरयोग सो-अनशन करनेमें, रोगनिवारण निमित्त औषध करनेमें उत्तम कहा है वो गुरु, शनीवार तथा १३-८-४-९-१४ तिथि, और कृत्तिका, आर्द्रा, अश्लेषा, उत्तराफाल्गुनी, स्वाति, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, शतभिषा, रेवती ये नक्षत्रके याने उपर कहे हुवे वार-तिथि-नक्षत्रके संयोगसें स्थिविर योग होता है

मुहूर्त्तके नक्षत्रोंमें दूषित नक्षत्र लग्नशुद्धिप्रकरणमें कहे हैं सो निचे मुजब:—

१ संजागत याने जो नक्षत्र सूर्यास्तके समय उदय होवै उसकों संजागत नक्षत्र कहा जाता है सो वर्जनीय है.

२ आदित्यगत याने जिस नक्षत्रका सूर्य हो उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करै तो निवृत्ति न पावे, वास्ते वर्जनीय है.

३ बडे बडे सो अभिजित् नक्षत्रसें सात नक्षत्र पूर्व दिशाके, उस पीछेके सात दक्षिण दिशाके, उस पीछेके सात पश्चिम दिशाके और उस बाद सात उत्तर दिशाके-इस तरह स्थापन करकें देखै और प्रभुजी

विराजें उन्होंके सन्मुख नक्षत्र आवे उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करना सो सुंदर है. सन्मुख सिवाके वो वंठ वंठ नक्षत्रोंमें कार्य करे तो शत्रका जय और आपकी हानी होवै.

४ संग्रह सो-क्रूर ग्रह सहित जो नक्षत्र हो सो वर्जनीय है. उस नक्षत्रमें कार्य करै तो विघ्न होवै.

५ विलंबीए-सो सूर्यनक्षत्रके पीछेके नक्षत्रमें कार्य करै तो विवाद होवे.

६ राहुहत-सो जिस नक्षत्रपर ग्रहन हो वो नक्षत्रमें कार्य करै तो मरण होवै.

७ ग्रहभिन्न सो-नक्षत्रके बीचमें होके ग्रह जावे उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त करै तो लोही-रुधिर वमै.

रोहिणीवेध यंत्र.

कृ. रो. मृ. आ. पु. पु. अ.

उपरकी रेखामें नक्षत्र लिखे हैं उस नक्षत्रपर मुहूर्त्तके दिन जो जो नक्षत्रपर ग्रह हो वो ग्रह नक्षत्रपर लिख और पीछे तपासना कि जिस नक्षत्रपर चंद्रमा होवै उस लकीरकी सन्मुखके नक्षत्रपर कोइभी ग्रह होवै तो वो वेध समझना. और चंद्रवाले नक्षत्रमें मुहूर्त्त नहीं करना. वो नक्षत्र छोड देना. अभिजित नक्षत्रपर कोइभी ग्रह न हो तोभी उत्तराषाढाके चतुर्थ पादमें जो ग्रह हो वो या श्रवण नक्षत्र वैठनेके वक्तसें लगा चार घडी तक जो ग्रह हो वो ग्रह अभिजितपर समझना; क्यों कि उत्तराषाढाका चतुर्थपादकों श्रवण वैठतें चार घडी तककोंही अभिजित नक्षत्र कहा है. इस मुजव रोहिणीवेधका नक्षत्र त्याग देना.

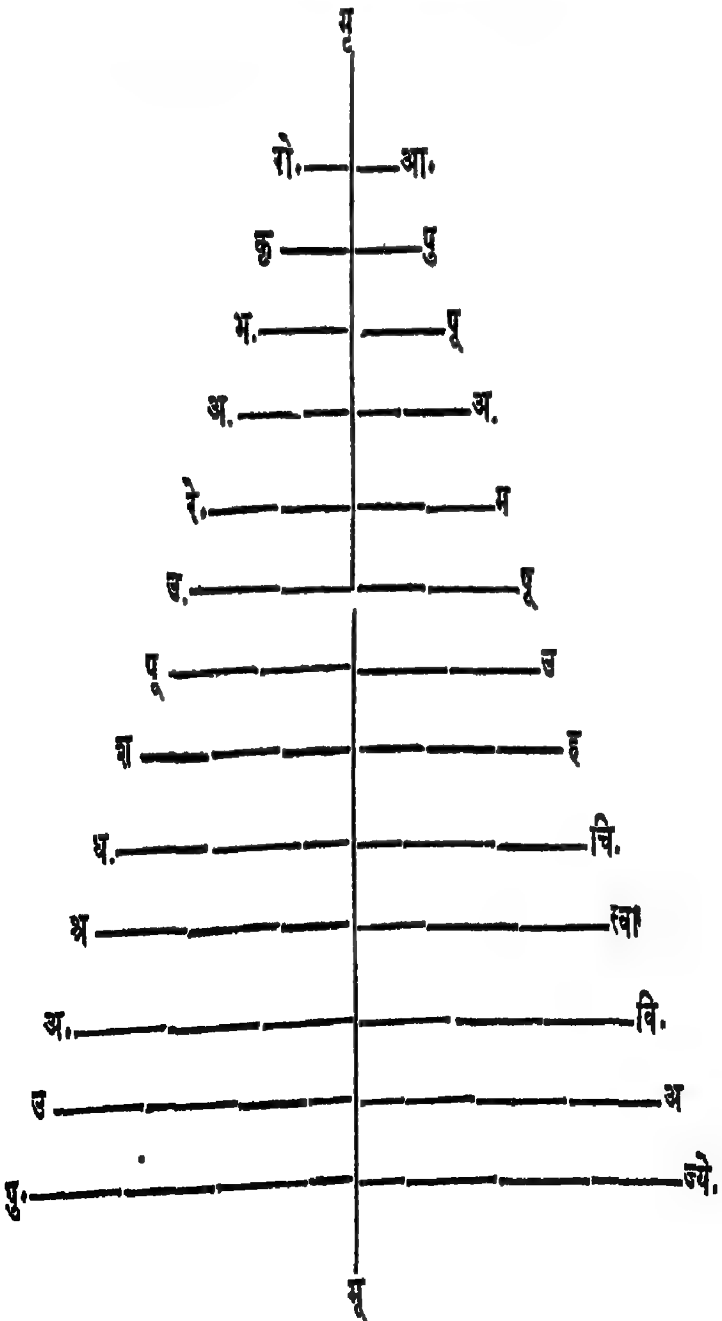
उपग्रह सो-सूर्यनक्षत्र जो वर्त्तमान हो उस नक्षत्रसें ५-१४-१८-१९-२२-२१-२४ इसके अंदरका कोइ नक्षत्र होवै तो वो उपग्रहवेध कहा जाय वास्ते वोभी वर्जनीय है.

लत्ता सो लत्ता प्रतिष्ठा करानेवालेके या दीक्षा लेनेवालेके जन्मनक्षत्रसें वारहवे नक्षत्रपर रवि होवै और तीसरे नक्षत्रपर मंगल, छट्ठे नक्षत्रपर गुरु और अष्टम नक्षत्रपर चंद्र होवै तो उस नक्षत्रमें मुहूर्त्त नहीं करना. उसीतरह वुध जन्मनक्षत्रसें सप्तम नक्षत्रपर होवै, शुक्र पांचवे नक्षत्रपर, राहु नवम नक्षत्रपर, पूर्णिमाका चंद्र वाइसवे नक्षत्रपर हो सो नक्षत्रभी वर्जनीय है-और यह लत्ता दोष वंगालेमें अवश्य वर्जने योग्य है

पातदोष सो-सूर्यनक्षत्रसें अश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, श्रवण, रेवती, ये नक्षत्र जितनी संख्याका हो उतनी संख्यावाले नक्षत्रकों अश्विनीसें गिनना, वो जो नक्षत्र आवै सो पातदोष कहा जाता है जैसें कि अभी पुनर्वसुका सूर्य है तो उससें गिनती करतें अश्लेषा तीसरा आया तो अश्विनीसें तीसरा नक्षत्र कृत्तिकाकों पात कहा जाय; वास्ते वो वर्जनीय है और अवश्य करकें कौशल देशमें विशेष वर्जने योग्य है.

इकार्गल दोष सो-सत्ताइस योगमेंसें १-६-९-१०-१३-१५-१७-१९ और २७ इन योगके अंदरका जो योग हो वो योग जितनी संख्यावाला हो उतनी संख्यावाले नक्षत्रका अंक सम हो तो उसका अर्द्ध

करना. और विषम हो तो एक अंक चढाके अर्ध करना. युं करनेसें जो अंक आवै वो अंकवाला नक्षत्र यंत्रके मध्य रेखाके शिरपर स्थापना. और पीछे क्रमवार और नक्षत्रोंको स्थापदे पीछे जिस नक्षत्रपर सूर्य होवै सो सो नक्षत्रपर लिखना और चंद्रमा जिस नक्षत्रपर हो वो वहां लिखना. ये दोनु सामसामने आ जावै तो इक्कार्गल दोष कहा जाता है, वास्ते वर्जनीय है. यंत्र शुक्लमें योगमें हो तो मृगशिर्ष मध्यरेषाके शिर आता है. ये गौडदेशमें वर्जित है.



उपरके यंत्रमें जो शूलयोगपर मृगशिर्ष नक्षत्र रक्खा गया है, उसी तरह परिघयोगपर मघा, वैधृतपर चित्रा, व्याघातपर पुनर्वसु, वज्रपर पुष्य, विष्कुंभपर अश्विनी, अतिगंडपर अनुराधा, गंडपर मूल, और व्यतिपातपर अश्लेषा-इस मुजवसें जितनी संख्यावाला योग हो उतनी संख्यावाला नक्षत्र रखना.

उपर मुजवके दोष छोडकर प्रतिष्ठा, दीक्षाके मुहूर्त्तके नक्षत्र लेवै. दीक्षाके नक्षत्र लग्नशुद्धि मुजव लेना.

उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, शताभिषा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, मूल, अश्विनी, श्रवण, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें दीक्षा देनी. गुरुकों चंद्रवल देखना और शिष्यकों चंद्रवल, गुरुवल, रविवल जो प्रतिष्ठा करानेवालेके देखनेका जैसें बतलाया है वैसें देखना. दूसरा सब प्रतिष्ठा मुजवही करना.

यात्रा करने जानेके प्रयाणमें उत्तम आर मध्यम नक्षत्र नारचंद्रके टीप्पणमें नीचे मुजव है:—अश्विनी, पुष्य, रेवती, मृगशिर्ष, पुनर्वसु, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा और मूल ये उत्तम कहे हैं, और चित्रा, रोहिणी, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, तीनु पूर्वा, ये मध्यम कहे हैं. दीक्षाके वार रवि, बुध, शनि ये उत्तम है. इन सिवाके वारके दिन यदि सिद्धियोग वगैरः शुभ योग होवे तो लग्नशुद्धिमें वो वारभी उत्तम कहे हैं.

इसतरहकी दिवसशुद्धि देख करकें लग्नशुद्धि देखनी. उसमें छः वर्ग तक देखनी. और ग्रहका उदय, अस्त, बलभी देखना चाहियें. छ वर्ग नीचे मुजव है:—

ग्रह, होरा, दशकान, नवमांश, द्वादशांश, त्रीशांश इन छंउं जगेपर सौम्य ग्रह आवे तो उत्तम है. कदाचित् पांच वर्ग शुभ होवें तोभी मुहूर्त्त लेना. अब लग्नका प्रमाण निम्न लेख मुजव है:--

मीन और मेष लग्नकाल २१९ पल,

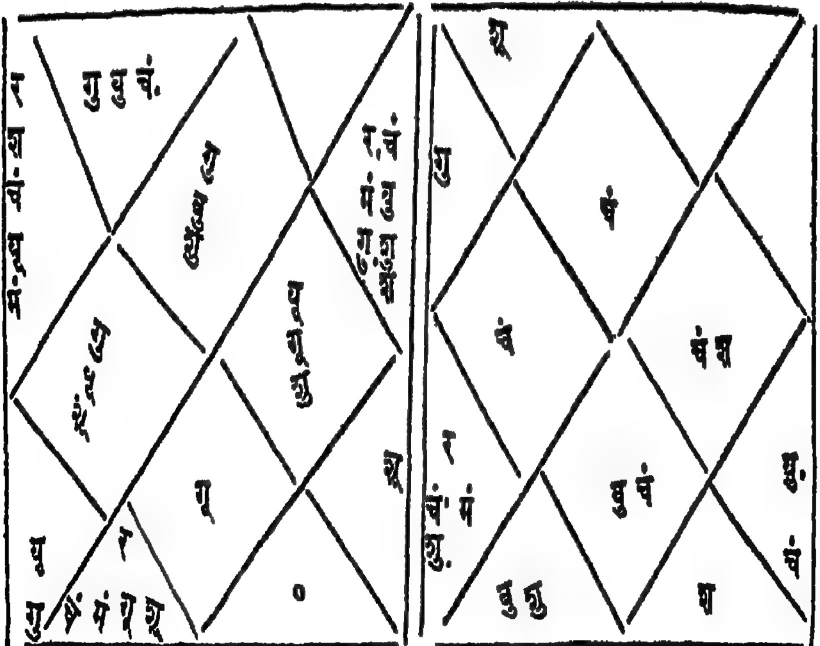
कुंभ, वृषभका २-१ पल,

मकर मिथुनका ३०१ पल,

वृश्चिक, सिंह लग्नका ३४७ पल, कन्या, तोलाका ३२७ पल, और धन, कर्क लग्नका ३४३ पलका काल है. अब लग्न निकालना होवे तो छपे हुवे पंचांगमें रवि कितने अंशसें है? वो देखकर पीछे पंचांगमें लग्नपत्रांके कोष्टकमें रवि कितने अंशसें है? वो देखना, और पीछे लग्नपत्रके कोष्टकमें जितने अंशसें रवि जिस संक्रांतिका हो, उसके कोठेमें जो अंक हो वो वो लग्न प्रातःकाल–सूर्योदय समय होनेका समझ लेना. पीछेका जो अच्छा लग्न होय वो कोठेमें जो अंक हो सो देखना, उसमें जितनी घडीकी विशेषता आवे उतनी घडी दिन चढनेसें वो अंक आवेगा ऐसा समझ लेना. पीछे कुंडली निकालकर जिस जिस राशिके ग्रह हो वो लिखना और वे ग्रह अच्छे या बुरे है कि कैसे? वो देखनेके लिये लग्नशुद्धि मुजब कुंडली की हैं उस मुजब देखना.

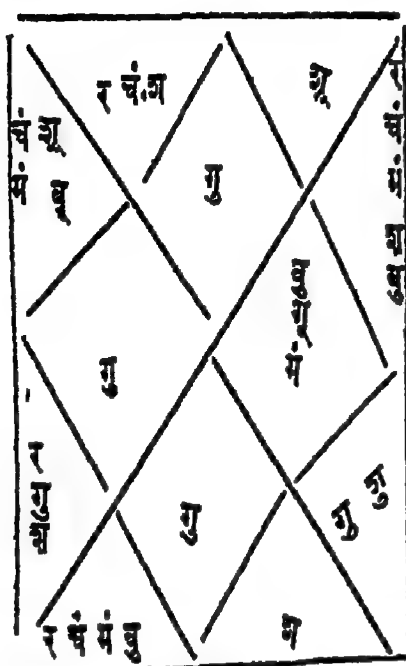
प्रतिष्ठा ग्रह नीचे मुजबः—

उत्तम— मध्यम.



उपर मुजब ग्रह होवे तो प्रतिष्ठा करनेमें श्रेष्ठ हैं. इस शिवाके स्थान पर ग्रह होवै तो कार्यकी हानीकर्त्ता कहे हैं. यह कुंडली आचार्यस्थापना, राज्याभिषेक, विवाह और अन्यभी शुभ कार्योंमें सुख देनेवाली है.

दीक्षाकी उत्तम कुंडली.



इस उत्तम कुंडलीमें ग्रह रक्खे हें उस मुजवके ग्रहोंमें दीक्षा देनी सो बहुतही श्रेष्ठ हे. मगर उस मुजबके ग्रह न हो तो दीक्षाकुंडलीमें शनी मध्यम बली हो गुरु बलवान हो और शुक्र निर्बल हो उसमें दीक्षा देनी उसका स्वरुप नीचे मुजब हैः—

शनि–२–५–६–८–११ इन स्थानोंपर मध्यम बली,

गुरु–१–४–७–१० इन स्थानोंपर बलवान,

शुक्र–६–१–२ इन स्थानोंपर निर्बल वो दीक्षामें अच्छा.

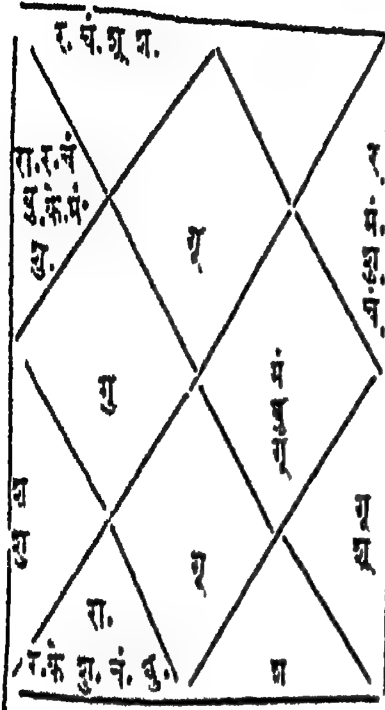
बुध–२–३–५–६–११ सुखदायक है.

मंगल–३–६–१०–११ इन स्थानोंमें हो तो दीक्षा लेनेवाला बहुत अच्छे ज्ञान तपयुक्त हो सकेगा ऐसा समझना.

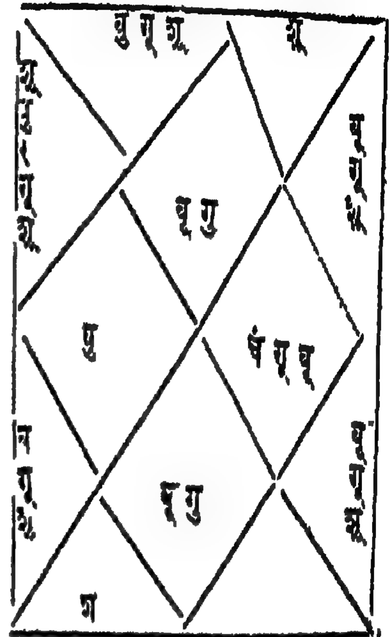
शुक्र, मंगल, शनि इन तीनमेंसें कोइसेंभी सप्तम भवनमें चंद्र हो तो अयोग्य हैं. दीक्षा लेनेवाला बेशक कुशीलीआ निकले और तप ज्ञानसें रहित होवे.

नारचंद्रमें दीक्षाकुंडलीऐं कही हैं उस मुजब कहता हुं. एक उत्तम कुंडली तो जैसें लग्नशुद्धिमें कही है उसी मुजब है और दूसरी ग्रंथांतर मुजब की हैः—

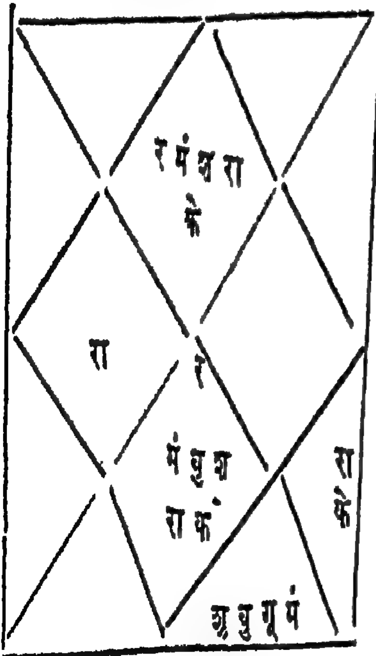
दीक्षाकी उत्तम कुंडली.



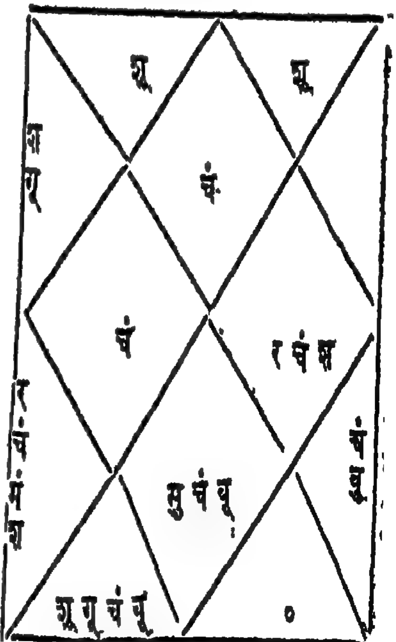
दीक्षाकी मध्यम कुंडली.



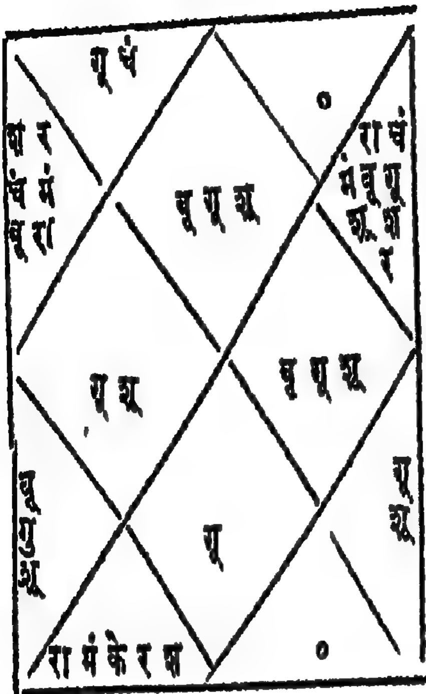
जघन्य.



मध्यम.



उत्तम.



इस लग्नकुंडलीमें उत्तम ग्रह आवे सो ग्रहशुद्धि.

होरा सो लग्न लिया गया हो उसके दो भाग करना. उसमे-१-३-५-७-९-११ इन संख्यावाला लग्न होवे तो पहेली होरा रविकी और दूसरी होरा चंद्रकी. और २-४-६-८-१०-१२ इन संख्यावाला लग्न हो तो पहेली होरा चंद्रकी और दूसरी होरा सूर्यकी. प्रतिष्ठा, दीक्षादिक चंद्रकी होरामें करना.

देशकाण सो-लग्नके तीन हिस्से करना, उसमें जो मेष लग्न लिया हो तो पहेला देशकाण मेषका, और इसीही तरह जो लग्न लिया हो उसीकाही पहेला देशकाण समझना. दूसरा देशकाण सिंहका, तीसरा धनका, वृष लग्नमें पहेला वृषका, दूसरा कन्याका, तीसरा मकरका, इस मुजब जो लग्न लिया हो उससे देख लेना. पीछे जो देशकाण आवे उसका स्वामी जन्मकुंडलीमें देखना और स्वामी अच्छे स्थानमें हो तो देसकाणमें मुहूर्त करना.

नवमांश देखना सो-जो लग्न होवे उनके पहेलेका जो होय उसके नौ भाग करना. उसमें पहेले हिस्सेका नवमांश जो मेष लग्न हो तो प-

हेले मेषका. १-२-३-४-५-६-७-८-९. जो वृष लग्न हो तो पहेला १०-११-१२-१-२-३-४-५-६. जो मिथुनका हो तो पहेला ७-८-९-१०-११-१२-१-२-३. जो कर्क लग्न हो तो पहेला ४-५-६-७-८-९-१०-११-१२. जो सिंह लग्न हो तो पहेला-१-२-३-४-५-६-७-८-९. कन्या लग्न हों तो पहेला-१०-११-१२-१-२-३-४-५-६. जो तुला लग्न हो तो पहेला-७-८-९-१०-११-१२-१-२-३ जो वृश्चिक लग्न हो तो पहेला-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२. जो धन लग्न हो तो पहेला-१-२-३-४-५-६-७-८-९. मकर लग्न हो पहेला १०-११-१२-१-२-३-४-५-६. जो कुंभ लग्न हो तो पहेला ७-८-९-१०-११-१२-१-२-३. जो मीन लग्नका हो तो पहेला ४-५-६-७-८-९-१०-११-१२ इस मुजब नौ नवमांश जो नवमांशका स्वामी बलवान हो सो लैना. और सौम्य ग्रहका लैना. सौम्य ग्रह सो-चंद्र-बुध-गुरु-शुक्र.

द्वादशांश सो-लग्नके बारह भाग करना. और जो लग्न हो उस पहेले भागका स्वामी, और उससें क्रमवार बारह भागके स्वामी देखना. उसमें जो भागमें मुहूर्त्त होवे उस भागका स्वामी लग्नमें वो शुभ ग्रह हो तो श्रेष्ठ समझना.

त्रीशांश सो लग्नके तीस हिस्से करना उसमें मेष लग्न हो तो पहेले पांच भागका स्वामी मंगल, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शनि, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उस पीछेके सात भागका स्वामी बुध, उस पीछेके पांच भागका स्वामी शुक्र-इस तरह मिथुन, सिंह, तुला, धन, कुंभके भागोंके स्वामी येही समझ लिजीयें. और समराशि जो वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन ये छउं सम लग्नमें पहेले पांच भागका स्वामी शुक्र, उस पीछेके पांच भागका स्वामी बुध, उस पीछेके आठ भागका स्वामी गुरु, उम पीछेके सात भागका स्वामी शनि और उस पीछेके पांच भागका स्वामी मंगल. इस मुजबसें अंशके स्वामी देख लैने चाहियें. उसमें सौम्य ग्रहके अंशमें मुहूर्त्त करना श्रेष्ठ है. फिर दूसरी तरहसें त्रीश अंशमेंसें अंश कहे हैं वो नीचे मुजब त्रीश अंश अंदरके अंश हैं:—

वृष और मकर लग्नका वीसमा अंश.

मीन, कर्क, कन्याका	१५ तथा		८ अंश.
वृश्चिकका	..	..	१२ अंश.
कुंभका	..	...	२१ अंश.
तोलाका	....	....	२४ अंश.
मेषका	....	..	२७ अंश.
सिंहका	....	....	१८ अंश.
धन और मिथुनका		....	१७ अंश

इस तरह जो लग्न हो उसके ऊपर कहे हुवे अंशोंमें मुहूर्त करना वोभी उत्तम कहा है. बारह लग्नके स्वामी देखना सो मेषका स्वामी मंगल, वृषका शुक्र, मिथुनका बुध, कर्कका चंद्रमा, सिंहका रवि, कन्याका बुध, तुलाका शुक्र, वृश्चिकका मंगल, धनका गुरु, मकर कुंभका शनि और मीनका गुरु है. इस मुजब लग्नके स्वामी हैं. वो स्वामी बलवान् होवै सो देखना, या उच्च स्वगृही होवै तो बहुत अच्छा; मगर नीचका या शत्रुके गृहमें बैठा हुवा वा हस्तका वक्रीका हो सो वर्जनीय है. इस तरह छः वर्गशुद्धि देखनी चाहियें.

एक आचार्य महाराजने और लग्नशुद्धिमें कहा है कि नवमांश शुद्ध देखकर प्रतिष्ठा करनी. चद्रमा क्रूर ग्रहसें युक्त हो तो वो क्षीणचंद्र कहा है, सो निर्बल है.

उदय शुद्धि सो–नवमांशका स्वामी लग्नकुंडलीमें लग्नके स्वामीकों देखता होवै तो उसकों उदयशुद्धि कहा जाता है. वो प्रतिष्ठा दीक्षामें देखनी चाहियें.

अस्तशुद्धि सो–नवमांशका स्वामी लग्नके सातवे स्थानककों देखता हो तो उसें अस्तशुद्धि कहते हैं.

लग्नशुद्धिमें ऐसाभी कहा है कि अस्तशुद्धि और उदयशुद्धि देखनेकी दीक्षा, प्रतिष्ठामें जरूरत नहीं है. यूं कितनेक आचार्यभी कह गये हैं. बारह राशियोंमें चर, स्थिर और द्विस्वभावकी पहेचान नीचे मुजब है:—

मेष, कर्क, तुला और मकर चर राशी है.

वृष, सिंह, वृश्चिक ओर कुंभ स्थिर राशी हैं.

मिथुन, कन्या, धन और मीन द्विस्वभाव हैं

इनमेंसें प्रतिष्ठाके काममें स्थिर लग्न लैना. वो नही तो द्विस्वभाव लैना. आरंभसिद्धिमें बने वहां तक द्विस्वभाव लैना और वो न आवे तो स्थिर लैना. अगर ग्रह बहुतही उत्तम आते होवे तो क्वचित् चरभी लेनेका कहा है.

नारचंद्रमें लग्नकुंडलीके भीतर ग्रह पडे हो उसके योगायोग और फल कहे है सो नीचे मुजब है:—

चंद्रके साथ रवि मंगल होवै तो अग्नि भय होवै.

चंद्रके साथ शनि हो तो मरण भय करे.

चंद्रके साथ बुध हो तो समृद्धि करे.

चंद्रके साथ गुरु हो तो महीमा प्रभाव बढावे.

चंद्रके साथ शुक्र हो तो समस्त सौख्य देवै.

प्रतिष्ठा-कुंडलीमें रवि अबल [निर्बल] हो तो गृहके मालिककी हानी होवै. चंद्र निर्बल हो तो स्त्रीका मरण होवै, शुक्र निर्बल-विबल हो तो धननाश, गुरु विबल हो तो सुखनाश होता है. प्रतिष्ठा कुंडलीमें नीचग्रह क्रूरग्रहसें युक्त हो, या अस्तका, या शत्रुक्षेत्रका ग्रह, या वक्री हो तो विबल समझना. शनि रवि वक्री होवे तो प्रासादका नाश करै.

मंगल, शनि, राहु, रवि, केतु, शुक्रभी इस ग्रहसें सहित इन ग्रहमेंसें सातवा हो तो सूत्रधार, आचार्य, श्रावक इन सबका मृत्यु करै. मंगल, शनि, सूर्य १-१०-४-७-८-९ इतने स्थानपर होवै तो प्रासादका भंग करै. मंगल बारहवे स्थान हो तो सुखभंजकरै.

शुक्रवार शुक्रका नवमांश, शुक्रलग्नाधिपति, शुक्रके उदयमें शुक्र सातवेसें लग्नको देखता होवे तो उसमें दीक्षा न देनी.

सोमवारके रोज लग्नका स्वामी चंद्र, नवमांशका स्वामी चंद्र, चंद्रके उदयमें वो शुक्लपक्षमें ये एकत्र योगमें दीक्षा न देनी.

कुंडलीमें शूभयोग कुयोग होते है वो आरंभसिद्धिके अनुसार.

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	अच्छे योग.
					श.			शुभ ग्रह.		र. मं		श्री वत्सयोग श्रेष्ठ.
					मं					र.		अर्धयोग श्रेष्ठ.
शुभ		श.	शुभ.					शुभ	शुभ			शंखयोग श्रेष्ठ.
												द्रुजयोग श्रेष्ठ.
बु.							पाप ग्रह	गु				गजयोग श्रेष्ठ.
		चं.		शुभ	अ	ने	क	न्या	लग्न	होवै	तो	हर्षयोग अच्छा.
बु.												आनंदयोग श्रेष्ठ.
गु.												जीवयोग श्रेष्ठ.
शुक्र												नंदनयोग श्रेष्ठ.
गु. शुक्र.												स्थिरयोग श्रेष्ठ.
बु. गु.												जीमीतयोग श्रेष्ठ.
बु. गु.												जावयोग श्रेष्ठ.
बु. गु. शुक्र.												असृतयोग श्रेष्ठ.
					शुभ.		शुभ	र			पाप	धनुयोग नेष्ठ.
											श.	कुठारयोग नेष्ठ.

कुंडलीके ग्रह.

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	
			मं				चं.				श.	मूशलयोग नेष्ठ.
	श			ग्रं.			चं.				र.	कूर्मयोग नेष्ठ.
पापं			पाप			पाप			पाप			वापीयोग नेष्ठ.
पाप			पाप						पाप			शल्ययोग नेष्ठ.
पाप												पाणीयोग नेष्ठ.
पाप												भर्मयोग नेष्ठ.
				शु.								वक्रयोग नेष्ठ.
				पाप					पाप			संकटयोग नेष्ठ.

उपरके यंत्रोमें जहां पाप आर क्रूर शब्द लिखा है सो रवि, मंगल, शनि. राहु-इस अंदरका ग्रह समझना और जहां शुभ ग्रह लिखा है वहां चंद्र, गुरु, शुक्र, बुध समझ लैना. और नेष्ठ योग छोडकर श्रेष्ठ योगमें मुहूर्त्त देना.

मुहूर्त्त करनेकी ताकीदी हो अगर शुभ मुहूर्त्त या लग्नशुद्धि अच्छी हाथ न लगती हो तो लग्नशुद्धि प्रकरणमें और नारचंद्र टीप्पणमें छाया लग्नका विधि कहा है उससें मुहूर्त्त करनेमें श्लोक कहा है सो नीचे मुजबः—

न तिथि र्न च नक्षत्रं, न वारो न च चंद्रमाः
न ग्रहोपग्रहाश्चैव, छाया लग्नं प्रशस्यते.

इस तरह कहा है; वास्ते छायालग्नसें कार्य करना—याने सूर्यको पीठ देकर पुरुष खडा रहै और पीछे अपनी छाया जहां तक लंबी मालूम होती हो वहां तकका निशान कायम कर पीछे आपहीके कदमसें पगले भरे, वो पगले वार अनुसार लैना. अगर सात अंगुलका शंकु रखकर उसकी छाया आंगुलसें नाप लेवै.

रविवारके दिन ११, सोमवारके रोज ८॥, मंगळवारके रोज ९, बुधवारके रोज ८. गुरुके रोज ७, शुक्रके रोज ८॥ और शनीवारके रोज ८ अंगुल नापना. इस मुजब आंगुल नापे सो शंकु बारह अंगुलका पा-

टियेपर समान जगहपर रखना. पीछे जिस वारके रोज मुहूर्त करना हो उस रोजके अंगुल कहे मुजब छांउं आ जाय कि मुहूर्त कर लै, वो कल्याणकारक है. यह छाया लग्नसें यात्रा करनेकों प्रयाण करना हो या हरकोइ कार्यका आरंभ करना हो वो कल्याणकारक है.

यात्रा या परदेशकों प्रयाण करना हो तो चंद्र सन्मुख या दाहिना लैना. योगिनी पृष्टभागमें रखनी. सन्मुख काल न लैना. नक्षत्र प्रयाणके पत्र १२६ में कहां है वहां देख लैना. शुभ लग्न या छाया लग्नमें प्रयाण करना. नारचंद्रमें चंद्रवासा देखनेकी रीति कही है याने मेष, सिंह, धनका चंद्र पूर्वदिशामें, वृष, कन्या, मकरका चंद्र दक्षिणमें, मिथुन, तुल, कुंभका पश्चिममें और कर्क, मीन, वृश्चिकका चंद्र उत्तरमें रहता है.

१-३-५ इन संख्यावाले चंद्रका निवास मस्तकपर होता है उन चंद्रमें विदेश-परगाम जाय तो धनकी प्राप्ति करै. ६-९ इन चंद्रोंका वासा पीठमें होता है वो अच्छा नहीं. ८-१२ इन चंद्रोंका वासा पांवपर होता है वो निराशादायी है. १०-११-७ इन चंद्रोंका निवास छातिपें होता है उसमें प्रयाण करे तो धनादिका वहुत सुख मिले, और २-४ इन चंद्रोंका निवास हाथमें होता है उसमें प्रयाण करनेसें सब आशा पूर्ण होती है.

सातों वारके फल नारचंद्रके मुजबः-गुरु पाणीग्रहणमें, शुक्र परदेश जानेमें, बुध पढनेमें, शनि दानदक्षिणा देनेमें, मंगल लडाइमें, और राज मिलापमें, और सोमवार सब कार्यमें अच्छा कहा है वहुत करकें मंगल रवि इनकों वने वहां तक काममें न लैना. शुभ योग लेकर काम करै तो जय होवै. कुयोग या तिथिके कोष्टक-यंत्रमें देखकर जो वर्जनीय हो उसकों छोड देना. हर किसी काममें कुयोग विगरकी शुभ योगवाली तिथि लेकर कार्य फतेह करना.

जो वार होवै उसी रोज ग्रह वलवान हो याने कृष्ण पक्षमें रवि, राहु, शनि, मंगल वलवान होते हैं, और शुक्लपक्षमें सोम, बुध, गुरु, शुक्र वलवान होते हैं.

नौ ग्रहोंकी दृष्टि और शत्रु-मित्रता-उच्च-नीच-स्वगृही वलवान देखनेका यंत्र.

रवि.	सोम.	मंगल.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	राहु.	केतु.	ग्रहोंके नाम.
७	७	४-८-७	७	५-९-७	७	३ १० ७	७	७	संपूर्ण. दृष्टि.
४-८	४-८	८-९	४-८	३-१०	४-८	७	०	०	त्रिपाद दृष्टि.
५-९	५-९	५-९	५-९	०	५-९	५-९	५-९	५-९	द्विपाद दृष्टि.
३-१०	३-१०	३७१०	३-१०	४-१०	३-१०	५-९	३-१०	३-१०	एकपाद दृष्टि.
चं. मं. गु.	र. बु.	र गु चं.	र. रा. शु.	र. चं. मं.	बु रा. श	बु. रा. शु.	बु श. शु.	बुध.	मित्र ग्रह.
बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श. गु.	मं. श. गु.	श. रा.	मं. गु.	गुरु.	गुरु.	०	सम ग्रह.
श. रा. शु.	श.	बु. रा.	चं.	बु. शु	र. चं.	र. चं. मं.	र. चं. मं.	०	शत्रु ग्रह.
मेष. १०	वृष. ३	मकर. २८	कन्या. १५	कर्क. ५	मीन. २७	तुला. २०	मिथुन.	० ०	उच्च ग्रह-परमोच्च अंश.
तोला. १०	वृश्चि. ३	कर्क. २८	मीन. १५	मकर. ५	कन्या. २७	मेष. २०	धन. ०	०	नीच ग्रह-नीचांश.
सिंह.	कर्क.	मे. वृ.	क. मि.	ध. मी.	वृ. तु.	म. कुं.	कन्या.	०	स्वगृही
दिन.	रात्रि.	रात्रिं.	दि.-रात	दिन.	दिन.	रात्रि.	०	०	वलवान्.

कुंडलीमें ग्रह जिस स्थानपर बैठा हो उससें २-३-४-१०-१२ इन संख्यावाले स्थानपर दूसरा ग्रह होवै तो उसके साथ तात्कालिक मित्रता कहेनी. और ५-६-७-८-९ इन स्थानपर बैठा हुआ ग्रह तात्कालिक शत्रुता कहेनी. कुंडलीमें मित्र हो और अहर्निश मित्रता हो तो अधिमित्रता, और शत्रुभी सब जगह हो तो अधिशत्रुतावंत समझना.

. प्रतिष्ठा, दीक्षा कुंडलीमें तीन शुभ ग्रह बलवान् होवै और दूसरे हीन बली हो तोभी मुहूर्त्त करना ऐसा आरंभसिद्धिमें कहा है.

लग्नकुंडलीमें बुध रविसे रहित १-४-७-१० यह चार स्थानपर हो तो लग्नके १०० दोषोंका नाश करै. शुक्रकेंद्र स्थान-१-४-७-१० में होवै और क्रुर ग्रहोंसे रहित हो तो १००० दोषका नाश करै. और गुरुभी उसी केंद्रस्थानमें बलवान् हो तो लग्नके लक्ष दोषका निवारण करै-इस तरह आरंभसिद्धिकी छोटी टीकामें कहा है. और बडे प्रतिष्ठा कल्पमें ५-९ गुरु, शुक्रका वैसाही फल कहा है. पुनः प्रतिष्ठाकल्पमें मेष, वृषका चंद्र, सूर्य हो और शनि बलवान् हो, मंगल, बुध हीनबली हो तोभी प्रतिष्ठा करनेका कहा है-वार, तिथि, नक्षत्र, चंद्रबल देखना नहीं-लग्न बलवान् देखना.-३-११ सूर्य हो, १-४-९-१०-५ गुरु या शुक्र हो तो दूसरे सब दोषोंको दूर करै, और शुभ फल देवै. उन ग्रंथमें लग्नकुंडलीमें राहु या केतु १-४ हो तो उत्तम कहा है; मगर दूसरे किसी ग्रंथमें उत्तम नहीं कहा मालूम होता है.

तमाम ग्रह शत्रुके घरमें होवै तो प्रतिष्ठा नेष्ट समझनी. लग्न या सातवे स्थान चंद्र, राहु या केतु युक्त हो तो वो अधम फल देवै. लग्नमें या चंद्रयुक्त गुरु हो तो निर्विघ्नतासे प्रतिष्ठा होवै. चंद्र शुक्र युक्त या शुक्रको चंद्रपर दृष्टि हो तो अच्छा फल देवै.

. चोवीस तीर्थंकरजीकी राशि, नक्षत्र लांछन नीचे मुजबः-

ऋषभदेवजीकी धनराशि, उत्तराषाढा नक्षत्र, और वृषभ लांछन है. इसीतरह तमामके लिये समझनाः-

अजीतनाथजी-	वृषभ,	रोहणी,	हाथीका.
संभवनाथजी-	मिथुन,	मृगशिर्ष,	घोडेका.
अभिनंदनजी-	मिथुन,	पुनर्वसु,	बंदरका.
सुमतिनाथजी-	सिंह,	मघा,	क्रौंचपक्षिका.
पद्मप्रभुजी-	कन्या,	चित्रा,	कमलका.

सुपार्श्वनाथजी-	तुला,	विशाखा,	स्वस्तिकका.
चंद्रप्रभुजी-	वृश्चिक,	अनुराधा,	चंद्रका.
सुविधिनाथजी-	धन,	मूल,	मघरका लांछन.
शीतलनाथजी-	धन,	पुर्वापाढा,	श्रीवत्सका.
श्रेयांशनाथजी-	मकर,	श्रवण,	गेंडेका.
वासुपूज्यजी-	कुंभ,	शतभिषा,	पाडेका-भैंसेका.
विमलनाथजी-	मीन,	उत्तराभाद्रपद,	सूअरका.
अनंतनाथजी-	मीन,	रेवती,	धाजपक्षीका.
धर्मनाथजी-	कर्क,	पुष्य,	वज्रका.
शांतिनाथजी-	मेष,	आश्विनी,	हरिणका.
कुंथुनाथजी-	वृप,	कृत्तिका,	बकरेका.
अरनाथजी-	मीन,	रेवती,	नंदावर्त्तका.
मल्लिनाथजी-	मेप,	अश्विनी,	कलशका.
मुनिसुव्रतस्वामीजी-	मकर,	श्रवण,	कछुवेका.
नमिनाथजी-	मेप,	अश्विनी,	कमलका.
नेमिनाथजी-	मेप,	विशाखा,	शंखका.
पार्श्वनाथजी-	तुला,	विशाखा,	सर्पका.
महावीर स्वामीजी-	कन्या,	उत्तराफाल्गुनी,	सिंहका.

चोवीसों भगवंतजीकी राशी मिलतीका पत्र १ विज्यानंद सूरिजीके पास देखाथा उसमें नीचे लिखी हुइ राशिवालोंकों फलाने फलाने भगवंतजीके शासनदेव अनुकूलता देवें अैसा कहाथाः-

मेपराशिकों १-३-४-५-७-९-१०-११-१२-१६-१९-२०-२१-२३.

वृपराशिवालेकों २-५-६-७-८-११-१२-१३-१४-१७-१८-२०-२२-२४.

मिथुनराशिवालेकों १-३-४-५-६-७-९-१०-१२-१३-१४-१६-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४.

कर्कराशिवालेकों १-२-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५ १६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४.

सिंहराशिवालेकों १-२-३-४-५-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१६-१७-१८-१९-२१-२३

कन्याराशिवालेकों १-२-३-४-६-८-९-१०-११-१२-१३-१४ १५-१७-१८-२०-२२-२४.

तोलाराशिवालेकों १-२-३-४-५-७-९-१०-११-१२-१५-१६-१७-१९ २०-२१-२३.

वृश्चिकराशिवालेकों २-५-६-८-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२४.

धनराशिवालेकों-१-३-४-५-६-७-८-९-१०-१२-१३-१४-१५-१६ १८-१९-२१-२२-२३-२४.

मकरराशिवालेकों-२-३-४-५-६-८-११-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९ २०-२१-२२-२३-२४.

कुंभराशिवालेकों-१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-१२-१५-१६-१७-१९ -२३-२४.

मीनराशिवालेकों-१-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१३-१४-१७-१८ २०-२१-२२-२३-२४.

इस मुजब उन पत्रमें था सो लिख दाखिल किया है. दूसरी तरहसेंभी है मगर वो अवर शास्त्रोंसें निर्णय करना.

इस मुजब प्रतिष्ठा दीक्षामें मुहूर्त देखकर काम करनेसें कल्याण होता है. मेरे देखनेमें आया वैसा लिखा है. विशेष देखना हो तो जैनके योतिष ग्रंथ बहुतसें हैं उसमें देख लेना.

१८८ प्रश्नः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त क्या करणी करे?

उत्तरः—श्रावक रात्रिमें सोनेके वक्त धर्मसंग्रहके लेख मुताबिक विधिसें करणी करे याने-प्रथम देवस्मरण करना सो इस तरहः—

नमो वीयराणं, सव्वनुणं;

तिलुकपूइयाणं, जहाद्विय वत्थुवाइणं.

अर्थः—सब वस्तुके ज्ञाता, तीनु लोककों पूजनीक, और यथास्थित वस्तुके प्ररुपक ऐसे वीतराग प्रभुजीकों में नमस्कार करता हुं.

गुरुका स्मरण इस मुजब हैः—

धन्यास्ते ग्राम नगर जनपदादयो येपु मदीय धर्माचायविहरतीत्यादि चैत्यवंदनादिना वा नमस्करणं स्मृतिः

अर्थः—उन ग्राम-नगर-देश वगैरःकों धन्य है कि जहां मेरे धर्माचार्य विचरेते ह. इत्यादि कहकर चैत्यवंदन करै या नमस्कारसें [नौकारसें] स्मरण करै.

चार शरण करना सो इस मुजब हैः—

क्षीणरागादिदोपौघाः सर्वज्ञा विश्वपूजिता
यथार्थवादिनोर्हंतः शरण्या शरणं मम. १

अर्थः—रागादि दोप समूहकों जिन्होंने क्षीण किये हैं, समस्त वस्तुके ज्ञाता, विश्वसें पूजित, यथार्थवादी और शरण करनेके योग्य ऐसे अरिहंत भगवानजीका मुझे शरण हो.

ध्यानाग्निदग्धकर्माणि सर्वज्ञा सर्वदर्शिनः
अनंत सुख वीर्येधाः सिद्धाश्च शरणं मम. २

अर्थः—ध्यानरूपी अग्निसें करकें कर्मोंकों जिन्होंने जला दिये हैं, जो सब वस्तुके ज्ञाता हैं, सब वस्तुकों देखनेवाले हैं, और अनंत सुख, अनंत वीर्य-पराक्रम युक्त ऐसे सिद्ध भगवानजीका मुझकों शरण हो.

ज्ञानदर्शन चारित्र-युता स्वपर तारकाः
जगत्पूज्याः साधवश्च, भवंतु शरणं ममः ३

अर्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें युक्त आपकों और दूसरोंकों तिरानेवाले, और तीनु जगत्कों पूजनीय ऐसे साधुमहाराजका मुझे शरण हो.

संसार-दुखसंहर्त्ता, कर्त्ता मोक्षसुखस्य चः
जिनप्रणीतधर्मश्च, सदैव शरणं मम. ४

अर्थः—संसाररूप दुःखका नाश करनेहारा, और मोक्ष सुखको देने-हारा-करनेहारा ऐसा जिनेश्वरजी प्रणीत धर्मका मुझको सदा शरण हो.

इस तरह अरिहंतजी, सिद्धजी, साधुजी और धर्मका शरण करके पीछे नीचे मुजब चिंतन करेः—

चउरंगो जिणधम्मो, न कओ चउरंग सरणमविं न कयं;
चउरंग भवच्छेओ, न कओ हा हारिओ धम्मोति. ५

अर्थः—दान-शील-तप-भाव रूप चार अंगवाला धर्म मैंने न किया! चार शरणभी न किये! और चार गतिरूप भवकाभी छेदन न किया!! हा! अति खेदका मुकाम है कि मै धर्म हार गया!!!

अब दुष्कृतकी गर्हा सो नीचे मुजबः—

जं मण वय काएहिं, कयकारी अणुमईहिं आयरियं;
धम्मविरुद्धमसुद्धं, सव्वं गरिहामि तं पावं. ६

अर्थः—मन वचन कायाके योगसें जो कोइ धर्मविरुद्ध याने प्रभुजीकी आज्ञा बहारका कृत्य किया हो, करवाया हो या अनुमोदन दिया हो वो सब पापकीमें गर्हा करताहुं.

सुकृत्यका अनुमोदन इस तरह करनाः—

अहवा सव्वंचिय वीयराय वयणाणुसारि जं सुकयं;
कालत्तएवि तिविहं, अणुमोए सो तयं सव्वं. ७

अर्थः—अथवा वीतराग वचनानुसारसें तीनु कालमें जो जो सब सुकृत्य किया सो मन वचन कायासें करकें अनुमोदता हुं.

अब सब जीवोंको क्षमापन करना सो इस मुजबः—

खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खामंतु मे;
मित्तिमे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ. ८

अर्थः—में सब जीवोंको क्षमापन करता हुं. याने कुल्ल जीवोंके पाससें में माफी मंगता हुं—सब जीव मेरेपर क्षमा किजीयो. मेरे सब जीवोंके साथ मैत्रिभाव है, नहीं के किसीके साथ वैरभाव है?

इस तरह कर लिये बाद चार आहारका त्याग न हो तो गंठसी सहित

पच्चख्खाण कर, सर्व व्रत संक्षेपरूप बारह व्रत अंगीकार करकें देशावगा-शिकका पच्चख्खाण करे-वोभी गंठसी तककी मर्यादा रख्खे.

और शेष पापस्थान वर्जनेके लिये इस मुजब कहे:—

तहा कोहच माणच, माया लोहं तहेवय;
पिज्जं दोषं च वज्जेमि, अब्भख्खाणं तहेवय. ९
अरईरइ पेसून्नं, परपरिवायं तहेवय;
मायामोसं च मिच्छत्तं, पावठाणाणि वज्जिमोति. १०

अर्थः—वैसेंही क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशून्य, रतिअरति, परपरिवाद, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य इन पापस्थानोंकों मै दूर करता हुं.

पापस्थानोंकों इस तरह दूर कर पीछे वोशिरानेके लिये इस मुजब गाथा कहेवेः—

जइमेहुज्जपमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए;
आहार मुवहिदेहं, सव्वं तिविहेण वोसरियं. ११

अर्थः—जो इस रात्रिके अंदर मेरा मरण हो जाय तो चार प्रकारके आहार, धन, धान्य, घर, राच रचीला और कुटुंब तथा शरीर इन सबकों मन वचन कायासें करकें वोशिराता हुं.

इस मुजब कहकर नमस्कारपूर्वक तीन गाथा कहनेका कहा है; मगर कौनसी गाथा? उसका नाम नहीं; तोभी अनुमानसें नीचेकी गाथायें होगी ऐसा संभव हैः—

एगोहं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्सइ;
एवं अदीण मणसो, अप्पाण मणुसासइ. १२
एगोमे सासओ अप्पा, नाणदंसण संजुओ;
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संयोग लख्खणा. १३
संजोग मूला जीवेण, पत्ता दुख्खपरंपरा;
तम्हा संजोग संबंधं, सव्वे तिविहेण वोसरियं. १४

अर्थः—मै अकेलाही हुं, मेरा कोइ नहीं. और मैंभी किसीका नहीं.

इस मुजब अदीन मनसें आत्माकों शिखावन देवै. ज्ञान दर्शनसें युक्त मेरा आत्मा शाश्वत है, बाकीके तन धन कुटुंबादि सब बाह्यभाव संयोगरूप लक्षणवाले हैं. संयोगरूप मूलसें जीव दुःखकी परंपराकों पाया है; इसी कारणके लिये सर्व संयोग संबंधकों मन वचन कायाके योगसें वोशिराता हुं.

इस मुजब चिंतन करकें स्त्री किंवा पुरुषने जो शीलपालन किये हैं उन्होंके चरित्र चिंतन कर कामकों शांत कर, पीछे नौकार मंत्र स्मरण करता हुवा सो जावै, वोभी स्त्रीके पास नहीं—अलग सो जावै.

यह नियम गंठसी किंवा मुठसी करते हैं किसी तरह एक नोकार गिनकर पारना वहांतक अभिग्रह है. यह विधि वहुत अच्छी लगती है. मरण होवै तो आराधक हो जाय; वास्ते हरहम्मेशाः करने योग्य है. और मंदगीके वक्त तो अवश्य करकें करने योग्य है.

(दोहा.)

परमदेव परमातमा, बुद्धि आत्मगुरुराय;
एह परमपद सेवतां, अनुपानंद थवाय.

अस्तु !





महीमावंत श्री मुनिसुव्रतस्वामिने नमः

अढारदूषणनिवारक.

१ प्रश्नः—अपना यह शरीर मालूम होता है उसमें जीव है ऐसा कितनेक सज्जन कहते हैं और कितनेक कहते हैं कि जीव नहीं है, तो उसमें सत्य क्या है?

उत्तरः—जितने धर्म आस्तिकमति हैं वे चेतन शरीरमें जीव और जड जो शरीररूप अजीव ऐसे दो मानते हैं. जो नास्तिक मति हैं वे अकेला शरीरही मानते हैं, शरीर विनाश हो गया कि पीछे कुछ नही और पाप पुन्यका फलभी भुक्तनेका नहीं ऐसा मानते हैं.

२ प्रश्नः—इन दोनु पक्षमेंसे तुम कौनसा पक्ष स्वीकार करते हो?

उत्तरः—हम पूर्ण प्रतीतिसें जीव और अजीव इन दोनुकों मानते हैं. दोनु वस्तुएं हैं उसका अच्छी तरह अनुभव हो सकता है.

३ प्रश्नः—जीव है ऐसी किस प्रकारसें प्रतीति होती है?

उत्तरः—इस शरीरमें जीव हो वहां तक हिलना, चलना, बोलना, शोचना, हिताहित समझना, और सुख दुःख जानना इत्यादि बनता है. और जब जीवरहित शरीर होता है, तब यह समस्त क्रिया बंध हो जाती है, उससें पूर्ण प्रतीत होती है कि जानने-समझनेकी शक्तिवाला सो जीवही है, और शरीर अजीव है उससें जीव. सिवाय अकेले शरीरसें कुछ नहीं बन सकता है; वास्ते जीव पदार्थ है इसमें कुछ संदेह नही है.

४ प्रश्नः—नास्तिकमति यों कहते है कि पंचभूतके संयोगसें समझने आदिकी शक्ति उत्पन्न होती है, तो उसका क्या समझना?

उत्तरः—पंचभूतोंमें पृथक् पृथक् ऐसी शक्ति है ही नहीं, तो पीछे इकठे होनेसें

किसतरह वैसी शक्ति होवे? कदाचित् उत्पन्न होनेका स्वभाव मान लेवै तो सब जीवोंकी समान शक्ति होनी चाहियें, वो मालूम होती नहीं. ज्ञानशक्ति तमाम जीवोंमें भिन्न भिन्न मालूम होती है वो न होनी चाहियें. सुख दुःखभी भिन्न भिन्न देखनेमें आते हैं वोभी न होने चाहियें और जब अलग अलग मालूम होता है तब उसका कुछभी कारण होनाही चाहियें।

५ प्रश्नः—जो ज्ञानशक्ति कम जियादा देखनेमें आती है वो तो उद्यमकी न्यूनतासें मालूम होती है. जो ज्ञानका उद्यम करता है उसकों ज्ञान होवे और न करे उसकों न होवे वो क्या?

उत्तरः—दो मनुष्य साथ साथ बैठकर समान वक्त तक उद्यम करते हैं; परंतु समान नहीं पढ सकते हैं. कितनेक पढते हैं तो अर्थ नहीं समझ सकते है और कितनेक समझकर उसी मुजब चलते हैं उसी मुजब दूसरा मनुष्य नहीं चल सकता है; वास्ते अकेले उद्यमसें ज्ञान नहीं आता है.

६ प्रश्नः—उद्यम विगर ज्ञान दूसरे किस उपायसें आ सकता है?

उत्तरः—ज्ञानशक्ति जीवकी है वो आच्छादित हो गइ है, उसमें जिनके जिनके जितने जितने आवरण खुल जाते हैं उस मुजब उन मनुष्यकों ज्ञान होता है.

७ प्रश्नः—तब क्या उद्यमकी जरूरत नहीं है? अकेली आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है और हिताहित जान सकता है?

उत्तरः—जहांतक आत्माकी जितनी शक्ति है उतनी प्रकट नहीं हुइ वहांतक आत्मा और शरीर इन दोनुके मिलापसें ज्ञान होता है. आत्माका ज्ञान और आत्माकी शक्ति कर्मके योगसें आच्छादित गइ है और जो ढकी हुइ है वहां तक इंद्रियोंके संयोगसें ज्ञान होता है; जैसें कि अपन आंखोंसें देखते है वही आंख खुल्ली हो और जीव चला गया तो वो आंखोंसें कुछभी मालूम नहीं हो सकता है जीव शरीरमें है; मगर आंखे मुंद देवे तो कोइ पदार्थ नहीं देख सकते हैं. आंखें खुली हैं तोभी आप खुद दूसरे उपयोगमें लुब्ध हुवा है तो और पदार्थ नही देख सकतां हैं उससें खुल्ला-साफ मालूम हो सकता है कि उपयोग करनेवाला कोइ अंदर है सही! वो कौन होगा? वो जीव है। इसी तरह कानसें सुनेके वारेमेंभी यदि उन वातमें होवें तो वो सुनकर समझ सकते हैं; लेकिन् जो दूसरे काममें ध्यान लग रहा हो तो कोइ दिल चाहै सो बोले तो वो सुनेमें नहीं आता हैं इसी तरह कानोंमें कोइ रुइका ढकना दे देवै या रोग

हुवा हो तो अंदर जीव है तथापि नहीं सुन सकते है देखियें नाकके विषयमी कोइ कहेगा कि यह गंध काहेकी आती है? तब वहां बैठा हुवा मनुष्य उपयोग देकर गंधकों तपास करेगा तो कह सकेगा कि चीजकी गंध आती है. अब सोचो कि नासिका तो खुली है; परंतु उपयोग न था उससें गंधकी खबर न पडी. तो सबूत होता है कि इस शरीरके अंदर गंध लेनेवाला कोइ अलग है. रसेन्द्री जो जीभ है सो मनुष्यका ध्यान भोजन करनेकों बैठा है तोभी अन्य जगे लगा हुवा है तो उसकों स्वादका ज्ञान नहीं होता है. स्वादका जाननेवाला कोइ अन्य नहीं किंतु शरीरके अंदर रहा सो जीवही है. स्पर्शेंद्रि जो शरीर उसकों स्पर्शज्ञान स्पर्श होनेसें होता है; परंतु शरीरकों वस्तुका स्पर्श होवे उस वखत वो कोइ दूसरे ध्यानमें होवे तो उसकी खबर नहीं पडती. फिर शर्दिके वखतमें शरीरमें बधीरता हो गइ होवे तो अंदर जीव है तोभी स्पर्शज्ञान नहीं होता है. इन सबका तपास करनेसें शरीर और जीव ये दोनु मिलकर सब काम करते हैं. उसमेंभी एक दूसरेमें विषय ग्रहण करनेका तफावत है. सब संमान विषय ग्रहण नहीं कर सकते हैं. उसका कारण–किसीकों कर्मावरण विशेष है तो हरएक विषय थोडासा कर सकता है. जिनकों ये पांचों इंद्रियोंके आवरण खुल गये हैं वे विशेष इंद्रियांसें जान सकते हैं. वास्ते जो जो ज्ञान होता है वो कर्मके क्षयोपशमसें होता है, अकेले उद्यमसें नहीं होता है. थोडा उद्यमकरे और ज्ञान ज्यादे होवे और विशेष उद्यम करे और ज्ञान कमती होवे; वास्ते जीव और अजीव इन दोनुकों कबूल रखनेसें सब बात समझ लेनेमें सुगमता पडेगी.

८ प्रश्नः—हम जीव मान लेवे; मगर फिर तुम जीवकों कर्मसंयोग कहते हो वो क्या है? कौनसी वस्तु है?

उत्तरः—कर्म है वो जडरूप पदार्थ है उसका इन जीवके साथ अनादिका संबंध है, यह अतिशय ज्ञानी पुरुषके वचनसें साबित होता है. अनुभवसें शोचनेसेंभी यदि पहिले निरावरण हो तो कर्म क्यों लगे? कदाचित् लगे हुवे मान लेवे तो वो दिवसकी आदि हुइ. तब उसकी पेस्तरकी स्थितिमें निर्मल था तो वो कबसें? या वोभी अनादि करना पडेगा. कितनेक आदि कहते हैं तो उसके पूर्वकालमें संसार–जगत् थाही नहीं यह कैसें संभवित हो सके. इस जगत्की स्थिति फेरफार होवे किंतु कुछ चीज नहीं हो सके वो कहांसें आ सके; वास्ते जैनदर्शनवाले अनादिका जीव कर्म-

संयुक्त हैं ऐसा मानते हैं वो बात निर्विवादसें सिद्ध होती है वे कर्म न होवैं तो जीव सुखदुःख काहेसें पावै? सुखदुःख कितना भुक्तना? कितने कालतक जीना? और कितना कुटुंब मिलना? ये सब कर्मप्रयोगसेंही बनता है.

९ प्रश्नः—ये तमाम उद्यमसें बनता है उसमें कर्म क्या करता है?

उत्तरः—अरे इच्छाकारी! सुखदुःख यदि उद्यमसेंही होता होवै तो मजदूर सारा दिनभर मजदूरी करता है तब विचारेकों चार आने मिलते हैं, और एक मनुष्यका पॉव जमीनमें घुस जाय और वहांसें निधान प्राप्त होकर धनवान बन जाता है, जैसें कि सयाजीराव गायकवाड सरकार कैसी स्थितिमें थे और एकदम राज्यगादी पर बिराजित हुवे ये क्या उद्यम करनेकों पधारे थे? पूर्वजन्ममें पुन्य उपार्जन किया था तो राज्य मिला. एकही दवा दो मनुष्य खाते-पीते हैं, एककों तन्दुरस्ती मिलै और एककों नादुरस्तीही रहवै और दवा देनेवारा डॉकटर-वैद्यभी एकही होवै; तथापि न मिट सकै वो कर्मका तफावत है उसीसें वैसा बनता है. एक बुद्धिमान् अच्छा विद्वान् अनआलसु उद्यम करनेमें तत्पर रहता है; परंतु व्यौपारमें वापदादेके कमाये हुवे पैसे गुमा बैठता है, तो यदि उद्यमहीसें बनता होता तो गुमाताही क्यौं! पूर्वभवोंमें किये हुवे पाप उदय आये उससें उसकों दुःख भुक्तनाही चाहियें—उसी सबबसें उसके पैसे चले जाते है ये कर्मकाही फल है. कोइ पुरुष एक दो औरतोंसें सादी कर लेवें और उसकों एकभी संतान नही होता है. भोगादिकका उद्यम करता है; मगर संतान नहीं प्राप्त होता. यौं करनेसें कभी संतान होभी जाय तो वो जीता नहीं तो ये क्या है? पूर्वकर्मके संयोग हैं! एक मनुष्य बडा बलवान् है और अच्छा खानपान करता है—शरीरकी संभालभी अच्छी तरहसें रखता है, ऐसा मनुष्य महामारी आदिके उपद्रव विगर फक्त उवासी आनेसेंही मर जाता है, फिर महामारीकी बिमारीवाली हवा सारे शहरमें चल रही है; तोभी वो हवा सबके बदनमें दाखिल नहीं हो सकती. दो मनुष्य एकही घरमें साथ साथ रहनेवाले, फिरनेवाले, खानेवाले और अच्छी हिफाजत रखनेवाले हैं; तथापि एकके शरीरमें महामारी, घुस जाती है और उससें मर जाता है, और दूसरा जीता रहता है तो ये पूर्वके कर्मका प्रभाव है. यदि केवल उद्यमसेंही बन सकै ऐसा होता तो वे दो मनुष्य समान उद्यमी वो मरने न चाहियें; वास्ते पूर्वमें पाप कर्म बांधे हुवे ये उसका फल हैं. इस परसें समझ

लिजीयें कि–केवल उद्यम व्यर्थ है, तब कुछ हेतु होना चाहियें–वो हेतु पूर्वके किये हुवे कर्म. जब पूर्वमें कर्म रह गये तब पूर्वजन्मभी रह गया. पिछला भव रह गया तो जीवभी रहा. जीव शब्द अजीव शब्दका प्रतिपक्षी है, तो दुनिंयांके भीतर अजीव शब्द जीव होनेसेंही पडा है; वास्ते अच्छी तरहसें सिद्ध होता है कि जीव है. इस जगत्‌में नास्तिक, जीव नहीं माननेवाले थोडी संख्यावाले हैं, बहुतसे और धर्मवाले ऐसा कथन करते है कि–'जैसा करेंगे वैसा पावेंगे." तब करनेवाला जीवही होना चाहियें, इस्सेंभी सिद्ध होता है कि जीव है. जीव शब्दका अर्थभी एही है वो जीव प्राणधारणे धातुसें सिद्ध होता है; वास्ते जीवें सो जीव. शरीर फेरफार हुवे करते हैं; मगर जीव तो वोका वोही है. जेसे कर्मबंधन किये हो वैसां पुनः शरीर धारण करता है वही जीव है. और जो जो सुखदुःख उत्पन्न होते हैं वो जैसे जैसे पूर्वभवमें पाप पुन्य किये हैं वैसे जीव भुक्तता है. और तुमारे मत मुजब जीव न हो और शरीरही अकेला हो, तब ये ऊपर तफावत बतलाया गया है वो होनाही न चाहियें, और वैसा होवै तो तुमारा नास्तिकका समझना भूलसेंभरा हुवाही है. ये नास्तिक मतका निकालनेवाला पापी होना चाहियें; क्यौं कि इस समय इंग्लेंडमें कितनेक इंग्रेज ऐसा माननेवाले मैदानमें आये है कि पाप पुन्य हैही नहीं. शरीरकी मावजत रखनेसें दुरुस्त रहता है और हिफाजतके सिवा बिगडता है. ऐसा शोच करकें गुन्हा कियेकी शिक्षाकोंही नही मानते हैं, और नहीं माननेसें एसेही मनुष्य खून बहुत करते हैं. तो जसें अभी नास्तिक पाप नहीं मानेंगे तो बुरे काम करनेकी धास्तीभी न रहेगी और बुरे काम किये करेंगे. उसपरसें मालूम हो सकता है कि नास्तिकमत स्थापक पापीही होना चाहियें. वैसेकी संगतिमें रहै वोभी किसी जातिके पापकर्मसें न डरेगा. इस समय जितने राज्य चल रहे हैं उतने कुल राज्यांमें गुन्हाकी शिक्षा है, तो जसी शिक्षा सब आलम कबूल करती है, उसी तरहसें हरएक पाप करै उनकी शिक्षा होनीही चाहियें. इस दुनियांमें तमाम लोग मानते है कि किसी जीवकों दुःख न हो वो काम करना. और जब नास्तिक होवै तब तो किसीकों दुःख देनेकी फिकरभी नहीं रहती. उससें दुनियांके विचारसें और न्यायसें करकेंभी ये अयोग्य होता है. ये तमाम हरकतें तपासनेसें जीव मान लैना. सुखदुःख कर्मके संयोगसें बनते हैं ऐसा माननेसें सब दूषण दूर हो जाते हैं. ये कर्मका स्वरूप मेरी की हुइ साथ सामिल है उसी प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें बहुत विस्तारसें है सो वहां देख लैना.

१० प्रश्नः—तुमारे कथन मुजब कर्मके संयोगसे सब बनता है, तब जीव अकेला कुछ न कर सकता है?

उत्तरः—जीवकी शक्ति तो अनंत है; मगर पापकर्मके वशिभूत है. वहांतक अकेली आत्माकी शक्ति नहीं चला सकता हैं—जेसे कोइ वडा राजा हो और कैदमें गिर्फतार हो जाता है तब उसका कुछ जोर नहीं चलसकता, वैसें कर्मके वशमें जीव पडा हैं वहांतक आत्माकी प्रवृत्ति आत्मा जडसंगति विगर नही कर सकता है.

११ प्रश्नः—कर्मके संबंधसें प्रवृत्ति करता हैं तब जीवकी शक्ति तो न रही, तब जीव पदार्थ किसलिये मानना चाहियें?

उत्तरः—जीव विगर जड तो कुछभी नहीं कर सकता; क्यों कि जिसमें जड स्वभाव है-चेतन स्वभाव नहीं उनसें वो क्या कर सके? जितनी जितनी विचारशक्ति है वो चेतनकी है, जडमें वो स्वभावही नहीं. पंचभूत जो तुम मानते हो वैभी जड हैं, उन्हमेंभी विचारशक्ति नहीं. पंचभूत खानेकी रसवतिमेंभी सामिल हैं, मगर उन्हमें कुछ जीवनशक्ति उत्पन्न नहीं होती; वास्ते पांचोंकी वातोंमेंभी बहुतसे प्रश्न हैं वो प्रकरण रत्नाकर भाग दूसरेके पत्र १७७ में नास्तिकका संवाद है वहांसें देख लेना.

१२ प्रश्नः—तुम कहते हो कि जडमें चेतनशक्ति नहीं, तब तुमभी बुद्धि वढानेके लिये सरस्वती चूर्न खिलाते हो, फिर शास्त्रमेंभी वज्रऋषभनाराचसंघयण होवै तो क्षपकश्रेणी मांड सकै-फिर "प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणि" मेंभी यात्राके फलमें सार पुद्गल स्पर्शनेसें अच्छी बुद्धि होवै ऐसा बतलाया है वो जडकी शक्तिसें क्यों बन सकता है?

उत्तरः—जड है उसकी शक्ति जहांतक कर्म सहित जीव है और कर्मसें करकें आत्माका स्वभाव ढका गया है, वो आवरण करनेवाले पुद्गल है, वो पुद्गल ऐसे मिले है कि आत्माकी ज्ञानशक्ति चलनेही नहीं देते. तो सरस्वतीचूर्ण प्रमुखके सार पुद्गल हैं, वो जैसें औषध खाते हैं तो शरीर अंदरके रोगके पुद्गलकों निकाल देते हैं, वैसें शरीरमें वायु प्रमुखसें इंद्रियोंको शक्तिमें हरकत हो वो दूर होती है; उससें चेतनशक्ति चलनेमें जो अडचण थी वो दूर हुइ कि जो बुद्धिथी वो चल सकती है. जैसें आंखपर पाटा बांध दिया गया हो और पीछा हठा देवें तो आंखोंसें देख सकते हैं. पाटा दूर हठनेसें कुछ आंखोंमें ताकत नहीं आती है; मगर हरकत डालनेवाली चीज

दूर हो गइ–विसी तरह सरस्वती चूर्ण करता है. संघयणका बलभी जैसें कानमें रोग हुवा हो तो आत्मा है तथापि सुना नहीं जाता; क्यों कि कानका भाग विगडा हुवा है वो सुधर जाय तो सुना जावे, वैसें संघयण बलवान हो तो आत्माकों अपना काम करनेमें हरकत करनेवालेकी हरकत नहीं रतीहै, उससें अपनी ज्ञानशक्ति चल सकती है जैसें निर्बल मनुष्यकों लकडीका आधार हो तो चलनेमें हरकत नही होती, विसी तरह आत्मा कर्मके आवरण सहित है वहांतक निर्बल है, उससें आधाररूप संघयणका बल चाहियें. सर्वथा कर्मसें रहित होवै तब देहरहित होता है और तभी अपनी शक्ति जितनी है उतनी चल सकती है, उसमें कुछ पुद्गलके आधारकी जरूरत नहीं. जैसें निरोगी आंखवालेकों चस्मेकी जरूरत नहीं; मगर आंखका तेज घट गया हो उसकों बेशक चस्मे चाहियें, तैसें कर्म आवरणरूप रोग है वहां तक जो जो ज्ञान होता है वो इंद्रियोंके बलसें होता है और वहां तक अच्छे पुद्गलकी जरूरत पडती है. जैसें कि केवलज्ञान प्रकट होता है तब कोइभी इंद्रिकी जरूरत नहीं पडती है, अपनी आत्मशक्तिसेंही ज्ञान होता है; वास्ते आत्मशक्तिमें कुछभी जडकी जरूरत नहीं पडती. ज्यों ज्यों जडसंगति दूर होती जाय त्यौं त्यौं आत्मज्ञान प्रकट होता है, और संसारमें भटकनेका मिट जाताहै. आत्माके उलटे विचार होते हैं वो जडकी संगतिके फल हैं, वो जडकी संगति छूट जायगी और आत्माकी सन्मुख होगा तबही जो जो सत्य विचार हैं वो मालूम होवेंगे. वहांतक मालूम न होवेंगे; वास्ते जडकी संगति कमती करो कि सबकुछ अच्छा होवै.

१३ प्रश्नः—जडकी संगति कमती करनेमें क्या करना ?

उत्तरः—सद्गुरुका समागम, और निष्प्रही, निर्विषयी स्वात्मभावी पुरुषोंकी सोबत करनेसें मार्ग हाथ लगेगा.

१४ प्रश्नः—तुमारे कहने मुजब सब कर्मसें बनता है तो ज्यौं बननेका होगा त्यौं बनेगाही सही, तो फिर उद्यम करनेकी क्या आवश्यक्ता है ? उद्यमकों तो तुमने पेस्तर निकमा गिन लिया है.

उत्तरः—हमारे जैनशासनमें तो हरकोइ कार्य होता है वो पांच कारण मिलनेसें होता है, और पांचों कारणोंमें उद्यमभी सामिल रक्खा गया है. तुमने तो अकेले उद्यमसेंही कार्य पार होना मान लिया है सो हम नहीं मानते हैं; क्यौं कि प्रत्यक्ष देखने

हैं कि उद्यम बहुतही करते हैं; मगर पुन्यकी न्यूनता हो तो कुछ फल मिलता नहीं. पुनः अकेले उद्यमसें होवे तब उसकों अच्छी करणी करनेकी बुद्धि नाश होती है; क्यों कि उसके दिलमें पूर्वपुन्यकी श्रद्धा नहीं कि पुन्य होवेगा, उससें पुन्य करनेका उद्यम नष्ट हो जाता है और कितनेक भावीपर रहते है कि ज्यों बननेका होगा त्यों बनेगा, वोभी निरुद्यमी होते हैं, सोभी कामका नहीं पांचो कारणोंके योग मिलनेसें ही कार्यकी सिद्धि होती है.

१६ प्रश्नः—(अ) पांच कारण किस तरह मानते हो?

उत्तरः—पांच कारण सो-काल, स्वभाव, नियत, उद्यम और पूर्वकृत यह पांच कारण इकठे होते हैं तब हरएक कार्य होता है काल सो इस वक्त पंचमकाल है तो पंचमकालमें कोइ जीव मुक्तिमें नहीं जा सकते. तीसरे चौथे आरेमें जीव मोक्ष पाते हैं जैसें उष्ण ऋतुमेंही आमके पेडपें फल लगे, स्त्रीकी उम्मर चाहियें उतनी न होवे-तबतक गर्भ धारण न करे, वैसें हरएक कार्यमें कालकी सामग्री मिलनी चाहियें. कालकी सामग्री चौथे आरेके जीवोंकों मिले; मगर उनजीवोंमें भव्य स्वभाव नहीं वहांतक वैभी मुक्ति नहीं पा सकते; क्यों कि भव्य स्वभाव चाहियें और तीसरे चौथे आरेमें बहुतसें भव्य जीव थे उससें स्वभाव कारण मिला; मगर उस जीवने समकित प्राप्त नहि किया जिससें नियत कारण नहि मिला. तब कोइ कहेगा कि–'श्रेणिक महाराज और कृष्ण महाराज क्षायक समकित पाये थे उन्होंकों नियत कारण मिला था तोभी मोक्षमें क्यों नहीं गये?' उसका जवाब यही है कि ये तीन कारण मिले; परंतु मोक्षसाधनका उद्यम किया नहीं. जैसें आमके पेडपर आम लगनेकी मोसम है [आमकों वंधत्वपना नहीं] वो स्वभाव और मंजरी वगैरः आइ है ये तीन कारण मिले; तथापि उस आमका रक्षण न करे याने पानी वगैरः जो कुछ आमकों चाहियें वो सींचन न करे तो आम हाथ न आवेंगे, वैसें, समकित पाया; मगर ज्ञान दर्शन चारित्र प्रकट करनेका उद्यम न करे तो मुक्ति न मिले. किसी तरहसें श्रेणिकमहाराजाने संयमाराधन किया नहीं उससें तद्भव केवलज्ञानकी प्राप्ति न हुइ. अब जो उद्यमसेंही केवलज्ञान होवे तो स्थूलीभद्रजी प्रमुख मुनिमहाराजने तप संयमका बहुतसा उद्यम किया था; तदपि केवलज्ञान न पाये उसका कारण क्या? पांचवा भवितव्यताका योग मिलना चाहियें स्थूलीभद्रजीकों अभी कर्म भुक्तने बाकीमें थे उससें

मोक्षमें न जा सके. कर्मकी स्थितियें जिन जिन मुनिकी परिपक्व होती है उन उन मुनिकों उद्यम करनेंसे केवलज्ञान हो सिद्धिसुख प्राप्त होता है. और फिरभी होवेगा. वास्ते पांचों कारण मिलनेसें मोक्षरूप कार्य होवेगा यह अधिकार प्रकरण रत्नाकर भाग पहिलेके पत्र १७८ में हैं वहांसें देख लेना पुनः विनयविजयजीने स्याद्वादका स्तवन बनाया है उसमेंभी विस्तारसें कथन किया है, वोभी वहांसें देख लेना. इन पांचों कारणोंमेंसें एक एक कारणकी मुख्यता लेकर भिन्न भिन्न मत प्रकट हुवे हैं, उसमेंसें आत्मार्थियोंकों देख लेना कि इन पांचोंके मिलापसें जैसा कार्य होता है वैसा एक एक कारणसें नहीं हो सकता है कितनेक उद्यमकी महत्ता गिनकर उद्यम किया करते हैं; परंतु इच्छित कार्य जब नहीं होता है तब चित्तमें विषाद होता है. मगर कर्मकी जो प्रतीति होवे तो उससें कर्मका विचार करे कि-' व्यौपार तो किया; किंतु पूर्वकृत पुण्यकी न्यूनता है उसीसें लाभ नहीं पाया. अब विकल्प करके क्या करेगा ? " ऐसा शोच करकें समताभाव ल्यावे फिर कितनेक यु कहते हैं कि भाविमें बननेवाला होगा वैसा बन रहेगा.' ऐसा विचार करकें उद्यम नहीं करते हैं, तो वैसे जीवभी प्रभुमार्गका लाभ न ले सकते हैं. कारण कि प्रभुजीने कर्म दो प्रकारके कहे हैं याने उपक्रमी और निरुपक्रमी. उनमेंसें जो निरुपक्रमी कर्म है उनमें तो उपक्रम लगनेकाही नहीं; परंतु उपक्रमी कर्ममें उद्यमसें उपक्रम लगता है और उससे कर्म नाश होते हैं; कारण कि क्षायकसमकित जिस वक्त पाते है उस वक्त एक कोडाकोडी सागरोपममें पल्योपमका असंख्यातवा भाग कमी उतनी स्थिति सातों कर्मकी रहती है. अब जो दूसरे भवका आयुष न बांधा होगा तो उसी भवमें मोक्ष पावेगा, तब आयुष्य तो कोडपूर्वसें विशेष कोइभी मोक्षगामीका नहीं, तो ये कर्म कहां भुक्तेंगे अर्थात् न भुक्तेंगे ? ज्ञान दर्शन चारित्रके आराधनरूप उद्यमने ये कर्मकी स्थिति कमती कर थोडे वक्तमें भुक्त लेवेंगे; वास्ते वो सब उद्यमसें बनता है-इस लिये भाविक ऊपर भरोसा रख बैठ रहना सो अयोग्य है. जो जो कार्य करना हो उसमें उद्यम तो करना, उसमें उद्यम करनेपरभी कार्य सिद्ध न हुवा तब शोचना कि-' इस कार्यमें अंतराय कर्म जोर करता है, वो कारणकी न्यूनता हुइ उससे मेरा कार्यसिद्धिकों न भेट सका.' ऐसा शोच करकें समभावमें रहना, उससें चित्त प्रसन्न रहवेगा. नये कर्म न बंधे जाय वास्ते जो जो कार्य करना हो उसमें पांचो कारणमेंसें जिस जिसकी [कारणकी]

न्यूनता-कसर होवै वहांतक कार्य न हो सकैगा. ऐसा विचारकें न हुवा उस संबंधी संताप न करना. कोइ वक्त उद्यम किया; मगर खामीसें भराहुवा किया तो उससेंभी कार्य न होवैगा तो पुनः उद्यम करना. इस संबंधमें ऐसा समझना कि जिस जिस वक्त जो जो करने योग्य हो उस उस वक्त वो कार्य करना. इस मुजबके पांच कारणके योगसें कार्य होवै ऐसा जैनागमका फरमान है और वही हमारा मनोरथ पूर्ण करनेहारा है!

१५ प्रश्नः—(ब) जैनागमकी मर्यादा मुझकोंभी अच्छी लगती है. इन पांच कारणोंके संयोगसें कार्य हो सकै उसमें कुछ संदेह न रहेता है; मगर तुमने जीवका स्वरूप बतलाया वो देखनेसें अनंत ज्ञानादि शक्ति कायम है तो वो किसतरह प्रकट करनी?

उत्तरः—अठारह दूषण जबतक जीवमें मौजूद है वहांतक जीवकी जो जो आत्मशक्ति है वो प्रकट नहीं हो सकती वै अठारह दूषण ये है. दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुगंछा काम, अज्ञान, मिथ्यात्व, निद्रा, अव्रत, राग और द्वेष—ये १८ औगुन दूर कर देवै तब आत्माकों गुन प्रकट हो सकै और जन्ममरनका परिभ्रमणभी मिट जाय.

१६ प्रश्नः—दानांतराय सो क्या?

उत्तरः—दान याने देना सो-संसारमें पांच प्रकारका है याने अभयदान, सुपात्रदान, अनुकंपादान, कीर्तिदान और उचितदान—ये पांच दानके भेद हैं. उसका अंतराय होवै वहांतक जीव दान न दे सकता है.

सुपात्रदान सो-तीर्थंकरमहाराजजी, सामान्य केवलज्ञानीजी, आचार्यजी, उपाध्यायजी, साधुजी, उत्तम श्रावक, सम्यग्दृष्टि और मार्गानुसारी—ये तमाम सुपात्र हैं. ऐसे पुरुषोंका योग मिलै, आपके पास योगवाइ होवै, और ऐसे पुरुषोंकों देनेमें लाभभी जानता होवै; तोभी दानके अंतरायसें करकें न दे सकै और दानांतराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवै तो दे सकै. अभयदान सो-कोइ किसी जीवकों मार डालता होवै तो उस जीवकों म्होतसें बचाना, और उस जीवकों बचानेमें कुछ कष्टभी पडै तो उठा लेकरभी उसकों बचा लेवै फिर जिन पुरुषोंकों विशेष दानांतरायका क्षयोपशम हुवा होवै तो वै आपके खाने पीनेके वास्तेभी किसी जीवकी हिंसा न होने देते हैं-आप खुद कष्ट सहन करै अचित्त-जीवरहित वस्तु मिलै वही लेवै, न मिलै तोभी

जीवकी हिंसा होवै वैसी वस्तु न लेवै. आपका मरन होवै वो कबूल कर लै; मगर किसी जीवकों दुःख होवै वैसा न करै. वैसे पुरुष तो कोइभी कारणसें कोइभी जीवकों दुःख होवै वैसा करैहि नहीं; सबब कि जिस तरह मुझकों पीडा होनेमें है दुःख होता है, उसी तरह दूसरे जीवकोंभी दुःख होवै; वास्ते किसीकोंभी दुःख होवै वो काम मेरे न करना. इस तरहसें चले वो अभयदान कहा जाय.

अनुकंपा दान सो-कोइ जीव दुःखी हो और आपके पास वस्तु हो तो वो दे करकें उसकों सुखी करना. पीछे थोडी योगवाइ हो तो थोडा देवें, और विशेष योगवाइ हो तो विशेष देवै. शरीरकी महेनतसें दुःख दूर हो जाता हो तो महेनत करकें उसका दुःख निवर्त्तन करै. इसमें पात्रापात्रका विचार नहीं करना. फकत दुःखी जीवका दुःख दूर करनेकी बुद्धि है. पुनः जिनमें ज्ञानशक्ति है उनकों मुनासिब है कि अधर्मि जीवोंकों ज्ञानका बोध करना-वोभी अनुकंपादान है. औषधादिक दे करकेंभी दूसरेकों सुखी करना-जिस प्रकारसें अन्यजीव सुख पावें वैसी बुद्धिसें करना वो अनुकंपादान कहा जावै. इसका अंतराय होवै तो ये दान सच्ची योगवाइके वक्त न कर सकै, और इस अंतरायका क्षयोपशम हुवा होवै तो ये दान दे सकै. ये तीन दान आत्माकों हितकर्त्ता हैं.

चौथा कीर्तिदान सो-आपकी कीर्ति-शोभा होवै उस वास्ते देना, दूसरा शासनकी कीर्तिके वास्ते देना, याने जैनीलोग क्या दानेश्वरी हैं !" क्या उदारशील है ! धन्य है जैनधर्मकों ! ऐसें धर्मकी प्रशंसाके वास्ते देना सो एक सम्यक्त्वका प्रभाविक गुन है-वोभी अंतराय कर्मके आवरण दूर हट गये होवें तो बनता है.

पांचवा उचितदान सो-संसारी कुटुंबादिककों व्याजबी हो विसी तरहसें देना. वोभी अंतराय होवै तो उचितता न समाल सकै. इस प्रकार पांच दान हैं, उनमेंसें पिछले दो दानसें इन लोकमें यश कीर्ति होती है, नीति समाली जाती है, माता-पितादि उपकारियोंके उपकारका बदला दिया जाता है और लक्ष्मीकाभी उपयोग होता है. जो जन उचितमें नहीं समझता है वो पापका भागी होता है. पहिले तीन दान हैं सो आत्माके हितकारी हैं, वो जब दानांतराय हट गया होवै तबही गुणवंत जानकर देनेका विचार होवै, तब जितना जितना दानांतराय तूट गया हो उतना आत्मा विशुद्ध होवै.

यहांपर कोइ शंका करेगा कि-'मुनिमहाराज आदि क्या दान देते है?' उसका उत्तर यही है कि-ज्ञानदान समान दूसरा कोइ सर्वोपरी दान हैही नहीं. वास्ते मुनिमहाराज भव्यजीवोंको ज्ञान पढाते है. ज्ञानोपदेश देते हैं उससें वे जीव न करने योग्य कार्य-अकार्यसें मुक्त हो जाते हैं और पापके काम नहीं करते हैं. इससें दुर्गतिके दुःख भुक्तने पडते नहीं और सद्गति-देवलोक वगेरःके सुखकी प्राप्ति होती है. तो वो सुखके देनेहारे वो गुरुमहाराज हैं तो किसीसें न दिया जाय वैसा ज्ञानदान दिया. कितनेक तीर्थंकरजीका उपदेश सुनकर संपूर्ण तीर्थंकरजीकी आज्ञा शिरपर चडाकर सर्वथा रागद्वेषसें मुक्त होते है केवल अपने आत्मधर्ममेंही प्रवर्त्तते है उससें केवलज्ञान पाकर मुक्तिमें जा वहां सदैव स्थिरतासे रहते है पुनः संसारमें आनेका नहीं, जन्म मरनका दुःख मिट जाता है, सब प्रकारके विकल्प दूर हो जाते हैं, पूर्ण आत्माके गुण प्रकट होते है और किसी प्रकारकी हरकत नहीं ऐसा-अव्याबाध सुख प्राप्त होता है. तो वो देनेवाले तीर्थंकरजीमहाराज हैं. वही दानांतराय क्षय होनेसें आत्मामें अनंत दानशक्ति प्रकट हुइ है उससें ज्ञानदान देकर जगतको भव दुःखसें छुडाते हैं. जो और कोइ न कर शके वैसा अद्भुत ज्ञानदान है. पुनः गृहस्थावासमें थे तब हमेशां एक वर्षभर तक एक क्रोड आठ लाख सुवर्ण म्होरोंका दान दिया वैसे दानेश्वरी जगतमें कोइ नहीं. वो दानांतरायके क्षयोपशमका फल है. फिर जब केवलज्ञान होता है तब सर्वथा दानांतराय क्षय होता है उसके प्रभावसें ज्ञानदान है वो व्यवहार, निश्चयमें अपने आत्माके गुण ढक गयेथे और बहिरात्मदशा हुइ थी उतने अपने गुण अपने आत्मामें आये वो स्व दानगुण प्रकट हुवा है और सदा काल अवस्थित है और वे गुण सिद्ध भगवानको जब तक कायम रहते हैं. वे जीव अपनी आत्मसत्ताको सोचनेपर वो वर्त्तना करनेसें दानांतराय क्षय होवे.

१७ प्रश्नः—दानांतराय क्या करनेसें बंधा जाता है?

उत्तरः—पांच प्रकारमेंसें हरकोइ दान कोइभी करता होवे उसको कहवे कि ये दान देना उस करतें पेटमें खाना वो अच्छा है वो छोडकर लोगोंको देनेमें क्या फायदा है. या गुणवंत होवे उनको निर्गुणी ठहराकर न देवे. फिर देता हो उसको मना करे निंदा करे-उसको कहवे कि यह तो उडाउ है-कुछ पैसा खर्चनेका विचार नहीं करता है, या आप शक्तिवान होवे और दान देनेवालेका महीमा होवे वो देखकर

उसकेपर गुस्सा ल्यावे, आपसें कुछ वन सके तो उसका नुकसान करै-छीलना करै अगर दान देवे तो अहंकार ल्यावे कि मेरे समान जगत्‌भरमें कोइ दान देनेवाला हैही नहीं. मैंने धर्मके कार्य कोइ न करै वैसे किये हैं. इत्यादि अनेक प्रकारके कारणोंसें जीव दानांतराय कर्म बांधता है जो आत्मार्थी हैं वो तो शोचते है कि भगवान्‌जीने संवत्सरी दान दिया था और मेंनें क्या दिया? मेरे आत्माका तो दानगुण ढका गया है वो प्रकट करना चाहियें. फकत पुन्योदयमें धन मिला है, वोभी जितना मेरे भोगयके लिये व्यय करता हुं उतना दानमें व्यय नहीं करता हुं तो में क्या अहंकार ल्यांउं? पेस्तरके महान् पुरुष मूलदेव जैसें कि जिन्हने तीन दिनसें अन्न नहीं पायाथा और चौथे रोज जब उरद खानेकों मिले तोभी दिलमें आया कि कोइ सुपात्र मुनि मिल जावे तो में उन्होंकों देकर पीछे खाउं. ऐसा शोचता है दरम्यान भाग्यशालीकों मासखमणके पारणेवाले मुनि मिल गये कि तुरत वे उरद दे दिये. वो दानगुणके महिमासें आकाशमें देववाणी हुइ कि-'सातवे रोज तुझकों राज्य मिलेगा.' ऐसा कहे बाद दानकी प्रशंसा की. देववाणी मुजब उनकों राज्यभी मिला. तो हे चेतन! तूंने तो वस्तु मौजूद होनेपरभी वैसा दान न दिया तो क्या गर्व करता है. पेस्तरके वैसे गुणवंत पुरुष अपना तन धन दोनु गुरुजीकों अर्पन करतेथें, वोभी तूने नहीं किया तो तुं क्या अहंकार करता है. देवभक्तिमें न्यूनता न आवे उस वास्ते रावणने अपने हाथकी नस निकालकर वीनकों दुरुस्त करके गानतान जारीही रख्खा था, तो वैसी तूने भगवंतजीकी भक्ति की नहीं और न धनभी व्यय किया है या शरीरभी काममें न लिया है तो तुं किस प्रकारका अहंकार ल्याता है? पूर्वकालमें केइ पुरुषोंने अभयदानके लिये कोइ जीव मरता होवे तो बचानेके वास्ते अपनी दौलत लूंटादि है सो तो तूने लूंटादी नहीं तो काहेका अहंकार करता है? शांतिनाथजीनें तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया उस जीव-मेघरथराजानें एक कबूतरकों बचानेके लिये अपने शरीरका मांस काट काट कर देना शुरु किया, देखिये दानेश्वरीपना! तूने वैसा तो अभयदान दिया नहीं कि अहंकार करता है? सब जीवोंको अभयदान होवे उस वास्ते चक्रवर्तीकी ऋद्धि छोडकरके संयम ग्रहण किया, तो चेतन! तूने क्या किया है कि अहंकारसें घमंडी बन जाता है? सगराम सोनीने सुवर्णके अक्षरोंसें ज्ञान लिखवाया उस अंदरका मैंने क्या किया कि अहंकार करुं. पुनः कुमारपालराजानें

ज्ञान लिखवानेके वास्ते ताडपत्र न थे उससें कागजपर पुस्तक लिखते हुवे देखकर हेमचंद्राचार्यजीकों कहा कि-'कागजपर किस सववसें लिखशाना शुरु रख्खा है?' आचार्यजीने फरमाया कि-'अभी ताडपत्रकी न्यूनता है उस सववसें.' कुमारपालने उसी दम अभिग्रह लिया कि-'जवतक ताडपत्र चाहियें उतने ल्याकर हाजिर न करुं वहांतक अन्नजल न ग्रहण करुंगा.' उस वक्त प्रधानने अर्ज की कि-'ताडपत्र दूर देशसें आते हैं और आपश्रीने कठिन अभिग्रह लिया तो वो क्यौंकर पूर्ण होवैगा?' तोभी राजाने कहा कि-'जो नियम लिया गया सो अव न फिर सकैगा. चाहे वैसें हो; परंतु ताडपत्र पूरे कीये विगर तो अन्नजल न ल्युंगा!' वाद इस उग्र अभिग्रहके प्रभावसें आपके वगीचेमें खडताड थे वो असली ताड वन गये और उससें अभिग्रह पूरा हुवा. तो चेतन! तूने कितने ज्ञान लिखवाये? कितने अभिग्रह लिये है कि ज्ञानमें अल्प खर्च करकें अहंकार करता है? तूने साधर्मियोंकी क्या वात्सल्यता की? कुमारपालराजाने स्वधर्मीयोंकों राज्यके अंदर रोजगारमें लगा दिये, वैसे तूने कोनसें उपकार किये हैं कि गर्व करता है. संप्रतिराजाने सवाक्रोड जिनविंव भरवाये उनमेंसें तूने क्या किया? कि अहंकार करता है. धनाजीने जगह जगह धन उपार्जन किया और वो अपने भाइकों देकर विदेशगमन किया तूने वैसा क्या कुटुंवका रक्षण किया है कि अहंकार करता है. भोजराजाने एक एक श्लोकके लख्खों रुपै दानमें दिये हैं उन्मेंसें तूने क्या दिया? सिद्धसेनदिवाकरजीने चार श्लोक कहे उसमें विक्रमराजाने चारों दिशाओंका राज्य उन्होंको सुंपरद कर दियाथा. अव शोच कर कि तूने क्या दान दिया? कि अहकार करता है. ऐसी सुंदर भावना ल्याकर दान देकर अहंकार न ल्यातें दूसरोंको दान देने, दिलवानेकी प्रेरणा करता है, कोइ दान करै उसकी प्रशंसा करै, दानके अतिशय व्यसनी होते हैं वे तो अपने पहननेका वस्त्र तकभी देकर आप दुःख उठा लेते हैं. ऐसे दानके उत्कृष्टभाव ज्यौं ज्यौं होते जाय त्यौं त्यौं दानांतराय तूटता जाय. दातारकी सोवत करनी, दानके फल श्रवण करना, विषयकी लालसा छोड दैनी. विषयवाला तो शोचता है कि में दान दउंगा तो में पीछे क्या खाउंगा? ऐसे पुद्गल सुखमें मग्न होनेसें दान न दे सकता है. और दानांतराय वांधता है. और जिसकों दानांतर तूटनेका है वो तो चिंतवन करता है कि-हे आत्मा! तेरास्वभाव ज्ञान दर्शन चारित्र गुणमें रहनेका है यह शरीर सो तूं नहीं. शरीर कर्म-

संयोगसें मिला है, तो इनकों पुष्ट करनेसें नये कर्म बंधेंगे. जो जो विषय भुगतेंगे उससें कर्म बंधें जावेंगे. और यह धनादिक पुन्योदयसें प्राप्त हुवा है तोभी इस द्रव्यकी ममता करुंगा तो कर्म बंधे जावेंगे. और मेरा आत्मा कर्मसें आच्छादित हो जायगा; वास्ते इस द्रव्यका दान करुंगा तो जिन द्रव्यसें जो कर्मविषय भुक्तकर कर्म बंधे वो न बंधे जायेंगे. इस लिये यह द्रव्य ज्यौं बन सकै त्यौं सुपात्रमें देना, ऐसी भावना भावता है. पुनः चिंतन करता है कि-तेरे आत्माके गुण प्रकट करकें आत्माकों देना सो दानगुण है, और ये धनादिककी ममता है उसका त्याग होवै तो जितनी जितनी ममता तेरी त्याग हुइ उतना आत्मा निर्मल हुवा और तूंने तेरे आत्माके गुण आत्माकों प्रकट कर दिये वही स्वाभाविक दानगुण प्रकट हुवा. ऐसे विशुद्धभावसें दानांतराय अनुक्रमसें सर्वथा तूट जायगा.

१८ प्रश्नः—लाभांतराय वो क्या ? उसका बयान किजीयें

उत्तरः—जो जो लाभ होनेके हो वो लाभांतराय तूटनेसेंही होनेके हैं. और वो लाभ दो प्रकारके हैं-याने एक संसारी लाभ और दूसरा आत्मिक लाभ. ये दोनूंमें अंतरायकर्म पीडता है. प्रथम संसारी लाभ है सो शरीर निरोगी मिलना, स्त्री-पुत्र-परिवार-धन-अनुकूल मनुष्य-नोकर चाकर और जिस वक्त जो इच्छा हो वो वस्तुका मिलना अगर विद्यां कला शीख लेनी यह सब लाभांतराय कर्मका क्षयोपशम हुवा होवै तो मिलै. उसमें फिर थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो थोडा लाभ और विशेष हुवा हो तो विशेष लाभ मिलै. और जो जो वस्तुका अंतराय हो वो लाभ न मिल सकै. उत्तम पुरुषोंनें इस कर्मका स्वरूप जान लिया है, उससें ये वस्तु न मिलै तो उसका शोचसंताप नहीं करते. जिनके मनमें क्लेश आता है वोभी शोचते हैं कि पूर्वजन्ममें लाभांतराय कर्म बांधा है उसीके लिये नहीं मिलता है. गतजन्ममें कर्म बांधनेके समय शोच नहीं किया और अब संताप करता है वो क्या काम आवै ? ऐसे विचारसें संतोष भजते हैं और उसीसें लाभांतराय कर्मकी निर्जरा करते हैं. विशेष उत्तम पुरुषकों तो शोचनाही नहीं पडता-सहजही समभावमें रहते हैं. जो होवै सो जाननेका आत्माका धर्म है उसमें रह करकें जान लेते हैं, मगर विकल्प नहीं करते हैं. अज्ञानी जीव है सो जब लाभ मिलता नहीं तब दूसरेका दोष निकालते हैं. कितनेक दैवकों दोष देते हैं-'अहा ! दैव ! तूनें ये क्या किया ? मेंने तेरा क्या विगाडा था ?' फिर

स्हायनेवाले मनुष्यके साथ लडै-भीडै-गुस्सा बतलावे. वैद्यकी साथ काम पडै और अच्छा होनेका लाभ न मिले तो उसकेपर द्वेष करै, और लाभ मिलनेसें वडाइकी वातें करता फिरै-अहंकार करै कि मै कैसा धनपात्र हुं. मै कैसा हुशियार-कावेल हुं कि जो व्यापार करता हुं उसीमें पैदाही करता हुं, खोट आवैही नहीं-नफाही मिलै. राजा होवे तो राज्यका लाभ मिलनेका या राज्यमें व्याजवी आमदनी होवे या गेरव्याजवी रीतिसें जुल्म गुजारकर रयतके पाससें पैसा लेकर लाभ मिलाके अहंकार करै. फिर कार्यभारी होवे तो लोगोंके पाससें रीस्वत लेकर लाभ मिलाके अहंकार करै या लोगोंके ऊपर जुल्म गुजारे, राजा खुशी हो मान्य देवै-इनाम देवै-रावबहादुर-दिवानबहादुर वगैरःका इलकाब देवे वो लाभ मिलाकरकें अहंकार करै. जो अनीति चलाइ हो उसकी प्रशंसा करै या उसके साथ आपकीभी तारीफ जाहिर करै, लुचाइ करकें दिलमें शोचे कि-क्यौं कैसी तदबीर की ! किसीके जाननेमेंभी न आइ और मैंने मेरा लाभ मिला लिया. ऐसें अनेक प्रकारका गर्व करै. फिर किसीका सच्चा लहेना हो तो खोटी रसीदें बनवा करकें कचरीहमें पेशकर पसार करवा कर उसका लहेना खोटा करकें मनमें फायदा हुवेकी खुशहाली बतलावे. ऐसी खोटी वर्त्तना करनेसें जीव लाभांतराय कर्म बांधता है, उससें दूसरी दफे लाभ मिलना मुश्किल हो पडता है.

आत्मिक लाभ तो संपूर्णतासें तब प्राप्त हो सकै कि जब सब कर्म क्षय करकें आत्माका अनंत ज्ञान-अनंत दर्शन-अनंत चारित्र-अनंत वीर्य-अव्याबाध सुख-अक्षयपद-अजरामर-अज-अगम-अगोचर-अगुरुलघु आदि अनंत गुण प्रकट करै, तब आत्माकों लाभ प्राप्त हुवा. वो सर्वथा प्रकारसें बारहवे गुणस्थानकपर सत्ता बंध उदयसें अष्ट कर्म क्षय हो जाय तब होता है. तब अंश अंशसें तो चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानकसें प्रकट होता है. जितना आत्माका गुण प्राप्त हुआ उतना लाभ हुवा, ऐसे गुणस्थानकमें गुण प्राप्त करनेके कारणरूप प्रवृत्ति होनेसेंभी लाभ होता है. वो लाभभी लाभांतराय टूटनेसें होता है-याने दान-शील-तप और भाव इन चारों वस्तुओंकी प्राप्तिरूप लाभ लाभांतरायके तूटनेसें होता है.

१९ प्रश्नः—दान क्या चीज है ?

उत्तरः—दानांतरायके स्वरूपमें कहा है उस मुजब दान कर सकै तो दानगुण

प्रकट हुवा वही आत्माकों लाभ हुवा, उसमें जो जो अंशसें गुण कर शके उतना लाभ प्राप्त हुवा समझना.

२० प्रश्नः—शील वो क्या है ?

उत्तरः—शील याने आचार. वो आचार पांच प्रकारका है उसमें प्रथम ज्ञानाचार, वो ज्ञानाचार संपूर्ण तो अनंतज्ञान प्रकटै तब वो रूप लाभ मिलेगा. और उसके कारणरूप मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान-ये चार ज्ञान प्रकट होवै तब चारका लाभ हुवा. उतना लाभांतराय न तूट गया हो तो मति-श्रुत-अवधि प्राप्त होता है किंवा मति-श्रुत मनःपर्यवज्ञान होता है. उतनाभी लाभांतराय कर्म क्षय न हुवा हो तो याने थोडा क्षयोपशम हुवा हो तो मति-श्रुत ये दोनुही प्रकट होते हैं. उतना लाभ हुवा, और उसके साथ समकितकाभी लाभ होवै; कारण कि समकित विगर मति, श्रुत अज्ञान कहे हैं. उससेंभी कम क्षयोपशम हुवा हो तो समकित रहित ज्ञानरूप लाभ होवै. उससें बुद्धिकौशल्यता प्राप्त हो सकै. सांसारिक कार्यमें हुंशियार होवै मगर आत्मिकज्ञान न होवै. आत्माके कल्याणरूप ज्ञान तो सम्यक्त्वज्ञान है वो काम लगै. सम्यक्त्वज्ञानरूप लाभ होवै, वो ज्ञान किसीकों द्वादशांगरूप ज्ञान होता है. उतना लाभांतराय तूट जावै तो मुक्तिके बहुतही समीप होवै. किसीकों चौदह पूर्वका ज्ञान होवै उन चौदह पूर्वके नामः—उत्पादपूर्व-जिसमें द्रव्यके पर्यायके उत्पादका स्वरूप है. दूसरा अग्रायणी पूर्व-जिसमें सर्व द्रव्य सर्व पर्यायका परिमाण दर्शाया है. तीसरा वीर्यप्रवादपूर्व-जिसमें कर्मसहित जीवके और अजीवकी शक्तिका विस्तारपूर्वक स्वरूप है. चौथा अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व-जिसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल ये छः द्रव्य स्वस्वरूपसें अस्ति, पर स्वरूपसें नास्ति आदि वर्णन है पांचवा. ज्ञानप्रवादपूर्व-जिसमें पांचों ज्ञानका विस्तारपूर्वक वर्णन है. छठ्ठा सत्यप्रवादपूर्व-जिसमें सत्य, संयम, वचन, इन तीनोंका विशेष स्वरूप दर्शाया है. सातवा आत्मप्रवादपूर्व-जिसमें आत्मजीवके अनेक नयमतभेदसें करकें वर्णन किया है. आठवा कर्मप्रवादपूर्व-जिसमें आठ कर्म याने ज्ञानावरणी १, दर्शनावरणी २, वेदनी ३, मोहनी ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७, ओर अंतराय ८ इन आठो कर्मोंकी प्रकृतिबंध-स्थितिबंध-रसबंध-प्रदेशबंध इन चारोंके बंधका स्वरूप अतिशयतो पूर्वक दर्शाया है. नवम प्रत्याख्यान प्रवादपूर्व—

जिसमें त्याग योग्य वस्तुका और त्यागका स्वरूप कथन किया है दशवा विद्याप्रवादपूर्व-जिसमें अनेक आश्चर्यकारी विद्याका स्वरूप है. ग्यारहवा पूर्वमुनाकल्पापूर्व अगर अवंध्यपूर्व है-जिसमें फल वंध्य नहीं, ज्ञान-तप-संयमादिकका शुभ फल, प्रमादादिकका अशुभ फल ऐसे शुभाशुभफल बतलाये हैं. बारहवा प्राणायुपूर्व जिसमें दश प्राण याने पांच इंद्रि, तीन बल, श्वासोश्वास और आयु इन्होंका वर्णन है. तेरहवा क्रियाविशालपूर्व-जिसमें कायकि आदि क्रियाओंका स्वरूप संयमक्रिया, छंदक्रिया वगेरःका वर्णन है. चौदहवा लोकबिंदुसारपूर्व-जिसमें लोगमें अक्षरोंपर बिंदु सारभूत है, तथा सर्वोत्तम सब अक्षरोंका मिलाप और लब्धिका हेतु इन्होंका वर्णन है. इन एक एक पूर्वके पदकी संख्याका मान और एक एक पूर्वका ज्ञान लिखनेके लिये शाहीमें कज्जल कितनी चाहियें ये कुछ हकीकत नंदीसूत्रजीकी छपी हुइ टीकावाली प्रतके पत्र ४८२ में है वहांसें देख समझ लेना. तथापि पहेला पूर्व लिखवानेमें एक हस्तीके समान काजलका ढेर चाहियें. पीछीके पूर्वमें दूना-दुगुणा लेना. ऐसें चौदह पूर्वमें ८१९२ हस्तिके समान काजलका ढेर चाहियें. उसमें पानी डालकर शाही बनाकर लिखे तो वे पूर्व लिखे जावे-इतना चौदह पूर्वका ज्ञान है. फिर उसके अर्थका तो क्या पार ? एक दूसरे चौदह पूर्वधर ज्ञानीके बीचमें अनंतगुणी हानि वृद्धि होती है. जिस पुरुषकों जितने लाभांतरायका क्षयोपशम हुवा हो उतने अर्थ ज्ञानका लाभ होवै. कोइ मुनिकों इतना लाभांतराय न तूटा होवे तो कमती पूर्वका ज्ञान होवै. किसीकों एक पूर्वका, किसीकों दो पूर्वका, किसीकों तीन पूर्वका-इस तरह यावत् चौदह पूर्वका ज्ञान होवै. वर्त्तमान समयमें पूर्वका ज्ञान किसीकोंनहीं होता हैं बहुत-अतिशय ज्ञानी होवे तो सूत्र याने पिस्तालिस आगमका ज्ञान हो सके. उसमेंसें अभी ग्यारह अंग हैं, बारहवा विच्छेद हो गया है.

आचारांगजी १, सूयगडांगजी २, ठाणांगजी ३, समवायांगजी ४, भगवतीजी ५, ज्ञाताजी ६, उपाशकदशांगजी ७, अंतगडदशांगजी ८, अनुत्तरोववाइजी ९, प्रश्नव्याकरणजी १० विपाकसूत्रजी ११ यह ग्यारह अंग गणधरमहाराजजीके रचे हुवे हैं याने जिस तरह श्रीमत् महावीरस्वामीजीने प्ररूपे उसी तरह गणधरमहाराजजीने सुनकर गाथारूप गुंथन कर लिये; मगर उस बाद बारह दुकाली बहुत वक्त पडी उसमें हरएक ग्रंथमें अंगमेंसें बहुतसा भाग विच्छेद हो गया. और जो थोडा भाग रहा

वो देवार्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने लिखवाया. उससें नंदीजी, समवायांगजीमें जितनी पद संख्या बतलाइ है उतनी नहीं पाइ जाती है. एक पदमें ५१०८८६१४० श्लोक होवे-ये एक श्लोकके अठ्ठाइस अक्षर कहे हैं. यह अधिकार सेनप्रश्नमें पत्र ३२ के अंदर है, वहां अनुयोगद्वारजीकी टीकाकी साख-गवाह दी है वहांसे देख लैना.

उपांग वारह हैं:-उवाइजी १, रायपसेणीजी २, जीवाभिगमजी ३, पन्नवणाजी ४, सूरपन्नत्तिजी ५, जंबुद्विपपन्नत्तिजी ६, चंदपन्नत्तिजी ७, निरीयावलीजी ८, कप्पियाजी ९ कप्पवडंसीयाजी १० पुप्फियाजी ११ और वन्हीदशांगजी १२ यह १२ उपांग है.

दश पयन्नाजीके नाम:-चउसरणपयन्नाजी १, आउरपच्चख्खाणपयन्नाजी २, महापच्चख्खाणपयन्नाजी ३, भत्तपच्चख्खाणपयन्नाजी ४, तंदुलवीयालीपयन्नाजी ५, गणीवीज्जपयन्नाजी ६, चंदाविजयपयन्नाजी ७, देविंदस्तवपयन्नाजी ८, मरणसमाधिपयन्नाजी ९, संस्थारकपयन्नाजी १०.

छः छेद और चार मूलसूत्र वगैरः याने दशाश्रुतस्कंधजी १, वृहत्कल्पजी २, व्यवहारसूत्रजी ३, जीतकल्पजी ४, निशीथजी ५ और महानिशीथजी यह छः छेद ग्रंथ हैं. तथा आवश्यकजी १, दशवैकालिकजी २, उत्तराध्ययनजी ३, ओर पिंडनिर्युक्तिजी ४ ये चार मूलसूत्रजी हैं. ओर नंदीसूत्रजी, अनुयोगद्वारजी ये दो-ये सब मिलकर पिस्तालीस आगमजी कहे जाते हैं.

उक्त आगमजी सिवाभी दूसरे पयन्नाजी वगैरः है. और उन्हके नामभी नंदीजीमे तथा समवायांगजीमें हैं पख्खीसूत्रमेंभी हैं; परंतु पिस्तालीसकी मुख्यता होनेका कारण यही हुवा कि वल्लभीपुरमें पुस्तक ४५ ही लिखे गये उसी लिये उतनीही संख्या कही गइ. परंतु दूसरे मुल्कोंमें दूसरे लिखे गये है वैभी वर्त्तमान समयमें मोजूद हैं ऐसा दीपकवीने एक चोपडीमें लिखा ह. (उनमेंसे मैनेभी कितनेक देखे हैं.) उसके नाम नीचे मुजब हैं:—

ऋषिभाषितसूत्र, पारसीमंडळ, वीतरागस्तव, संलेखनासूत्र, अंगविद्या, ज्योतिषकरंडक, गच्छाचार, तीर्थोद्गारड, उपदेशमाला, सिद्धपाहुड, श्रावककावंदितु, शत्रुंजयलघुकल्प, शत्रुंजयवृहत्कल्प, शत्रुंजयकल्प, भद्रवाहुस्वामीकृत गाथा २५, शत्रुंजयकल्प वयरस्वामीकृत, शरावलीपयन्ना, वसुदेवहींड, श्रावकपन्नत्ति, अंगचूलिया, वंगचूलिया और

आराधनापत्ताका इतने सूत्र वर्त्तमान समयमें मालूम होते हैं. तोभी बहुतसे देशोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं. परंतु दूसरे देश बहुत हैं वहां कुछ सबने निगाह नहीं की है तो इनसें कदापि विशेषभी सूत्र होंगे; क्यौं कि नंदीसूत्रजीमें देवर्द्धिगणीक्षमाश्रमण महाराजने जो नाम दर्शाये हैं वो नामवाले सूत्र उस वख्त हाजिर होनेही चाहियें. ये आगमोंमेंसें दश सूत्रजीकी निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी महाराजने की हैं, जो चौदह पूर्वधर थे, इससें निर्युक्तिभी पूर्वधरजीको बनाइ हुइ हैं वास्ते सूत्रजीकी तरह मानी जाय. जिसमें सूत्रजीका अर्थ युक्तिसें करकें सिद्ध किया है. और भाष्यपूर्वधर जैसे जिनभद्रगणीक्षमाश्रमण महाराजजीने रची है, उसमें निर्युक्तिसेंभी विशेष विस्तारपूर्वक अर्थ किया है. इस सिवा बहुतसे ग्रंथ और टीकाएं पूर्वधरजी वगैरः बहुश्रुत पुरुषोंके रचे हुवे हैं, वैभी आगमजी जैसे हैं. ऐसे जैनके कुछ शास्त्रके और जो जो शास्त्र दूसरे दर्शनोंमें रचे हुवे हैं वो, और व्याकरण, न्यायशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, नीतिशास्त्र, अष्टांगनिमित्तशास्त्र अष्टांगयोगशास्त्र-ये सब शास्त्रोंका बोध मिलाकर सत्य असत्यकी परीक्षा करै के-सत्यको अंगीकार करै तो उतना ज्ञानका लाभ हुवा कहा जाता है ऐसे लाभवाले पुरुषको ज्ञानके आचारका आठ प्रकारसें लाभ मिलता है. जो जो सूत्र जिस जिस समय पढने वांचनेका कहा है उसी काल पढै. चार संध्याकाल वर्जित करै-याने प्रातः कालमें सूर्योदयके पेस्तरकी और पीछेकी एक एक घडी और मध्यान्ह तथा संध्या, मध्यरात्री इन चारों वक्तकी दो दो घडी छोड देनी. उस वक्त कोइभी सूत्र न पढै. उस वक्त दुष्टदेव फिरनेको निकलते हैं वे जैनमार्गके द्वेषी होवै तो पढनेवालेको छल करै उससें वो वक्तका निषेध किया है. विनय सो ज्ञानवंत पुरुषका मुँह देखै कि नमस्कार करै, बैठा हो तो खडा हो जाय. ज्ञानवंतको सन्मान सह आसन देवे, जब तक ज्ञानवंत खडा हो वहांतक आपभी खडा रहै. ज्ञानवंतको योग्यासन दियेबाद उचित रीतिसें वंदना वगैरः करकें आप उचितासनपर बैठै याने गुरुसें ऊंचे आसनपर न बैठै और आगेभी न बैठै. जब फिर वे खडे होवै तब खडा हो विनयपूर्वक स्थित रहै और जब वे चलने लगै तो आगे आगे न चलै-इस तरह जो नीतिका फरमान हो उसको अमलमें लेवै. और ज्ञानज्ञानकी महत्वा ज्यों बढे त्यों करै. उन्होंका वचन न उल्लंघन करै ज्ञानवंतकी जिस जिस तरह आपसें बन सके उस तरह तन मन धनसें करकें भक्ति करै. दूसरेके पाससें भक्ति करावै. ज्ञानवंतकी तरह ज्ञानके पुस्त-

कोंकाभी विनय करै, पुस्तकें पास हो तो पेशाब दस्त न करै अगर जहांपर पुस्तक होवे वहांभी वैसे काम न करे. और स्त्री आदिकके भोगादिभी न करै. या पुस्तकके पास बैठकर भोजन करना, पानी पीना येभी न करे. अंतमें करनेकी जरूरतही हो तो वस्त्रका-पटांतर रखकर करे. पुस्तकका शिरानाभी न करे. फिर पुस्तक लिखवाकर ज्ञानकी वृद्धि करै, पुस्तक हो तो उन्होंकी संभाल रक्खे, ज्ञान पढनेका उद्यम करै, आप पढेला हो तो दूसरोंकों पढावे-इस तरह विनय करै. ज्ञानवंतका बहुत मान करै. वोभी सिर्फ ऊपरसें नहीं, मगर अंतरंगके प्रेमसें करै और शोचै कि-अहा! इस पुरुषके ज्ञानके आवरण बहुतसें खप गये है उसमें इन्होका आत्मा निर्मल हुवा है. ये पुरुष मुझेभी ज्ञान बक्षते हैं ये ज्ञानके प्रभावसें मेरा आत्माभी निर्मल होगा-मुजको चारों गतिमें भटकनेका बंध हो जायगा. जन्ममरणके दुःखभी इन्होंके प्रभावसें मिटेंगे; वास्ते ऐसे ज्ञानवंत पुरुषके जितने बहुतमान न करुं उतने कमती है. जगत्के जीव जो उपकार करै वो पैसे देवै तो अल्पकाल सुख होता है और ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान देते हैं उसका सुख तो अनंतकाल तक पहुंचेगा-वो ऐसे पुरुषके कितने बहुमान करुं. ऐसे भावसें बहुमान करै उपधान सो ज्ञान पढनेके लिये नवकारादिकके उपधान जो तप करनेका महा निशीथजीमें कहा है, और सूत्र पढनेके लिये-योग वहनेका कहा है उसी मुजब तपस्या करनी. योगकी जो जो क्रियाएं हैं वो करनी. अब यहांपर कोइ शंका करेगा कि ज्ञान पढनेमें तपस्या और क्रिया किस लिये करनी चाहियें? तो उसका समाधान यही है कि पुद्गलभावपरसें मोह उतर जाय तब तपस्या हो सके. फिर मोह उतर जाय तब आत्माकी विशुद्धि होवे और आत्माकी विशुद्धि होवे तब ज्ञानावरणी कर्म नाश हो जावे उससें सुखपूर्वक ज्ञान आ सके. फिर क्रिया है सो तंत्रके समान है उससें सूत्रजीके अधिष्ठाता सहाय्य करै-जैसें कि मल्लवादी महाराजजीकों देवीने एक ऐसी गाथा दी कि उस गाथासें द्वादशसारनयचक्रकी रचना की और बौधलोगोंके साथ जय मिलाया, और सोरठ वगैरःमें जहां जहां शिलादित्यका राज्य था वहांसें बौधलोगोंकों हदपार करवाये. फिर मुनीराजजी साहेब श्री आत्मारामजीकों विशेषावश्यकजी न बैठता था उससें पिस्ताने लगे, तो उसी रात्रिमें स्वप्नके भीतर हेमचंद्राचार्यजी उन्होंके मिले और जो जो न मालूम होताथा वो सबका खुलासा बतलानेसें समझमें आ गया. इसी तरहसें कमलगच्छके आचार्यमहाराज

वद्धमान विद्या पढ़ा गये. इस मुजब शासनदेवकी सहायतासें ज्ञानका लाभ होता है. इसी वास्ते योगवहनकी क्रिया बतला गये है सो बहुतही हितकारी है. विशेष हेतु ओर शास्त्रमें जैसें कहा हो वेसें समझ लेना. यहां तो मात्र संक्षेपरूप है. अनीन्हवणे से। गुरुकों न छुपा रखना याने किस गुरुजीद्वारा शास्त्राभ्यास किया हो उन्ह गुरुजीका नाम छुपाकर किसी दूसरेका नाम न देना सो पांचवा आचार. व्यंजन -याने अक्षर जैसा शास्त्रमें लिखा हो वैसाही शुद्धोच्चार करना-अशुद्ध न बोलना अर्थ याने जैसा गुरुमहाराजने दिया-बतलाया हो वैसाही रखना-फेरफार नहीं करना. व्यंजन और अर्थ दोनु जिस तरह शास्त्रमें कहा हो विसी तरह बोलना. इस तरह ज्ञानका आचार व्यवहारसें तन मन वचनसें पालन करे. इससें विपरीत वर्त्ते तो ज्ञानाचारमें दूषण लगै, और ज्ञानावरणी कर्म बंधा जावै, उसके भयसें सावध रहना. फिर बहुत पढे हुवे संबंधका अहंकार आ जाय तो मनमें भावै कि-हे चेतन! तूं अनंतज्ञानका मालिक है, जगतमें छ द्रव्य हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, और काल ये पांच द्रव्य अरूपी याने वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित हैं. और छठा पुद्गलास्तिकाय वो रूपी, वर्ण-गंध-रस-स्पर्श सहित है यह छउं द्रव्यमें एक एक द्रव्यके अनंत गुणपर्याय हैं, सो समय समय एक एक द्रव्यमें षट्गुण हानि वृद्धि हो रही है याने अनंत भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि अनंत गुण हानि-ऐसे छ प्रकारसें हानि वृद्धि हो रही है. विसी तरह छउं द्रव्यकी वार्त्ता गतागत और वर्त्तमान समयकी वो सभी केवलज्ञानीमहाराज एक समयमें जान रहे हैं, विसीही तरह आत्मा! तेरीभी शक्ति है: मगर वो ज्ञानशक्ति ज्ञानावरणी कर्मसें आच्छादित हो गइ है और उससें तुझकों ज्ञान नहीं होता है. तो तेरा ज्ञान जाता रहा सो लघुताका स्थान है, तोभी महत्वता करता है ये तेरी हे चेतन! कितनी और कैसी मूर्खता है? पुनः पूर्वकालमें चार ज्ञानवाले थे और तीन ज्ञानवालेभी थे वैसे ज्ञान तो तुझको प्रकटभी नहीं हुवे हैं तो येभी तेरी लघुताका स्थान और लज्जाका कारण है तथापि तूं क्या अहंकार करता है? फिर दो ज्ञानवालेभी चौदह पूर्वधर बारह अंगके ज्ञाता थे वैसा ज्ञानभी तेरेमें नहीं तदपि किस बाबतका तूं उत्कर्ष करता है? पुनः कमती ज्ञानवाले एक पूर्वधर थे उसकाभी तुझकों ज्ञान नहीं है तो तूं किस लिये और कौनसी बाबतमें

फूलकर मगरूर होता है ? वर्त्तमान समयमेंभी आगम-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-टीका-ग्रंथ वगैरः मौजूद हैं, और अन्यदर्शनियोंके शास्त्रभी हैं, उन्हकाभी तुझकों ज्ञान नहीं है. तो हे चेतन ! किस वातका तूं गर्व करता है ? उन्हमेंसें तूं कुछ शास्त्र पढा है, वोभी कुछ याद नहीं, फिर गुरुमुखद्वारा सुनेहुवे शास्त्रवचनभी तुझकों याद नहीं, तो किस प्रकार वडाइ करता है ? पुनः देशदेशकी भाषा, भिन्न भिन्न लिपि उनकाभी ज्ञान नहीं, तथा सम्मतितत्वार्थ आदि न्यायके शास्त्र हैं वो कोइ ज्ञानी समझावें तोभी समझनेकी तेरेमें शक्ति नहीं और मगरूर वनता है वो कैसी अज्ञानता ? फिर जो जो तूं धर्मक्रिया करता है उन सवके हेतुकाभी यथार्थ ज्ञान नहीं; तदपि तूं फोकट मद क्या करता है ? अनेक प्रकारके नीतिके ग्रंथ हैं, अनेक प्रकारके गणित-हिसावी कामकी रीति हैं उसकाभी तुझकों ज्ञान नहीं तोभी जीव ! तूं अहंकार करता है वो अहंकार करना लायक है कि कर्मकी निंदा करनी लायक है उसका तूं आत्मासें शोच कर. पूर्व समयमें मुनिसुंदरसूरिजी जैसे स्मरणशक्तिवाले पुरुष एक हजार और आठ अवधान करते थे वो शक्तिभी तेरेमें नहीं. इस समयमेंभी १०८ अवधानके करनेहारे हैं वोभी शक्ति तुझमें नहीं तो किस प्रकारका मिजाज करता है ? स्वर्गस्थ आत्मारामजी महाराजभी ३०० श्लोक रोजके रोज नये कंठाग्र कर सकते थे, और तुझकों तो पांच गाथाएभी मुखपाठ करनेकी ताकत नहीं. तो चेतन ! तूं वहुत विचार कर ओर झूँठा गर्व न कर. पूर्वपुरुष शास्त्रमेंसें उद्धार करके अनेक नये ग्रंथ तैयार कर गये है और इस वक्तभी विद्वान् पुरुष नये वनातेही जाते है, तो क्या तेरेमें ऐसी शक्ति है ? तूंनें नये ग्रंथ कितने तैयार किये या मुफ्तही भूलसें आनंद मानता है ! फिर पूर्वपुरुषोंनें सुवर्णाक्षरोंसें ज्ञान लिखवाये है तो तूंनें शाहीके अक्षरोंसेंभी सव शास्त्र लिखवाये है कि अहंकार करता है ? तूंने पढकर क्या आत्मविचारणा की ? और दूसरे जीवोंकों पूर्वके शास्त्र कितने पढाये कि मदोन्मत्त हो फिरता है? तेरेसें अभी वहुत पुरुष आत्मसाधन करते हुवे वने हैं कि खाली मिजाजही वतलाते है ? तेरी लघुता होवै वैसी तूं करणी करता है वास्ते नाहक ज्ञानावरणी कर्म वांधता है इस लिये शोच कर कि एक अंशमात्र ज्ञानका क्षयोपशम हुवा उससें मनमें ज्ञानी वन वैठता है ? ऐसी भावना भाव कर आत्मज्ञानमें मग्न होते हैं. अपने आत्माका ज्ञानगुण है सो प्रकट करनेका उद्यममें तत्पर रहवै वो ज्ञानाचार जानना. ऐसा ज्ञानाचार पालन करनेसें परंपरासें तमाम ज्ञान प्रकट करते हैं.

दर्शनाचार-दर्शनशब्दसें देखना सो-याने जो जो पदार्थ जिस तरहका हो विसी तरहसें देख लैना-मान लैना. शुद्ध देवकोंही शुद्धदेव मान लेना, शुद्ध गुरुजीकोंही शुद्धगुरुजी और शुद्ध धर्मकोंही शुद्धधर्म मान लैना. शुद्ध धर्म सो आत्माका स्वभाव वही धर्म. भगवतीजीमें फुरमाया है कि-'वत्थु सहावो धम्मो' याने वस्तुका स्वभाव सोही धर्म कहा जावै. तब आत्मस्वभावमें रहना वही धर्म और उसकी श्रद्धा करनी. आत्मा शरीरमें रहा है वहांतक जडप्रवृत्ति करता है वो आपका धर्म न समझै-आत्माका स्वभाव ढका गया हैं उसकों प्रकट करनेके कारणोंकों कारण धर्म मान लेवै. धर्मके निमित्त कारणरूप देवगुरुकों निमित्त कारण मान लै. व्यवहारनयसें धर्मके कारणकों धर्म कहा है उस अपेक्षासें धर्म मानै. जो जो देवगुरु उपकारी पुरुष हैं उन पुरुषोंकी सेवा भक्ति शास्त्रमें कथन की है उसी मुजब अमलमें लेवै. उसका विस्तार प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें कहा है उस मुजब करै सो दर्शनाचार कहा जाता है और वो आठ प्रकारका है-याने निसंकीय अर्थात् अव्वलमें जो अठारह दूषण बतलाये गये हैं उनं दूषणोंसें रहित देवके वचनोंमें शंका न करै; क्यों कि जिन देवकों राजा और रंक दोनु समान हैं, किसीका पक्षपात नहीं, जिनकों धनकी, स्त्रीकी ममताही नहीं, मान अपमान दोनु जिनकों समान हैं वैसे पुरुषकों असत्य बोलनेकी जरुरत नहीं रहती है. और वैसे लक्षण है या नहीं उसकी प्रतीति चरित्र देखनेसें हो जाती है. वो खात्री-प्रतीति करकेंही देवकों देव मानने चाहियें पीछे उन्होंके कथनमें शंका न करनी; कारणके अरूपी पदार्थ है सो चक्षुसें निर्णय नहीं हो सकता है. कोइ कहेगा कि बुद्धिसें निर्णय कर लेवें; मगर संपूर्ण प्रकारसें बुद्धि प्रकट हुइ हो तो शास्त्र देखनेकी जरूरतभी नहीं पडती. बुद्धिकी कसूर है उससें शास्त्र देखकर गुरुका समागम कर बुद्धि प्राप्त करनेका उद्यम करते हैं; वास्ते बुद्धिकी न्यूनता सिद्ध होती है. कितनीक बातें नहीं समझी जाती हैं वोभी बुद्धिकी तंगास है. वो तंगास निकल जायगी तब यथार्थ समझा जायगा. संसारी काममें बुद्धि प्रकट होनी सहल है; परंतु आत्मतत्त्व पहिचाननेकी बुद्धि पैदा होनी बहुत कठीन है; वास्ते वीतरागजीके वचनमें शंका न करनी.

निकंखा सो कुमतिकी वांछना-यांने कुमति-कुबुद्धि कि जो आत्मामें अनादिकी है उसके प्रभावसें विषयादिकके अभिलाष हुवा करते हैं. जो जो दुःखके का-

रण हैं वो सुखके कारण भासते हैं. आत्माकी स्वऋद्धि सन्मुख दृष्टिही नहीं. पुनः कुबुद्धिवाले देवगुरुकी वांछना होती है वो कंखा दूषण कहा जाता है. वो दूषण जिससें हट गया होवे उसकों किंचित्‌भी कुमतिकी वांछना नहीं होती है.

निव्वितिगिच्छा अर्थात् धर्मके फलका संशय करे उससें जों दूर रहना सो यानें संशय रहित होना सो निव्वितिगिच्छा आचार समझना. ये आचार लाभांतराय तूटनेसें होता है. सत्य प्रकारसें आत्मिकवस्तुकी और आत्मिकवस्तु प्रकट होनेके कारणोंकी चोकस प्रतीति होती है, उससें फलका संदेह नही रहता है.

अमूढदृष्टिं सो मूढपना दूर हुवा है यानें मूढतासें वस्तुकों अवस्तु मान लेवें— जैसें कि दुनियांमें वेदिये पशु कहे जाते हैं वे आत्माकी बाते करे; मगर विषय कषायमें मग्न रहते हैं. कोइभी प्रकारसें संसारसें उदासीन न होवें. देवगुरुकी भक्ति और व्रत नियमके अंदर न प्रवर्त्ते—ऐसी दशा उसकों मूढदृष्टिपना कहा जाता है—वो न होवे. जिस जिस तरहसें प्रभुजीने जिस जिस अपेक्षासें धर्म बतलाया है उस मुजबसें श्रद्धा करें. विषयकषाय अव्रत जितने जितने कमती होवें उतने कमती करे. जो दूर न हो सके उसकों दूर करनेकी हरदम वांछना बन रही है—ऐसा जो आचार वो अमूढदृष्टि कहीजाती है.

उववूह गुण सो साधु—साध्वी—श्रावक—श्राविका प्रमुख उत्तम पुरुषके गुणोंकी प्रशंसा करनी.

थिरिकरण सो वै साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघ उत्तम पुरुष धर्मसें चलायमान होते होवें उन्हकों धर्म समझा करकें स्थिर करे. तन मन धनसे जिस जिस प्रकारकी वैसे पुरुषोंकों तकलीफ होवे उस उस तकलीफकों दूर करकें स्थिर करे उसें स्थिरीकरण कहाजावे.

वत्सलता यानें समानधर्मी—आपसें अधिक या कम गुणवाले हों उनकी शक्त्यानुसार आहार—पानी—वस्त्राभूषणादिकसें करकें सेवा बजावे; ज्ञान—दर्शन—चारित्रकी जिस प्रकार वृद्धि होवें उसी प्रकारसें भक्ति करनी वही वत्सलतागुण कहाजाय.

प्रभावना गुण सो जिनशासनकी बहुमानता दूसरे धर्मवाले लोग करें और वो कृत्य देखकर दूसरे जीव धर्म पावें—जैसें कि प्रभुजीके मंदिरमें उत्सवादिक करनेसें,

या धनवान पुरुष संघ निकालकर तीर्थयात्राकों जावे और मार्गमें संघका संरक्षण करे कि जिस्सें संघके लोग निर्विघ्नतासें अपना आत्मिकधर्म साध सकें ऐसी धर्मकी सहाय करें. जैनधर्म ज्यौं जाहोजलाली पावे त्यौं कार्य किये करे. फिर मंडल पुरुष अष्ट प्रकारसें प्रभुजीके शासनकों शोभावंत करें याने पहिला प्रवचनी सो-प्रवचन-आगम-प्रभुप्ररूपित अंग-उपांग-छेद-निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-टीका इत्यादि तमाम शास्त्र वर्त्तमान कालमें प्रवर्त्तमान होवे वो सभी स्वसमय कहाजावे और परसमय सो षट्दर्शनके शास्त्रोंके पारगामी होवे उनके प्रभावसें जो शास्त्रका रहस्य जिनकों समझना हो वो तमाम समझा सकै. जिन जिन शास्त्रोंके अर्थ पूंछे जायँ उन उनके अर्थ बतला सकै उससें जैनशासनकी बहुत प्रशंसा होवै. दूसरा प्रभावक धर्म कथन करनेहारा सो धर्मोपदेश देनेमें अतिशय कुशल होय-जिसके मुखमेंसें ऐसे वचन निकलें कि सुननेवालोंकों उन्हके वचनमें शक्का पडै नहीं. सुननेवालेका मन संसारसें उदास होवे जाय और अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेकों तत्पर रहै. मोहनीकी आधीनता अनादिकालकी छूट जाय, मिथ्या हठवाद न रहै, सांसारिक सुख तो दुःख जैसे लगें, आत्मिकसुख वोही सुख मानें, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुण आत्माका है वो प्रकट करनेके कार्य होवें, विषयादिकके अभिलाष शांत हो जाय. कामभोगकी वांछनाओंका नाश होवै, कुबुद्धि कुवासनाकी बुद्धि दूर हो जाय. ऐसे उपदेशक पुरुष उपदेश करकें शासनकों शोभावंत करे. तीसरा वादी, प्रभाविक सो- जो जो खोटे मतवादी वाद करनेकों आवे, अनेक कुतर्क करें, उसके जवाब ऐसे देवै कि कुतर्कोंका नाश हो जाय-जैसेंके मल्लवादीजी महाराजने बौद्धके साथ वाद किया उसमें बौद्धवालोंसें जवाव न दिया गया उसकी फिक्रमें वो विचारा मर गया-ऐसे वाद करनेकी कुशलतासें जिनशासन शोभा पावे चौथा नैमित्तिकी सो-निमित्तशास्त्र-ज्योतिषशास्त्रका पारगामी होय उससें जो जो निमित्त कहवे सो सत्य होवे-जैसें भद्रबाहुस्वामीने राजासें कहा कि-सातवे रोज तुमारा पुत्र मरण पावैगा-उसी मुजब हुवा. और वराहमीरने सो वर्षका आयु कहाया सो झूंठा हुवा. ऐसे भद्रबाहुस्वामी जेसे निमित्तशास्त्रके ज्ञाता वो ऐसी शासनकी प्रभावनाके वास्ते निमित्त प्ररूपकर शासनकी प्रभावना करें. पांचवा तपस्वी सो अहंकार मकार रहित शांत स्वभावी कठीन तपस्या करे. अपने आत्माका अणहारी गुण प्रकट करनेकों बडी बडी तपस्याए करे उसकों देख-

कर दूसरे पुरुषकों तपस्या करनेकी बुद्धि जाग्रत होवै, तपस्याका अजीर्ण क्रोध जगतमें कहाजाता है वो जिसमें नहीं है. शांतरसका समुद्रही है, उसकों देखकर बहुतसें लोग प्रशंसा करै, वो तपस्वी नामक प्रभाविक कहाजाय. छठ्ठा विद्या प्रभाविक सो जैसें वज्रस्वामीमहाराज विद्याके प्रभावसें श्रीदेवीके भुवन वगेरःसें पुष्प लाये जिस्सें बौद्धधर्मका राजा चमत्कार पाया और जैनधर्म अंगीकार किया. इस तरहसें शासनकी शोभा वढावे सो विद्याप्रभाविक कहाजाता है. सातवा अंजनसिद्धिप्रभाविक-जैसें कालिकाचार्यमहाराजने अंजन योगसें सारा इंटोंका गंज चूर्ण डालकर सुवर्णका वना दियाथा, और गर्धभील राजाकों जीतकर अपनी व्हेन सरस्वतीकों छुडा दी. ऐसे शासनके काम करकें शासनकों शोभावंत करैं. आठवा नये काव्य वगेरः रचनेमें कुशल सो कवि नामक प्रभाविक-जैसें सिद्धसेनदिवाकर महाराजने विक्रमराजाके अगाडी नये काव्य रची कें चार दिशामें चार काव्य कहे वो; एक एक काव्य कहनेसें एक एक दिशाका राज्य दिया, मगर वो तो निष्प्रही थे जिस्से राज्य न लिया. ऐसी कुशलतासें शासनकी प्रभावना होवै, वहुतसे जीव धर्म पावै और अपना आत्मतत्त्व साध लेवै उससें उपकार होवै. इस प्रकार आठ तरहसें शासनकी प्रभावना निष्प्रहतासें करै, किसी प्रकारसें कुछभी वांछना रखकर न करै वो प्रभाविकगुण कहाजावै. यह आठ प्रकारसें दर्शनका आचार पावै, सो लाभांतराय तूटनेसें होता है. और जिसकों दर्शनका लाभांतराय हो उसकी ये आचारसें विपरीत वर्त्तना होवै, देवगुरु धर्मकी निंदा करै, धर्ममें कुतर्क करकें शंका करै, खोटे मत अच्छे लगै, लोगोंकी खोटे धर्ममयी बुद्धि करै, और जिनराजजीकी भक्ति करके अहंकार करै कि मै विधियुक्त भक्ति करता हुं. मै जिनभक्तिमें धन व्यय करता हुं वैसा जगतमें कोइ नहीं व्यय करता है. मैं उत्साह सहित करता हुं वैसा कोइ नहीं करता है. ऐसें अनेक प्रकारका अहंकार करै सो अनाचार जानना. वैसे अनाचार सेवनसें दर्शनका लाभांतराय कर्म उपार्जन करै.

चारित्राचार आठ प्रकारसें है-याने इर्यासमिति सो चलना, वैठना, उठना, सोना, करवट फिराना ये तमाम काम यतना पूर्वक करने चाहियें. पहिली रजोहरण या मुंहपत्तीसें करकें प्रमार्जनकर-दृष्टिसें देखना, और पीछे चलने-वगेरःकी वर्त्तना करनी. ऐसें करनेसें कोइभी जीवकों दुःख न होवे; क्यों कि परजीवकों दुःख न दे-

नेसें स्वदया याने अपने आत्माकी दया होवे; मतलब कि–दूसरे जीवकों दुःख देनेसें कर्मबंध होवै उससें आपका आत्मा मलीन होवै. ऐसी भावना हरदम बन रही है उससें किसी जीवकों दुःख होवे वैसी वर्त्तना नहीं करते हैं, उसीसें सहजही परजीवकी दया होती है. भाषा समिति याने अव्वलमें मुँहपर हाथ, वस्त्र या मुँहपत्ति रखकर बोलते हैं जिससें मुखके श्वाससें जीव मरै नहीं; सबब–खुल्ले मुँहसें बोलनेसें कितनीक वक्त मछर मख्खी वगैरः जीव मुँहमें आ जाते हैं और गलेमें उतर जानेसें वमन होता है और कष्ट भुक्तना पडता है और वो जीवका विनाश हो जाता है. इस वास्ते भगवतीजीमें गौतमस्वामी महाराजके प्रश्नका उत्तर भगवानजीने फरमाया हैं कि हाथ रखकर बोलता है तो वो निरवद्य भाषा हैं, और खुल्ले मुँहसें बोलता है वो सावद्य भाषा है ऐसा भगवतीजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र १३०२ में है; वास्ते खुल्ले मुँहसें बोलना न चाहियें. उसमें मुनीकों तो खुल्ले मुँहसें बोलनाही मुनासिब नहीं, और गृहस्थकोंभी मुनासिब नहीं मुँह ढककर बोलना वोभी सत्य बोलना. किसीका छिद्र न खोलना. किसीकी निंदा होवै वैसा वचनभी न बोलना. जो वचन बोलनेसें स्हामनेवाला जीव पापवृत्ति करै, जो वचनमें मकार चकारकी भाषा बोलनेसें किसी जीवकों दुःख होवै–उसका मन दुःख पावै वैसाभी न बोलना याने साधुजीके या श्रावकके धर्ममें बोलनेकी भगवंतजीने मना की हो वैसा वचन नहीं बोलना. जो वचन बोलनेसें स्हामने जीवकों वा कोइभी जीवकों और आत्माकों लाभ न होवै वो वचनभी न बोलना सो भाषासमिति कहीजाय. पुनः पुद्गलीक जो जो पदार्थ हैं उस वास्ते आत्मामें उपयोग करै कि यह देह प्रमुख जो जो पुद्गलीक पदार्थ हैं वो मेरे नहीं; परंतु मात्र व्यवहारसें कथन मात्र कहता हुं ऐसे उपयोग सहित बोलना सो भाषासमिति सदाकाल स्वदशामेंही उपयोग है. जो बोलनेसें आत्मा मलीन होवै वो वचन न बोले. एषणासमिति सो निर्दोष याने बैतालीस दोष रहित आहार पानी–वस्त्र–पात्र वगैरः जो कुछ चाहियें वो ऐसे लेवै कि जो लेनेसें कोइभी देनेवालेकों या उसके कुटुंबादिकको–किसीकों दुःख न होवे. पुनः किसीकों दुःख होवै, हिंसा होवै ऐसा आहार न लेवै. कोइभी जीवकी हिंसा नहीं करनी उससें आप करके खावै नहीं, किसीके पास करवावै नहीं, किसीने मुनीके लियेही आहार बनायाबनवाया हो ऐसा जाननेमें आवे तो वोभी न लेवै. उसके बैतालीस दोष दशवैका-

लिक सिद्धांतमें बहुतसी जगह कहे हैं उन दोषोंकी मतलब ऐसी है कि आहार देनेवालेकों और आहारके जीवकों उन्होंके निमित्त कुछभी दुःख होवें ऐसे आहारकों दोषित आहार कहा है. और स्वाद करकें न खाना. और पकाइ हुइ वस्तु अच्छी हो तो राजी न होना, अगर अच्छी न हो तोभी दिलगीरभी न होना. रसोइ वनानेवालेने अच्छी रसोइ वनाइ हो तो उसकी प्रशंसा न करनी और अच्छी न वना सका हो तो उसकी तर्फ तिरस्कारकी नजरसेंभी न देखना. दान देनेवाले और न देनेवालेपर राग द्वेष न करना. सबपर समवृत्ति रखनी–इस तरह दोषोंका विस्तार बतलाया है–उन्होंकों दूर करकें आहार–पानी–वस्त्र–पात्र लेने चाहियें–सो एसणासमिति कहीजावे. आदानभंडनिक्षेपना समिति सो–पात्र, पाट, पटले, चोकी वगैरः जो कुछ चीज लेवै सो पहिली नजरसें देख पीछे प्रमार्जना करकें लेवै. फिर जमीनपर रक्खे तोभी निर्जीव जगह देखकर पूजी–प्रमार्जकर वहां रक्खे. पारिठावणिया समिति सो–मल, ठल्ला, मात्रा, नाकका मल, थुंक, शरीरका मल जिस जगहपर डाले उस जगह कोइभी जीव न हो, और पीछेभी उसमें जीव उत्पन्न हो तोभी किसीसे विनाश न होवे वैसी जगहपर परठवे. गंदी जगहपर या गंदकी हो आवे वैसी जगहपर न परठवे, और किसीभी मनुष्यकों दुःख होवे, दुगंच्छा हो आवे वैसी जगहपर न परठवे. फिर जहां मनुष्य देखते हो वैसी जगहपर वडीनीति करनेकों न वैठ जाय. इसतरह पारिठावणिया समिति पालन करे ये पांच समिति कहीजाती हैं. अब तीन गुप्ति याने मनगुप्ति वचनगुप्ति, और कायगुप्ति ये तीन हैं. उसमें मनोगुप्तिमें अपना मन कोइभी पापके कार्यमें न प्रवर्त्तावे. विशेष शुद्ध पुरुष तो अपने आत्मतत्त्वमें मन प्रवर्त्तावे. वैसी शक्ति न जान ली हो तो जिस्सें करकें अपना आत्मतत्त्व प्रकट होवै और उसीमेंही रमणता होवे वैसे पुस्तक वांचता रहेवै, दूसरोंके पास वंचावे, सुने, सुनावे और उसीमें मन पिरो रक्खे; मगर संसारी वावतोंमें मन न लगावे. ध्यानशक्तिवाले ध्यान करें वो ध्यानका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामनिमेंसे देख लैना और ध्यानका लक्ष वढाना उसीसें मनोगुप्ति होती है. आर्त्त रौद्र ध्यानमें मन न प्रवर्त्तना चाहियें. मनगुप्तिवाले मुनीमहाराजकों कुछभी शरीर धन वगैरःकी इच्छा नहीं, कुटुंबकीभी इच्छा नहीं, और कोइ वस्तु मिली या न मिली तोभी उस संबंधी रागद्वेष न करै उससें मनमें सहजहीसें आर्त्त रौद्र ध्यान होताही नहीं.

अपने आत्माके सहज स्वरूपमेंही सदा मग्न रहते हैं. कोइभी तरहकी परपरिणतीमें मनकों नहीं जाने देते हैं, सद् चिदानंद स्वरूपमें मनकों प्रवृत्ति करने देते है. आत्माका स्वरूप अरूपी, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी, अशरीरी, अखंड, अगोचर, अलख, अविनाशी, अकल, अगम, अतिंद्रिय, अजर, अरागी, अद्वेषी, अपर, अमदी, अणाहारी, और अनूपम-ऐसें स्वरूपमें मग्न हो रहा है. उसमें शरीरके अंदर रोग हो आवे, कोइ उपद्रव करे, कोइ कटुवचन कह दे, कोइ मारे, कूटे; तोभी उसमें मनकों नहीं प्रवर्त्तते हैं-वो मनोगुप्ति कहीजावे. वचनगुप्ति सो-विशेष विशुद्धि करनेको ध्यानादिक करते हैं इससें कुछभी नहीं बोलना पडता है. श्रीमत् वीरस्वामीजीने अभिग्रह धारण कियाथा कि 'केवलज्ञान प्राप्त हो जाने तक किसीके साथ वचन बोलनाही नहीं.' किसी तरहसें न बोले. वैसी शक्ति न हो तो कोइभी जीवकों दुःख लगे या दुःख होवे वैसे वचन बोलनेकी गुप्ति करे-याने वैसे वचन न बोले. और बोले सोभी ऐसा बोले कि सुनेवालेकों वचनगुप्ति होवे, आपकों वचनगुप्ति होवे वैसे वचन शास्त्रके आधारसें बोले; क्यों कि मौनपना धारण करे वो मुनी कहा जाय; वास्ते परभावमें मौनपना होवे वैसा उद्यम करे. लाभ सिवा नाहक बकवाद, वादविवादमें वचन न प्रवर्त्तावे. केवल वचन रहितपना अयोगी गुणस्थानकमें और सिद्धपनेमें है. संसारमें रहे हुवे जीवकों ऐसे औसरमें प्रभुजीका मार्ग मिला, उससें ज्यों बन सके त्यों वचनयोगगुप्ति होवे वैसा करे सो वचनगुप्ति कही जावे. कायगुप्ति सो कायाकी प्रवृत्तिकों रोक लेनी. बिलकुल कायगुप्ति तो चौदहवें गुणस्थानकमें हो सकती है. वो गुणस्थान न पाया हो वहांतक पापके काममें कायाकों न प्रवर्त्तावे, कायगुप्ति हो सके वैसे काममें-कारणोंमें कायाकों प्रवर्त्तावे. जितनी जितनी कायाकी प्रवृत्ति काबूमें रक्खी जाय उतनी रोक लेवे वो कायगुप्ति कही जाती है. ज्यों बन सके त्यों आत्मभावमें वर्त्ते और कायाकी चपलता छोड देवे. स्वस्वभाव सन्मुख होवे उसमें जितना चेतनस्वभाव प्रकट होवे उतनी गुप्ति होवे. इस तरह पांच समिति और तीन गुप्ति मिलकर आठ चारित्रके आचार व्यवहारसें मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति प्रभुजीकी आज्ञासें करनी, जिससें आत्माके स्वभावका आचार शुद्ध होवे. निश्चय चारित्राचार क्या है? आत्मा आत्मस्वभावमें स्थिर होवे-देहके स्वभावमें न वर्त्ते, कर्मका नाश होवे, आत्मा जितना जितना शुद्ध होवे उतना उतना चारित्राचार प्रकट

होवे. यह चारित्राचार सब प्रकारसें प्रकट होवे तब सब कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ-ये नाश होते हैं. और यथाख्यात चारित्र प्रकट होवे . ये लाभ चारित्राचारका अंतराय तूटे तब प्राप्त होता है. जो पुरुष-जीव चारित्रवंतकी निंदा करता है और बोलताहैकि-'खाने पीनेकों न मिला, व्यापार करना न आ सका तब साधु हो बैठे.' ऐसा बोलनेसें, किंवा कोइ दीक्षा लेनेवाला अपना सगा है उसके मोहसें साधु (दीक्षा देनेवाले)की निंदा करै, और दीक्षा न लेने देवै, और कहवै कि-'साधुपनेमें क्या फायदा है?' ऐसा बोलकर दुष्ट चिंतवन करै. कितनेक नाम हीके-ज्ञानी बनकर बोलते हैं कि-'ये करनेसें कुछभी लाभ नहीं, ज्ञानसें लाभ है.' युं कहते हुवेभी आप विषय-कषायकी प्रवृत्ति छोडते नहीं. छोडनेवालेकी लघुता करते हैं. ऐसा करनेसें जीव चारित्रके लाभका अंतराय कर्म बांधता है; वास्ते चारित्राचार जिनसें प्रकट हो सके वैसें कारण सेवन करै. या कोइ दीक्षा लेता हो तो उसमें बन सकै उतनी मदद करै. उसके कुटुंबके मनुष्यकों आजीविकाका दुःख होवै तो अपनी शक्ति मुजब दुःख उठा लेवै कि जिस्सें दीक्षा लेनेवालेकों दीक्षा अंगीकार करनेमें हरकत न होवै, कोइभी तरहसें संयमकी मदद होवे वैसा करै-करवावै. संयम लेनेकी भावना भावै. कोइ संयमवंतकी निंदा करता हो तो वो निंदा बंध पडे वैसा उद्यम करै-जैसें कि राजगृही नगरीमें भिखारीने दीक्षा ली उसके वास्ते लोग निंदा करने लगे. पीछे अभयकुमार सवा क्रोड सुवर्ण म्होरोंका ढेर किया और सारे शहर भरमें ढुंढी पिटवाइ कि-'जो मनुष्य पृथिवीकाय सो मिट्टी वगैरः, अपकाय सो जल, तेउकाय सो अग्नि, वायुकाय सो पवन, वनस्पतिकाय सो कुल वनस्पति, और त्रसकाय सो हिरते-फिरते प्राणी-इन छ्वं कायकी हिंसाका त्याग करै उसकों ये सवाक्रोड म्होरें दे दुं.' पीछे किसीने म्होरें न ली. सब जन विचार करने लगे कि 'संसारी सुख हिंसा किये विगर नहीं बनता है, तो पैसेकों क्या करना?' ऐसा शोचकर कोइभी सुवर्ण म्होरे लेनेकों न आया. पीछे अभयकुमार मंत्रीश्वरनें बाजारमें आकर लोगोंकों इकठे कर पूँछा कि-'यह म्होरें क्यों कोइ नहीं लेते हो?' सब लोगोंने कहा-'सोनैये लेकें क्या करें? संसारमें खाना-पीना-पहनना-ओढना-गाडी घोडे दौडाना वे सब काम हिंसाके विगर नहीं हो सकते हैं. और हमारी संसारसुखके तर्फसें इच्छा हट गइ नहीं इससें सोनैयेकों क्यों करें?' पीछे अभयकुमारने कहा कि-तुम लोग सवा

अपने आत्माके सहज स्वरूपमेंही सदा मग्न रहते हैं. कोइभी तरहकी परपरिणतीमें मनकों नहीं जाने देते हैं, सद् चिदानंद स्वरूपमें मनकों प्रवृत्ति करने देते हैं. आत्माका स्वरूप अरूपी, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी, अशरीरी, अखंड, अगोचर, अतुल, अविनाशी, अकुल, अगम, अतिंद्रिय, अजर, अरागी, अद्वेषी, अपर, अमदी, अणाहारी, और अनूपम-एसें स्वरूपमें मग्न हो रहा है. उसमें शरीरके अंदर रोग हो आवे, कोइ उपद्रव करे, कोइ कटुवचन कह दे, कोइ मारे, कूटे; तोभी उसमें मनकों नहीं प्रवर्त्तते हैं-वो मनोगुप्ति कहीजावे. वचनगुप्ति सो-विशेष विशुद्धि करनेकों ध्यानादिक करते हैं इससें कुछभी नहीं बोलना पडता है. श्रीमत् वीरस्वामीजीने अभिग्रह धारण कियाथा कि 'केवलज्ञान प्राप्त हो जाने तक किसीके साथ वचन बोलनाही नहीं.' किसी तरहसें न बोलै वैसी शक्ति न हो तो कोइभी जीवकों दुःख लगै या दुःख होवे वैसे वचन बोलनेकी गुप्ति करै-याने वैसे वचन न बोलै. और बोलै सोभी ऐसा बोलै कि सुनेवालेकों वचनगुप्ति होवै, आपकों वचनगुप्ति होवै वैसे वचन श्रावके आधारसें बोलै; क्यौं कि मौनपना धारण करै वो मुनी कहा जाय; वास्ते परमार्थमें मौनपना होवै वैसा उद्यम करै. लाभ सिवा नाहक बकवाद, वादविवादमें वचन न प्रवर्त्तावे. केवल वचन रहितपना अयोगी गुणस्थानकमें और सिद्धपनेमें है. संसारमें रहे हुवे जीवकों एसे औसरमें प्रभुजीका मार्ग मिला, उससें ज्यौं बन सकै त्यौं वचनयोगगुप्ति होवै वैसा करे सो वचनगुप्ति कही जावै. कायगुप्ति सो कायाकी प्रवृत्तिकों रोक लेनी. बिलकुल कायगुप्ति तो चौदहवे गुणस्थानकमें हो सकती है. वो गुणस्थान न पाया हो वहांतक पापके काममें कायाकों न प्रवर्त्तावै, कायगुप्ति हो सकै वैसे काममें-कारणोंमें कायाकों प्रवर्त्तावे. जितनी जितनी कायाकी प्रवृत्ति काबूमें रक्खी जाय उतनी रोक लेवै वो कायगुप्ति कही जाती है. ज्यौं बन सकै त्यौं आत्मभावमें वर्त्ते और कायाकी चपलता छोड देवै. स्वस्वभाव सन्मुख होवै उसमें जितना चेतनस्वभाव प्रकट होवै उतनी गुप्ति होवै. इस तरह पांच समिति और तीन गुप्ति मिलकर आठ चारित्रके आचार व्यवहारसें मन-वचन-कायाकी प्रवृत्ति प्रभुजीकी आज्ञासें करनी, जिससें आत्माके स्वभावका आचार शुद्ध होवै. निश्चय चारित्राचार क्या है? आत्मा आत्मस्वभावमें स्थिर होवै-देहके स्वभावमें न वर्तै, कर्मका नाश होवै, आत्मा जितना जितना शुद्ध होवै उतना उतना चारित्राचार प्रकट

होवै. यह चारित्राचार सब प्रकारसें प्रकट होवै तब सब कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ-ये नाश होते हैं. और यथाख्यात चारित्र प्रकट होवे . ये लाभ चारित्राचारका अंतराय तूटे तब प्राप्त होता है. जो पुरुष-जीव चारित्रवंतकी निंदा करता है और बोलताहैकि-'खाने पीनेकों न मिला, व्यापार करना न आ सका तब साधु हो बैठे.' ऐसा बोलनेसें, किंवा कोइ दीक्षा लेनेवाला अपना सगा है उसके मोहसें साधु (दीक्षा देनेवाले)की निंदा करै, और दीक्षा न लेने देवै, और कहवै कि-'साधुपनेमें क्या फायदा है?' ऐसा बोलकर दुष्ट चिंतवन करै. कितनेक नाम हीके-ज्ञानी बनकर बोलते हैं कि-'ये करनेसें कुछभी लाभ नहीं, ज्ञानसें लाभ है.' युं कहते हुवेभी आप विषय-कषायकी प्रवृत्ति छोडते नहीं. छोडनेवालेकी लघुता करते हैं. ऐसा करनेसें जीव चारित्रके लाभका अंतराय कर्म बांधता है; वास्ते चारित्राचार जिनसें प्रकट हो सकें वैसें कारण सेवन करै. या कोइ दीक्षा लेता हो तो उसमें बन सकै उतनी मदद करै. उसके कुटुंबके मनुष्यकों आजीविकाका दुःख होवै तो अपनी शक्ति मुजब दुःख उठा लेवै कि जिससें दीक्षा लेनेवालेकों दीक्षा अंगीकार करनेमें हरकत न होवै, कोइभी तरहसें संयमकी मदद होवै वैसा करै-करावै. संयम लेनेकी भावना भावै. कोइ संयमवंतकी निंदा करता हो तो वो निंदा बंध पडै वैसा उद्यम करै-जैसें कि राजग्रही नगरीमें भिखारीने दीक्षा ली उसके वास्ते लोग निंदा करने लगे. पीछे अभयकुमार सवा क्रोड सुवर्ण म्होरोंका ढेर किया और सारे शहर भरमें ढुंढी पिटवाइ कि-'जो मनुष्य पृथिवीकाय सो मिट्टी वगेरः, अपकाय सो जल, तेउकाय सो अग्नि, वायुकाय सो पवन, वनस्पतिकाय सो कुछ वनस्पति, और त्रसकाय सो हिरते-फिरते प्राणी-इन छवं कायकी हिंसाका त्याग करै उसकों ये सवाक्रोड म्होरें दे दुं.' पीछे किसीने म्होरें न ली. सब जन विचार करने लगे कि 'संसारी सुख हिंसा किये विगर नहीं बनता है, तो पैसेकों क्या करना?' ऐसा शोचकर कोइभी सुवर्ण म्होरें लेनेकों न आया. पीछे अभयकुमार मंत्रीश्वरनें बाजारमें आकर लोगोंकों इकट्ठे कर पूँछा कि-'यह म्होरें क्यों कोइ नही लेते हो?' सब लोगोंने कहा-'सोनैये लेकें क्या करैं? संसारमें खाना-पीना-पहनना-ओढना-गाडी घोडे दौडाना वै सब काम हिंसाके विगर नहीं हो सकते हैं. और हमारी संसारसुखके तर्फसें इच्छा हट गइ नहीं इससें सोनैयेंकों क्यों करे?' पीछे अभयकुमारने कहा कि-तुम लोग सवा

क्रोडं सोनैये लेकरभी हिंसाका त्याग नहीं करते हो. तो उन भिक्षुकने तो विगर दा-मसेंही हिंसाका त्याग किया है उसकी क्यों निंदा कर रहे हो?' ऐसा सुनकर वे सब लोग संयम लेनेवाले भिखारीका बहुत बहुत सन्मान करने लगे. इसी तरह जो संयम लेवै उसके बहुतमान होवै वैसा करना. पुनः जिस वक्त थावच्चाकुमारने दीक्षा ली, उस वक्त कृष्ण वासुदेवजीने सारी द्वारिकामें उद्घोषणा करवाइ (ढूंडी पीटवाइ) कि जो कोइ थावच्चाकुमारके साथ दीक्षा लेगा उसके माबाप लडके वगैरः जो कोइ होगा उनकी मैं प्रतिमा पालन करुंगा ' और पीछेसें वैसाही किया. ऐसा करवेसें सहज संयम लेनेवालेके संयम लेनेमें विघ्न होते है वो दूर होते हैं; वास्ते इस तरह संयमके बहुतमान करनेसें संयमका लाभांतराय टूट जावै वैसा उद्यम करना. यह सब अधिकार सर्व संयमका कहा. वैसेंही देशचारित्र श्रावकके बारह व्रतरूपका-भी किसी तरहसें देशसें आचार समझ लेना; क्यों कि व्रत देशसें है तो आचारभी देशसें समझना. वोभी अंतराय कर्म होवै वहांतक देशविरती न ले सकता है. सामायिक पौषधमें तो मुनि जैसेही आठ आचार पालते हैं. वो न पालन कर सकै और जब अंतराय टूटे तब पालन कर सकै-जैसें कि सुव्रत शेठने पौषध लिया था और मका-नके चोगिर्द आग लग गइ तोभी वो पौषधसें चलायमान न हुवे-और मकानमें रात्रिभर रहे तो धर्मदृढता देखकर देवने सहायता की, और आप जिस मकानमें थे उसकी आस पासके मकान भस्मीभूत हो गये (और जिस मकानमें थे) उसकों कुछ इजा न हुइ. वास्ते पौषध सामायिकमें मुख्यतासें चारित्राचार पालन करना. और पालने करनेकी भावना रखनी. ज्यों ज्यों चारित्राचार पालन करनेकी उत्कंठा होती है त्यौं त्यौं चारित्राचारके लाभका अंतराय टूटता है. हरहमेशां यही चिंतन करना कि कब यह संसाररूप कैदखानेमेंसें छूट जाउं. इस संसारमें अज्ञानतासें सुख मान लिया है; परंतु विचार करनेसें कुछभी सुख नहीं. अग्निमें लोहका गोला जैसें तप्त हो रहा है वैसा यह संसारमें विकल्परूप ताप रात और दिनभर लग रहा है. धनके, व्यापारके, कुटुंबके, खाने पीनेके, पहनने ओढनेके, और सोनेके-ऐसें अनेक विकल्प-रूप तापसें तप्त हो रहा हुं सो उस विकल्पोंसें कब अलग हो जाउंगा?' ऐसा चिं-तवन करके बने वहांतक तो संसारको छोड देते हैं. और न बन सकै तो संसार छोडनेकी हरदम भावना कायम रखवे. ऐसी भावना भावनेसें जीव हलका होता

है. फिर कदापि चारित्र अंगीकार कर मनमें अहंकार धारण करै कि-'मेरे जैसा चारित्रका पालनेहारा कौन है?' तब चिंतन करना कि-'अय जीव! श्रीमन्न् महावीरस्वामीजीनें कैसे उपसर्ग सहन किये हैं? दो पॉवके बीच अग्नि सुलगाकर खीर पकाइ, संगमें देवने हजारों मनका चक्कर शिरपर रख्खा, जिससें गोटन तक जमीनमें घुस गये; तोभी समभाव न छोडाथा. तूंने ऐसे कौनसे उपसर्ग सहन किये? कि तूं अहंकार करता हैं. रे चेतन! तूंनें सूर्यकी आतापना ली? या चार महीने तक कूपके अग्रभागपर पूर्वके मुनी काउस्सग्ग ध्यानमें रहते थे उस तरह तूने किया? ढंढणमुनीकों छः महीने तक आहार न मिला तोभी अपना अभिग्रह न छोडा, वैसे क्या तूंने बडा संयम पाला है? कि अहंकार करता हैं.' ऐसें मुनियोंके उत्कृष्ट कृत्य सोचकर आपके अहंकारका नाश करता है, और आत्माकों आत्मस्वभावमें स्थिर करता है. परभावमें अनादिकी स्थिरता हो रही है उसकों हठा करकें स्वपरणतिमें स्थिर होते हैं वो लाभ लाभांतरायके क्षय होनेसें होता है.

तपाचार सो-आत्माका अणहारी गुण है. आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं; तथापि आहारमें अनादिकालका पुद्गलके संगमें आहारकी आकांक्षा हुवा करती है, वो दशा छोडनेके लिये तप करता है. आत्माके पट् लक्षण कहे हैं, उसमें आत्माका तपभी लक्षण है, वो तपका अंतराय कर्म बांधा है वहांतक तपगुण प्रकट नही होता. तपका अंतराय जीव हमेशां बांध रहा है तपस्वी पुरुषोंकी निंदा करता है-तपमें कुछ गुण नहीं है, खानेपीनेकों न मिले कि तप करें.' इसतरह वक्रवाद करें. कुटुंबके मनुष्य तपस्या करते होवे और उन्के शरीरमें कुछ तफावत हो जाय तो तपकों दूषण देवें; परंतु ऐसा न शोचे कि-'पूर्वकालमें अशातावेदनीय कर्म बांधा हुं उससें रोग हुवा. कोइभी रोग पूर्वके कर्मोदय विगर नहीं हो सकता है, तो पूर्वजन्ममें अज्ञानतासें तपस्या करनेके भाव न हुवे और तपस्या की नहीं, विषयकषायमें मग्न रहा उसीसें यह अशातावेदनी कर्म बांधा सो उदय आया है. तपकाभी अंतराय किया उससें अंतरायकर्मका उदय हुवा कि तपस्या नहीं हो सकती-' ऐसी विचारणा करै. फिर तप करकें अहंकार करे कि-'मेरे समान तपस्वी कौन है?' दूसरेसें तपस्या न होती होवै तो उसकी निंदा करै, आपने तपस्या की है उसकी बडाइ करनेकों लोगोंके आगे आपप्रशंसा करानेके लिये तप किया जाहिर करे; मगर ऐसा न शोचै

कि-'मैंनें क्या तप किया है? पूर्व समयमें मुनिवर्ग तप करताथा सो इंद्रियोंके विषय मंद पाडनेके वास्ते करताथा. शरीरके अस्थि-हड्डीयें आवाज देतीथी. उसका दृष्टांत भगवतीजीमें दिया है कि-पात्थरोंसें भरी हुइं गाडी चलती हो उस वक्त उन पातरोंका जैसा अवाज होता है वैसा अवाज मुनीमहाराज तपस्या करकें शरीर सुष्क किया हो तो होता है. वैसी तपस्या करकें शरीरशोषनकी मरजी नहीं; सबब कि शरीर नरम पडता है तों उसको पुष्ट करनेके लिये सदा उद्यम कर रहा है. पूर्वके पुरुष देहकों विदेह मानतेथे याने देहकों अपना नहीं मानतेथे, तो वैसा भाव नहीं हुवा है वहांतक तेरा तप कथन मात्र है. फिर तपस्या करकें खानेकी इच्छा किसी प्रकारकी नहीं करतेथे, और तूं तो इच्छा करता है. तेरी इच्छाएं रुकी नहीं तो तूं तपका किस बाबतसें अहंकार करता है?' ऐसी भावना न करतें अहंकारमें मस्त रहै उससें जीव तपका अंतरायकर्म बांधता है. और उसी सबबसें तप करनेका भाव नहीं होता है. अब जिनकों तपके लाभका अंतराय टूट गया है उन पुरुषकों तपस्या करनेका भाव होता है और वो अच्छी रीतिसें तपका आचार पालन करता है. बारह प्रकारसें तप करनेमें अग्लानभाव करै. ग्लानभाव उसें कहा जाता है कि यह तप कैसें हो सकै-मेरेसें न हो सकेगा-शक्ति होनेपरभी उत्साह न करै. फिर तप करै तो बीमारके जैसा भाव धारण करै. ऐसी ग्लानता धारण न करै. जो जो तपस्याएं करै सो उत्साहसें करै. मनभी प्रसन्न रहवै कि-'आज मेरा धन्य दिन है कि आत्माका तप लक्षण प्रकट करनेका मेरा भाव हुवा. फिर यह उद्यममें प्रवर्त्तनेका वक्त मिला. अब जिसतरह मेरे आत्माका तपगुण प्रकट होवै वैसा मै चलूं.' इसतरह करै. पुनः अणाजीवी सो तपस्यासें करकें आजीविकाकी इच्छा नहीं याने-'मैं तपस्या करुंगा तो मुझकों तमाम लोग मान देवेंगे, या धन देवेंगे, या पुद्गलीक सुख इस लोक और परलोकमें मिलेंगे.' ऐसी आजीविकाकी इच्छा नहीं है. केवल आत्माकों कर्मोंसें मुक्त करनेके लियेही उद्यम करै. पुनः कुसल दीठी याने-'श्री तीर्थंकरमहाराजजीने तप करनेका कहा है और आप खुदनें कर बतलाया है. और कर्म क्षय करकें मोक्षमें पधारे हैं, किसी प्रकार मेंभी तप करकें कर्म क्षय करूं.' ऐसी भावनासें वो तप करै सो तपका आचार है. इस मुजब तपाचार कहा. 'जो शरीरकों दुःख सुख होवै उसकों ध्यानमें न लेवै उससें शरीरकी संभाळ न रहवे तब शरीर पड जाय तो धर्म-

साधन किस प्रकारसें कर सकै?' ऐसी शंका होवे तो इसका समाधान यही है कि-पूर्व समयमें जिन्होंने तपका अंतरायकर्म बांधा है उन्होंका शरीर नरम पडे, और धर्मसाधन न हो सके, तो वे शक्ति मुजब तपका उद्यम करेगा. फिर शरीर नरम होगा तो सर्वथा आहार छोड देवेगा नहीं, कुछ विषय छोड देनेमें शरीरके बलकी जरूरत नहीं है, उससें शरीरकों जितना आधार रह सकै उतना आहार लेवैगा; परंतु बत्तीसां रसोइके स्वाद लेनेका भाव न रक्खे. फकत जो वस्तु निरवद्य-पापरहित मिलगइ वोही चीजसें निर्वाह कर लेवे. एक चीजसें शरीर निभ सकता है तो विशेष चीज किस लिये लेवै? ऐसे विचारसें आहार करता है. तोभी उसकों आहारकी इच्छा नहीं. तपस्वी है और तप करै और तपके रोज या दूसरे रोज खानेकी भावनाएं करै तो उसकों ज्ञानीजीने तप नहीं गिना है; कारण कि इच्छाके रोधकों ज्ञानीमहाराज तप कहेते हैं; वास्ते हरएक प्रकारसें इच्छा रुक जाय वैसा करना. या रोज तप करुं, तपका अभ्यास करुं तो वो अभ्याससें मेरी इच्छा रुक जायगी; ऐसे विचारसें तप करें तो उस अभ्याससें किसी रोज इच्छा रुक जावेंगी इस लिये इच्छा रुक जानेका उद्यम करना सो अच्छा है. जिस जिस प्रकारसें आत्माका गुण प्रकट होवे वैसा उद्यम करना. ज्यों बन सके त्यों इंद्रियोंके विषयकी वांछा कम करनी चाहियें, तभी सच्चा ज्ञान कहा जाय; क्यों कि जो आत्माका स्वरूप जानता है कि जानना, देखना ये आत्माका धर्म है. तो जो जो खानेकों मिला वो फक्त जान लेना है, उसमें विषयबुद्धि नहीं करनी ये आत्माका काम है. वैसे विचारसें वो आहार करता है, तोभी तपस्वीही है; क्यों कि आत्मस्वभाव कायम रहा. तप कुछ आहारके त्यागमें नहीं; लेकिन इच्छारोधमें है. इच्छारोधके साधनोंकोभी तप कहा है, उससें बारह भेद कहे हैं; वास्ते जिस प्रकारका तप करनेसें अपनी स्वदशा प्रकट होवे वो तप करना. बारह प्रकारका तप उपयोग सहित करै तो ज्ञानीमहाराजने निर्जराका कारण कहा है-यानें कर्म क्षय करनेका कारण कहा है. सबब कि जीवकों गाढ कर्मके दलिये बंधाये हैं वास्ते सबसें वेदनीकर्मकों पुद्गल विशेष भाग देता है; क्यों कि वेदनीयका प्रकटपना है. अब जो जो तप करै उसमें अशातावेदनी हुवे बिगर नहीं रहती. वो अशाता तपगुणका अंतराय टूट गया होवै उतनी समभावसें भुक्तता है. समभाव रहनेका बीज कौन है? वीर्य है! वीर्यअंतराय टूटनेसें स्फुरायमान होता है. वो वीर्य जिस

जिस आचारमें जीव प्रवर्तें उस उस आचारमें स्फुरायमान होता है. और जो जो वीर्यके स्फुरायमानसें तप होता है, वो प्रसन्नतासें होता है. अहर्निश उसीमें हर्ष होता है और जब किसीके आग्रहसें या शरमसें होता है, तब प्रसन्नता न होवे-वहां वीर्य स्फुरायमान नहीं होता. तब अशाताके वक्तमें समभावभी जीवको न रह सकता है. जिनपुरुषोंको स्वरूपका ज्ञान हुवा है उन्होंका भाव तो अपनी आत्मदशामें रहनेका बन गया है; परंतु आत्मभावमें प्रवृत्ति नहीं कर सकता, क्योंकि तप गुणके लाभका अंतराय नहीं टूट गया है. वो जितना जितना टूटता जावे उतना उतना कमती होता जावे और उतनी वर्त्तना करता है. वर्त्तना करनेमें अशाता होती है तब बालजीव शोचता है कि: मैंने तप किया उससें मुझको वेदना-अशातावेदनी हुइ. मगर ज्ञानीजन तो शोचते है कि-'कर्म नाश करनेके लिये तप किया है और वेदनीकर्मके उदयसें वेदनी हुइ है, वेदनी कुछ तप करनेसें नहीं होती. तप करनेसें श्री वीरप्रभुजी प्रमुखने वेदनीकर्म वगैरः क्षय किये है त्यों क्षय होते हैं. ओर निकाचितकर्म तपस्याके समय उदय आये हैं तो वो तपस्या समभावसें शुरु की है; वास्ते समभावसें वो कर्म भुक्तैगा, उससें कर्मनिजरा विशेष होवेगी.' असा शोचकर अशाता वेदनीसें नहीं डरते हैं अशातावेदनीकी उदीरणाही की है तो उदय आवे उसमें न डरे. अैसे भाव ज्यों ज्यों भाववृद्धि पाता है त्यों त्यों वीर्यांतराय टूटता जाता है, और वीर्य स्फुरायमान हुवे जाता है. फिर विशेष विशुद्धि वंतको तो अैसें विचार करनेही नहीं पडते वे तो अपनी आत्मदशा जानने देखनेकी है उस रूप वेदनीको जान लिया करते हैं उसमें राग द्वेष नहीं करते हैं. अैसी समभाव दशा अप्रमादी मुनिको बनती होती है. वे तो अप्रमाद दशामें रहकर आनंदमें वर्त्तते हैं. अप्रमाद गुणस्थानकवंत वगैरः तो आपको स्वभाव दशा कितनी हुइ है. ओर कितनी न हुइ है उसको बढानेके लिये बारह प्रकारसें तप करते हैं. वो अनशन याने अन् अर्थात् रहित और अशन अर्थात् अनाज प्रमुख खाना-वो अनशन तप कहा जाता है. आहार करना सो आत्माका धर्म नहीं है; परंतु पुद्गलके साथ संबंध होनेसें आहार जाने आत्माही करता है, अैसी दशा अनादिसें बन रही है; मगर ज्ञान होनेसें जाना गया कि आहारके पुद्गल शरीरमें विस्तरते हैं. आत्मा अरूपी है उसमें कुछ परिणमते नहीं तोभी मेरे आहार करना मानता हुं वो अज्ञानदशा है; परंतु मेरी और प्रकारसें चाहियें उतनी विशुद्धि नहीं होनी उससें आहारकी इच्छा होती है;

तथापि जितनी जितनी रुकी जाय उतनी उतनी रोक लुं कि अभ्याससें सर्वथा रुक जावै. अैसा शोच कर नवकारसी याने दो घडी दिन चडने तक, पोरसी याने पहर दिन चडने तक, साढ पोरसीयाने देढ पहर दिन चडने तक, पुरिमड्ड याने दो पहर दिन चडने तक, अवड्ढ याने तीन पहर दिन चडने तक, या दो वेर खाना, या एक वेर खाना [बेयासना, एकासना] या आयंबिल याने छउं विगयके त्याग सहित एक वक्त खाना और उपवास सो सर्वथा-बिल्कुल न खाना वो जितने उपवास बनें उतने दिन आहारका त्याग करना. उसमें कोइ चारों आहारका और कोइ तीन आहारका त्याग करै याने पानी-फासुक जल पीनेकी छुटी रखै. इस तरह तप करना. या मरण के समय बिलकुल अहारका त्याग करकें समस्त वस्तुका और शरीरका त्याग करना वो अनशन तप जानना.

अब उणोदरी तप याने कम खाना-मतलब कि बिलकुल नहीं खाना अैसा आत्माका धर्म है; परंतु अनादी जडकी संगतिसें करकें जीव जडक्रियाकों अपनी मान रहा है, उसी तरह देहकोंभी अपना मानता है वो जोर अज्ञानंताका है; उस अज्ञानताके जोरसें मुझकों भूख लगी है, मेरे खाना मेरे पीना है अैसा कहता है. फिर शरीरमें रहा है वो जड देह जड पदार्थ है सो जड पदार्थका धर्म सडना पडना विध्वंसना याने विनाश होना वोही है. आहारके पुद्गल मिलै तभी कायम रहै. अब आहारके पुद्गल दो प्रकारके हैं याने रोम आहार याने रोमरोमसें आहारके पुद्गलका शरीरमें समय समय आहार कर रहा है सो, और एक कवलआहार सो कवलकरकें मुँहसें रख्खै सो. अब रोम आहार सो तो अपने उपयोग सहित और उपयोग रहितभी लिया जाता है, वो तो जीवकों जब तक शरीर है वहांतक लेनेका बंध नहीं हो सकता है; तदपि वो आहार किस किस प्रकारसे लिया जाता है? जो पवन आता है वो ठंडा आता है तो ठंडक लगती है और गरम आता हो तो गर्मी लगती है. बारिसकी मोसममें होवै तो शर्दी लगती है-ये सब गर्मी वगैरः काहेसें मालूम होता है? शरीरमें प्रणमते हैं-स्पर्शकर फैलते हैं उससें! तो वही आहार है. परंतु वो कुछ स्ववशपना नहीं, उसी लिये उसका ग्रहण त्यागमें उपयोग रहता है और नहीं भी रहता. उससें विरती नहीं होती तोभी ज्ञानीजन है सो उसमें राग द्वेष नहीं करते है: फकत आत्माका जाननेका धर्म है उससें जानलेता है कि यह गर्मीके पुद्गल, यह शीतके पुद्

गल लेनेका कर्मोदय है वैसे लिये जाते है. ऐसा सदाकाल उपयोग रहता है. उन पुरुषकों इच्छाका रोध हुवा सोही तप है; परंतु उतना गुण प्राप्त नहीं होता उससें ठंडी गर्मीमें जाननेरूप रह सकता नहीं; तथापि कुछ ज्ञान हुवा है, और कुछ स्पर्शज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें कुछ समभाव रखता है. तो जितना रागद्वेष कमती हुवा वो भी उणोदरी तपका लक्षण है. वास्ते जिस प्रकार रागद्वेषकी परिणती कम होवै उस मुजब उत्तम पुरुषकों करना. अब दूसरा कवल आहार है सो-सर्वथा जिसकी इच्छा उठती है उसका त्याग करता है वो अनशन तप गिनाजाता है. अब बिलकुल आहारके त्यागसें तो शरीर कायम नहीं रह सकता, तब आहार देना चाहिये; परंतु आहार लेनेका धर्म नहीं उससें इच्छा नहीं होती; मगर शरीरकों आधार रहनेके वास्ते आहार देना. वो कुछ कम खावे तो भी शरीर कायम रहवै, रागादिककी उत्पत्ति न होवै उससें आहार कम लेवै और इच्छा नहीं या इच्छा है तो वो कमती हुइ उतना निर्मल हुवा और इच्छाके रोधरुप सहजसें उणोदरी तप हुवा फिर जिसकी इतनी विशुद्धि न हुइ वो भी हमेशांके खुराक करते पांच कवल या उससें विशेष कम खानेका अभ्यास करै उसके लिये पीछे सहजसें इच्छारोध हो जाय. फिर दूसरी तरहसें खानेकी चीजें हैं उनमेंसें जितनी चीजें कम लेवै उतना उणोदरी तप होवै. फिर ओछी वस्तु कम ग्रहण हो सके कि कुछ खानेके विषय कम हुवे होवै तो या विषय घटनेका अभ्यास होवै तो; क्यों कि आहार लेनेका आत्माका धर्म नहीं, तो ज्यों बन सके त्यों आपका आत्मधर्म प्रकट करनेका जीवकों अभ्यास करना चाहियें. जैसें जो जो हुनर सिखना हो वो वो हुनर अभ्यास करनेसें शीखा जाता है, वैसें अभ्याससें सब हो सके. आत्मधर्मकी वर्त्तना अनादीकालसें नहीं जानता है और न वर्त्तना करता है वो अभ्यास करनेसें वर्त्तना होवै तो वो अभ्याससें ज्यों बने त्यों अयोगका त्याग करना. आहार बहुत प्रकारके हैं-उनमेंसें जो आहार लेनेसें बहुतसे जीवोंकी हिंसा होवै वो आहार शाकादिक और अभक्षादिकका न करै. [वो बाइस अभक्षके नाम प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणीमें मौजूद हैं. और योगशास्त्रादि ग्रंथोंमेंभी है उनमेंसें देख करकें त्याग करना.] वोभी उणोदरी तप है. और जो आहार-रसवती भक्ष्य है उस रसवतीके अंदरसें थोडी चीजोसें निर्वाह होता है. तोभी जीव निर्वाहमें ज्यादे चीजो विषयके वास्ते उपयोगमें लेता है उससें आत्मा

विशेष लिप्त होता है. ऐसा जिसने जान लिया है तो खानेके वक्त निर्वाह जितनी वस्तु ग्रहण कर दूसरी वस्तुपरसें इच्छा उतार डाले वोभी उणोदरी तप है; वास्ते ज्यों वनै त्यों निर्वाहके उपर लक्ष देना. कितनेक विषय कम नहीं हुवे हैं उससें विशेष वपराशमें आवै, तो उसके अंदरभी तीव्र निंदा गर्हा सहित जो उपयोग करै तो विषयके कर्म कठिन न वंधे जांय. तो वै कर्मके रस जितने कमती पडे वो भी उणोदरी तपका ही फल पावै. वृत्ति संक्षेप तप सो—जो वृत्तियें वर्त्तन कर रही हैं उसका संक्षेप करना—याने मर्यादामें आना. जैसें कि श्रावककों चौदह नियम धारण करना मुनीकों द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारों प्रकारमेंसें हरकोइ प्रकारकी आहारादिक वस्तु संवंधी धारणा करनी, रोटी कींवा हरकोइ पदार्थ धार लेवै कि वो चीज मिले तो लैनी, या फलाना मनुष्य देवै तो लैना या इतने घंटेमें मिले तो लेना या हावभावसें देवै तो लैना, इस तरहके अभिग्रह धारण करै ऐसी धारणा करनेकी मतलव क्यां है कि इसतरहका योग न वनशके और तप वनसके तो अच्छा. पूर्ण चित्त तप करनका नहीं होता. तव ऐसे अभिग्रह धारण करके आहारादिककी इच्छाकों शांत करै. पुद्गल भावमें वृत्ति कम हो रही है वो ऐसें अभ्यास करके वृतियोंकों रोक लेवै सो वृत्तिसंक्षेप तप कहा जावै.

रसत्याग तप याने चार महा विगय सो सरत, मस्का, मांस, मदिरा इन चारोंका श्रावक और मुनिमहाराजकों सदा त्याग होवै; क्योंकि ये वस्तुएं खानेमें त्रसकाय जीवका विनाश होता है. उस वातका योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने विस्तारपूर्वक निषेध (मना) किया है, उतनाही नही मगर हरिभद्रसूरिजीने पंचाशक वगैरः ग्रंथोंमें मांसादिकका निषेध किया है. मांसाहारी जीवकों निर्दयपना तो अवश्य होवै. यदि दयाके परिणाम होवै तो जिसमें वहुतसे जीवोंकी हिंसा होवै ऐसी वस्तु उपयोगमें लेनेका भाव होवैही नही. पन्नवणाजीमें जघन्य श्रावक कहे है वो इन चार महा विगयके त्यागीही कहे है. पुनः उपाशकदशांगमें आणंदजीनें मांसादिकका त्याग किया है. फिर मांसाहारसें स्वभाव मिजाजी और गुस्सेदार होवै, ऐसा अभीके डॉकटरभी कहते हैं. मदिरासें करकें आत्माकी ज्ञानशक्ति आच्छादित हो जाती है. अकलमंद हो वो दीवाना हो जावै, दीवाना होकर धन धान्यादिकके व्यापारमेंभी नुकशान उठावै, जगतमेंभी निंदाका पात्र होवै, और परलोकमेंभी नरकादि गति पाता है. उं-

ससें उत्तम पुरुष, साधु और सद्‌गृहस्थ उनका त्याग करता है पुनः अभीके वक्तमें इंग्रेज और पारसीयोंभी कितनेक मांसका त्याग करते हैं और कितनेक वो टेव-आदत कमती हो जाय वैसा करते हैं ऐसे अनार्य लोगभी जब मांसाहारका त्याग करते हैं, तो आर्यलोगोंको त्याग होवै उसमें क्या नवाइकी बात है ! ! वास्ते महा विगयका त्याग कहा है. दूसरी छः विगय सो-दूध, दहीं, तेल, गुड, पकवान्न और घी इन छओंमेंसें जितनी विगय त्याग होवै उतनी करै; कारण कि विगय खानेसें विकारकी वृद्धि होती है-उससें कामदेव दीप्त होता है; वास्ते मुनीमहाराज विगयका त्याग करते हैं. परंतु इस समयमें विगयका उपयोग किये विगर शरीर नही टिक सकै उससें शरीरके निभाव जितनी विगयका उपयोग कर वाकीकी विगयका त्याग करैं. श्रावक हैं वोभी हरहमेशां एक एक विगयका त्याग करै; कारण कि मुनीमहाराज तो सब कामके त्यागी हैं उससें बन सकै तो सर्वथा त्याग कर डाले; मगर गृहस्थसें वैसा बनना मुश्किल है. गृहस्थकों तो जितनी मूर्छा कामके ऊपरसें उतरती जावै उस मुजब विगयका त्याग करना योग्य है. भावसें जितने पुद्‌गल कमती ग्रहण करनेमें आवेंगे उतना कर्मबंध नही होगा. ऐसा चिंतवन कर मुनि और गृहस्थ विगयका त्याग करै. आपका अणहारी गुण प्रकट करनेरूप वीर्य स्फुरायमान होवै वही आत्माका तप गुण प्रकट होवै सो रसत्याग तप कहा जाय.

कायक्लेश तप याने जितना जितना समभावसें कायाका कष्ट भुक्तनेमें आता है सो कायक्लेश तप है. मुनिमहाराज लोचादिक कष्ट सहन करते हैं, विहारमें चलनेका कष्ट सहन करते हैं, सूर्यकी आतापना लेते है. वो मुनीमहाराज क्या चिंतवन करके कष्ट सहन करते है कि अपनी आत्माका स्वरूप जान लिया है, जडका स्वरूप जान लिया है उससें जड जो शरीर उसकों अपना नहीं जानते हैं. आपके वैसे भाव रहते है कि नहीं-ऐसां शोचना. जिस वक्त लोच करै उस वक्त कष्ट पडता है वो कष्ट पडनेसें जिनका मन नहीं विगडता है और समभावमें रहते हैं, तो ऐसे कष्ट स्वाभाविक रोगादिकके आवै उस वक्तभी समभावमें वैसे पुरुष रह सकते हैं. और समभावमें रहनेसें वो कर्म भुक्ता जाता है, उसी वक्तपर आत्माकी अशुद्ध परिणती छुट जाती है, वो निर्जरामें गिनि जाती है, और आत्मा शुद्ध होता है. अब जो मनुष्य जानबुझकर ऐसे कष्ट सहन नहीं करते हैं उसको रोग भुक्तकें या दूसरे कुटुंबके

व्यापारके काम करकें कष्ट भुक्तने पडेंगे. अनादिकालका जीव संसारमें रुलता है; उसमें मोहके वश अशातावेदनीकर्म, अंतरायकर्म बंधे हुवे है वो भुक्ते विगर छूटका नहीं होता; वास्ते उत्तम पुरुष जिस मुजब समभावमें रह सकते हैं उस मुजब कष्ट भुक्तकर आपके कर्म क्षय करते हैं वो कायक्लेश तप कहा जाता है. समभाव सिवाके कष्ट भुक्तते हैं वो निर्जरामें ज्ञानीमहाराज नहीं गिनते हैं; कारण कि एक कर्म भुक्त-कर पीछे हजारां नये कर्म उपार्जन करता है, उस लिये वो दुःख भुक्ते हुवे काममें नहीं आते हैं, उनसें उसकों सकाम निर्जरा नहीं गिनते हैं. हरएक धर्ममें समझकर काम करनेसें लाभ वतलाया है, और जो जो कष्ट भुक्तना वो समझकर भुक्तना उससें आत्माकों लाभही होवेगा. कष्ट भुक्तनेसें आत्माका वीर्य जाग्रत होता है और तभी समभाव रह सकता है—नहीं तो समभाव न रह सकता है. वो आत्मवीर्यके अं-तराय टूटे विगर वीर्य स्फुरायमान नहीं हो सकता है; वास्ते समभावमें रहकर जो जो बन सकै उस प्रकारसें कायाकों कष्ट भुक्ताकर कर्म क्षय करना सो कायक्लेश तप समझना.

संलीनता सो—मुनि महाराज कर सकते हैं—जैसें मुर्गी शरीर संकोचकें सोती है वैसें मुनि महाराज सोते हैं. इस तरह सोनेसें अंगोपांग सबकों जाग्रति होती है, निंद्रामें लीन नहीं हुवा जाता है, और आत्मज्ञान आच्छादित नहीं हो जाता है. जैसें सक्त निंद्रा आवे वैसें उपयोग लुप्त हो जाता है, उससें ज्यों कठीन निंद्रा न आवे त्यों मुनि-महाराज सोवें. फिर योग संलीनताभी तपमें कहा है; परंतु वो अभ्यंतर तपगिना जावे, उसी तरह वचन काया के योग ज्यौं बन सकै त्यौं आत्मस्वभावसें बहार प्रवर्त्तते रोक करकें निजस्वभावमें स्थिर करना, वो योगसंलीनता तप है. वो बहुतही श्रेष्ठ तप है. इस तरहसें संलीनता तप कहा है.

यह छः प्रकारसें बाह्य तप कहा; उसका कारण कि ये तप करनेवालेकों देख करकें यह तपस्वी है युं पहिचान शकै. बाकी वस्तुपनेसें तो कर्मक्षय करनेके भावसें यह बाह्य तप करै, वो भी आत्मा निर्मल करै. और अभ्यंतर तपसेंभी आत्मा निर्मल होवै. अब अभ्यंतर तप काहसें कहा जाता है ? वो कहते हैं,—बहारसें देखकर तपस्वी कोइ न कह सकै; परंतु आत्मा निर्मल करै उससें अभ्यंतर तप कहा—वो भी छः प्रकारका है.

१ पहिला विनयतप सो-देव-गुरु-धर्मका विनय करना: देव सो अरिहंत कि जिन्होंने ज्ञानावर्णी कर्म क्षय करकें केवलज्ञान उपार्जन किया है. जिस ज्ञानसें करकें लोकालोकके भाव याने स्वर्ग, मृत्यु, पाताल ये तीनुके अंदर जीव अजीव पदार्थ रहे हैं उन्ह पदार्थकी वर्णना हो रही है. समय समय अनंते परजायका उत्पात, व्यय और ध्रुव हो रहा हैं, और गतकालमें वर्तना हुइ, आते कालमें होवेंगी और वर्त्तमानमें होती है, वो तमाम भाव एक समयमें जान रहे हैं उसका नाम केवलज्ञान-ऐसा ज्ञान जिनकों प्रकट हो रहा है. दर्शनावरणी कर्म क्षय करकें अनंत दर्शन गुण प्रकट हुवा है, उससें (सामान्य बोधरूप) केवलदर्शन प्रकट हुवा हैं. मोहनीय कर्म क्षय करकें चारित्रगुण प्रकट हुवा है वो आत्मस्वभावमें स्थिर होवे सो चारित्रगुण समझना. अंतरायकर्म क्षय होनेसें अनंतवीर्यादिगुण प्रकट हुवा है. ऐसे अरिहंत भगवानजीका विनय करना; क्यौं कि आत्माका स्वरूप अरूपी है वो केवलज्ञान प्रकट हुवे विगर प्रकट नहीं हो सकता. वो केवलज्ञानसें तमाम जीवके आत्माका स्वरूप प्रत्यक्ष मालूम होता है उससें प्रभुजीने वो स्वरूप वर्णन किया. फिर आत्मा मलीन काहेसें होता है वो स्वरूप वतलाया. पुनः आत्मा निर्मल काहेसें होता है वोभी वतलाया. पुन्यपाप बांधनेके कारण वतलाये तो उस द्वारा अपन अपने आत्माका स्वरूप जान सकते है, वास्ते प्रभुजी बडे उपकारी है; इस लिये उन्होंका विनय ज्यों वन सके त्यौं करना. नहीं कि शक्ति छुपाकर मिजाजमें रहना?

सिद्धमहाराजजीकों आठों कर्म क्षय हो जानेसें आत्माके संपूर्ण गुण निष्पन्न हुवे हैं. शरीर रहित हैं, मोक्षस्थानमें हैं, पुनः संसारमें आनेका हेही नहीं, केवल आत्माके गुणमेंही लीन हैं, न राग, न द्वेष, न क्रोध, न मान, न माया, न लोभ, न विषय, अक्षय, अमर, अजर, अकल, अगोचर, अरूपी आदिक अनंत गुणवंत हैं, वे सिद्धमहाराजजीका रूप देख अपनी सिद्ध दशा प्रकट करनेकी बुद्धि जाग्रत होनेका हेतु है. पुनः गुणवंतके गुण गानेसें अपना आत्माभी गुणी होता है और अनादिकी भूलसें परवस्तु अपनी मानकर प्रवर्त्तता है वो भाव पलटानेका साधन है. वास्ते सिद्धमहाराजजीका विनयभी जितना बन सके उतना करना. अरिहंतजी और सिद्धजी इन दोनुका विनय करना सो देवका विनय समझना. अब इस क्षेत्रमें अरिहंतजी और सिद्धजी कहींभी नहीं विचरते हैं, तो उन्होंकी मूर्तिओंकाभी विनय करना; स-

वत्र कि गुणवंत पुरुषोंकी मूर्तिमेंभी जिन जिन भगवानकी मूर्ति है उन उन भगवान-जीके गुणोंका आरोप करना है और वै गुणोंका विनय करनेका है, इससें भगवान-काही विनय किये समान है अब उसमें पहिला कौनसा विनय है कि उन्ह पुरुषोंनें जो जो हुकम फरमाये ह वै कुछ हुकम अंगीकार करकें अपना आत्मा शुद्ध करनेके उद्यमी होना, और अैसा उद्यम करनेसें आत्मा शुद्ध होवैगा. जिस जिस अंशमें प्रभु-जीके हुकम मुजब समभावमें रहेंगे-रहवेंगे यह मुख्य विनय है. पीछे उसकें कारण रुप पांच प्रकारका विनय है "भक्ति बाहाज प्रणीपतीथी" याने पंचांग प्रणाम करना अर्थात् खमासणा दे कर पांचो अंग इकठे (दो गोठन, दो हाथ, और शिर-ये पांच अंग एकत्र मिला) करकें भगवंतजीकों या भगवंतजीकी मूर्त्तिकों नमस्कार करना. पुनः अष्ट द्रव्यसें-सत्तरह द्रव्यसें-इक्कीस द्रव्यसें या १०८ द्रव्यसें भगवानजीकी पूजा करनी, वो भी प्रभूजीका विनय है. " हृदय प्रेम बहुमान. " याने हृदयके अंदर भ-गवंतजीके गुण और भगवंतके उपकार अत्यंत विचार करकें हर्षके मारे रोंगटे विकस्वर हो जावै-आनंदका पार न रहवै अैसा अंतरमें हर्ष हो आवै और प्रभु पर अत्यंत प्रीति जाग्रत होवै, तथा प्रभु प्ररुपित धर्म जो आगमोंमे कहा है वै आगम सुनकर-'अहा ! प्रभुजीने क्या सर्वोत्तम मार्ग दर्शाया है!' वो शोच कि हर्ष होवै. फिर प्रभु जीके चरित्र सुनकर प्रभुजीका वर्त्तन देखकर-'अहा ! अत्यंताश्चर्यकारी भगवंतजीका वर्त्तन है, वो देखकर हर्षित होवै और प्रभुजीके उपकार याद ला करकें अंतरंगमें प्यार उत्पन्न होवै वोभी प्रभुजीका विनय है.

" गुणकी स्तुति " याने प्रभुजीके गुणोकी स्तुति करनी सो स्तोत्र श्लोक-दोहरे-छंद इत्यादि प्रभुजीके आगे खडे रहकरकें उच्चारन करना, या चैत्यवंदन, नमु-थ्थुणं, स्तवन, स्तुति वगैरः कहना, या प्रभुजीके चरित्र सुने हुवे हैं वो चरित्रोंमें जो गुण वर्णन किये हैं वो याद करकें आप स्तवन कर या दूसरेके आगे कहकर उन लोगोंकों प्रभुजीके रागी बनाना वोभी भगवंतजीकी स्तुति है. औगुणकों ढक देना याने प्रभुजीमें तो किसी प्रकारका औगुण हैही नहीं; परंतु कोइ कल्पित औगुण कहेता होवै तो उनकों समझाकर औगुण बोलना बंध करवा देवै. प्रभुजीकी प्रतिमाजी है उन्हों-की पूजा न करते होवें तो उन्होंकों समझा करकें प्रभुजीकी पूजा करते बनाने चाहियें. प्रतिमाजीके अवर्णवाद बोलता हो उसकों समझाकर वो अवर्णवाद न बोलै अैसा करना

चाहियें; क्यौं कि प्रभुजी और प्रभुजी स्थापना दोनु समान हैं युं भगवंतजीनें फुरमाया है. श्री अनुयोगद्वार सूत्रजीमें और आवश्यक सूत्रजीमेंभी स्थापना निक्षेपा कहा है. इस समयमेंभी सामान्य गृहस्थकीभी यादी कायम रखनेके लिये फोटोग्राफ (छबी-तसवीर) बहुतसें लोग करवा ते हैं. फिर बडे होद्देदारोंकी या राजाओंकी या शाहुकारोंकी मूर्ति (पुतले-बावले) भी मरनेवालेके मान्यकी खातिर बैठानेमै आती हैं. तो जब असे मनुष्योंका बहुमान करते हैं और देवकी मूर्तिके बहुमान करने करवानेका खियाल न रख्खे तब आपहीके देवपर आपका राग नहीं है अैसा साफ मालूम हो जाता है. न्यायकी बुद्धि सहजहीसें जिसकों हुइ होगी तो उसका सहजहीसें समझनेमें आयगा कि भगवंतजीकी मूर्ति देखकर भगवंतजी याद आवे हैं और भगवंतजी याद आये कि उन्होक चरित्र याद आवै, और उन्होंके अद्भुत चरित्र याद आवे तो प्रभुजी कैसें गुणवंत है वो गुण याद आवे, गुण याद करनेसें प्रभुजीने मोक्षमार्ग बतलाया है उस मार्गपर जीवकों किस तदवीरसें चलना वो याद आवै, वो याद आनेसें अपन भगवंतजीके हुकमसें विरुद्ध चलते हैं वो याद आवे, और वो याद आतेही अपनी भूल सुधारनेकी बुद्धि हो आवै, भगवंतजीके उपकार याद आवें तो भक्ति करनेके भाव हांवै-सबब कि उपकारीकी जितनी भक्ति न करें उतनी कम है; वास्ते भगवानजी की यथाशक्ति भक्ति करनेके भाव जाग्रत होवै वो प्रभुजीका विनय है. जो जो अवर्णवाद बोलते होवै वो बंध हांवे वो लाभ समझानेवालेकों होता है, और वोही प्रभुजीका सच्चा विनय है.

" आशातननी हाणी " याने भगवंतजी विचरते होवै उस वक्त छद्मस्थ अवस्थासें याने जब तक केवलज्ञान न पाया हो तब तककी अवस्थामें कितनी प्रशंसा होती हो तो वो अज्ञानी मत्सरी जीव सहन कर शकते नहीं, वैसें जीव अवर्णवाद बोलते होवे या पीडा करते होवै तो अपनी शक्ति स्फुरायमान करकें वो पीडा दूर करनी. मुंहसें बोलता हो तो उसकों समझाकरकें वैसी बातें बोलता बंध कर देना, या प्रभुजीकी परिक्षा लेनेके लीयेभी कितनेक देव पीडा-उपसर्ग करते है, तो उस देवकोंभी अपनी गुप्तशक्तिसें-मानसिक शक्तिसें दूर हठा देना, या मिथ्यात्वी जीव प्रभु प्ररुपित ज्ञान संबंधी बिगर दूषणकों दूषण कहकर निंदा करता होवै तो वोभी प्रभुजीकी आ-

शातना है उसकाभी समझ समझाकरके आशातनासें दूर करके धर्ममें स्थिर करना. फिर अपनेमें शक्ति न हो तो दूसरे कोइ शक्तिवंत हो उसकों वीनती करकें उन्हकी शक्ति स्फुरायमान करवा के उन्हकी शक्तिसें आशातना दूर करनी. उसी तरह जिन विंव याने मूर्तिकी आशातना करता होवें वो दूर करना, अव जिनभुवनमें चोराशी आशातना दूर करनी उसके नाम नीचे मुजवः—

१ वलगमं या थुंक डालना, २ झूला वांधकरकें झूलना, ३ क्लेश—लडाइ—टंटा फिसाद करना, ४ धनुर्विद्या शीखनेका अभ्यास करना याने वाण साधनेमें निशानकी जगह वान लगै वो शीखना, ५ पानी पी करकें कुल्ले करना, ६ तांबूलादिक—पान सुपारी खाना या खाकरजाना, ७ तांवूल खाया हो वो वहां थूंकना, ८ दूसरेकों गालि देना,९ जैसा वैसा-गाली गलुच-ठठावाजी-दिल्लगी-विभत्स वोलना या शाप देना, १० स्नान करना, ११ शिरके वाल या कोइभी वाल डालना, १२ नाखून डालना, १३ खून डालना,१४ मिठाइ वगैरः खाना,१५ शरीरकी चमडी डालना,१६ पित्त वमन करना, १७ सामान्य वमन करना, १८ दांत गिरगया हो सो डालै या दांतोंकों साफ करै, १९ थक लग गया हो तो विश्राम लेवें, २० गउ वगेरः चोपायेकों वांधना, २१ दांतका मैल डालना, २२ आंखोंका मेल डालना, २३ नाखून उतारै या उतरावै, २४ गंड-स्थल—गालका मैल उतारे या डालै, २५ नाकका मैल डालै, २६ शिरमें कंगाइ फिरावै या सुधारै, २७ कानका मैल डालै, २८ शरीरकों सजावै, २९ मित्रकों भेटै, ३० घर-संसारी कामका नामा लिखें—या कागज लिखें, ३१ कुछ वैचान करें, ३२ थापन रक्खै, ३३ दुष्टासनसें वैठे, ३४ छाने थेपे, ३५ कपडे सूखावें, ३६ पापड सूखावै, ३७ वडीयें करै या सूखावै, ३८ राजाके डरसें भाग कर मंदिरमें छुप जाय, ३९ अनाज सूखावै, ४० मंदिरमें अपने सगोंकों याद करकें रोवै [भगवानके गुणानुवादका वहुमान करनेके वक्त हर्षके आंसु आवै वो आशातना नहीं गिनी जाती है.], ४१ विकथा याने राजकथा, देशकथा, भोजनकथा, स्त्रीकथाकी वाते करनी, ४२ शस्त्र वनावै, ४३ चोपाये वांधै, ४४ आग सुलगाके तापै, ४५ रसोइ वनावै, ४६ रुपै म्होरकी परीक्षा करै, ४७ निसिही कहकर संसारके कार्य निषेध किये परभी करे [और निसिहीका भंग करै सो व्रतभंगके दोष जैसा दोष है.] ४८ अपने शिरपर मंदिरमें छत्र धरावै, ४९ जूते-बूट मंदिरमें रक्खें, ५० चंवर धरावै—दुलावै, ५१

मनकी एकाग्रता न करै, ५२ शरीरकों तेलका मालिश करावै, ५३ सचित्तभांग न तजै, ५४ अयोग्य अचित्त पदार्थ न तजै, ५५ शस्त्र रक्खै, ५६ प्रभुका मुख देखने परभी हाथ न जोडै, ५७ एक साडी उत्तरीय वस्त्र डाले सिवा मंदिरमें दाखिल होवे, ५८ मुकुट पघडी पर पहनकर मंदिरमें जावै, ५९ पघडीका अविवेक करै, ६० फूल तुरें वगैरः शिरमें रखकर मंदिरमें जावै, ६१ शर्त करै, ६२ दडे-बॉलकी रमत करै, ६३ गेडीकी रमत-बेटबॉल खेलै, ६४ मंदिरमें जुहार-सलाम करै, ६५ किसीकों टूंकारा करै, ६६ लंघन करनेकों बैठै, ६७ वय भीडकर लडै, ६८ भांड चेष्टा करै, ६९ शिरवेणी सुधारै, ७० काम-याने खडे घोंटे रखकर कपडा बांधकर बैठै, ७१ खडाउ पहनकर मंदिरमें जावै, ७२ लंबे पॉव पसारकर बैठै, ७३ पीपुडी-सीटी वजावै, ७४ मंदिरमें कीचड करै, ७५ शरीरकी धूल उडावै, ७६ मैथुन सेवै या उस संबंधी चेष्टा करै, ७७ जुगार खेलै, ७८ पानी पीवै-भोजन करै, ७९ कुस्ती खेलै, ८० नवज देखै-दवा देवै, ८१ मंदिरमें किसी जातका सौदा-सट्टा करै, ८२ बिछोना बिछावै, ८३ खानेकी चीज [मंदिरमें] रक्खै, ८४ और मंदिरमें स्नान करै. इसतरहकी ८४ आशातनाएं हैं. वो कोइ वक्त किसीकोंभी करनी नहीं चाहियें. अगर कोइ करता हो तो उनकों रोक देना चाहियें. इनके सिवा मंदिरका पैसा खा जाना, या मंदिरके पैसेसें नफा हांसिल करना, या मंदिरका पैसा घरकाममें खर्चना, मंदिरकी चीजें लाकर काममें लैनी ये तमाम आशातनाएं गिनी जाती हैं. और देवद्रव्य खानेका दूषण लगै; वास्ते मंदिरकी कोइभी चीज अपने घरकाममें न लैनी. इस मुजब देवका पांच प्रकारसें विनय करना कहा है. और देवभाषित धर्म जो आगममें लिखा है; वास्ते आगमका विनय करना. याने उसके विनयके साथ उसका ज्ञानभी करना. आगम याने शास्त्र उसकों लिखवाना, लिखवानेके काममें पैसे खर्चना, जो आगम ग्रहण-करना हो उनकों नमस्कार, खमासण देकर लैना. छोडना तबभी उसी मुजब करना. आगमके पुस्तक धरे हो वहां दस्त पेशाब न करना. पॉवके या शिरके नीचे आगमकों न रखना, उनके आगे आहार पानीभी न करना, मैथुन या मैथुनचेष्टाभी न करनी, हास्यविनोदभी न करना. इसतरह प्रभुजीके ज्ञानका विनय करना सो प्रभुजीकाही विनय है. मुख्य विनय तो यह है कि प्रभुजीका हुकम है कि आपके आत्मभावमें रहना. जो जो सुख दुःख होते हैं उनके कर्म पूर्वसमयमें या वर्त्तमान-

समयमें बंधे हैं उस मुजब सुख दुःख होते हैं, और आत्माका स्वभाव जाननेका हैं सो जान लेना; परंतु मुझकों सुख या दुःख हुवा ऐसा मान कर हर्ष या अफशोष में न होना चाहियें. ऐसे विचारमें रहनेसें नये कर्म नही बंधे जाते हैं ऐसा प्रभुजीने फरमाया है-ऐसा शोचना वही प्रभुजीका विनय है, और आत्माका हित होनेका कारण है. इत्यादि विनयका स्वरूप प्रभुजीने शास्त्रमें वहुत तरहसें बतलाया है. उत्तराध्ययनजीमें विनय अध्ययन हैं वो सुनकर तदनुसार विनय करना.

गुरुमहाराजजीका विनय करना सो कैसे गुरुमहाराजका करना? जिन महाशयने बिलकुल हिंसाका त्याग किया है-किसी जीवकोंभी मारना या दुःख देना बंधही कर दिया है. जूंठ बोलना छोड दिया है, कोइभी जातकी चोरी करनीभी त्याग दी है, कोइभी स्त्रीके साथ मैथुनक्रिया करनी त्याग दी है, स्त्रीकों छूनाभी बंध कर दिया है, धनधान्यादि नौ प्रकारका परिग्रहभी सर्वथा छोड दिया है-कौडीभी पास न रखना मंजूर रख्खा है, ऐसे पांच महाव्रतसै करकें युक्त जो मुनीमहाराज प्रभुजीकी आज्ञा शिरपर चडा करकें विचरते हैं-प्रभुजीकी आज्ञा वहार नहीं वर्चते हैं-अपने आत्मगुणमें आनंदित दिलवाले हैं-विषयकषाय नहीं सेवन करना हैं इससें विषयकषायसें मुक्त हुवे हैं-और कुछ अंशसें रहा है उससें मुक्त होनेके कामी हैं-शांतरसकेही उद्यमी हैं-शत्रु मित्र तुल्य हैं-वैसे आचार्य, उपाध्याय और साधुजीमहाराज, पर जीवपर उपकार करनेकोंही पृथिवी पर विचरते हैं और धर्मोपदेश देकर जगतके जीवोंको अधर्मसें छुडाते हैं-कितनेक नहीं छुडाते हैं; परंतु छुडानेके वास्ते सन्मुख हो रहते हैं-ऐसे उपकारके करनेहारे पुरुष हैं वोही गुरु याने वडे हैं; वास्ते उन्ही महाशयजीका विनय करना. जब गुरुजीके पास जाना तब सचित्त पदार्थ न ले जाना, गुरुजीकों देखकर हाथ जोडकें नमस्कार करना, फिर पंचांग प्रणाम करकें [इच्छकार सुहराइ सुहदेवसी सुख तप शरीर निराबाध सुख संयम यात्रा निर्वहो छोजी स्वामी शाता छेजी, भातपाणीनो लाभ देशोजी] ऐसा कहकर पीछे (इच्छाकारेण संदीसह भगवन अब्भुट्ठिओहं अब्भिंतर देवसियं खामेउ) ऐसा कहकर गुरुजीकी आज्ञा मांगकर, आज्ञा मिले कि [खामेह] पीछे पंचांग प्रणामपूर्वक अब्भुट्ठिओहं अब्भिंतर खामना. इच्छकार कहकर शाता पूंछकर अब्भुट्ठिओ खामनेसें कुछभी गुरुजीकी आशातना हुइ हो तो उसकी माफी मांगली है. अब जितने शब्द

अब्भुट्ठिओमें आते हैं उतने बोल करनेसें गुरुकी आशातना होती है; वास्ते उतने शब्द त्याग करनेमें गुरुजीका विनय होता है, इस लिये अब्भुट्ठिओ खमानेका उपयोग रखना कि शायद कुछ भूल न हो जाय. फिर द्वादशावर्त्त वंदन गुरुजीकों करना वोभी गुरुजीका विनय है. [वो वंदन प्रतिक्रमणकी अर्थ सहित छपी हुइ किताबमें अर्थसह है वहांसें देखकर समझ लेके उस मुजब करना.] फिर अरिहंतजीका पांच प्रकारसे विनय बतलाया है उसी तरह गुरुजीकाभी विनय करना-और वंदनभी करना. बाद गुरुजी धर्मकथा करते होवे तो सभा मौजूद होती है तो सभा अंदरके श्रावक श्राविकाओंकों प्रणाम करना. (अगर सभामें बैठे हुवे श्रोताओंसें आनेवाला पुरुष विशेष गुणवंत हों तो धर्मवंत-धर्मज्ञ-धनवंत हो तो वे बैठे हुवे श्रोताएं उन्हकों अव्वलसेंही प्रणाम करें, और सामान्य हो तो आनेवाला प्रणाम करे ऐसी मर्यादा है. उसकी मतलब यही है कि चतुर्विध संघका विनय करनेका है, सो प्रथम विशेषका सामान्यवाला विनय करे और विशेष होवे वो पीछेसें करे.) फिर गुरुजीके पाससें जानेका दिल करे तबभी गुरुजीकों वंदना करके जाना. अगर गुरुजी घरपर पावन कदम रखवे तो उन्होंके सन्मुख जाना, गुरुजीकों स्वच्छ-योग्य आसन देना, गुरुजीकों देखतेही नम्रतायुक्त नमस्कार करना, गुरुजीकों जिस चीजकी दरकार हो वो चीज हाजिर करना, कीमती चीज हो या अल्प-थोडी कीमतवाली हो सो वोभी अर्पण करना. मार्गमें गुरुजी मिल जाय तोभी नमन करना. गुरुजीकी तेत्तीस आशातनाएं दूर करनी सो नीचे मुजबः—

१ गुरुमहाराजके आगे बैठना, २ गुरुकी आगे खडा रहना, ३ गुरुके आगे चलना, ४ गुरुजीके पीछे नजदीकमें बैठना-५ या खडा रहना-६ अगर चलना, ७ गुरुजीके दोनु तर्फ नजदीकमें बैठना, ८ गुरुजीकी बराबरीसें चलना, ९ या बराबर चलना, (ये नौ आशातनाकी मतलब ऐसी है कि बैठते खडे रहेते अपनी छिंक उबासी अधोवायुका सरना या श्वासका स्पर्श होवे वास्ते जिस तरह बैठने खडे रहेनेसें थूंक श्वासादिकका स्पर्श न हो सके उस तरहसें बैठना-खडा रहना दुरुस्त है. अगाडी या बरोबर बैठनेमें गुरुजीकी बडाइ किस प्रकारसें समाली जावे ? वास्ते बराबरीसें या आगे बैठनेसेभी आशातना होती है.) १० आपसें विशेष पुरुषोंकी साथ थंडिल जावे, और उन्होंसें पहेला आवे [वोभी आशातना है] ११ गुरुके

साथ बहारसें आये हुवे शिष्य गुरुजीसें पहिले मार्गके दोष आलोवे (तो आशातना लगै.), १२ रात्रिमें गुरुजी बुलावे कि कौन सोता है-कौन जागता है और आप जागता हो तदपि 'मैं जागता हुं ऐसा न कहै [तो आशातना लगै.], १३ उपाश्रयमें श्रावक आवे उसकों गुरुजी या आपसें अधिक पुरुषने बुलाये पेस्तर आप बुलावे (तो गुरु हो तो गुरुकी और अधिक हो तो अधिककी आशातना लगै.), १४ आहार ल्याकर आपसें अधिक याने बडे हो उन साधुजीकों आहार बतलाये विगर दूसरे साधुओंको बतलावे, १५ आहारादिककी निमंत्रणा गुरुजीकों न करते दूसरोंकों पेस्तरसें करै, १६ गुरुजीकों बूझे विगर दूसरे साधुवोंकों आहारकी निमंत्रणा करे, १७ गुरुजीकों पूछे विदून दूसरोंकों आहार देवै, १८ सरस और स्वादिष्ट आहार आप वापरे ओर गुरुजीकों न देवे, १९ गुरुजीके वचन सुन लिये परभी गुरुजीकों जवाब न देवै, २० गुरुजीके जैसें वडिलने बुलाये परभी कठोर वचनसें जवाब देवै. या कुछभी अवज्ञा होवे वैसा जवाब देवै, २१ गुरुजीने बुलाया तोभी अपने आसनपर बैठ रहकेही जवाब देवै परंतु तुरत पास न आवै, २२ गुरुजीने बूझा तोभी आसनपर बैठेही क्या आज्ञा है ऐसा कहै, २३ गुरुजीकों या वडिलकों टूंकारेसें बुलावे, २४ गुरुजी कहवै उसी मुजब अविनय बोलकर जवाब देवै, २५ गुरुजी, साधु साध्वी ग्लान-रोगी उनकी सार संभाल लेनेका फुरमावै तब गुरुजीकों कहवै कि आपही सार संभाल कर लो (ऐसा बोलकर अवज्ञा करै.), २६ गुरुजी धर्मकथा कहवै वो शून्य चित्तसें सुनै, कदाचित् सुनै तो सुनकर गुरुजीका बहुमान न करै (अहा! गुरुजी! आप शास्त्रके परमार्थ क्या बतलाते हो!! धन्य है!!! ऐसा कहना चाहियें सो न कहै.), २७ गुरुजी या रत्नाधिक धर्म उपदेश कहवे तब बोलै कि ये अर्थ आप बराबर नहीं करते हो आपकों यथार्थ अर्थ करते नहीं आता है ऐसा कहै, २८ गुरुजी कथा फरमाते हो उस कथाका भंग करके आप दूसरोंकों (सुननेवालोंके आगे) कथा कहवै और समझावे, २९ गुरुजी कथा करते होवे, गुरुजीकों ओर सभाकों कथासें आनंद हो रहा हो और चित्त लीन बन गया हो ऐसा जान लिये परभी शिष्य कहवे कि-महाराजजी! गोचरीका औसर हो गया है वास्ते कथा मोकूफ करो, पीछे गोचरी न मिलैगी. [इसतरह बोलनेसें चढती धारा हो वो टूट जाय, और व्याख्याका भंग होवै, इससें आशातना लगती है.]' ३०

गुरुजीने जो जो अर्थ कर बतलाया हो वही अर्थ व्याख्यान मोकूफ कर लिये बाद शिष्य सभाकों विस्तारपूर्वक अपनी हुंशियारी दिखलानेके लिये व्याख्यान करे, ३१ गुरुजीके संथारेकों, या गुरुजीके पाँवकों पाँवका स्पर्श हो जाय तो तुरंत क्षमा न मागे याने न खमावै, ३२ गुरुजीके संथारे या आसन पर खडा रहवै, या बैठे या सो रहेवै, ३३ गुरुजीसें उंचे आसनपर बैठे या बराबर-समान आसनसें बैठे-इसतरह गुरुजीकी ३३ आशातनाएं हैं सो न करनी. और कोइ करता हो तो उसकों दूर करानेका उद्यम करना. ये आशातनायें आपमें जबतक अहंकारदशा होयगी तब तकही होवैगी, और अहंकार दूर हो गया होगा तो सहजहीसें आशातना दूर हो जायगी; वास्ते मुख्यपनेसें मैं गुरुजीसें बहुत ज्ञानी हुं, ऐसा अहमेव हो तो दूर करना; कारण कि यदि गुरुजीसें आपमें विशेष ज्ञान होवै तोभी वो गुरुजीकी कृपासेंही हुवा है, तो जिन्होंकी कृपामें हुवा उन्होंकी वडाइ रखनेका खियाल दिलमें न आवें तो तबतक ज्ञान पढा हो तोभी फरशज्ञान नहीं हुवा. जब फरशज्ञान हुवा होवै तो उपकारीका उपकार न भूलै, वास्ते कदापि उपकार भूल गया हो तो याद कर आत्माकी भूल सुधार लैनी, और गुरुजीकी वडाइ चित्तमें ल्याकर विनय करके आशातना दूर करनी, यही आत्माकों हितकारी है. फिर गुरुका द्वादशावर्त्त वंदन करनेमें बत्तीस दोष लगते हैं-छपे हुए प्रवचनसारोद्धारजीके पत्र २९ में लिखा है कि-निम्न लिखित दोष दूर करकें वंदन करना:—

१ अणाढादोष उसें कहते हैं कि-आदरके सिवा गुरुवंदन करना याने आपकों वंदन करनेका हर्ष नहीं है; मगर कुल मर्यादसें करनेकी रीति है उस लिये करै, नहीं कि वदन करनेसें महा निर्जरा होवेगी, मुझकों एसे महान् पुरुषकों वंदन करनेका मोका हाथ लगा है ऐसा भाव ला करकें वंदन करता है. और जबतक ऐसा भाव न आवें तबतक गुरुजीका आदर न हुवा; वास्ते महान् हर्ष और आदर सहित वंदन करना कि अणाढादोष दूर हो जावै.

२ स्तब्धदोष उसें कहते हैं कि-द्रव्यस्तब्ध याने गुरुजीकों वंदन करनेका भाव है; परंतु शूळादिक रोगकी पीडासें चित्त अस्वस्थ हो जानेके लिये चित्त प्रफुल्लित न होवै. भावस्तब्ध याने द्रव्यसें क्रिया करै; मगर अंतरंगका उपयोग वंदनमें बिलकुल न होवै; वास्ते ये दोनु द्रव्य और भाव स्तब्धताकों दूर करकें गुरुवंदन करना

३ मवीधदोष उसे कहते है कि:-जैसें किराया देकर कोइभी मनुष्यको कामपर लगाये परभी फक्त मजदूरीके पैसे तर्फही निगाह रखकर काम करें और ज्यों त्यों काम करकें चला जाय, वैसें वंदन करते व्यवस्था रहित वंदन पूर्ण किये विगर चला जावे.

४ सपिंडदोष उसें कहते है कि:-आचार्यजी, उपाध्यायजी और समस्त साधुजीओंको इकठा वंदन करे.

५ टोलकदोष उसें कहते हैं कि:-जैसें टीडी जानवर इधरसें उधर घूमते फिरे मगर एक जगह कायम न हो रहवे, वैसें वंदनके वक्त आघा पीछा फिरे करे.

६ अंकुशदोष उसें कहते है कि-जैसें महावत हस्तीको अंकुशसें करकें अपनी मरजी मुजब फिराता है, वैसें गुरुजीकों फिरावे याने आचार्यजी खडे रहे हो या बैठे हो या कोइ कार्यमें हो; तोभी गुरुजीका कपडा पकडकर आसनपर बैठाकि वंदन करै.

७ कच्छपदोष उसें कहते है कि-वंदन करनेके समय कछुवेकी तरह आगे पीछे नजर फिराता हुवा वंदन करै याने गुरुमहाराजजी तर्फ दृष्टि न रखते चारों और नजर फिरावे.

८ मच्छदोष उसें कहते है कि-मच्छ जैसें स्थिर न रहे वैसें शरीरकी अस्थिरतासें-विचित्रप्रकारकी चेष्टासहित वंदना करे.

९ मनप्रदुष्टदोष उसें कहते है कि-आपके या दूसरेके वास्ते गुरुजी मारफत कार्य सिद्ध न होनेसें मनमें द्वेष होनेपरभी वंदना करे.

१० वेदिकाबंधदोष उसें कहते है कि-दोनु हाथ गोठनके उपर रखकर या दोनु हाथोंके वीच दो या एक गोठन रखकर वंदन करै-गोदमें हाथ रखकर-दोनु हाथ गोदमें रखकर वंदन करै-इसतरह पांच प्रकार वेदिका दोष है.

११ भयदोष उसे कहते है कि-वांदणे देनेके वक्त भय रखवै कि नहीं वांदुगा तो गुरुजीको द्वेष होयगा और मुझको निकाल देवेंगे-ऐसे भय-डरके मारे वंदना करै.

१२ भजंतदोष उसे कहते हैं कि-दूसरे साधु आचार्यजीको भजते है और मै न भजुंगा तो अच्छा न लगेगा ऐसे विचारसें भजे.

१३ मित्रदोष उसे कहते हैं कि-गुरुकों वंदना करुंगा तो गुरुके साथ मित्रता होयगी ऐसे शोचके वंदना करे.

१४ गारवदोष उसें कहते हैं कि-गुरुकों समाचारी जानकर या जाननेसें लोग पंडित कहवेंगे और विनीत जानेंगे ऐसे हेतुसे वंदे.

१५ कारणदोष उसें कहते हैं कि-गुरुमहाराजकों वंदन करुंगा तो गुरुजीके पाससें कंबली वस्त्र वगैरः इच्छित वस्तु मिलेगी.

१६ स्तैन्यदोष उसें कहते हैं कि-गुरुजीकों चुपकीदीसें वंदना करे-जाहिरमें न वंदना करे; सबब कि सबके देखते वंदना करुंगा तो मैं उन्होंसें छोटा कहा जाउंगा और गुरुकी बडाइ होगी ऐसा शोचके चोरकी मुवाफिक वांदे.

१७ प्रत्यनीक दोष उसें कहते हैं कि-गुरुजी आहारपानी करते होवे उस वखत वंदन करे.

१८ रुष्टदोष उसें कहते हैं कि-कषायसें पूर्ण हुवा गुरुकों वंदना करे, और गुरुकों कषाय पैदा करावे.

१९ तर्जितदोष उसें कहते हैं कि-गुरुजी तो कोप या प्रसादभी नहीं करते हैं, काष्टकी पूतली जैसे हैं. या अंगूलीसें करके शिरपर या अंगूली-शिरसे तर्जना करनी.

२० शठदोष उसें कहते हैं कि-गुरुजीकों वंदना करुंगा तो गुरुजी अगर श्रावक मेरा विश्वास करेंगें, तो मेरा इच्छित कार्य सिद्ध होगा.

२१ हीलनादोष उसें कहते हैं कि:-गुरुजीको कहवै कि-हे आर्य ! हे ज्येष्ट ! हे वाचक ! मैं तुझकों प्रणाम करता हुं. इसतरह हीलना करता हुवा वंदना करे.

२२ कुंचितदोष उसें कहते हैं कि:-वंदना करतें करतें बीचमें विकथा करे.

२३ अंतरितदोष उसें कहते हैं कि:-साधु प्रमुखकों अंतरेसें रहकर या अंधेरेमें रहकरकें वंदना करे कि जिस्में कोइ देखें नहीं.

२४ श्यंग दोष उसें कहते हैं कि-गुरुका सन्मुखपना छोडकर वाम दक्षिण बाजुपर वंदना करे.

२५ कर दोष उसे कहते हैं कि-जैसे राजाका कर देनेका हो वैसें मनमें विचार करै कि भगवानजीने कहा है उससें वंदने पडेंगे. वो वेठ है सो उतार देनी ऐसा धारण करके वंदे

२६ मोचन दोष उसें कहते हैं कि- संसारके करसें मुक्त हुवे, मगर अरिहंत-जीके करसें मुक्त नहीं हुवे उससें वंदन करना पडेगा अैसा शोच कर वंदै

२७ अश्लिष्ट अनाश्लिष्ट दोष उसें कहते हैं कि-वंदना करते रजो हरणकों हाथसें स्पर्शे; परंतु हाथ माथेकों न स्पर्शे, मस्तककों स्पर्शे, परंतु रजोहरणकों न स्पर्शे रजोहरणकों हाथ न लगावे और मस्तककोंभी न लगावे.

२८ न्यूनदोष उसें करते हैं कि-वंदनाके कमती अक्षर बोले या बहुत झडपसें वंदन कर लेवे, उससें अवनमनादिक कम करे या न करे, प्रमादसें करके ज्यों त्यों करे उसमें न्यून होवे वो न्यून दोष है.

२९ चूलिका दोष उसें कहते हैं कि-वंदन किये बाद बडे शब्दसें करके 'मत्थएण वंदामि" कहवे

३० मूकदोष उसें कहते हैं कि-मूंगेकी तरह मुंहसें शब्द बोले विगरही वंदन करे.

३१ ढड्डर दोष उसें कहते हैं कि-बडे स्वरसें वंदनका सूत्र उचार करे.

३२ चूडलिका दोष उसें कहते हैं कि-रजोहरण पकडकर आडाऔना-इधर-उधर फिराता हुवा वंदे.

इसतरह बत्तीस दोष वंदनाके दूर करकें गुरुजीकों वंदन करना-सो विनय है. गुरुजीकी आशातना करकें विनय करना सो योग्य नहीं; वास्ते ज्यों बन सके त्यों गुरुजीकी आशातना न करनी. गुरूजीकी निंदा-हीलना करनेसें, गुरूजीका नाम छुपानेसें, गुरूजीकों पीडा-दिल दुभावे वैसा करनेसें ज्ञानावरणी कर्म बांधता है, ऐसा पहिले कर्म ग्रंथमें कहा है. उस लिये ज्यों गुरुजीकी आशातना न होवे त्यों करना, और जितनी मन वचन कायासें करकें भक्ति हो सके उतनी करनी कि-जिससें ज्ञानावरणी कर्मकी निर्जरा होवे.

धर्मका विनय सो-ज्ञान-दर्शन-और चारित्ररूप धर्म अंगीकार करना उसमें जितना जितना धर्म अंगीकार करनेमें आवे उतना उतना विनय होवे. ज्ञान अंगीकार करना सो आत्माका ज्ञानगुण है वो गुण प्रकट करना, या प्रकट करनेके कारण सेवन करना. ज्ञान यानें जानना, वास्ते जो जो वर्त्तना होवे वो जान लेनी; परंतु उसमें रागद्वेष न करना-ऐसी ज्ञानदशा बनानेसें संपूर्ण केवलज्ञान प्रकट होता है.

ऐसी दशा न हुइ वहांतक ऐसी दशा प्रगट होवै वैसे गुरुजीके पास ज्ञान पढना, सुनना, निर्णय करना. शक्ति हो तो आपही पढै, आपको जितना ज्ञान हुवा होवै उतना दूसरोंको पढाना येभी ज्ञानका विनय है. फिर पुस्तक लिखवाना, ज्ञानवानोंका और पुस्तकका विनय करना. वंदन नमनादिक करना, पुस्तककी संभाल रखनी, ज्ञानवृद्धि होनेके काममें द्रव्यकी शक्तिके अनुसार खर्च करना; शरीरकी शक्तिसें ज्ञानवृद्धि होवै वैसी मिहनत करनी, दूसरोंको ज्ञानके विनयमें सामिल कर देना, ये तमाम ज्ञानका विनय है. इसी तरह दर्शनका विनय करना सो सम्यक्त्व अंगीकार करना, शुद्ध श्रद्धा रखनी, वीतरागके वचनमें शंका न करनी, ऐसे श्रद्धावंत पुरुषका याने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंका विनय उचित विनय करना कि जिससें उत्तम पुरुषकी कृपा होवै और कृपा होनेसें अपनी श्रद्धामें कसर हो सो मिट जाय और शुद्ध होवै-इसका विस्तार गुरुविनयमें लिखा है उस मुजब करना.

चारित्रका विनय सो-मुख्यतासें आत्माका चारित्रगुण है, जो आत्माको आत्मस्वभावमें स्थिर होना, जो विभावमें अनादिकालका आत्मा स्थिर हुवा होवै वहांसें पलटा करके अपने गुणमें स्थिर होना. जितना जितना परभावका प्रवर्त्तन रूकेगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवेगा-यही चारित्रका विनय है. अब ऐसे गुण प्रकट नहीं हुवे वो प्रकट करनेके लिये पंचमहाव्रतरूप चारित्र अंगीकार करना. और वो न बन सके तो श्रावकको बारह व्रतरूप देशविरति चारित्र अंगीकार करना. ये अंगीकार करनेसें अंतरंग चारित्र प्रकटैगा फिर उतनी दशा त्यानके वास्ते ऐसे सर्व चारित्रवंत या देशचारित्रवंतका विनय करना. उसकी संगति करनी कि उत्तम पुरुषके संगसें उत्तमता आवै; वास्ते चारित्रवंत पुरुषका विनय शास्त्रमें विस्तारसें कहा है उस मुजब करना-वो चारित्रका विनय है. इसी तरह तप धर्मकाभी विनय करना-याने तप अंगीकार करना और तपस्वीका विनय करना सो विनयनामक अभ्यंतर तप कहा जाता है.

वैयावच्च तप सो-जो अरिहंतजी-सिद्धजी-आचार्यजी-उपाध्यायजी-तपस्वीजी-साधुजी-कुल-गण-संघ-नवदीक्षित और रोगीसाधु इत्यादि गुणवंतपुरुषोंका वैयावच्च करना. आहार-पानी-वस्त्र-पात्र-मकान-संथारा वगैरः पाट पटले आदि धर्मोपकरण वस्तु उत्तमपुरुषको हितकारी जो जो वस्तु चाहियें वो देनी चाहियें,

वो दूसरेके पाससें दिलवांनी चाहियें, अगर आप खुदकों ऐसे उत्तमजनौकी पाँवचंपी वगैरः चाकरी करनी चाहियें. या ऐसे पुरुषोंकी स्थापना-मूर्ति हो उनकी भक्ति-नमन-विलेपनादिकसें करनी योग्य है और वो वैयावच्च है. उपर कहेहुवे पुरुष उपकारी हैं. वे उपकारीओंने आत्माकों कर्मसें मुक्त होनेका उपाय वतलाया है. फिर उन्होंकी ज्यौं ज्यौं सेवाभक्ति करेंगे त्यौं त्यौं अपनेमें योग्यता आवेगी, और त्यौं त्यौं गुरुजी विशेष उपाय वतावेंगे उससें विशेष वोध होवेगा. और गुन प्रकट होनेमें सहायकारी होवेंगे. ये उपकार करनेहारे पुरुषोंकी जितनी वैयावच्च करै उतना आत्मा सफल होता है; क्यौं कि उपकारीका उपकार भूलना सोही मिथ्यात्व है. और मिथ्यात्व गये विगर आत्माका कार्य होनेकाही नही; वास्ते जितनी जितनी वैयावच्च करैंगे उतना उतना मिथ्यात्व दूर हठेगा और समकित शुद्ध होवेगा. सम्यक्त्व शुद्ध हुवा कि आत्मगुण प्रकट हो चुका. इसी लिये वैयावच्चरूप लाभ होनेका अंतराय न टूटा है वहांतक वैयावच्च करनेका दिल न होवेगा, और मन हो आयगा तोभी अंतरायके योगसें ऐसे पुरुषोंका योग न बन सकैगा. योग वनैगा तो आलस वगैरः बीचमें विघ्न आवेंगे और वैयावच्च न बन सकैगा. परंतु उद्यम करतें करतेंही अंतराय तूटेगा; वास्ते शक्ति समय मुजव वैयावच्च करनेमें वीर्य स्फुरायमान करना-वही कल्याणकारी है.

सज्झायतप सो-सज्झाय ध्यान करना, वो पांच प्रकारसें है. वाचना याने गुरुजीशास्त्र वाचना देवें उससें गुरुजीकों वाचना देनेरूप वाचनातप होवै और शिष्यकों वाचना लेनेसें वाचनातप होवै. पृच्छना याने आप पढे होवें उसमें शंका पडे तो गुरुजीकों पूँछकर उसका यथार्थ निर्णय करना. [किसी मनुष्यकों खष्ट करनेके लिये न पूँछना-और पूंछे तो वो पृच्छनातप नहीं कहा जाता है.] परावर्त्तना याने पढाहुवा हो उनकों पुनः पुनः याद करना कि जिस्सें भूल जानेका डर न रहवै-और भूलभी न पडे; वास्ते जो पढ लिया हो वो हमेशां याद करना हररोज याद करनेका वक्त न मिले तो एक दिनांतरमें याद करना. नया पढना जारी रहवै और पुराना विस्मृत होनाभी जारी रहवै तो जानबूझकर ज्ञानके आवरण लगनेका वक्त हाथ लगै, वास्ते ज्यौं पढाहुवा विस्मृत न होवै त्यौं करना चाहियें अनुपेक्षा याने पढी या सुनी हुइ वस्तुके तत्त्ववोधका विचार करना, और वस्तुके परमार्थका अनुभवगम्य

निर्णय करना. इसमें विशेष अनुमानशक्ति होवै तो हो सकै. जिसने भगवंतजीके वचनोंका अनुभवगम्य निर्णय किया है उसको फिर शंका नहीं रहती. और दुर्बुद्धिवाले उसका मन नहीं फिरा सकते. सज्झाय-ध्यान याने जिसको सम्यक्त्व प्राप्त हुवा हो वही पुरुष सज्झायध्यान कर सके और वही करनेकी जरूरते है. अनुपेक्षा ज्ञानवालेको आत्मा अरूपी है तोभी वो साक्षात आत्मा देखता हो वैसा निर्द्धार हो जाता है. हरएक पुस्तक वांचकर विचार करना वही अनुपेक्षा है और यों किये विदून वाचे हुवे और पढे हुवेका बराबर फल नहीं मिल सकता है; परंतु जब ज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम होवै तब बन सके. बहुतभी पढे हुवे, क्रिया करते हुवै नजर आते हैं; मगर यह क्या कहा? मेरे किस लिये करना? वो नहीं जानते है, और यह क्रिया किस वास्ते की वोभी नही जानते हैं. उसका सबब कि निर्णय करनेकी बुद्धि जाग्रत न हुइ; लेकिन वो बुद्धि जाग्रत करनेकी आवश्यक्ता है. दुनियामें कहनावत चलती है कि-"पढे, मगर गुने नहीं." वास्ते वैसा न होना चाहिये. हरएक बाबतका निर्णय करनेकी बुद्धि रखनी. ऐसी बुद्धि जाग्रत हुइ हो वो उससें हरएक वस्तु अनुभवगम्य होती है. [उसें अनुपेक्षा कही जाती है.] ऐसे अनुभववाले पुरुष धर्मोपदेश करते हैं वो धर्मकथा कही जावे. धर्मकथा करनेंसें परजीव संसारकी उपाधिसें मुक्त होवै, विषयकषाय शान्त होवै, तत्त्वज्ञान होवै, अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेका कामी होवै, या प्रकट करे. वैसा उपदेश देना, या वार्त्ता कहनी अगर सुननी, उसीका नाम धर्मकथा है. जो कथावार्त्ता कहनेसें विषयकी वृद्धि होवै, तथा तृष्णाकी, मोहकी, हिंसा-झूठ-चोरी वगैरःकी वृद्धि होवै उसका नाम धर्मकथा नहीं; मगर पापकर्मकथा है.

"यह पांचों प्रकारके सज्झायध्यानका नाम तो ज्ञान है और इसका नाम तप क्यों कहा?" ऐसी शंका हो आवै तो उसके परमार्थको तो प्रथम अभ्यंतरतपका वर्णन किया है, वहां दर्शाव किया है उसमें लक्ष देनेसें समझमें आयगा. तोभी सहजसें इस जगहभी दर्शाता हुं कि-तप इसका नाम है कि-कर्मको क्षय करे. तो वांचना प्रमुख करनेसें महा अज्ञानरूप जो कर्म उनका नाश हो जाता है-नाश करनेकी सन्मुखता होती है. फिर अज्ञानपनेसें कर्म नहीं क्षय होते है. जब ज्ञानदशा हो तभी कर्मक्षय होते हैं. बाबनपक्के साथभी ज्ञान होवै तो कर्मक्षय होना है, तो ज्ञानमेंही मगन रहवे तो उसमें कर्मक्षय होवै उसमें नवाइ जैसा नहीं है! वास्ते ज्यों बन सकै

त्यौं सज्झायध्यानमेंही समय निकालना-इससेंही तमाम वस्तुकी प्राप्ति होवेंगी.

अव ध्यान नामक तप-सो ध्यान किसकों कहा जावे? जिसमें मन, वचन, कायाकी एकाग्रता होवै उसें ध्यान कहा जाता है. उसमें धन, कुटुंब, व्यापारादि पुद्गलीक पदार्थमें एकाग्रता होवै उसे अशुभध्यान कहा जाता है और त्याग करने योग्य है; लेकिन वो तो सदाकाल जीवकों हो रहा है. वो ध्यान छोडकर आत्मतत्त्वके अंदर एकाग्रता करकें उसमें लीनतासें वर्त्तना वो ध्यान तपमें गवेषन किया है. वो ध्यान वहुतसे प्रकारका है. उसमें मुख्य धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहे हैं. और जो जो ध्यान ध्याना वो अभ्यंतर तप है इसका स्वरूप प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें विस्तारसें है सो वहांसें देख लैना- यहां पर तो सामान्यतासें कहा गया है.

प्रथम धर्मध्यानके चार पाद हैं याने आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय. उसमें आज्ञाविचय सो-परमात्माकी आज्ञाका विचारना, जैसी जैसी आज्ञा है वैसा वर्त्तनेकी भावना करनी. अपायविचय यानें आत्माका जो स्वरूप है सो स्वरूप नहीं वर्त्तता, उसका सबब कि मिथ्यात्वादिकके त्याग करनेंमें एकाग्रता करनी. विपाकविचय सो कर्मका स्वरूप विचारना-कर्मसें मुक्त होनेका शोचना. संस्थानविचय सो चौदराजलोकका स्वरूप शोचना.

शुक्लध्यानकेभी चार पाद हैं याने पृथक्त्ववितर्क सप्रविचार; एकत्ववितर्क अप्रविचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती, और उच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ये ४ शुक्लध्यानके पादमेंसें पहिलेके दो पाद केवलज्ञान प्राप्त होनेके पेस्तर प्रकट होते हैं और दूसरे पिछले दो पाद केवलज्ञान पाये पीछे सिद्धि जानेके करीब वक्तमें प्राप्त होते हैं. पहिलें पादमें भेदज्ञान होता है, दूसरेमें अभेदज्ञान होता है, तीसरेमें बादरयोग रूका जाता है और चौथेमें सूक्ष्मयोग रूद्ध होता है. इसतरह वर्त्तना होती है.

वर्त्तमान समयमें शुक्लध्यान तो हो सके ऐसा नहीं है; कारण कि पूर्वका ज्ञान हो उसें होता है. परंतु इस समयमें धर्मध्यान बन सकता है. फिर समाधि मुख्य है उससें बाह्यके वहुतसें कारण रूके जाते हैं, और विषयसें विमुख हुवे विगर समाधि नहीं बनती है. इस कामका अभ्यास करनेके समयसेंही खट्टे, खारे, तीखे; विषयरूप स्वाद बंध करने चाहियें. स्त्रियोंके विषयकाभी त्याग करना चाहियें. तथा बाह्यके गप्पे आदि निकम्मी बातें करनेकाभी त्याग करना चाहियें. ये तमाम कारण

बंध करके और श्वासोश्वास रोक करके एक परमात्मापदमें लीन होनेसें उसीमेंही उपयोग रहता है वास्ते ये समाधि उत्तम है. फिर सहज समाधि होवे वो तो बहुतही उत्तम है; क्यौं कि सहजसें दूसरे जडभावमें उपयोग नहीं रहता है और आत्मभाव स्थिर हो जाता है. ये समाधी तो धर्मध्यानके पेटेमेंही है. पुनः कितनेक अक्षरोंका ध्यान करनेकी रीति है वोभी योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने बतलाइ है, उस परसें प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें दाखिल की है. इससें यहांपर फैलाव नहीं किया, दरकार हो उसमेंसें देख लेवै. परंतु मुक्तिका समीप साधन है वास्ते आत्मार्थिजनोंको ध्यानका लक्ष रखना बहुतही उत्तम है. जिस तरह पघडीके अंतमें किसबी पल्ला अच्छा लगता है विसी तरहसें धर्मसाधनमें ध्यान (उसी मुजब) अच्छा मालूम होता है; इसी वास्ते ध्यानका साधन करनेके लिये अभ्यास करनेकी अत्यावश्यकता है. परंतु ध्यानको अटकायत करनेहारे उपाधिके कारण हैं, वे कारण जब तक है तब तक सहजसें समाधी न हो सकैगी; क्यौं कि एकांतमें विचार करनेमें वे कारण याद आवेंगे कि जिस ध्यानमें स्थिर होना होवेगा उसीमें न हुआ जायगा; वास्ते ध्यान करनेकी इच्छावालोंको ज्यौं बन सके त्यौं बाह्यके कारणोंका त्याग करना चाहियें, और बहुत जनका परिचयभी त्याग कर एकांतमें मुख्यत्वतासें रहना चाहियें, तब ये ध्यान होना सुगम पडता है, और विशुद्धता हुवे पीछे तो एकांतकीभी दरकार नहीं रहती है. जिन पुरुषका चित्त जडभावसें दूर हो जाता है और अपने स्वभावमें स्थिर हो जाता है, वैसे पुरुष तो सदाकाल जगतका तमाशा देखते है आत्माका ज्ञानगुण है सो जाननेका है. परंतु जबतक मिथ्यात्वभाव नहीं गया है वहांतक रागद्वेष सहित देखते हैं, और जो जो देखते हैं उसमें राग या द्वेष हुए बिगर नहीं रहता; अगर मिथ्यात्वकी वासना हठ गइ है, जड, चेतन पदार्थका यथार्थ ज्ञान हुवा है और वस्तुधर्मका ज्ञान हुवा है उसके प्रभावसें जिस पदार्थका जो स्वभाव है वो जानते है कि पीछे रागद्वेष नहीं होता. ये दशा पाइ है उन्होंको तो एकांत और वस्ति एक समान है—उन्होंको ध्यानके लिये एकांत स्थलकी कुछ दरकार नहीं—ये ध्यान तपका स्वरूप कहा है.

काउस्सग्ग नामक तप सो—कायाको वोसिराके एक स्थानमें रहना और जितनी देरकी स्थिरता हो उतनी देर तक प्रभुजीका स्मरण करना.

इस प्रकारकें छः अभ्यंतर तप है दोनु [बाह्य अभ्यंतर] तप मिलकर बारह प्रकारसें तप कहा है वो तपका लाभान्तराय मिटनेसें तपा चारकी प्राप्ति होती है, उस तपका अंतराय काहेसें होता है ? जब तप करनेसें कुछ शरीर बीमार होवे तब मनुष्यके मनमें आवे कि तप किया जिससें मुझको पीडा हुइ, अब में तप नहीं करुंगा ऐसा भाव आनेसें जीव तपका अंतराय कर्म बांधता है, तो फिर तप करनेका भाव नहीं होता है. लेकिन सच्चा कारण तो अशाता वेदनीकर्म जो पूर्वकालमें बांधा है वो उदय आता है तब शरीरकों बीमारी होती है. जिसने अशातावेदनीकर्म नही बांधा है वो तो अच्छी तरहसें तप करता है; परंतु उनकों रोग या पीडा नहीं होती वास्ते तप किया और कभी बीमारी हुइ तो ज्ञानीपुरुष शोचे कि मैंनें कोइ जीवकों तप करनेमें अंतराय किया होगा कि उससें मुझकों तपस्यामें वेदनी कर्मका उदय आया, जिससें तपस्याकी वृद्धि न हो सकैगी. अब तो वेदनीकर्म क्षय करनेकों तैयार हुवा हुं; वास्ते वेदनीकर्म समभावसें भुक्तना कि फिर नया कर्म न बंधा जाय. ऐसें समभावमें रहकरकें तपस्यामेंसें चित्तकों नहीं हठाते हैं. वैसें पुरुषकों तपका अंतराय टूटता है और तपाचारका लाभ होता है. और जो ऐसा शोचता है कि तप करनेसें बीमारी हुइ तो वो कठीन कर्म बांधता है. सावितीके लिये छपी हुइ अर्थदीपिकाके पत्र ७२ में रज्जा साध्वीकी कथा है कि:—

भद्राचार्यके गच्छमें पांचसो साधुजी और बारहसो साध्वीजीएं हैं. उनके गच्छमें-कांजीका पानी, चावलका ओसामन और तीन उबालेका पानी ये तीन प्रकारके पानी सिवा और कोइ प्रकारका पानी नहीं वापरते हैं. कर्मयोगसें रज्जासाध्वीके शरीरमें गलित कुष्ट हुवा उस वख्त दूसरी साध्वीजीयोंने कहा कि–'दुक्कर! दुक्कर!" ऐसा सुनकरकें रज्जासाध्वीने कहा–" ये क्या मुझकों कहते हो ? इस प्रासुक जलसेंही मेरा बदन बिगडा है." ऐसा वचन सुनकर दूसरी साध्वीओंके मनमें आया कि–"सायद हमकोंभी प्रासुक जलसें गलित कुष्ट न हो आवै!" ऐसा भाव मालूम हुवा. परंतु एक साध्वीके मनमें आया कि–" कभी मेरा शरीर अभी या पीछे सडकर टुकडे हो जाय तोभी में उष्ण जलही पीउंगी. उष्णजल पीनेसें शरीरका नाश नहीं होता; परंतु पूर्वकृत अशुभ कर्मोदयसेंही शरीरका नाश होता है–या रोग होता है." ऐसा शोच करकें खेद करने लगी कि–" मुझकों धिक्कार हो! इस पापिणीने न बोलने योग्य वचन कहा जिःसे

आपने पाप बंध बांधा और औरोंको कर्मबंधनकी कारणीक बनवाइ. ऐसा भावनेसें शुद्ध अध्यवसायकी गाथा चिंतवन करते घातीकर्म नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया. और केवलज्ञानके प्रभावसें समस्त साध्वीयोंका संदेह दूर हो गया. पीछे रज्जा आर्याका संदेह पूँछा कि इसको किस सबबसें कुष्ट रोग हुवा ?" केवली साध्वीजीने कहा कि "इस बाइने मकडीके सहित स्निग्ध भोजन किया उसके प्रतापसें रक्तपित रोग हुवा. फिर सचित्तजल ले करके श्राविकाकी लडकीका मुँह प्रक्षालन किया; उससें शासनदेवीने इस रज्जा साध्वीपर गुस्सा करकें शिखावन देनेके लिये आहारमें कुष्ट रोग हो आवे वैसा चूर्ण डाल दिया, उसके मारे कुष्ट पैदा हुवा; परंतु प्रासुक पानीसें नहीं हुवा है." ऐसा केवलज्ञानी साध्वीजीका कथन सुनकर रज्जासाध्वीने कहा–"हे भगवती ! मुझको आलोयण दो कि मै शुद्ध होउं." केवलज्ञानी साध्वीजीने कहा–"तुं शुद्ध हो सके ऐसा कोइ प्रायश्चित नहीं है; क्यों कि तूने क्रूर वचन कहे हैं उससें निकाचित कर्मका बंध हुवा है–उस कर्मके मारे कुष्ट, भगंदर, जलोदर, दमा, अतिसार, कंठमाला आदि महान् दुःख अनंत भव तक तुझको भुक्तने पडेंगे." 'इस तरह कह कर दूसरी साध्वीजीयोंको आलोयणा दी, उससें साध्वीजीएं शुद्ध हुइ. और रज्जा बहुत भवभ्रमण करेगी.' दिखिये ! जैसें पानीका दूषण निकालनेसें बुरे हाल हुवे और भवभ्रमण बढ गया वैसाही तपको दूषण देनेसें होता है ये खूब समझ लेना, दुःख सुख सब कर्माधिन हैं और कर्माधिनता विचारनेसें एक साध्वी केवलज्ञान पाइ, एक साध्वीने कर्मविचार न किया और पानीका दूषण चिंतवन किया तो निकाचित अशुभकर्म उपार्जन किया; वास्ते ऊपर कही सो कथा याद रखकर तपको दोष न देना. तप है सो तो कर्मक्षय करनेवाला है. उसको अज्ञानतासें उलटे मार्गपर जोड देनेसें उलटा होता है; इस लिये वैसा जीवमें विकल्प संकल्प न करना. शरीरकी निर्बलतासें तप न हो सके तो चिंतवन करना कि मेरा तप अंतरायकर्म कब टूटेगा कि मैं तप करुं. ऐसी भावनासें अंतराय कर्म टूटेगा, और तपाचारका लाभ होगा. इस तरह बारह प्रकारसें तपाचार है.

वीर्याचारका अंतराय टूटनेसें वीर्याचारका लाभ होवे, उससें दूसरे चारों आचारमें वीर्य स्फुरायमान होवे. और पीछे जो जो धर्मकरणी करे वो उत्साहपूर्वक और हर्षपुरःसर करे–वेठरूप न करे. और जिसको वीर्यके लाभका अंतराय होवे

उसकों वीर्यशक्ति हो तोभी धर्मकरणीमें वीर्य स्फुरायमान न कर सकै. धर्मकरणीके वक्त कहेगा कि-'मेरेमें ताकत नहीं.' और संसारीकाम करना हो उसमें तत्पर होवे. जैसें कि तमाशा देखना हो तो दो घंटे तक खडा रहकर तमाशा देखै, और प्रतिक्रमण खडे खडे करना हो तो बदमाश वहेलकी तरह ताकतदार होनेपरभी बैठकर प्रतिक्रमण करैं, और कहवै कि मेरेमें शक्ति नहीं, शास्त्रमें तो बैठकरकें प्रतिक्रमण करनेवालेकों आयंबिलका प्रायश्चित्त कहा है, वैसा जानबूझकर बैठे हुवेही प्रतिक्रमण करै. गुरुजी कहवै तोभी प्रमाद न छोडे गुरुजीकों या प्रभुजीको वंदन करनेका या खमासमण देनेका जैसे शास्त्रमें कहा है वैसे न देवे, और कभी देवै तो सत्तरह जगह पूंजनेका (आपके अंगमें) कहा है वैसें न पूंजे. पोषध सामायकमें ध्यान करना चाहियें सो न करै प्रतिक्रमण भणाना हो तो कहेगा कि पूरा मेरेसें न भणाया जायगा, इसतरह प्रमाद करैं. पुनः ज्ञानाभ्यास करना हो तो प्रमाद करकें न पढै-न बांचे या न किसीकों सुनावे या न आप सुनै. ये तमाम वीर्याचारके लाभांतरायका उदय है. इसतरह प्रमाद करनेसें या दूसरा धर्मका उद्यम करता होवै उसकों रोकदेनेसेंभी अंतरायकर्म नया बंधा जाता है. उसी तरह मंदिरमें, धर्मशालमें, स्वामीवत्सलमें और विद्याशालामें कुछ काम करना हो तो उसमें प्रमाद करै, और सांसारिक कार्यमें कटिबद्ध रहवै-येभी अंतरायकेही फल हैं. और जिसकों अंतराय टूट गया है वो तो जो जो काममें आत्माका कल्याण होवे, आत्मगुण प्रकट हो सकै उसीमें वीर्य स्फुरायमान करै, और अति प्रसन्नतासें देवगुरुके हुक्म मुत.बिक धर्मकरणी [यथार्थ] करै, वीर्यशक्ति न छुपावे. जो जो काम करने हैं उसमें मनकी बलिष्ठताकी आवश्यकता है. तपस्या करनी ये दुष्कर है; क्यों कि तपस्यामें शरीर थोडा या बहुत नरम पडे विगर न रहेगा. मगर तपस्या करनेमें वीर्यशक्ति स्फुरायमान होती है तो उससें मन बलिष्ठ रहता है, उससें करकें कष्टपर लक्ष नहीं जाता और सुखसें तप होता है. वास्ते मनकी बलिष्टता होवे तो वो किये जाय. मन निर्बल हो तो शरीर बलवान होनेपरभी वो मनुष्य तपस्या न कर सकेगा. परंतु ये तमाम कब होता है कि वीर्याचारका लाभांतराय टूट गया होवे तभी धर्मकार्यमें वीर्य स्फुरायमान कर सकता है; क्यों कि धर्मकार्यके लाभका अंतराय टूटे विगर धर्मकार्यमें वीर्य स्फुराया नहीं जाता. लाभांतराय सद्गुरुजीकी संगतिसें टूटता है; वास्ते प्रथम तो उत्तमजनोंकी

संगत करनी उसमें वीर्योल्लास ल्याना चाहियें. वो पहिले तो घुणाक्षर न्यायसें होगा याने किसी जगह किसी वक्त लकडेमें जानवरके जरियेसें अक्षर पड जाते हैं वो स्वाभाविकतासे पड जाते है-घुणा नामक लकडेमें एक जातका कीडा होता है उसके योगसें अक्षर जैसा आकार पडता है, वैसें स्वाभाविकतासें वैसे पुरुषका भवितव्यताके योगसें संयोग मिलाप होता है और कुछभी सववसें जानाआना होनेसें प्रीतिभाव [वाह्यसें] होता है, फिर उनकी अमृत जैसी वानी सुनतेही जो मिथ्यात्वमार्ग दे देवे तो विशेष प्रीतिभाव पैदा होता है; और ऐसी प्रीतिसें शिथिल अंतराय हो तो दूर हो जाता है. और संसारमें वीर्य स्फुराता हो तो वहांसें परावर्त्तमान हो जाकर धर्ममें वीर्य स्फुराया जाता है त्यों त्यों अभ्याससें कर्म छूट-टूट जाता है. इस प्रकार वीर्याचारकी वृद्धि होती है-उस मुजब स्वरूप कहा. ये पांच आचारमें जिस जिस आचारका लाभांतराय टूटा होवे उस आचारके लाभकी प्राप्ति होती है. संपूर्ण आचारकी प्राप्ति तो जब क्षायकभावयुक्त सब प्रकारसें अंतराय टूट जाय तब होती है और केवलज्ञान होता है. उसके पहिले क्षयोपशम भावसें क्रमसें करकें बारह गुणस्थानककी प्राप्ति होती है, और उसमें क्रमसें करकें आचारकी वृद्धि होती है.

दान और शील इन दोनुका स्वरुप कहा. तपका स्वरुपभी तपाचार में बहुत विवेचनके साथ बतलाया, अब भावका स्वरूप कहता हुं. भाव पांच प्रकारके हैं-याने उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायकभाव, परिणामिकभाव और उदायकभाव-ये पांच प्रकारके हैं उसके ५३ भेद हैं-जो प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिमें पत्र १३३ में कहे हैं. वहांसें देख लिजीयें अगर तो भावप्रकरण नामक ग्रंथ है उसमें गुणस्थानकके अंदर विवेचन किया है वहांसें पढ लीजीयें. यहां तो नाम मात्र कर्मग्रंथके आधारसें और अनुयोगद्वारजीमेंभी इसका विस्तार है उन सभीपर लक्ष रखकर लिखता हुं:—

पहिले उपशम भावसें मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायके दल उदय आये हुवे क्षय करें, उदय न आये हो तो उन कर्मके दल उदीरणा करके उदय ल्याकर क्षय करें, उदीरणासेंभी उदय न आवें वैसें कर्मका अध्यवसायकी विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर रक्खे. अब पेस्तरके तीन भावमें कर्मके दल उदय आये क्षय करना, उदीरणा कर उदय ल्याकर क्षय करना, विशुद्धिसें उदय न आ सके वैसे कर डालना, और उपशमाना, ये सब बातोंका होना कृत्रिम नहीं; परंतु स्वाभाविक आत्मा-

की विशुद्धतासें हो जाता है. परमात्माजीके बनाये हुवे तो तत्त्वकी-श्रद्धा हुइ और जडभावपरसें मोह ज्यौं ज्यौं उतरता है त्यौं त्यौं आत्म स्वरूपका ज्ञान होता है, और वो ज्ञानके प्रभावसें आत्माके सुखका आस्वादन होता है और वो सुखका आस्वादन होनेसें धन-कुटुंब-स्त्री-शरीरपरसें मेरेपनेका ममत्वभाव हठ जाता है. शत्रु मित्रपर समदृष्टि हो जाता है, विषयसें उदास रूचि है. ऐसी विशुद्धि होनेसें मिथ्यात्व अनुतानुबंधीका उपशम होता है उससें अंतरंग शुद्ध होता है. आत्म विचारके सिवा दूसरी चीजपर राग नहीं होता. आत्मामें रमण करने सिवा दूसरा सुख मनकों नहीं रुचता है, मन बहुत निर्मल हो जाता है. वो उपशमभावके समकितका काल अंतर मुहूर्त्तका है. उपशमभावकाभी चारित्र होता है-वो आठवेसें ग्यारहवे गुणस्थानकमें होता है, उसकाभी काल अंतर्मुहूर्त्तका है. फिर उपशम चारित्र रहेता नहीं, उतनी वेर वीतरागदशा पाता है-राग द्वेष संहित होता है. ऐसे जो स्वभाविक विशुद्धभाव सो उपशमभाव, वोभी शुद्धभाव भावचक्रमें पांच वेरं होता है. ऐसे भावकी प्राप्ति लाभान्तरायकर्मके क्षयोपशमसें होती है.

दूसरा क्षयोपशमभाव-वोभी जो जो कर्म उदय आये हैं वो क्षयकरता है और उदय न आये हो तोभी उदय आने जैसे हो उसकों उदीरणा करकें उदय ल्याकर क्षय करता है. जो उदीरणासेंभी उदय न आ सकें वैसे हैं तो उसकों उपशमाता है-उसका नाम क्षयोपशमभाव है. ये क्षयोपशमभाव चार कर्म (ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अंतराय ये चार) का क्षयोपशम होनेसें आत्माकी विशुद्धि होती है. जैसें बादलसें सूर्य छा गया-आच्छादित हो गया हो वो ज्यौं ज्यौं बादल दूर हठते हैं त्यौं त्यौं प्रकाश प्रकाशमें आये जाता है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके आवरण ज्यौं ज्यौं हठते जाते हैं त्यौं त्यौं ज्ञानका प्रकाश विशेष उपयोगरूप होता जाता है. और दर्शनावरणी कर्मके आवरण हठनेसें सामान्य उपयोगरूप दर्शनका उपयोग निर्मल होता है. मोहनीकर्मकी दो प्रकृति हैं याने दर्शनमोहनी और चारित्रमोहनी. उसमें जब दर्शनमोहनीका क्षयोपशम होवै तब समकित-शुद्ध यथार्थ श्रद्धा होती है, और उसकों आवरण लगनेसें विपरीत श्रद्धा होती है, वो आवरण ज्यौं ज्यौं हठ जाते हैं त्यौं त्यौं शुद्ध श्रद्धा होती है. वस्तुका निर्णयभी यथार्थ होता है. फिर चारित्रमोहनीका क्षयोपशम होनेसें इच्छायें रूकती जाती हैं, कषायकी परिणति शांत होती है, विरति

असुखके भाव जाग्रत होते हैं, जो जो वस्तु त्यागता है उस परसें इच्छा हठ जाती है, अंश अंशसें आत्मभावमें स्थिरता होती है और अंतमें पांचवे गुणस्थानसें लगाकर दशमे गुणस्थान तक क्षयोपशमभावका चारित्र है. इसतरह मोहनीकर्मका क्षयोपशम होता है, तब अंश अंशसें वीर्यादिशक्ति (आत्माकी) जाग्रत होती है, उसके प्रभावसें आत्माका वीर्य आत्मधर्म प्रकट करनेके काममें स्फुरायमान होता है. मलीन क्षयोपक्षमसें संसारी कार्यमें शक्ति स्फुरायमान होती है. इसतरह जब कर्मका क्षयोपशमका भाव होता है वो क्षयोपशम शुद्ध होनेसेंही आत्माकी परिणती जाग्रत होती है और वो जाग्रत होनेसें जो जो धर्मकरणी होती है वो भाव सहित होती है. पीछे भावके भेद बहुत हैं. संयमके असंख्यात स्थानक है उनमेंसें जितना जितना क्षयोपशमभाव होवै उतने संयमस्थानक प्रकट होते हैं इसतरह अल्पमात्र क्षयोपशमभावका स्वरूप लिखा है.

क्षायकभाव वो तो कर्मका बंध, कर्मका उदय, और कर्मकी सत्ता ये तीन प्रकारसें कर्मका नाश करता है. ये क्षायकभावका प्रथम समकित जब प्राप्त होवै तब अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, समकितमोहनी, मिश्रमोहनी, मिथ्यात्वमोहनी यह सातों प्रकृतियें सत्ता, उदय और बंधमेंसें नाश पाती हैं, तब क्षायकभावका समकित प्रकट होता है और वो प्रकट हुवे बाद नहीं जाता है. परंतु ऐसी विशुद्धि तो उपशमभाव, और क्षयोपशमभाव ये दोनुसें विशुद्धि होती है. उसबाद जब केवलज्ञान पानेके हो तब वो पुरुष क्षपकश्रेणी याने कर्म खपावेकी-क्षपक करनेकी पंक्ति, एक पीछे दूसरी प्रकृति क्षय करनी, अनुक्रमसें चारों कर्मका नाश करना वो श्रेणी कोइ चौथे-पांचवे-छट्ठे-सातवे-आठवे गुणस्थानकसें करै सो बारहवे गुणस्थानक तक क्षायकभावसें कर्म क्षय करते हुवे चले जाते हैं. क्षयोपशमभाव तो चलायमान होता है और पुनः कर्म बंधे जाते हैं. क्षायकभाव याने जो कर्म क्षय किये वो पीछे पुनः नहीं बंधे जाते हैं, वैसी क्षायकभावकी विशुद्धि है; वास्ते हरएक प्रकारसें क्षायिकभाव होवै तो कल्याण होवे. क्षायकभाव चार कर्मका नाश करता है; तब केवलज्ञान प्रकट होता है. अष्टकर्म नाश होवै, तब कर्मरहित होके सिद्धपद पाता है-पुनः संसारमें आनाजाना होताही नही, ऐसे विशुद्धपदकी प्राप्ति होती है. इन तीन प्रकारके भावमेंसें जो कोइ भाव प्रकट होवै वो जब ये भाव पानेका लाभांतराय टूट गया हो तब प्रकट

होवें. और जिसकों ये गुण प्रकट होनेका लाभांतराय है वहांतक उसकों ये भावमेंसें कोइ भाव प्रकट नहीं होवैगा. इनमेंसे कोइ भावकी प्राप्ति हुवे विगर जो जो धर्मकरणी करैगा वो द्रव्यक्रिया है और द्रव्यक्रियाके प्रभावसें पुन्य बंधेगा-संसारीसुख पावेगा; मगर मुक्तिमहेलमें रमण करनेका उससें न हो सकेगा. जब क्षायकभाव आवैगा तबी मुक्तिरूप स्त्रीकी मुलाकात करैगा. क्षयोपशम क्षायकभावके कारणरूप है, उससेंभी कर्म नाश होवेंगे. और उपशमभावसेंभी कर्म क्षय होवेंगे. इन दोनुमेंसें एकभी भावका समकित आनेसें निश्चेयसें मुक्ति तो होवेगी. और ये भाववालेकों अंतमें क्षायकभावभी आनेका तो सही; वास्ते ये भावभी होवें तो कल्याण होवें. इन तीनों भावमें समकित पाये विगर पूर्वकालमें मेरुपर्वत जितने ओघे, मुंहपत्ती धारण की; मगर जीवकों मुक्ति न मिली ये भाव विगर शुभ भावसेंभी जीव नौ ग्रैवेयक तक जाता है, और पुद्गलीक सुख भुक्तता है वास्ते पुद्गलीक सुख भुक्तनेका भाव आवें; परंतु मुक्तिसुख भुक्तनेका भाव आना दुष्कर है. मुक्तिसुख भुक्तनेरूप भाव आया कि न आया उसकी पक्की परिक्षा तो न हो सकै; मगर आत्मिकभाव आनेवालेके लक्षण शास्त्रमें बतलाये हैं वो देखनेसें अनुमान हो सकेगा.

ये तीन भाव हैं सो आत्माकों निर्मल करनेहारे हैं. चोथा उदयीक भाव है सो कर्मके उदयसें प्राप्त होता है और उसके एकीस भेद हैं ये भावसें अशुभकर्म बंधे जाते हैं. और आत्मा मलीन हो मिथ्यात्व, अज्ञान, कषाय, लेश्या, अव्रत ये सब होते हैं. वो भावका यहां प्रयोजन नहीं है. परिणामिक भाव है वो तो स्वाभाविक है. वो सुख या दुःख कुछभी करता नहीं. भावकी संपूर्ण प्राप्ति तेरहवे गुणस्थानसें आत्माकों संपूर्ण लाभांतरायका क्षय होनेसें होती है. ये प्राप्ति न होनेके सबब कि जीव अपने अहंकारमें गुलतान हो आत्मिकगुण प्रकट करनेकी इच्छा नहीं करता है, और जो जीव आत्माके गुण प्राप्त करनेमें सन्मुख हैं या हुवे हैं उनकों रोक देता है, उनकी निंदा हीलना करते हैं-ऐसे जीव लाभांतरायकर्म बांधते हैं. फिर संसारमें धन वगैरः कोइ दातार हो किसीकों दे देता नहीं तो उसकों न देने दे, लेनेवालेके दूषण हो न हो तोभी वो तो दूषणही बतला करके उनकों देनेमें अंतराय करै उससें लाभांतराय कर्म उपार्जन करै. जैसें भिखारी मुठीभर जुवारीके लिये दरबदर फिरता है; मगर लाभांतरायसें मिल नहीं सकता. वैसी तरह जो मनुष्य ऐसे मनुष्यकों देनेमें अंतराय करवाते हैं उनकों भीख मांगनेसेंभी लाभ न मिलैगा. वास्ते हरएक प्रकारसें

कोइभी जीव दुःखी हो तो उसकों सुखी करनेकी इच्छा रखनी, और अपनी जितनी ताकत हो उस मुजब उसकों दे करकें संतोष देना. पुनः दूसरे अपने मिलापीकों कहनेसें उसका दुःख दूर होता होवै तो उसकों कह करकें कुछ दिलवा करकें उसका दुःख दूर करना. फिर सुपात्र पुरुषके अंदर उत्साह दान देनेके लिये रखना और वैसेकों अवश्य दान देना, जिस्सें लाभ मिलना बहुत सुल्लभ होता है. एककों राजा और एककों रंक देखते हैं, उस वफावतका सबब येंही है कि उसने पूर्वभवमें सुपात्रकों देखकें दान दिये हैं उस्से राज्यपद मिला है. और जिसने पिछले भवमें कुछ सुपात्रमें न दिया हो और लाभांतरायकर्म बांधा हो उससें उन्कों कुछभी न मिलता है. कितनीक दफै देनेवालेका देनेका भाव हुवा है, तोभी लेनेवालेनें लाभांतरायकर्म बांधा है उसके प्रभावसें लेनेमें विघ्न आते हैं, और लाभ नहीं मिल सकता है. ये लाभांतरायकर्मका फल है. वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं लाभांतराय टूट जावै वैसा करना; मगर नया न बंधा जाय उसका खूब खियाल रखना.

अब तीसरे भोगांतरायका स्वरूप लिखता हुं:-भोगांतरायकर्म जीव अनादिसें बांधता हुआही आया है, उसके प्रभावसें आत्माके स्वभाव रहना वो रूप भोग नही भुक्त सकता है. वो भोगांतरायकर्म बारहवे गुणस्थानके अंतमेंही क्षय होता है, तब सदाकाल आत्माकेही भोगकों भुक्तता है, उसका सर्वथा प्रकारसें भोगांतरायका त्याग हो जाता है. क्यों कि विभाव वासना नहीं रहती. यहांपर किसीकों शंका हो आवैगी कि-"केवलज्ञानी महाराज समोवसरणमें विराजमान होते है, देवकृत वगैरः अतिशय प्राप्त होते हैं, आहार करते हैं, सुंदर हवा आदि आती है इत्यादि भोग है या क्या है?" उसके संबंधमें ऐसा समझना कि-तीर्थंकरमहाराजजीने तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन किया है, उस पुन्यके प्रभावसें बहुतसी वस्तुयेंकी प्राप्ति हुइ है या होती है; परंतु उसमें भगवंतजीकों न राग न द्वेष है ज्ञानसें जानते है कि शुभाशुभ कर्मका उदय है वो उदयके प्रभावसें होता है, वो मात्र कर्म भुक्त लेने रूप है. उन वस्तुओंमें लेशमात्रभी राग नहीं. फकत चार कर्म रहे है वो भुक्तकर निर्जराते हैं; वास्ते तीर्थंकरमहाराजजीका या केवलीजीका जो भोग है वो भोग नहीं जैसा है. और छद्मस्थ जीवकों जो जो पुद्गलके भोग करनेके हैं वो राग द्वेष सहित हैं. उसमें उन्होंकों

कर्मबंधका कारण रहा है, उससें आत्मिक भोग भुक्त नहीं सकते. आत्मिक भाग भुक्तनेके अंतरायकर्मका उदयभी दूर नहीं हुवा वहांतक आत्मिक भोग नहीं भुक्त सकते हैं. संसारी जीवकों रात और दिन भोगकी इच्छायें इतनी सारी बढ गइ हैं कि-जो जो पदार्थ जगतमें हैं ते रूपी देखते हैं या सुनते हैं उसकी इच्छा होती है; परंतु उसकी प्राप्तिका अंतरायकर्म बांधा है उससें नहीं मिल सकते हैं. और जिनके अंतरायकर्मका क्षयोपशम हुवा है उनकों वो सब मिलते है. और उसका उपभोगभी लेते हैं. मगर जो वे उसपर बहुत राग रक्खै तो या बहुत रागसें भुक्तें तो उससें पुनः नया भोगांतराय कर्म बांधते हैं, उसीके लिये फिर मिलनेमें हरकत आवेगी. किस तरह आवेगी ? भोगकी वस्तु हाजिर है; मगर कृपणता आनेसें वो वस्तुका भोग नही कर सकता, या तो शोक आ पडेगा, या रोग होगा और वही चीजका उपयोग न करनेका वैद्य फुरमायगा जिससें उपयोग न कर सकेगा. या हरकोइ प्रकारका कारण आ जायगा, जिस्सें इच्छा है, वस्तु है; मगर भोगांतरायकर्मके उदयसें भुक्त न कर सकेगा. सम्यक् ज्ञानीपुरुष है वे तो ऐसे अंतराय आनेसे शोचते हैं कि पूर्वभवमें भोगांतरायकर्म बांधा है वो उदय आया है, वो समभावसें भुक्तुंगा तो कर्म न बंधेगा. ऐसी भावना प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें वे तो अंतरायकर्मकी निर्जरा करते हैं. नये नहीं बांधते. और जिनकी ऐसी दशा जाग्रत न हुइ है वे जीव विचारे दूसरोंकों भोगका उपभोग करते देखकर अनेक प्रकारके कर्म बांधते हैं ये अज्ञानताके फल हैं. इस भवमें भोग मिलते नहीं और फिर भोग भुक्तनेके विकल्प करकें नये कर्म बांधते हैं उसकों आते भवमेंभी भोग न मिलेंगे ऐसे जीवका मनुष्यभव व्यर्थ जाता है. वर्त्तमान और आगत ये दोनु भव बिगडते हैं. विकल्प करनेसें, किसीकी अदेखाइ करनेसें कुछ भोग तो नहीं मिलते हैं, और नाहक मात्र कर्म बांधकर दुर्गतिमें जानेका मोका हाथ लगता है. देखियें-रामचंद्रजी बलदेव और लक्ष्मणजी वासुदेव जैसेकोंभी भोगांतरायसें करकें वनवासमें रहना पडा, पांडवोंकोंभी वनवास भुक्तना पडा और ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिकोंभी जहांतक भोगांतराय था. वहांतक भागते हुवे फिरना पडा; वास्ते कर्म किसीकों छोडता नहीं. जो जो कर्म उदय आया वो जीवकों भुक्ते विगर छूटकाही नहीं होता समभावसेंभी भुक्तना और विकल्प करकेंभी भुक्तना, तो समभावसें भुक्ता जायगा तो नये कर्म न बंधे ज.प. फिर,

रागभावके जोरसें शिथिल अंतरायकर्म होवेगा तो सहजहीसें नष्ट हो जायगा तो इस भवमेंभी भोग प्राप्त होवेंगे और आते भवमेंभी सहजहीसें भोग मिल सकेंगे. और ज्यों ज्यों विशुद्धि होवेगी त्यों त्यों बाहर जडके भोगकी इच्छा हठ जायगी और अपने आत्मस्वभाविक भोगकी इच्छा होवेगी और उसके साधनभी करेगा-संसार छोडकर संयम लेवेगा उसमेंभी तप संयम अच्छी तरहसें पालन करके आत्मज्ञान मिला, आत्मध्यानमें प्रवर्त्तकर शुक्ल धर्म ध्यान पावेगा. उसकों पा करके सर्वथा अंतरायकर्म नाशकर्म केवलज्ञान पावेगा-वो निजगुण भोगी होवेगा तबी आत्म कल्याण होवेगा.

उपभोगांतराय सो-जो जो वस्तु बार बार भुक्तनेमें आवे वो उपभोग कहा जाता है याने मकान, दुकान, चोपाइ, पलंग, चोकी, कोंच, कुरसी, गद्दी, तकिये, तलाइ, पहनने ओढनेके वस्त्र, सुने चांदीके जेवर, हीरे, मानक, मोती, स्त्री वगैरः सब वस्तुकी प्राप्तिमें अंतरायकर्म बांधा होवे तो वो उदय आवे तब ये तमाम उपभोगके पदार्थ न मिल सकें. ये जीव अनादिके उपभोगांतरायकर्म बांधता है और भुक्तता है. जब जीव शुभ काम करता है, शुद्ध अध्यवसाय होते हैं, तब कुछ अंतरायकर्मका क्षयोपशम होता है. जब उतनी वस्तु मिलती है. धर्मकी वर्त्तना हुवे सिवा कर्म नहीं टूटता है. अंतरायकर्म काहेसें पुनः बंधा जाता है? उसके खुलासेमें यही है कि अधर्मप्रवर्त्तिसें उस अधर्ममेंभी मुख्य कोइ जीव उपभोगकी वस्तु किसीकों देता हो वो न देवे वैसी बातें करें या उसको समझावे कि 'तूं मत दे.' या देनेवालेकी हंसि-मस्करी-दिल्लगी कर, या निंदा करे, या उपभोग करता हो तो उसकों कोइ दूसरा काम सुपर्द करके वो काममें भंग करे-ऐसे कारणोंसे करनेसें या हिंसादिक काम करनेसें जिस जिस जीवके प्राण गत हुवे उसकों इस भव संबंधी उपभोगांतराय हुवा. इस तरहके काम करनेसें जीव उपभोगांतरायकर्म बांधता है. वास्ते प्रथम उपभोगांतराय न बंधा जाय वैसी जीवकों प्रवर्त्तना करनी. और पीछे पूर्वके बंधे हुवे कर्मका क्षय होवे वैसा उद्यम करना अब वो उद्यम क्या करना सो बतलाता हुं. पूर्वकालमें श्री वीतरागजीनें जो जो उद्यम किया है और वो आगमोंमें बतलाया है सोही करना यदि बन सके तो संयम लेना, वो न बन सके तो श्रावकधर्म अंगीकार करना, वो न बन सके तो सम्यक्त्व अंगीकार करना. और वोभी न बन

सके तो मार्गानुसारीपना शुरु करना. जितना धर्म अंगीकार किया जावेगा उतनाही कर्म टूटैगा.

उपभोग दो प्रकारका है याने पुद्‌गलीक और आत्मिक-इन दोनुका अंतराय है; उनमें पुद्‌गलीक मिलने तो सहल हैं; मगर आत्मिक मिलने वडे दुष्कर हैं; और उसके साधनभी मिलने बडे मुश्किल है. जबतक संसारके उपभोगकी लालसा है वहांतक आत्मिक भोग नहीं मिलनेके है; वास्ते आत्मिक धर्म क्या है वो समझकरकें जब सांसारिक उपभोगकी इच्छा साफ दूर हो जायगी तब आत्मिक भोगकी इच्छा हो आवैगी, और प्रकट करनेकाभी दिल होवेगा. उसका उद्यम-तप संयम आदिका ऐसा है कि-इच्छा तो आत्मभोगकी है; मगर संसारमें रहे है वहांतक पुद्‌गलीक और आत्मिक ये दोनु उपभोग मिलेंगे. और पुद्‌गलीक भोगकी इच्छासें ये दोनु न मिल सकेंगे-सिर्फ पुद्‌गलीकही मिल सकेंगे, और आत्मिक उपभोगका अंतराय होवैगा. अपना आत्मिकसुख छोडकर जडसुखकी इच्छा करै यही विपरीत है. फिर सांसारिक उपभोग बांधकरकें ज्यौं ज्यौं आनंदित होवै त्यौं त्यौं आत्मिक और पुद्‌गलीक ये दोनु उपभोगका अंतराय होवै; वास्ते संसारी उपभोगमें आत्मार्थी जीव आनंदित नहीं होते हैं, और वो भोगकी इच्छाभी नहीं करते हैं. पुद्‌गलीक सुखकों वो जबसें जीव समकित पाता है तबसें सुखरूप नहीं मानता है. पूर्वकी पुण्य प्रकृतिमें मिला है वो समभावसें भुक्त लेता है; मगर उसमें राग नहीं धारण करतें-इसतरहसें श्री तीर्थंकरजी वगैरः चलकरकें आत्मार्थिकों चलनेकी आज्ञा फुरमा गये हैं, उस मुजब चलना. कि जिससें प्रथम उपभोगांतरायका क्षयोपशम होवै और पीछे विशेष विशुद्धिसें क्षय होवै और केवलज्ञानादिक अपनी आत्मिक ऋद्धि प्रकट होवै उसकेही उपभोग हरहमेशां अवस्थित होवै. उपभोगांतरायकर्म सत्ता, बंध, उदयसें क्षय होवै तब सहज स्वभाविक उपभोग होवै जिसका वर्णन करनेमें कोइ शक्तिमान् नहीं हो सके.

वीर्यांतरायकर्म वही है कि जिसके प्रभावसें जीवकी अनंती वीर्यशक्ति है-वो आच्छादित हो गइ है उससें जीव आत्मवीर्य स्फुरा नहीं सकता. वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशमसें बालवीर्य और बालपंडितवीर्य ये दोनु वीर्य प्रकटते हैं. उसमें बालवीर्य प्रकटता है उसके प्रभावसें संसारमें प्रवर्त्तनेकी शक्ति आती है-संसारी काम कर सकता है. ये वीर्यका क्षयोपशमभी विचित्र प्रकारसें है-जैसें कि कोइ लडनेमें वीर्य

फैला सकता है. कोइ व्यापारमें, कोइ विषयमें, कोइ नाचमें, कोइ गानेमें और कोइ लिखने-पढने-काव्य बनाने या हुन्नरमें वीर्य स्फुरायमान कर सकता है-याने ऐसे अनेक प्रकारकी अलग अलग वीर्यशक्ति प्रकटती है. उसमें जिनके जिस बाबतमें विशेष आवरण हैं उनकों उस बाबतमें वीर्य स्फुरानेकी ताकत प्राप्त नहीं हो सकती. जिस काम संबंधी आवरण हठ गये है उस काममें शक्ति स्फुरा सकता है. अब उसमेंभी कितनेक जीव मद करते है कि-'मेरे समान कौन बलवान है? मैं दश आदमियोंकों अकेलाही मार डालुं.' ऐसा मद-गर्व करके पीछा नया वीर्यांतरायकर्म बांधता है, वो जीवकों पुनः उतनीभी वीर्यशक्ति प्रकट न होवेगी. फिर जिन जिन हुन्नरमें जिसकी शक्ति चलती है उन उन बाबतका गर्व अज्ञानीजीव करते हैं, उसके प्रभावसें वीर्यांतरायकर्म बंधा जाता है. और इसी तरह अनादिकालसें जीव वीर्यांतरायकर्म बंधेही करता है और वो कर्म भुक्तेही करता है; परंतु जब जीवकी भवस्थिति परिपक्व होती है तब मोक्ष पानेका वक्त नजदीक आता है तब अच्छी नीतिमें वर्तना-सत्संग-सुगुरु प्रमुखका योग होता है और धर्म सुननेकी योगवाइ मिलती है. वो सुननेमे जीव वीर्य स्फुराता है और ज्ञान ग्रहण करता है. वीतरागजीके ज्ञानपर प्रीति जाग्रत होती है और धर्मके सन्मुख हो रहता है. संसारमें वीर्य स्फुरायमान करनेकी बुद्धि कमती होती है तब धर्ममें बुद्धि स्फुराइ जाती है और सम्यक्गुण तथा श्रावकपनेके गुण प्रकट करनेको तत्पर होता है, तब वीर्यका क्षयोपशम होता है. सम्यक्पनेमें और श्रावकपनेमें जो जो त्याग देने लायक है वो छोड देता है, आदरणीय हो जो आत्मधर्म उसें आदरनेमें वीर्य स्फुरायमान होता है. श्रावकके बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमा अंगीकार करता है, वो तप पालन करनेमें वीर्य स्फुराता है, तपस्या प्रमुखमेंभी वीर्य स्फुराता है और क्षयोपशमसें जितना वीर्य प्रकट हुवा है तदनुसारसें धर्ममें वीर्य स्फुराता है; परंतु संयम पालन करने जैसा क्षयोपशम नहीं हुवा वहांतक संयम न ले सकता है, और न संयममें वीर्य स्फुरा सकता है. संसारमें रहा है उससें संसारमें वीर्य स्फुराता है; वास्ते उसकों बालपंडितवीर्य कहा जाता है. पंडितवीर्य जब प्रकट होता है तब तो सभी पुद्गलीक वस्तुपरसें मोह उतर जाता है और सर्वथा संसारसें निकलकर एक आत्मगुण प्रकट करनेमेंही वीर्य स्फुराता है. और निज स्वभाविक सुखमेंही वर्त्तनेका कामी बनकर सर्वथा प्रकारसें वीर्यांतराय कर्मकों क्षय

करीकें केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट करता है, उनकों वीर्यांतराय कर्म सत्ता, बंध, उदयसेंभी न रह सकता है. निजस्वभावमेंही अनंत वीर्य गुण है सो प्रकट होता है. भगवंतश्रीने इसतरह सर्वथा वीर्यांतराय कर्मका क्षय करकें आत्मिकगुण प्रकट किये और मेरा आत्मा तो वीर्यांतराय सहितही रह गया; वास्ते हे चेतन! जिस तरह भगवंतजीने वीर्यांतराय क्षय किया वोसी तरह क्षय करनेका उन्होंने बतलाया है इस लिये उस मुजब मेंभी चलुं. ऐसी भावना ल्याकरकें आत्मगुण प्रकट करनेके कारण [ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप] उत्साह सह मिलाना. उत्साहसें धर्मकरणी सफल होती है और वीर्यके आवरण क्षय होते हैं-वीर्य स्फुरायमान होता है. जैसें मुनिमहाराज उत्साहसें तप संयमादिक पालन करते हैं, तो उसके प्रभावसें अठ्ठाइस लब्धियें उत्पन्न होती हैं, वो वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें होती हैं. ऐसा योगशास्त्रमें हेमचंद्राचार्यजीने कहा है. और वैसेही प्रवचन सारोद्धारके बालावबोधमें पत्र ५२९ के अंदर अठ्ठाइस लब्धियें वीर्यके क्षयोपशमसें होती हें वो बतलाइ हैं. उसी तरह यहांपरभी बतलाता हुं:—

प्रथम-आमर्षोषधि लब्धिः-लब्धि शब्दसें शक्ति समझनी. ये लब्धि जिस मुनिकों प्रकट होती है, उसके प्रभावसें वो मुनी रोगीकों हस्त स्पर्श करे कि फौरन रोग नाश हो जावे-सर्व रोगोंकी शांति होवे.

दूसरी-विप्रोषधि लब्धि-उसके प्रभावसे मुनिमहाराजजीके मलमूत्रसेंभी रोगीके रोगोंकी शांति होती है -ये तपके प्रभावकी शक्ति है.

तीसरी-खेलौषधि लब्धि-उसके प्रभावसें मुनीके श्लेष्मसेंभी रोगीके रोग जाते हैं.

चौथी-जलौषधि लब्धि-वो जिन मुनीकों उत्पन्न हुइ है उसके प्रभावसें दांतोंका, कानोंका, नासिकाका, नेत्रका, जीभका और शरीरका जो मैल होता है वो खूशबूदार होवे और उसी मैलसें रोगीके रोग जावे.

पांचवी सर्वौषधि लब्धि-जिस लब्धिके प्रभावसें लब्धिवंतके स्पर्शित जलसें समस्त रोग शांत होवे. लब्धिवंतका स्पर्श किया हुवा पवन जिसके शरीरकों स्पर्श करे उसकेभी रोग मिट जावे, और उसी पवनसें करके विष संयुक्त अन्न, तथा विषसें करकें मूर्छित हुवे प्राणी निर्विष हो जाते हैं. उनके दर्शनसें या वचन सुननेमें रोग, विष दूर हो निरामय होते हैं. ऐसी प्रबल आत्माकी वीर्यशक्ति तपके जोरसें होती है.

छठी-संभिन्नश्रोत लब्धि-वो लब्धिवंतकों पांचों इंद्रियोंके अलग अलग विषय है; तथापि लब्धिके प्रभावसें एक इंद्रिसें करके पांचों इंद्रियोंका विषय ग्रहण कर जान सके; जैसें कि आंखें देखनेका काम करती है; मगर दूसरी चार इंद्रियोंके काम नहीं कर सकती; परंतु उस लब्धिवाला आंखसेंही पांचों इंद्रियों काम कर सकै-याने हरकोइ इंद्रिसें हरकिसी इंद्रिका काम बजा लेवै. पुनः चक्रवर्तीकी सेनामें सोरगुल मच रहा हो उसमेंसें एकही साथ जो जो जातिका शब्द होता हो वो कुल अलग अलग जान ले सकै.

सातवी-अवधिज्ञान लब्धि-इस लब्धिके प्रभावसें इंद्रियोंके बल सिवा रुपी पदार्थका ज्ञान आत्मासें कर सकते हैं-नजरसें देखनेकी जरूरत नहीं.

आठवी-ऋजुमती मनःपर्यव लब्धि-उस लब्धिसें अढाइ द्वीपमें न्यून संज्ञी पंचेंद्रिके मनमें चिंतवन किये गये भावकों सामान्यतासें जान लेवे; मगर घट चिंतवन किये गये द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसें विशेष करके न जान सकै.

नौमी-विपुलमती मनःपर्यव ज्ञान लब्धि-ये लब्धिवाला अढाइ द्वीपमें संज्ञीके मनमें चिंतवन किये हुवे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-समस्त जान सकै और उसी भवमें मुक्ति पावै.

दशवी चारण लब्धि-वो विद्याचारण, जंघाचारण लब्धि-उसके प्रभावसें आकाशमार्गमें जा सकै. उसमें विद्याचारण लब्धि विद्याके प्रभाव-बलसें प्राप्त होती है उस लब्धिवंतकों धीरे धीरे लब्धि बढती है, उसे पहिले अपने स्थानसें उडकर मानुषोत्तर पर्वतपर जावे और दूसरी वख्त उडकर आठवे नंदीश्वर द्वीपकों जावे और वहांसें पीछे लौटनेके वख्त एकही सपाटे अपने, स्थानपर आ सकें. और जंघाचारण लब्धि, तपस्या तथा शुद्ध चारित्र पालनेसें पैदा होती है-इस लब्धिवंतकों अव्वलसेंही शक्ति बढती है, वापिस लौटनेके वख्त कम हो जाती है. पहिले उतपातसें तेरहवे रुचकद्वीपमें जाता है और पीछे लौटते शक्ति कम हो जानेसें पहिले उतपातसें नंदीश्वर द्वीप तक जाता है और वहांपर विश्राम लेकर दूसरे झपाटे अपने स्थानपर आसक्ता है फिर ये लब्धिवाले मुनिराज प्रतिमाजीकों वंदना करते हैं-ऐसी बाबत भगवतीजीमें है.

ग्यारह्वी–आसी विष लब्धि–उस लब्धिके प्रभावसें शाप देवै उसी मुजब अमल होवै.

बारहवी–केवलज्ञान लब्धि–उनसें समस्त भाव जान सकै.

तेरहवी–गणधर लब्धि–श्री तीर्थंकरजी त्रीपदी फुरमावें उससें द्वादशांगीका ज्ञान हो जावे और भगवानजीकी गद्दीपर वेही विराजमान होवै.

चौदहवी–पूर्वधर लब्धि–उसके प्रभावसें पूर्वधरकी पदवी पावै.

पंद्रहवी–तीर्थंकर लब्धि–उसके प्रभावसें तीर्थंकर पदवी पावै.

सोलहवी–चक्रवर्तीनी लब्धि–उसके प्रभावसें छः खंडका स्वामी होवै.

सत्तरहवी–बलदेव लब्धि–उसके प्रभावसें बलदेव होवै.

अठारवी–वासुदेव लब्धि–उसके प्रभावसें तीन खंडका राज्य करै.

उन्नीसवी–खीराश्रवलब्धि–उस लब्धिके प्रभावसें बोला गया वचन दूधके मुवाफिक मीठा लगै. और मध्वाश्रव लब्धिके प्रभावसें मिसरीके समान वचन मीठे लगें.

बीसवी–कोष्ठ बुद्धि लब्धि–उसके प्रभावसें जो जो परोपदेशके लिये सूत्र अर्थ धारण किये हो उसकी बिस्मृति न होवै. बिगर याद कियेभी याद रहवै.

इक्कीसवी–पदानुसारिणी लब्धि–उसके प्रभावसें श्लोकका पीछेका या पेस्तरका पद जाननेमें आवे तो दूसरे तीन पदोंका ज्ञान हो जावै. जेसे अभयकुमार प्रधान भगवंतजीकों वंदन करके वापिस आते थे और एक विद्याधर आकाशमें चढकर पड जाताथा, वो देखकर अभयकुमारने पूछा कि "ऐसा क्यों होता है?" विद्याधरने जवाब दिया–"विद्याका एक पद भूल गया हुं याद नहीं आता–इससें नहीं उड सकता हुं" अभयकुमारने कहा–"तुम विद्याका पाठ बोल बतलाओ" विद्याधर पाठ बोला कि कम रहताथा सोही पद आपने पूर्ण कर दिया. आप पहिले कुछभी पढे हुवेभी न थे; तोभी पद पूर्ण इस लब्धिके जरियेसें किया, और विद्याधर आकाशमें चला गया.

बाइसवी–बीजबुद्धि लब्धि–इसके प्रभावसें–जसें एक बीज बोया जाता है और बहुत कण पैदा होते है, वैसें ज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसें एक अर्थरूप बीजकों सुन लेनेसें बहुतसे अर्थोंका ज्ञान हो जाय. जैसे गणधरमहाराजकों भगवंतजीने त्रिपदी कह दी उससें उत्पात,–व्यय–ध्रुव ये तीन पद सुनतेही सारी द्वादशांगीका ज्ञान हुवा.

वैसें ज्ञान होवै. पदानुसारिणीमें एक पद सुनेसें दूसरे पदोंका और बीजबुद्धिवालेकों एक पदार्थका ज्ञान होनेसें बहुतसे पदार्थोंका ज्ञान हो सके यह तफावत है.

तेइसवी-तेजोलेश्या लब्धि-उसके प्रभावसें किसी जीवके उपर खेद आ जाय और तेजोलेश्या छोडे तो स्हामनेवाले जीवको जलाकर खाक कर देवै.

चाइसवी-आहारक लब्धि-उसके प्रभावसें आहारक शरीर मुंडे हाथका (पोने हाथका ?) शरीर करकें श्री सीमंधिरस्वामीके पास या विचरते हुवे तीर्थंकरजीके पास भेज सकै. और वो इतनी ताकीदीसें जवाब ला सके कि व्याख्यान करते हो उसमें संदेह पैदा हो तो वो शरीर भगवानजीकों खुलासा पूछकर फौरन आकर कह दे शंका निर्वृत्तन करै.

पचीसवी-शीतलेश्या लब्धि-उसके प्रभावसें किसीने तेजोलेश्या भेज दी हो तो उसपर (शीतलेश्या) छोडनेसें शीतलता कर होवे और तेजोलेश्या हत हो जावै.

छाइसवी-वैक्रिय लब्धि-उसके प्रभावसें आपका शरीर छोटा वडा जैसा करना हो वैसा कर सकै. देवके भवमें ये लब्धि भव प्रत्ययी होवै, और मुनिकों तप, चारित्रके प्रभावसें होती हैं.

सत्ताइसवी-अक्षिण माहानसी लब्धि-उनके प्रतापसें अल्प वस्तु हो जिसमें एक मनुष्य भोजन कर तृप्त हो सके उतनेही पदार्थमें हजारोंकों जिमा सकै-जैसें गोतमस्वामीजीने एक पडघेभर क्षीरमें पंद्रहसो तापसोंकों जिमाये.

अट्ठाइवी-पुलाक लब्धि-उसके जरियेसें कोइ संघका कार्य होवे तो चक्रवर्तीकों भी चूर्ण कर देवै.

मुख्यातासें ये अट्ठाइसें लब्धि कही गइ हैं; मगर तपके प्रभावसें औरभी लब्धियें प्राप्त होती हैं-याने प्रकृष्ट ज्ञानावर्णी वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें करकें समस्त श्रुत समूह अंत मुहूर्त्तमें अवगाह लेवै उसके अंदर जिनका मन हो उसकों मनोबल लब्धि कही जावे इसी तरह अंतरमुहूर्त्तमें सर्व श्रुतका विचार करनेकी शक्तिसें करकें जो सहित होवै और पद वचन अलंकार सहित वचनको उंचे स्वरसें निरंतर बोलता रहवै तथापि स्वर न बैठे वो वचनबल लब्धि कही जावे. फिर वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें प्रकट हुवा बल याने जेसें बाहुबलजी वर्ष दिन तक काउस्सग्गमें रहे तोभी शक्ति क्षय न हुइ-शरीर थक न गया, इसी प्रकारसें ये लब्धिवंत कायबल

लब्धिके प्रभावसें थक न जाय वो कायबल लब्धि कहा जावे. पुनः बहुत कर्मके क्षयोपशमसें प्रज्ञाको प्रकर्ष होवै जिस्सें चौदह पूर्व पढे विगरभी कठीन विचारोंके अंदर निपुण बुद्धि होवै और उसको यथार्थ विचार होवे इत्यादि बहुत प्रकारकी लब्धियें हैं, और हेमचंद्राचार्यजीने स्वकृत योगशास्त्रमें दर्शाय दी हैं. इस समयमें पाश्चिमात्य प्रदेश-इग्लॅंड-अमेरीका-जर्मनीमें बहुतसे यूरोपियन विद्वान शोधक हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र पढते हैं और उस शास्त्रके कर्त्ताको सर्वज्ञका बिरुद देते हैं येभी ज्ञानका क्षयोपशम है. एक समय हेमचंद्राचार्यजी राजसभामें तीन पटले धर करकें उसपर बिराजमान हो करकें धर्मदेशना देते थे और दरम्यान कुमारपालराजर्षिका पधारना हुवा तब तीन पटलेको दूर हठा देकर अद्धर बैठ धर्मोपदेश देना जारी रख्खा-येभी योगसाधनकी शक्ति है. ऐसी अनेक प्रकारकी शक्तियें वीर्यांतरायके क्षयोपशमसें होती हैं, और वे शक्तियें आत्महितके कार्यमें उपयोगमें लेवें. उपकारार्थ या शासनोन्नतिके अर्थ स्फुराते हैं. पूर्ण वीर्यांतरायका क्षय होता है. तब पूर्ण वीर्य प्रकटता है उसकों केवलज्ञान प्रकटता है, जिस्सें करकें तमाम लोकके भाव एक समयमें जानते हैं. अतीत-अनागत-वर्त्तमानके भावभी जानते हैं. ऐसी आत्माकी पूर्ण शक्ति जाग्रत होती है. वास्ते हरएक प्रकारसें वीर्यांतरायका क्षयोपशम या क्षय होवै वैसा उद्यम करना. वीर्यकी रीति ऐसी है कि अभ्यास करने करनेसें वीर्य स्फुरायमान होता है इस लिये वीर्य स्फुरानेका हरहमेशां अभ्यास करना. एक मनुष्यके वहां धेनु विहाइ-वछडा दिया. उसी वछडेकों उसी रोज उठाकर एक वक्त मजलेपर ले गया याने इसी तरह उस वछडेकों उठा उठाकर माल-मजलेपर चढ जाने लगा, और इसी अभ्याससें वो वछडा बडा होकर बहेल हो गया तोभी उसको उठाकरकें मजलेपर चढ जाताथा. इसी तरहसें अभ्यास करनेसें मनोबळ-वचनबळ-कायबळ बढता है. तप, संयम और ज्ञानका हमेशां अभ्यास करना कि उससें वीर्यांतरायका क्षयोपशम होवेगा और वीर्य वृद्धि पावेगा. यदि जीव सांसारिक कार्यमें वीर्य स्फुरायगा और धर्मके कार्यमें प्रमाद करैगा तो नया वीर्यांतरायकर्म बांधेगा और इस भवमें जितना वीर्य-शक्ति है उतनाभी आते भवमें न मिल सकैगा. और अनादिकालका वीर्यांतराय बंधा हुवा है उसीसेंही आत्मगुण प्रकट नहीं होते हैं, वो बडा दोष है.

इस तरह पांच प्रकारके अंतरायकर्म भगवंतजीने क्षय करके आपके आत्मगुण प्रकट किये हैं, और अपने जीवने वैसा उद्यम न किया उससें अनादिका संसारमें

रुलता है-और जन्म मरणके दुःख भुक्तता है उन दुःखसें मुक्त होनेके वास्ते भगवंतजीके हुकम मुजब चलना कि जिस्सें आत्माके गुण प्रकट होवै-इस तरह पांच दूषण बतलाये.

छट्ठा हास्य नामक दूषण हैं, उस दोषसेंभी भगवान्श्री रहित हैं. और संसारी जीव इस दूषणसें करकें सहित है हास्य दोषसें बनसें अनादिका जीव ससारमें भटकता है और जब तक हास्यसें मुक्त न होगा तब तक आत्माका काम न होवेगा. हास्यसें संसारमेंभी कितनेक है वो सब मनुष्य जानतेही हैं; तोभी जाग्रत करनेके लिये लिखता हुं कि-कितनीक दफे हास्य-दिल्लगी करनेसें या हंसी करनेसे-हंसी सें आपके जावडे दुःखने लगते हैं, हंसीकों रोकना चाहे तो नहीं रुकी जाती है. फिर जिसकी हंसी-मस्करी करै वो मनुष्य उस वक्त न बोले याने मुंहपर साफ साफ न कह दे मगर अंतःकरणमें उसकों कितना दुःख होता है! वो जो मनुष्य आप विचार करै कि कोइ मेरी हंसी करता है उस वक्त मुझकों अंतरंगमें कितना दुःख होता है? इसी तरह स्हामनेवालेकोंभी दुःख होता होगा: वास्ते दूसरे जीवकों दुःख-कलेश देना उससें जियादे बुराइ कौनसी है! फिर वो मनुष्य जोरदार हो तो फिसाद खडा होकर मारामारी या गालागाली होवै उससें नया वैर बंधा जाय-ये प्रत्यक्ष दुःख है. फिर जितनी वक्त हास्यमें प्रवर्त्ते उतनी वक्त सात आठ कर्मोका बंध होवै सो उदय आवै तब उन्होंके दुःख भुक्तने पडते हैं. जैसें कि-"कुमारपाल भूपालेंद्रकी भगिनी-प्रेम अपने पतिके साथ चोपटबाजी खेलतीथी. उसमें सोगठी मारनेके वक्त विधर्मीपतिने कहा कि-'मार. कुमारपालके मुंड-साधुकों.' यह शुकन सुनतेही उसकी धर्मपत्नि नाराज हो गइ और उसी वक्त रिसाकर भाइके घर चल गइ. और वो हकीकत कुमारपालकों कह सुनाइ, उससें अपने साधु मुनीराजजीकी हांसी-हीलना करी जानकर बडा गुस्सा आया, और पण-क्रिया कि-'जिस जबानसें मेरे गुरुकी हांसी की है उसी जीभकों नौ चलुं जब उसकों छोडूं.' ऐसा निश्चय करकें बेन्होइके साथ युद्ध किया और उसकों पराजित किया. अंतमें प्रधानोंनें कुमारपाल महाराजाकों युक्तिसे-दयाभावसें समझाकर जीभ नोंच लेनेका मोकूफ करवा कि पहननेके जामेपर जीभकी आकृति पिछले भागपर रखनेका ठहराव करवाया और वैसाही करनेसें उसकों छोड दिया." दिखीएं हांसीके कैसे फल है!

और इस सिवाभी हांसी-दिल्लगीसें बहुत नुकसान हैं. जिसकों ठट्ठाबाजी-दिल्लगी-खोरी-हांसी करनेकी आदत होती है उसकों लोगभी दिल्लगीबाज-मस्करा कहते हैं. फिर आत्मस्वरूपका विचार करनेसें हांसी आत्मगुणसें विपरीत प्रवृत्ति है. ये प्रवृत्तिमें वर्त्तनेसें आत्मा मलीन होता है. पुनः आत्मा निर्मल करनेके कारण व्रतादिकमेंभी इस्सें अनर्थ दंड व्रतके दूषण लगते हैं; वास्ते ज्यों बन सके त्यों आत्मा निर्मल करनेका इरादा रखनेवालोंकों हांसीसें मुक्त-दूर रहना कि जिससें आत्म निर्मल होनेका उद्यम होवे. सब हास्य मोहनीका क्षय भगवंतजीने किया है उस दशाकों पा सकें वैसा उद्यम करना.

छट्ठा रति नामक दूषण याने हरएक पुद्गलीक पदार्थके अंदर जो अनुकूल मिले उसमें राजी होना. प्रतिकूल मिले उसमें दिलगीर होना ऐसा जडकी संगतिसें जीवकों अनादिसें अभ्यास है, उसके जोरसें जीव उसी तरह वर्त्तन रखता है और कर्मबंधन करता है. और उसी कर्मबंधनसें अनादिका जीव जन्ममरणके दुःख भुक्तता है. जो जो पदार्थकों जीव अनुकूल मानता है वही अज्ञानता है; कारण कि जो जो जडपदार्थ है सो विनाशी है और आत्मा अविनाशी है-वो आत्मा और जड दोनु भिन्न पदार्थ हुवे, तो भिन्न पदार्थकों अपना मान लेना यही मूढता है फिर जो वस्तु देखकर रति-आनंद करे छे वो वस्तु हरहमेशां कायम रहनेकी नहीं. कितनेक खानेके पदार्थ है वे खानेमें रति करता है; मगर वही पदार्थसें पुद्गलकों उपाधि होती है. और रोग होते हैं. फिर कर्मबंधन होवे सो तो अलग. इसी वजरसें गरेना-आभूषण पहन करभी खुशी होना; मगर शरीरकों भार लगता है उसका विचार नहीं, और जोखम समालना पडे या जीका जोखम होनेका मोका हाथ लगे वो तो फिर अलग. कुटुंबके संयोगसें राजी होता है; मगर वो मनुष्यकी मरजीसें विरुद्ध कुछ वर्त्तन हुवा तो वोही शत्रुपना बतलावैगा, तो ऐसे अनित्य स्नेहसें राजी होना वो मूढता नहीं तो फिर क्या है? धन है उसकों देखकर राजी होता है; परंतु ये धन कितने समय तक कायम रहवैगा, उसका लक्ष देगा वो रति नहीं होवैगा; क्यों कि अपना धन कितनी वक्त आया और चला गया. कभी किसी मनुष्यका अभी न गया हो तो दूसरे कितनोंका गया नजर आयगा; वास्ते नाशवंत है ये स्वभावपर लक्ष देना चाहिये. अस्थिर पदार्थपर राजी होवैगा और वो जब नष्ट हो जायगा तब

दिलगीर होनाही पडैगा. मगर धनकी संचलतापर लक्ष देवैगा तो धन आनेसें राजी और जानेसें दिलगीर न होवैगा. धनकों अपन छोडकर जायेंगे-या धन अपनकों छोडकर चला जावैगा-ये धनका स्वभाव है. इस लिये जो ज्ञानी है वे तो धनका त्याग करकें संयम लेते हैं और धन कुटुंबादि पदार्थोंको जलांजलि देते हैं-शरीरमें रहते हैं; परंतु शरीरकों मेरा नहीं जानते हैं, उससें शरीरके सुख दुःखमें रति अरति नहीं करते हैं एक अपने आत्मतत्त्वमें रमण कर रति मोहनीका नाश करकें स्वात्मगुण प्रकट करते हैं. और क्रमशः सिद्ध सुख भुक्तते हैं. आत्मार्थीकोंभी इसी तरह रति मोहनीका नाश करना यही कल्याणकारी है.

सातवा अरति मोहनी दूषण है वोभी रतिके मुजबही है; वास्ते इस जगहपर अलग विस्तार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है. जैसें रतिके लिये है वैसेंही अरतिके लिये समझकर अरतिकाभी त्याग करना. जो जो अरतिके कारण है वो जड पदार्थ हैं और पूर्व भवमें विषय कषाय और अरतिमें वर्त्तनेसेंही कर्म बंधे हैं उसीसें अरतिके कारण उत्पन्न हुवे हैं अैसें समझना. ज्ञानीपुरुष तो कर्मका स्वरूप जान गये हैं उससें समझते है कि-'पूर्व भवमें अशुभ कर्म बंध है उसके लिये अरतिके कारण आ मिले हैं. फिर विकल्प करुंगा तो इससेंभी कठीन कर्मबंध जायेंगे और अरति पैदा होवैगी जैसें किसीका कर्जह होवै, वो न देवै तो बेशक लहेनदार फारियाद करेगा, तो फिर विशेष दुःख भुक्तना पडैगा. वास्ते जो अशाता वगैरः दुःखके कारण उत्पन्न हुवे हैं वो समभावसें भुक्त लेना, अैसा शोच करकें समभावमें रहते हैं, और उससें विशेष विशुद्धि होती है, और ए रतिमोहनीका नाश कर अपना आत्मस्वभाविक गुण प्रकट करते हैं-वही भगवंत होते है-याने इसी तरहसेंही हुवे हैं. जिस तरह भगवंतजी चले उसी तरह आत्मार्थी पुरुष चलेंगे, तो वेभी भगवंत हो जावेंगे, और अरति नाश हो जावैगी.

आठवा भयनामक दूषण है. वो भय सात प्रकारकें हैं याने इह लोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीवीका भय, मरण भय, और अपकीर्ति भय ये सात हैं. संसारी जीव इन सात भयके मारेही सदा भयभीत रहता है. और परमात्माश्रीजीने तो अपने आत्माका स्वरूप जान लिया है कि आत्मा अरूपी है-आत्माका विनाश होनेवालाही नहीं, उससें कोइ प्रकारका भय रखनाही नहीं, उसी

लियेंही अपना आत्मपद स्वाधीन कीया है. संसारी जीवं सात तरहका भय रखते हैं उसका अब विवेचन करता हुं.

इह लोक भय सो-जो जीव जिस गतिमें हो उसी गतिके दूसरे जीवोंका भय रखना-याने मनुष्य दूसरे मनुष्यका डर रक्खे, कि दूसरे मनुष्य मुझकों मारेंगे, या मार डालेंगे, या झहर खिला-लगा देवैगे, या शस्त्र अस्त्र मारेंगे, या मंत्रादिसें मारेंगे, या मुझकों रोग पैदा होवैगा, ऐसे भय रक्खै वो इहलोक भय कहाजाता है. यह भय जीव अज्ञानतासें रखता है. जो ज्ञान हुवा होवै तो समझा जाय कि आत्मा अविनाशि है, विनाश होवैगा तो पुद्गलका होवैगा, वो पुद्गल मेरा नहीं है, तो मेरे किस प्रकारका या किस लिये भय रखना चाहियें? पुद्गलकी स्थिति, विनाशभी कर्मोदय मुजब होनेका है; वास्ते भय क्यौं रखना. संसारमेंभी जो मनुष्य भयभीत होता है उससें उद्यम नहीं हो सकता और भयके कारण दूर नहीं कर सकता. परंतु जिसका वीर्य स्फुरायमान हुवा है वो वीर्यके बलसें हीम्मत रखकर अपना आत्मधर्म साध सकता है; वास्ते उद्यम करकें ज्यौं बन सकै त्यौं भय संज्ञा दूर कर देनी; क्योंकि भय उद्यमसेंही दूर होता है. आठ दृष्टिमें दूसरी दृष्टि प्रकट होती है तब चार संज्ञायोंका विष्कंभ होता है-याने स्थंभितपना हो जाता है. ऐसा योग दृष्टिसमुच्चयमें हरिभद्रसूरिजी कहते हैं, इस लिये भयकी शांति होवै वैसें करना. क्रमशः ज्यौं ज्यौं विशुद्धि होवैगी त्यौं त्यौं सर्व प्रकारसें भयरहित होवैगा और दूषण दूर होवैगा.

परलोक भय सो-तीर्यंचका और देवताका भय धारण कर फिकर करै याने शायद मुझकों विच्छु-सांप-शेर और व्यंतरादि देव पीडा करैं! इस भयका स्वरूप उपर मुजबही आत्मार्थी पुरुष चिंतवन कर भयरहित हो निज निर्भय गुण उत्पन्न करते हैं.

आदान भय सो-अपने घरमें जो जो पदार्थ याने धन-आभूषण-वस्त्रादिक वस्तुयें हैं, वो वस्तुकों शायद कोइ ले जावेगा! चोर आकर चोर ले जावेगा? या विनाश पावैगा?, या किसीकों व्याजसें धीरुंगा तो रुपै वापिस देवैगा या नहीं? या व्यापारमें नुकशान जायगा? इस तरहके भयकी चिंता करै. ऐसा भय रखना अगर उसका चितवन करना उसीकों ज्ञानीपुरुष आर्त्त या रौद्र ध्यान कहते हैं. और ये ध्यानसें जीव नरक तीर्यंचकी गति पाता है. इसी वास्ते ज्ञानीपुरुष होवें सो शोचते

है कि-' ये वस्तु मेरी नहीं. कर्मके संयोगसें अज्ञानदशा हुइ है उस अज्ञानदशासें करकें ये वस्तुपर ममत्वभाव हुवा है वो ममत्वभावसें भय हुवा करता है वो मेरे करने योग्य नहीं ' ऐसा चिंतवन कर भयसंज्ञा दूर करता है कि-' ये धनादि वस्तुका स्वभाव अस्थिर है. जहांतक पुन्य बलवान् है वहांतक जानेका नहीं, और जब पापका उदय हो आवेगा तब बडे बंदेवस्तसें रख्खा हुवा धनभी नहीं रहता है; वास्ते जीव ! किस लिये ममत्वभाव करता है. ' इस मुजब चिंतन करकें भयसंज्ञासें निर्भय हो जाता है. विशेष ज्ञान होवे तब संसारका त्याग करता है, संयम लेता है, उस लिये ऐसी वस्तु छोड देनी कि भयथी दूर हो जायगा. आपके पास धर्मोपकरण या पुस्तक होते हैं उसकाभी भय नहीं रखते हैं. और अपने आत्माकों भावनेसें सर्वथा भयसंज्ञाका नाश करते है और आत्माके गुण संपूर्णतासें प्रकट करते हैं.

अकस्मात् भय सो-बाह्य कारण सिवा अचानक मनमें भयभ्रांत होवै-डर लगे ये कर्मोदय प्रभावसें हैं. ऐसे भयभी कर्मकी बाहुल्यतासें होते हैं. जिसकों आत्मगुण प्रकट हुवे हैं उसकों ऐसे भय नहीं लगते हैं.

आजीविका भय सो-समवायांगजीमें कहा है और ठाणांगजीमें वेदना भय कहा है वास्ते वो भयका स्वरूप लिखता हुं:-अपणा उदरपोषण संबंधी जीव भय करे रहे हैं; मगर इस दुनियामें धनवान और गरीब-मोताज कोइभी अन्न खाये विगर नहीं रहता है. आजीविका पूर्ण होना वो तो पूर्वकर्मानुसार बननेका है; परंतु उस कर्मका ज्ञान नहीं उससें फिक्र करता है. हरएक कार्य उद्यमसें बनते हैं; वास्ते उद्यम करना. मगर भय रखना ये मूढता है. और ये मूढतासें करकें काम करनेका हो सो नहीं कर सकता और नये नये विकल्प कर कर्मबंधन करता है. फिर धनवान् पुरुष हैं उनकों कुछ आजीविकाकी कसर नहीं; तोभी आगामिक समय संबंधी विचित्र प्रकारकी चिंता किये करता है, वारिशकी खींच हुइ है तो क्या खायेंगे ? वारिश न आया तो क्या खायेंगे ? रसोइया भाग गया तो क्या खायेंगे ? कोइ चीज महेंगी हुइ तो क्या खायेंगे ? ऐसे विचित्र प्रकारका आजीविकाके संबंधी भय धारण करकें कर्म बंधता है. धनवान मनुष्यकों बदवक्तमें और अच्छी वक्तमें धनसें करकें सब चीज बन जाती है; तथापि अज्ञानताके लिये भयभीत रहता है. ज्ञानवंत पुरुषोंकों तो थोडा ज्ञान हुवा है; मगर स्वपर ज्ञान हुवा है. उस ज्ञानके प्रभावसें प्रथम तो क-

र्मकी प्रतीति है उससें उन्होंकों भय नहीं रहता है. दूसरी तरह अशुभ कर्मका उदय हुवा उससें आजीविकामें हरकत पडती है; तो विचार करै कि पूर्वसमयमें कर्म बँधे है उनके फल हैं. विकल्प करनेसें क्या फायदा? ऐसा शोचकर भय नहीं रखते, और वन सके सो उद्यम करते हैं. और अतिशयसें विशुद्धि है वो तो बिलकुल भय नहीं रखते हैं. अपनी आत्मभवना विचारते हैं. जैसें ऋषभदेवस्वामीकों वर्ष दिवस तक आहार मिला नहीं तोभी उसके लिये विकल्प न हुवा. उसके स्मरणार्थ वरषी तप प्रकट हुवा. और अंतमें भयमोहनी क्षय करकें निर्भय गुण प्रकट किये. उसी मुताबिक आत्मार्थी पुरुषोंकोंभी करना, कि भयमोहनी नाश हो जावै अब वेदनीभय सो-रोग आनेसें दुःख सहन न हो सकै उस्सें अनादिका जो भय है वो प्रकट हो आवै कि शायद रोग न वढ जाय! रोग न हो तो रोग आनेका भय रहवै. ऐसे भयके बदलेमें तपस्या प्रमुख नहीं करता है. तपस्या करनेसें नया वेदनीकर्म उदय आनेका हो वो क्षय हो जाता है, और उस बदल उलटे विचार करै वो मूढताका लक्षण है. आत्मार्थी जीव तो वेदनासें डरतेही नहीं. वेदना होवै तो शोचते है कि पूर्वकालमें जो जो वेदनीकर्म बांधा है वो ऐसें ज्ञानके [बोधके] वक्तमें उदय आयेगे तो सम-भावसें भुक्तेंगे, और बहुत काल दुःख भुक्तनेका वो थोडे कालमें भुक्ता जायगा-नया कर्मबंध न होवैगा. पुनः विशेष विशुद्धिवंत तो जानते हैं कि वेदना होती है वो शरीरकों होती है-मेरा आत्माकों नहीं होती. इसी तरह महावीरस्वामीजीकों सख्त उपसर्ग संगमदेवने और व्यंतरीने किया; परंतु किंचित्भी भय धारण न किया, और वेदनाका दुःखभी ध्यानमें न लिया, तो अपने आत्माका गुण केवलज्ञानगुण प्रकट किया. इसी तरह जिसकों अपने आत्माका कल्याण करना है उसकोंभी महा-वीरस्वामीजीका मार्ग धारण कर लैना कि कोइ तरहका भय रहवै नहीं और निर्भयदशा प्रकटै.

छट्ठा मरणभय सो तो-जगजाहिर है. अनादिकालकी मरण होनेकी संज्ञा चली आती है, उसके प्रभावसें देवताभी आते भवका छः महीनें पेस्तर बंध करै तबसें कल्पांत करै. मनुष्यकी समजदार उम्मर होवै तबसें मरणभयकी विचारणा करता है. ज्ञानीपुरुष तो अंशमात्रभी मरणका भय नहीं करते; कारण कि आत्मा मरता नहीं. मरता है सो पुद्गल है. तो जितनी आयुकी स्थिति है वहांतक यह शरीरमें रहना

है, तो भय किस लिये करना कदापी संज्ञासें चित्तमें आवै तो शोचैं कि आयुकी चंचलता है, तो धर्मसाधन करनेमें प्रमाद न करना; क्यौं कि धर्मसाधन मोक्ष संबंधी करना है वो तो मनुष्यकी गतिमें हो सकता है. दुसरी गतिमें ऐसा साधन होनेका नहीं; वास्ते ज्यों बनै त्यौं अप्रमादपणेसें धर्म करनेमें तत्पर रहना. आते कलपर क-रनेका विचार करैगा; मगर आते कल क्या होगा वो खबर नहीं है; इस लिये जैसें उत्तराध्ययनजीमें कहा है कि-'हे गौतम! समय मात्र प्रमाद न कर.' ये उपदेश धारण कर कि जिस तरह आत्माकी निर्मलता होवें वैसा उद्यम करना. और संयम साधतें शरीर नरम पडता है या देवादिकके उपसर्ग होवे हैं तोभी मरणका भय नहीं करते हैं. आत्माकों सोहाते हुवे विचरते हैं. परिसहकी फौजसें नहीं डरते, आप अ-पने ध्यानमें तत्पर रहते हैं, जिसी तरह आत्मार्थीयोंकों रहना योग्य है. भगवंतजी ये भय क्षय करकें सिद्धि सुखकों पाये है और उन्होंकी जैसी आज्ञा है उसी मुजब चलेंगे तो मरणका भय नाश होवेगा.

सातवा अपकीर्ति भय सो-यक्कि उपरांत कीर्तिकी इच्छा करै और काम अ-पकीर्तिके करै. कीर्ति तो क्रियासें होती है. जो लुच्चाइ, चोट्टाइ, चोरी, जूंठ बोलना, परदारागमन, परनिंदा, परकों दुःख देना, पिराया खा जाना, व्योपारमें अन्यायसें बोलना, वांका बोलना, ये कृत्य न करै. और दुःखीकों सुखी करना, परकार्यमें तत्पर रहना, द्रव्यानुसार दान देना, कितनेक जन तो ऐसा दान देवें कि आप न खावै; मगर दूसरोंकों देनेमें तत्पर रहवें, ऐसी वर्त्तना करै तो सहजहीमें कीर्ति होवै. मगर धन होनेपरभी भिखारी पोकार कर मरै तोभी बिलकुल दान न देवे और अ-पकीर्तिका भय करै. अपकीर्तिका भय रखकर बुरी विचारणा न करै तो उत्तम है. अज्ञानवासें अपकीर्ति होवै वैसाही कारण करै; परंतु ज्ञानीजन तो अपने आत्माके दानादिक गुण है वो प्रकट करनेमें उद्यमवंत हुवे हैं, कितनेक गुण प्रकट हुवे हैं उसमेंभी कीर्तिकी इच्छा नहीं और अपकीर्तिका भय नहीं. इसी तरह उत्तमपुरुष किसी जीवकों दुःख होवै वैसी वर्त्तना नही करते, उसी तरह किसी जीवकों दुःख होवै वैसी वर्त्तना न करनी कि सहजहीमें अपकीर्तिका भय दूर हो जावैगा. इस तरह सप्त भयको ध्यानमें लेकरके जैसें महात्मापुरुषोंने निर्भयदशा प्रकट की वैसें करना. आ-त्मगुण प्रकट किया कि वो गुण जानेका भय रखना न पडेगा, वो नीत्य गुण है.

अनित्यगुणका मोह है वहांतक जीवकों भय रहवैगा; वास्ते त्याग करना कि सहजहीसें भय दूर हो जायगा.

दशवा शोक नामक दूषण-सो संसारी जीवोंकों हरदम लग रहा है. कुटुंबमेंसें कोइ बीमार हो आवे या मरजावे तो मनुष्य इतना सारा शोक करते है कि कितनेक तो अत्यंत शोकके मारे मरजाते हैं. या बीमार हो जाते हैं, शरीर सुखा देते हैं, कितनीक स्त्रीओंकी छातीमेंसें (कूटनेके लिये छाती फट जाती है उससें) लोहु निकलता है-चांदी पड जाती है, किसीकी छातीमें इसी सबबसें दर्द होता है-ऐसी उपाधि [शरीरकों] होती है. उस तर्फ लक्ष न देकर रोना पीटना शुरुही रखते हैं. ये फल पानेका कारण अज्ञानता है. फिर बाजारकी अंदर-शरियाममार्गमें (जाहिर राहस्तेपर) भी इसी तरह रोना पीटना करके दूसरेके जीवकोंभी दुःख देखकर दिलगीरी होती हैं. अच्छे घरानेकी औरतेंभी बेमुलाहजेसें-बेहुदी सिकल बनाकर खुल्लेसिनेसें खडी रहकर कूटती पीटती रोती चिल्लाती है येभी बेइज्जतकी बात है. अभीके राज्यकर्त्ताकोंभी ये बात पसंद नहीं हैं. राज्यद्वारी-अधिकारी-अफसर-विद्वानवर्गकोंभी बिलकुल ये रिवाज वाहियात मालूम होता है; तौभी यह काम जारी रखते हैं. कितनेक मनुष्य तो युं मानते है कि अपन कूट-पीट-चिल्लाकर न रोवेंगे तो लोगमें अपना बुरा कहा जायगा वास्ते शोभा दिखलानेके लिये याने मरनेवालेके ऊपर बडा प्यार, या जिसके घर मैयत-मरण हुवा हो उसके साथ गाढ संबंध दिखलानेके लिये जोरसें कूद कूद करके लंबे हाथ कर चिल्लाके रोते पीटते हैं और शोभा कायम रही मानते हैं-यह कितनी भारी मूर्खता है ? इन बातोंसें इस लोकमेंभी नुकसान हांसिल होता है और परलोकमें पापके लिये नरक तिर्यंचगते पाते हैं. तो जब इस कामसें उभय भव भ्रष्ट हो बहुत दुःख उठाने पडते है तब क्यों नहीं छोडना चाहिये ? ज्ञानी जन तो इतना शोच करते है कि जिस चीजका संयोग है उसका वियोगभी है. यातो अपन कुटुंब छोडकर या कुटुंब अपनकों छोडकर जाय इन दोमेंसें एक रीतिसें तो वियोग होगाही होगा. जो जो वस्तुका जो जो स्वभाव है वो ध्यानमें लेकर बिलकुल शोक नहीं करते हैं. धन-गुमास्ता-वस्त्र-मकान और ऐसीही इच्छित प्रिय वस्तु जानेसें शोक करते है उसमें शोचनेका है कि-इच्छित वस्तु पूर्वपुन्यसें स्थिर रहती है, पुन्य पूर्ण हुवा कि वियोग होता है पीछे गत वस्तुका शोक करनेसें कुछ फायदा

नहीं है. कितनेक मनुष्य अपमान होनेसें शोकवंत होते हैं; परंतु अपमान तो न करने योग्य काम या न बोलने योग्य बोलसें होता है, या पुन्यकी न्यूनतासें होता है; वास्ते वो काम छोड देवै तो अपमान न होवेगा. शोक करनेसें क्या फायदा? तोभी शोक करता है. इसी मुजब जिन जिन बाबतका शोक करता है उन उन बाबतोंसें पापकर्म बंधाते है. शोकसें शरीर नरम होता है, बुद्धिकीभी हानि होती है और शोकके कारण दूर करनेकाभी उद्यम नहीं हो सकता, उससें विशेष शोक पैदा होता है. इसतरह प्रत्यक्षतासेंभी अज्ञानीजन अज्ञताके मारे नहीं शोचते हैं. ज्ञानीजनकों तो शोकके कारण उत्पन्न होते है तो चितवन करते है कि मेरे आत्माके सिवा दूसरा मेरा पदार्थ हैही नहीं. जो पुद्गलीक वस्तुयें है वो तो संयोग वियोगसें करकें युक्त हैं तो मेरे किस लिये शोक करना? जो जो बनता है वो पूर्व कर्मबंधनानुसार बनता है; वास्ते जो जो कर्मउदय आये है वो समभावसें भुक्तने चाहियें कि जिस्से वो कर्मकी निर्जरा होवै और आत्माभी निर्मल होवै. ऐसी दशा बन जाय तो शोक [जीवकों] रहवैही नहीं या होवैही नहीं. भगवंतजी तो आत्मगुण सिवा दूसरी परभावदशा जो जो जडभावकी वर्त्ते उसमें राग द्वेष करतेही नहीं. उन्होंनें तो शोकमोहनीकर्मका नाश करकें आपके आत्मगुण प्रकट किये हैं. लाजिम है कि जिसको आत्मगुण प्रकट करनेकी दर्कार हो तो उसकों प्रभुजीकी मिसाल चलना तो बेशक आत्मगुण प्रकट होवै.

ग्यारहवा दुगंछा दूषण सो—कोइ खुशबुवाली चीज देखकर प्रसन्न होवै और बदबुवाली चीज देख दिलगीर होवै. अगर तो जो जो पदार्थ आपकों नापसंद हो वो पदार्थ दुगंछनीक लगै. यह प्रकृति जीवकों अनादिसें बनी हुइ है; परंतु ज्ञानवंत तो जिस वस्तुका जो स्वभाव है वो समझ लिया है इससें कोइभी वस्तुकी दुगंछा नहीं करते हैं. जो जो कारण मिलते है वो पूर्वकर्मोदय मुवाफिक मिलते हैं, उससें समभावमें रहकर उसके विकल्प नहीं करते. उनके मनसें तो जो जडपदार्थ आत्माकों घात करते हैं उनके उपर सहजसें दुगंछा होती है. और अज्ञानी जीव जिनकों जो पसंद पडै उसमें वो राजी खुसी होता है; परंतु विषयादिकके कटु फल ध्यानमें नही लेता है कि नरकमें इसके कितने और कैसे दुःख उठाने पडेंगे? और जन्ममरणकेभी कैसे दुःखें उठाने पडेंगे? देखिये, जिसकों तुम देखकर दुगंछा करते हो उनको भंगी शिरपर उठाके जहां फेंकनेकी जगह हो वहां फेंकते हैं. ये काम किस लिये करना

पडता है ? पिछले जन्ममें न करने योग्य काम किये उसके फल हैं. तो अपनकोंभी विषय सेवन न करनेके लिये भगवंतजीने फुरमाया है कि-' जो विषय भुक्तेंगे उनकों ऐसे दुःख भुक्तनेही पडेंगे. ' तो ये विषयादि दुगंछनीक जानकर त्याग करना. और आत्मगुणमें प्रवर्चना. भगवंतजीने इसी तरह चलकर दुगंछामोहनीका त्याग-नाश करके आपके सहज स्वभावसें स्वाभाविक गुण प्रकट किये विसी तरह अपनेभी गुण प्रकट होवैं.

वारहवा कामदोष-दूषण सो सर्व दूषणोंका सरदार-अफसर है. कामदेवके ताबे होनेसें पुरुषभी महापुरुष होनेकी तक पाकरकें पीछे पड जाते है. संसारी जीव अनादिकालके कामके वश पडे हैं उसकी [काम] संज्ञा चली आती है. बाल्यावस्था-मेंभी कामचेष्टा करते हैं. संसार भ्रमणका कारण कामदेव है. कामदेवके मारे माता-पिता-भाइ-लडके-मित्र-बिरादर-ज्ञानी इन सबका स्नेह संबंध तोड देता है. कामके ताबे होनेसें धनकाभी नाश होता है. शरीरभी निर्बल होता हैं, आयुकीभी हानि होती है, और अनेक रोग शोक होते हैं. इतने दुःख तो जीवकों प्रत्यक्ष आजमायसमें आ रहेहैं; मगर अनादिकालसें कामाधीन रहनेके मारे कामांध हुवा है वो अंधतासें करकें कोइभी नुकशान या दुःख नहीं देख सकता है. कितनेक राजा महाराजा कामदेवके कैदी होनेसें राज्यभ्रष्ट-पदभ्रष्ट होते हैं वो अपनने देखाभी है और इतिहासभी बतलाही रहा है; तोभी जीवकों अकल नहीं-शानभान नहीं आती ए कैसी बडे आश्चर्यकी बात है ! ! कि कर्म किस प्रकार नाच नचाता है ! ! ! ! कामांधतासें कितनेक जन अपनी लडकी-भगिनी-जनेताकाभी शोच बिचार नहीं रखते हैं, तो दूसरी संबंधी औरतोंके वास्ते तो कहनाही क्या ? उनके लिये तो विचारही क्या रक्खे ? कितनीक कामांध मातायें कामके ताबे होनेसें अपने पुत्रका, पतिका नाश कर देती हैं. ऐसी कामदशा पीडती है, और उससें इस लोकके दुःख ऐसे अनेक प्रकारसें भुक्तने पडते हैं; और परलोकके दुःख श्रवण करने हो तो सुयगडांगजी सूत्रसें देख लेना. भवभावके ग्रंथसें देखो-नरकके अंदर परमाधामी लोहेकी अंगारेके समान तप्त हुइ पूतलीयोंसें लिपटवाते हैं. नरकमें पाँव रखनेकी जगह है वो ऐसी है कि-जैसी तलवारकी धारपर पॉव रखना. [वैसी है.] उष्णवेदना ऐसी है कि-हजारों मन लकडे जलते हो वैसी चितामें सुलावै उससेभी जियादे वेदना होती है. शीतवेदना

ऐसी है कि उस जाड-ठंडीका मुकाबला नहीं हो सकता—चाहे जीतनी आगसें शरीर सेक है तोभी वो ठंडी निकलती नही. जन्मकी जगह ऐसी है कि गड राइ जैसे टूकडे करके उत्पन्न होनेकी जगहमेंसे बहार निकाले. वैक्रियशरीरका स्वभाव ऐसा है कि सब टूकडे इकठे हुवे कि पारेकी दियाल मिल जाय. (वैसें शरीर खडा हो जाय.) कि पीछे परमाधामी अनेक प्रकारकी वेदना करें. ऐसे दुःख मनुष्यके अल्प आयुमें मनुष्य उसमें अल्पकाल सुख माणते हैं मगर उस अल्प सुखके मारे बडे सागरोपमके आयु तक दुःख भुक्तनेके हैं ऐसा कितनेक जीव जानते हैं; तोभी कामांधतासें वैं दुःख लक्षमें नहीं ल्याते विशेष कामांध हो रहते हैं. जो पुरुष या स्त्रीकी भवस्थिति परिपक्व हुइ है वो तो संसारका त्याग करके अपने आत्मस्वरूपमें आनंदतासें रहते हैं. कितनेक पुरुष बाह्यसें स्त्रीका त्याग करते हैं; मगर अंतरंगमेंसें (स्त्रीपरसें) चित्त हठ नहीं गया होता है, वो पीछे संसारमें आते हैं—गिरते हैं. कितनेक संसारमें नहीं आते हैं; परंतु चित्त बिगडा हुवा रहता है. कितनेकको राग रहता है और जब स्त्रीका मुँह देखें तब शांत चित्त रहता है. ऐसे अनेक प्रकारकी कामविटंबनायें हैं. मगर जिनका आत्मतत्त्वमें दृढानुराग हो रहा है याने सुदर्शनशेठके समान हो रहा हो उसको अभयाराणी जैसी विविध प्रकारसें शरीर स्पर्शे, अवाच्य (गुह्य) अंगको बहुत विटंबना करें; तोभी काम प्रदीप्त न होवे. अभयाके प्रपंची प्रबंधसें सुदर्शनशेठको राजाने शूलीका हुकम फरमाया और शूलीपर चडानेको ले गये तो सत्य-अखंड-अनन्य शीलके प्रभावसें शूली मिटकर सुवर्ण-सिंहासन हो गया—ये महीमा कामदेवको जीतै उनका है! चक्रवर्तिराजाको एक लक्ष बाणु हजार स्त्री होती है, उनकोभी जब ज्ञानदशा जाग्रत होती है तब उन स्त्रीओंके सामनेभी नहीं देखते. इसतरह कामदेव जीतते हैं. इसी तरह भगवंतजीने सर्वथा कामको जीत लिया है, इससें काम दूषण नष्ट हुवा है और भगवंत हुवे. इसी मुताबिक जिनको आत्माके गुण प्रकट करनेकी दरकार हो उनको कामेच्छासें मुक्त होनेका अभ्यास करना. अभ्याससें सभी चीज बनती है. कामसेवन करना यह जडधर्म है—आत्मधर्म नहीं. आत्मस्वभावमें बहार नहीं वर्त्तन करना ऐसे भाव आनेसें सहजसें काम जीता जाता है याने उसका पराजित किया जाता है. जीनने कामदेवको जित लिया उनने दुनियामें सबपर जीत मिलाइही समझ लेना याने कामदेव जीत लिये बाद सबको जीतना सुलभ-सरल है. जिन जिन

पुरुषोंनें कामका पराजय किया है उनके चरित्र वांचनेका उद्यम करना, शिलोपदेश-माला वांचनेसें काम जीतनेका फायदा-लाभ समझा जायगा. मुक्तिप्राप्तिका सर्वोत्तम समीप उपाय काम जीतना यही है.

तेरहवा अज्ञान नामक दूषण है-ये अज्ञान दोषभी अनादिका है, उससें करकें आत्मा क्या चीज है? शरीर क्या है? दुःख सुख काहेसें आते हैं?' उनका चाहियें वैसा ज्ञान नहीं हो सकता. शरीरके दुःखसें दुःखी होता है, सुगुरुकों कुगुरु मानै, कुदेवकों सुदेव मानै, और सुदेवकों कुदेव, और कुधर्मकों सुधर्म माने यातो सुधर्मकों कुधर्म मानै, शाताके कारणोंकें अशाताके और अशाताके कारणोंकों शाताके कारण मानै, जो जो प्रकृति जडकी करे वो अपनीही मानै, धर्म प्रवृत्ति करें तो अधर्म होवै वैसी करै, धन कुटुंबका मिलाप सो परवस्तु है उसकों अपनी मानकर आनंदित बनें, ज्ञानवंतकों ज्ञानवान् न जानै, तत्त्वज्ञान होवें वैसा उद्यम न करे, अज्ञानके जोरसें पंचेंद्रियके तेइस विषय हैं उसमें लुब्ध हो बचें, ज्ञानीजनने बतलाये हुवे षट् द्रव्य पदार्थ, उसके गुण पर्याय, उसका ज्ञान धारण न करें, उसकों नौ तत्त्वका ज्ञान न होवें, और अष्ट कर्मकाभी स्वरूप नही जानै. कितनेक धर्म-मजहबवाले कर्मकों मानते हैं, मगर कर्म किसतरह या काहेसें उदय आवे? कर्म क्या पदार्थ है? कर्म काहेसें बंधे जाते है? और कर्मकी निर्जरा करकें आत्मा किस प्रकार निर्मल होवै? वो अज्ञानतासें करकें नहीं जानते हैं, ये अज्ञानका महात्म्य है. कितनेक बुरे कर्मके जोर प्रत्यक्ष हैं; तोभी अज्ञानताके जोरसें वो लक्षमें नहीं आते. किसी जीवकों कोइ मार डालै तो सरकार उसें फांसी देती है, वो प्रत्यक्ष दिखता है; तथापि फांसी जानेका डर मनुष्य नहीं रखते हैं और बदकाम करते हैं. झूठ बोलनेसें जूठी प्रतिज्ञाका काम-(केस-मुकद्मा) चलता है. चोरी करनेसें कैद मिलती है. छिनाला करनेसेंभी कैद दंडकी शिक्षा होती है. याने ऐसी एसी बातें सबके समझनेमें हैं तोभी उन बाबतोंके ऊपर अज्ञानतासें दुर्लक्ष दिया जाता है, और वैसे बदकाम कियेही करता है. अज्ञानतासें राजाके विरूद्ध आचरणभी करता है. ये अज्ञान दूर करनेका भाव हो आवै तो ज्ञानाभ्यास करना, शास्त्र पढना,-श्रवण करना, तो षट्द्रव्यका ज्ञान होता है. वो षट्द्रव्य नीचे मुजब है:—

१ धर्मास्तिकाय सो अजीवद्रव्य, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, चलन साह्यगुण

सो जीव तथा पुद्‌गल चले उसकों सहाय करनेका धर्म है. यहांपर किसीकों शंका होवेगी कि चले उसकों सहायता क्या करनी है ? उसका समाधान यही है कि मछली पानीमें तिरती है. अब तिरनेकी शक्ति तो आपकी है मगर पानीकी मदद चाहिती है. पानी बिगर नहीं तिर सकती है, इसी तरह जीव और पुद्‌गल चलें उसकों धर्मास्ति कायकी सहाय चाहियें.

२ अधर्मास्तिकाय-इसका स्वभाव धर्मास्तिकायसें विपरीत है. स्थिर रहनेकों सहाय करता है. मनुष्य, पानी हो और तिरते आता हो तो वो तिरता है; मगर थक जाता है, तो कोइ टेकरी या किनारा हाथ लग जाय वो स्थिर रह जाता है; परंतु जो ऐसी सहाय न मिले तो स्थिर न रह सकता है. फिर धूपमेंसे आते थक गया हो तो वृक्ष या विश्राम स्थळ मिलता है तो बैठता है, उसी मुजब अधर्मास्तिकायकी सहायता-मददसें जीव, पुद्‌गल स्थिर होवे हैं. इस द्रव्यकेभी चार गुण हैं याने अ-मूर्त्त अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् विभाविक कुछभी क्रिया न करनी, और स्थिर सहायगुण सो ऊपर मुजब स्थिर पदार्थकों सहाय करता है.

३ आकाशास्तिकाय-सो-लोक, जिसमें छ द्रव्यपदार्थ रहे हैं उसकों लोक कहा जाता है, अलोक, जिसमें आकाश सिवा पदार्थ नही. ऐसे लोकालोकमें व्याप्त होकर आकाशद्रव्य रहा है उसकेभी चार गुण है-याने अरूपी अर्थात् रूप नहीं, अचेतन अर्थात् जीवरहित, अक्रिय अर्थात् कोइ जातिकी क्रिया न करनी, और अवगाहना-गुण अर्थात् जीव पुद्‌गल पदार्थकों रहनेकी जगह देता है; कारण सारे लोकमें जीव पुद्‌गल भरे हुवे हैं, उसमें जगह नहीं वो आकाश जगह कर देता है. यहां शंका होगी कि जगह नहीं वो किस तरह कर देता है. इसका जवाब यही है कि दीवालमें बिल-कुल जगह नहीं होती; मगर खीला ठोकें तो दाखिल हो सकता है उसी तरह आका-शास्तिकाय जगह कर देता है.

४ कालद्रव्य उसमें पहेला वर्त्तनाकाल सूर्यकी चाल ऊपरसें गिना जाता है, जैसें कि-सूर्य अस्त होवे और उदय होवे उसके ऊपरसें गिनती होती है. वो गिनती संबंधी काल है. उसका माप सात श्वासोश्वाससें एक स्तोक होवे. सात स्तोकसें एक लव होता है. ७७ लवसें एक मुहूर्त्त (दो घडी) होता है ३० मुहूर्त्तका दिवस, ३० दिनका महीना, १२ महीनेका एक वर्ष होता है. ऐसे पांच वर्ष होनेसें एक युग,

और २० युगसें १०० वर्ष होते हैं. दश सोसें १ हजार, सो हजारसें १ लाख, ८४ लाख वर्षसें एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांगसें एक पूर्व, एक पूर्वके अंक ७०५६०००००००००, चौराशी लाख पूर्वसें करके एक त्रुटितांग और ८४ त्रुटितांगसें एक त्रुटित, ८४ लाख त्रुटितसें १ अडडांग, ८४ लाख अडडांगसें एक अडड होता है. ८४ लाख अडडसें १ अववांग, ८४ लाख अववांगसें १ अवव, ८४ लाख अववसें १ हुहुकांग होता है. ८४ लाख हुहुकांगसें १ उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगसें १ उत्पल, ८४ लाख उत्पलसें १ पद्मांग, ८४ लाख पद्मांगसें एक पद्म होवे. ८४ लाख पद्मसें १ नलीनांग, ८४ लाख नलीनांगसें १ नलीन, ८४ लाख नलीनसें १ निपुरांग, ८४ लाख निपुरांगसें १ अर्थनेपुर, ८४ लाख अर्थनेपुरसें १ अयुतांग, ८४ लाख अयुतांगसें १ अयुत, ८४ लाख अयुतसें एक प्रयुतांग होता है. ८४ लाख प्रयुतांगसें १ प्रयुत, चौराशी लाख प्रयुतसें १ चुलिकांग, ८४ लाख चुलिकांगसें १ चुलिका होती है. ८४ लाख चुलिकासें १ शिर्षप्रहेलिकांग होवे और उसको चौराशी गुने करें तब शीर्षप्रहेलिका होवे. वो गुणाकारका अंक १९४ अक्षरका होवे सो नीचे मुजब है:—

७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६०० इस मुजब अनुयोगद्वार सूत्रजीकी टीकामें छपी हुइ चोपडीके पत्र २४५ में हैं. १९४ अक्षरकी संख्या है. उससें अधिक संख्या गिननी मुश्किल पडनेसें विशेष अंक नहीं दर्शाये हैं; परंतु दूसरी तरहसें संख्या मनमें समझी जावे—मुँहसें न बोली जाय. फिर विशेष न्यून समझा जाय उसके लिये बतलाया है कि एक कुंवा चार गाउ उंडा ४ गाउ विशाल, और ४ गाउ लंबा हो उसमें युगलीएकें सात दिनके बच्चेके केस लेकर उसके असंख्यात टूकडे करें, और उन टूकडोंसें वो कुवा भरकर उसपर हो चक्रवर्तिका लश्कर चला जाय तोभी वो दबाये हुवे बालके टूकडे न दब जाय वैसे भरें और हरहमेशां उन उसमें पानी प्रवेश न कर सके ऐसा सज्जड भर दे. पीछे उनमेंसें सो सो वर्ष हुवे बाद एक एक टूकडा निकालना. यूं करनेसें कुल बालोंके टूकडे निकल

गये बाद कुवा खाली हो जाय तब एक पल्योपम होवै. ऐसे दश कोटाकोटी पल्योपमसें एक सागरोपम होवै. वैसे सागरोपमके देव और नरकके आयु है. दूसरीभी गिनतियें काम लगती हैं-ये कालका स्वरूप जगतजीवोंके आयु वगैरःकी गिनतिमें आता है. ये चंद्र सूर्यके आधारसें काल कहा जाता है. उसकों काल द्रव्यमें स्वाभाविक नहीं गिनते हैं. अब कालद्रव्य किसकों कहा जाय वो कहता हुं. छओ द्रव्यके अगुरु लघु पर्यायकी वर्त्तना होती है वो वर्त्तना एकसें दूसरी होनी उसका नाम समय है. वोही कालद्रव्य उपचरित है. पदार्थरूप नहीं. कारण कि द्रव्यकी वर्त्तना अपेक्षित है उससें पदार्थरूप नहीं. कालका गुण नइ वस्तुकों पुरानी करनेका है. कल जो वस्तु तैयार हुइ वो आज पुरानी कही जायगी. आज की सो नइ कही जावेगी. ये काल अपेक्षित कहा जाता है. काल अरूपी है. अचेतन अक्रिय नये पुराने गुण हैं. ऐसें कालद्रव्यका स्वरूप जानना.

५ द्रव्य पुद्गलास्तिकाय. उसके चार गुण हैं याने मूर्त्त अर्थात् नजर आते हैं. अचेतन अर्थात् जीवपना नहीं. सक्रिय अर्थात् मिलने विखरनेरूप क्रिया करता है-जीवकी साथ रहकर क्रिया करता है वास्ते क्रिया सहित है. और मिलन विखरन गुण है. जो पुद्गल परमाणुकों पुद्गल द्रव्य कहते हो वो परमाणु कैसा सूक्ष्म है ? जलाया हुवा जलै नहीं, छेदनेसें छेदा न जाय, दृष्टिसें अगोचर है. ऐसें दो परमाणु मिलकर स्वंध होता है, उसें द्वीप्रदेशी स्वंध कहते है. ऐसें तीन चार आदि परमाणु मिलकर स्वंध होता है वो स्वंध दृष्टिगोचर नहीं होते. अनंत परमाणु मिलकर स्वंध होवै वो नजर आता है. उसें व्यवहार परमाणु कहते है. निश्चय नयसें तो स्वंध कहै. व्यवहारसें परमाणु कहनेका सबब यह है कि वैभी जलानेसें नही जलै, शस्त्रसें छेदन न हो सकै और एक परमाणुमें एक वर्ण. एक गंध-एक रस-और दो स्पर्श रहे है. वर्त्तना मुजब और सत्ता मुजब तो पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श रहे हैं उससें परमाणुके पर्यायका पलटन पना होता है वो पलटन पनेसें सत्तामेसें वर्त्तनारूप कालेका पीला होवै, पीलेका लाल वगैरः होवै-ऐसे फरफार होवै. यह अधिकार अनुयोगद्वारजीकी छपी हुइ प्रतके पत्र २७० में है वहांसें देख लेना. ऐसा परमाणुका स्वभाव है, उसस एक छुट्टे परमाणुका निश्चय परमाणु कहा है, और दूसरोंकों व्यवहार परमाणु कहा जाता है. निश्चय नयसें तो स्वंध कहा जावे. व्यवहारसें परमाणु कहनेका

सबब यही है कि द्रष्टिसें अगोचर है वैभी जलानेसें न जले-शस्त्रसें छेदे न जाय. ये व्यवहार परमाणु अनंतसें उतश्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका, वो आठसें करके श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका कहै, उससें अष्टगुणेका नाम उर्द्धरेणु, वैसी अर्द्धरेणुसें एक त्रसरेणु याने जो सूर्यप्रकाशसें छप्परके अंदर छिद्रद्वारा मालूम होता है वो त्रसरेणु. वैसी ८ त्रसरेणुसें १ रथरेणु (रथ चलनेसें जो आकाशमें उडे वो रथरेणु कही जावै.) ८ रथरेणुसें एक देवकुरुके युगलियेका [मनुष्यका] वालाग्र होवे. ८ वालाग्रसें १ हरिवर्षके मनुष्यका वालाग्र होवै. ऐसे ८ वालाग्रसें हेमवंतके मनुष्यका वालाग्र होवै, ऐसे ८ वालाग्रसें महाविदेहके मनुष्यका वालाग्र होवै. ऐसे ८ वालाग्रसें भरतक्षेत्रके मनुष्यका वालाग्रह होवै. ऐसें आठ वालाग्रसे १ लीख होवै. ८ लीखसें १ जू, ८ जूसें १ यवमध्य होवै. ८ यवमध्यसें १ अंगुल होवै. छः अंगुलका १ पाद, १२ अंगुलसें १ विल्लस, २४ अंगुलसें १ हाथ, ४ हाथसें १ धनुष्, ऐसे दो हजार धनुषसें १ गाउ होवै. चार गाउका १ योजन, इसके तीन प्रकारके मान हैं वो अनुयोगद्वारजीकी प्रतमें पत्र १९५ के अंदर देख लेना. इस मापकी वीचमेंके खंध और इससें वडे खंध अनेक प्रकारके होते हैं. विचित्र संस्थान विचित्र मापकें हैं. परमाणु वहुत और अवगाहना छोटी. परमाणु इससेंभी कम और अवगाहना वडी. कितनेक खंध नजर आवै-हाथमें पकडे न जाय. कितनेकके स्पर्श मालूम होवै; मगर नजर न आ सकै. कितनेक गंधसें मालूम होवै; परंतु नजरसें गंध मालूम न होवै-ऐसे विचित्र स्वभावके पुद्गल पुद्गलस्कंध होते हैं. और स्वभावसें विचित्र रीतिके पदार्थ बनते है-पीछे विखरभी जाते हैं वो देखनेमें आवै, और कामभी विचित्र प्रकारसें करै. जितने पदार्थ नजर आते हैं वो पुद्गल हैं. अपन जिसकों जीव कहते हैं वो जीव नजर नहीं आता; मगर जीवके ग्रहण किये हुवे शरीर नजर आते है; इस लिये समाधितंत्रमें यशोविजयजीने कहा है कि-"देखै सो चेतन नहीं, चेतन नहीं देखाय; रोष तोष किनसों करै, आपो आप बुझाय." वास्ते कहनेकी मतलव इतनी है कि चेतन नजर नहीं आता. देखते हो सो चेतन नहीं मगर जड है-याने पुद्गल है. पुद्गलके लक्षण नौतत्वमें दश कहे हैं याने वर्ण, गंध, रस, फरस, शब्द, अंधेरा, उजाला, धूप-ताप, प्रभा, और छाउं-इन दश लक्षणोंमेंसें कोइभी लक्षण नजर आवै उसका नाम पुद्गल समझना. दूसरे पांच द्रव्य है वो नजर नहीं आते. ऐसा पुद्गल पदार्थका ज्ञान हो तो विचारता है कि-मेरा आत्मा अरुपी और ये रुपी पदार्थ उसे मेरा कहता हुं यही अज्ञान है. और ये अज्ञान गा गइ नहीं

वहांतक पुद्गलीक पदार्थकी इच्छा नहीं मिटती. और जड पदार्थकी इच्छा है वहांतक जीवकर्मसें मुक्त नहीं होता. ये पुद्गल पदार्थका ज्ञान भगवतीजीमें बहुत विस्तारसें है अनुयोगद्वारजी वगैरः सूत्रोंमेंभी है वो सुनोंगे तब विस्तार पूर्वक समझ पडेगी. कर्म जो बंधे जाते हैं वोभी पुद्गल पदार्थ है. पवन दृष्टिगोचर नहीं होता; मगर स्पर्श होता है वो पवनके पुद्गलोंका होता है. इस तरह कितनेक सूक्ष्म पदार्थ दृष्टिपथमें नहीं आते- जैसें कि अंधेरा, उजाला-इनको पकडे तो पकडे नहीं जाय; परंतु रुप नजर आता है; वास्ते पुद्गल पदार्थ समझना. बादर पदार्थ जाननेसें सूक्ष्म पदार्थका अनुमानसें नि- र्णय करना.

१ जीवद्रव्य सो अरूपी याने जीवका स्वरूप नहीं. सचेतन-शक्ति है, (चेतन याने चैतना-जानना) जाननेकी शक्ति जीव विद्न दूसरे कोइ पदार्थमें हैही नहीं. अक्रिय-कोइभी क्रिया करनेका चेतनका धर्म नहीं, जो क्रिया होती है अनादिकालके जीव कर्मका संबंध है उन कर्मके संयोगसें अपने आत्माका स्वरूप भूल गया है. जैसें मदिरा पी करकें मस्त हो जाता है तब क्या करने योग्य है और क्या अयोग्य है ये ज्ञान मदिरा पीनेवालेको नहीं रहता है, और अपना जातिस्वभाव नीति छोडकर वर्त्तता है, वैसे आत्मा अपना स्वभाव छोडकर विभाववर्त्तनाकी क्रिया करता है. स्वाभाविक वर्त्तनाका नाम क्रिया नहीं-विभावमें वर्त्ते उसें क्रिया कही जावे; वास्ते स्वाभाविकधर्म अक्रिय है; मगर अज्ञानदशाके योगसें जीवका स्वभावही भूल गया है-शरीर है सोही में हुं ऐसा जानता है-शरीरके दुःखसें दुःखी होता है और शरीरके सुखसें सुखी मानता है, धन पुत्र परिवारको देख करकें आनंदित होता है. ये सब पदार्थ आत्मासें भिन्न है; परंतु अज्ञानताके मारे नहीं जान सकता है. आत्माके छः लक्षण कहे हैं-याने अनंतज्ञान सो जगतमें अनंत जीव हैं-अनंत पुद्गल पदार्थ हैं, एक एक पदार्थमें अनंत गुण पर्याय रहे हैं उनकी त्रिकालवर्त्तना होती है वो सब एक समयमें जान सकें इतनी आत्माकी शक्ति है; मगर जडसंगतिसें आच्छादित हो गइ है, उससें जीव नहीं जान सकता है. अपने शरीरके अंदर सर्व व्यापी हो आत्मा रहा है उसेंभी प्रत्यक्षतासें नहीं जान सकता है. और अंदर [शरीर अंदर] के विभा- गमें क्या क्या पदार्थ रहे है वोभी आत्मा नहीं जान सकता सो ज्ञान आच्छादित हो गया उसका फल है. जब जीवका भाग्योदय होता है तब सर्वज्ञके वचनकी प्रतीति

होता है. और आवर्ण क्षय होनेका उद्यम करता है तो क्षय हो जाता है, तब वो वस्तु प्रत्यक्ष मालूम होता है. वो ज्ञानगुण सर्वथा तो ज्ञानावरणी कर्म क्षय होवे तब प्रकटता है. और थोडे थोडे कर्मका क्षयोपशम याने कितनेक क्षय पाये हैं-कितनेक उपशांत हुवे हैं इससें सत्तामें अभी उदय न आवै ऐसे किये हैं, उसको उपशम कहा जाता है. इसतरह क्षयोपशम होनेसें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान ये चार ज्ञान होवे हैं. सर्वथा प्रकारसें विशेष विशुद्धि हो कर्मका क्षय होनेसें केवलज्ञान होता है. ऐसे ज्ञान प्रकट न हुये उससें अज्ञानपना रहा है. इसी मुजब आत्माका दर्शन गुण है. दर्शन और ज्ञानमें क्या भेद-तफावत है? ज्ञानका विशेष उपयोग और दर्शनका सामान्य उपयोग-इस प्रकार दर्शन लक्षण है. उसकेभी आवरणके लिये दर्शन गुण प्रकट नहीं होता; जैसें कि चक्षुका विषय १ लाख योजनका है, तोभी इतने दूर रहकर नहीं देख सकते, वो आवरणका जोर है. इसी मुजब पांचों इंद्रियोंकी शास्त्रमें शक्ति कही है. उतनी नहीं चलती वो आवरणका प्रभाव है. फिर केवलदर्शनसें सामान्य बोध सब पदार्थका होता है वो केवलदर्शनको आवरण लगनेसें दर्शनगुणका लक्षण नहीं वर्त्तता-वो लक्षण सर्वथा आवरणके क्षय होनेसें प्रकटेगा. चारित्रलक्षण सो आत्मा आत्माके स्वभावमें स्थिर रहवै. अब वो स्थिरता आच्छादित होके विभावमें स्थिरता हुइ है, और मोहनीकर्मका नाश होवैगा तब आत्मस्वभावमें स्थिरता होवेगी. उसके कारणरूप पांच चारित्र हैं और जितना जितना कषाय क्षय होवैगा उतना उतना चारित्रगुण प्रकट होवैगा. संपूर्ण क्षयसें संपूर्ण चारित्र लक्षण प्रकट होवैगा. तप लक्षण सो आच्छादित होनेसें तपस्या होती नहीं और विचित्र इच्छायें वर्त्तती हैं. और अंतरायकर्म क्षय होनेसें सर्वथा पुद्गल पदार्थकी इच्छायें नाश होवैंगी, उसके पेस्तर अंश अंशसें इच्छायें रूकी जायगी उतना उतना तपलक्षण प्रकट होवैगा. पांचवा वीर्यनामक लक्षण वो आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति है; मगर वो आच्छादित हो गइ है. जितना जितना वीर्यांतरायका क्षयोपशम होता है उतनी उतनी आत्माकी वीर्यशक्ति शरीरमें रह करकें चलती है. जैसें कि श्रीमत् वीराधिवीर वीरप्रभुजीनें एक दिनकी उमरमेंही पांवकी अंतांगुलीसें (अंगूठेसें?) मेरुगिरिको चलित किया इतनी शक्ति काहांसें जाग्रत हुइ? किसी जीवको दुःख नहीं दिया और आपको किसिनें दुःख दिये हैं वो सहन किये. और दुःख देनेवालेकी फिर दया लाकर उसको प्र-

तिबोध किया. दृष्टिंयं चंडकोशि सर्पनें दंश दिया तो उसकों प्रतिबोध देकर अनशन कराकर देवलोकमें वैमानिक देव बनाया इसतरह दयाके परिणामसे शक्तियें प्रकटकी. अपनी शक्ति नाश हो गइ हें वो दयाके परिणाम नष्ट होनेसें-हिंसाकी प्रवृत्ति करनेसे वीर्य-बल नष्ट हो गया है वो फिर दयाके भावमें बर्त्ते तो वीर्यशक्ति जाग्रत होवे. वो दया दो प्रकारकी होनी चाहियें याने द्रव्य दया और भाव दया द्रव्य दया उसें कही जाती हें कि एकेंद्रि जीवसें लगाकर पंचेंद्रि तक कोइभी जीवकों न मारना. न किसी प्रकारका उन्होंकों दुःख देना. भाव दया उसें कही जाती है कि-ऐसे जीवोंकों दुःख देनेकी वर्त्तना करनी सो आत्माका धर्म नहीं, आत्माकों आत्माके स्वभावमें रहना वो न रहनेसें आत्माके भाव प्राणकी हानी होती हें आत्माका भाव प्राण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य यह चार कहे हैं. सो जितनी विभाव दशाकी वर्त्तना होवेगी उतनी नाश होवेगी. जितनी जितनी विभाव दशा त्याग होवेगी उतनी भाव दया हो आवेगी. सो ऐसी भाव दया जितनी प्रगट होवेगी उतनी उतनी वीर्यशक्ति जाग्रत होवेगी. और संपूर्ण वीर्य गुण सब प्रकारसें कर्म नाश होवेगा तब प्रकट होवेगा वही वीर्यका लक्षण है.

६ उपभोग लक्षण-याने उपभोग क्या है वो जाननेकी शक्ति है; परंतु जाननेके लिये चित्त च्होंटाना उस रुप उपयोग नहीं करते वहांतक नही जान सकते हैं. वो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदसें बारह प्रकारका है वो कर्मग्रंथसें जान लेना.

यह छः लक्षण जीव द्रव्यके हैं. वो जब तक जीव नहीं जानता है तब तक उसकों अपनी पराइ वस्तुकी खबर नही पडती है, वो सब अज्ञानताके फल है. जीव सदा अविनाशी है, वो अपना स्वरूप न जाननेसें हमेशां मरनेका भय रखता है. ऐसे अनंत गुण आत्माके हैं वो केवलज्ञानी महाराज सिवा दूसरे जीव नहीं जान सकते हैं. जीवके १४ भेद, अगर ५६३ बतलाये है. वो कर्म संयोगसें करकें शरीर, इंद्रियें वगैरः के तफावतका है. बाकी कर्मरहित सत्तासें सब समान हैं. भेद नहीं; तोंभी भेद जानना, वो अधिक न्यून व्यवहारमें है उसकी समझके लिये लिखता हुं.

१, एकेंद्रि सूक्ष्म सो-चर्मचक्षुसें मालूम नही होते, २, एकेंद्रीबादर सो-मालूम हो सकें. ३, बेइंद्रि-दो इंद्रिवाले, ४, तेइंद्रि-तीन इंद्रिवाले, ५, चौरिंद्रि-चार इंद्रि-

वाले, ६,असंज्ञि पंचेंद्रि सो मनरहित, ओर ७ संज्ञि पंचेंद्रि सो मन सहित.

यह सात जातिके पर्याप्ते याने पर्याप्ति पूर्ण की हुइ. और अपर्याप्ते याने अपनी पयाप्ति पूरी न की हुइ. अर्थात् ये सात पर्याप्ते और सात अपर्याप्ते मिलकर १४ भेद जीवके होते हैं. अंब इसके ५६३ भेद विस्तारसें कहता हुं:—

१९८ देवताके भेद इस मुजव हैं कि, १० भुवनपति, १५ परमाधामिके देव, ११ व्यंतरजातिके देव, १० तिर्यक् जंभकदेव, १० योतिषिकी जातिके देव, १२ देवलोक-वैमानिककी जातिके देव, ३ किल्बीषियेकी जातिके (भंगी जैसे) देव, ९ लौकांतिक जातिके एकावतारी देव, ९ ग्रैवेयक जातिके देव और ५ अनुत्तर विमानके देव ये-कुल ९९ जातिके देव सो पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलकर १९८ हुवे. इन्ह देवोंकों कवल आहार नहीं, अपनी मरजी मुजव आहारका स्वाद आता है, [कितनेक हीन पुन्यवाले होवै उन्होंकों मरजी मुजव नहींभी वन सके.] देवताकी जातिकों वैक्रिय शरीर है, उससें रोगादि पैदा नहीं होते हैं. मनुष्यके आयुकों उपक्रम लगता है वैसे देवकों न लगे-पूर्ण आयुपें मरें. एक दूसरेकी ऋद्धिमें फेरफार वहुत होता है, व्यापार रोजगार करनेकी कुछ जरूर नहीं पडती. ये सामान्यपनेसें देवकी जाती कही.

१०१ मनुष्यकी जाती हैं वो गिनाता हुं. (और उसमें तीन जातिके होते हैं.) १५ कर्मभूमिके मनुष्य. कर्मभूमि किसकों कहते हैं? जहांपर असि याने हथियार-तलवार-भाला-छुरी-कोष-कुल्हारे-औजार इन वस्तुयोंकों असि (जीव वध होनेका आंसार) कहीजाती है. और जहां इनकी वपरास होती है. तथा मसी याने शाहीसें चोपडे-ाही लिखनेमें आती है, और कृषि याने खेतीवाडीका काम होता है-ये तीन जातिके कर्म जिस क्षेत्रोंमें करनेका हो उसकों कर्मभूमि कहते हैं. और वैसी भूमिमें रहनेवालोंकों कर्मभूमि मनुष्य कहेजाते हैं. याने ३ जंबुद्वीपमें मनुष्य, १ भरतक्षेत्र, १ ऐरव्रतक्षेत्र, १ महाविदेहक्षेत्र. ६ धातकीखंडद्वीपमें मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरव्रतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र. ६ पुष्करावर्त्तद्वीपके अंदर मनुष्य, २ भरतक्षेत्र, २ ऐरव्रतक्षेत्र, २ महाविदेहक्षेत्र. ये १५ क्षेत्रमें रहनेवाले मनुष्य १५ जातिके हैं, उसमें भरतक्षेत्र तथा ऐरव्रतक्षेत्रके मनुष्यकी रीति समान है, कालस्थितिभी समान है, छउं आरेकी हकीकत समान हैं. पांच महाविदेहक्षेत्रमें सदा तीर्थंकरजी विचरते प्राप्त होते हैं. कममेंकम एक महाविदेहमें चार तीर्थंकरजी होने चाहियें-ऐसा जंबुद्वीपपन्नत्तिमें अधिकार है. कोइ ग्रंथमें

होथी कहे हैं. ऐसा प्रवचनसारोद्धारमें कहा है. तत्त्वकेवलीगम्य. पुनः उत्कृष्ट कालमें एक महाविदेह क्षेत्रमें ३२ विजय हैं उन सब विजयमें एक एक तीर्थंकरमहाराज होवै उससें एक महाविदेहमें ३२ तीर्थंकर विचरते प्राप्त होवै. फिर केवलज्ञानी सदाकाल प्राप्त होवे. मोक्षमार्ग हमेशां चलता रहै, जैसें भरत, ऐरवृतमें मोक्षमार्ग तीन आरेमें होता है (खुल्ला होता है.) और दूसरे आरेमें मोक्षमार्ग बंध हो जाता है. वैसें वहां नहीं. आयुके अंदरभी भरत ऐरवृतमें कम वर्चता है वैसें वहां नहीं. सदा क्रोड पूर्वका आयु है शरीरमान पांचसो धनुष्यका है–यह तफावत है. दूसराभी तफावत शास्त्रसें देख लेना.

३० अकर्मभूमि और छपन्न अंतरद्वीपके मनुष्य युगलिये हैं, वो मनुष्योंको व्यापार, रोजगार, रसोइ बनावा, खेती करना, कोइभी जातके औजार बनाना, वस्त्र पहनना, ये कुछभी करनेका नहीं. मतलबमें असी–मसी–कृषि ये तीन कर्मभूमिके मनुष्य हैं वैसे वहां नहीं. फकत कल्पवृक्ष फल देवै सो खाना, कल्पवृक्षसें घर बन गये हुवेही रहते हैं–उसमें रहते हैं. जिसकी जितनी मर्यादा है उस प्रमाणसें आहारकी इच्छा होवै उस वखत मरजी मुजब कल्पवृक्ष फल देवै, आयु, शरीरभी बडे हैं, वो हरएक क्षेत्र अपेक्षित है [सो आगे कहा जायगा.] और वहांसे मरके देवता होवै. दूसरी गतिमें न जाय; क्यौं कि सरल स्वभावी हैं. कठीन रागद्वेष नहीं.

१० हैमवंत और ऐरवृत युगलियोंके क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ धातकीखंडमें और ४ पुष्करार्द्धमें. ये दश क्षेत्रोंमे युगलिये मनुष्य होते हैं उन्होंका शरीरमान १ गाउका, आयु १ पल्योपमका, एक रोजके अंतरसें आवलेप्रमाण आहार करै, आयुष्यके अंतपर एक जोडेका स्त्री गर्भधारण करै. उनका जन्म हुवे बाद ७९ दिन तक उस बालक बालिकाकी माता पिता प्रतिपालना करै, पीछे माता पिता मरणके स्वाधीन हो देवलोकमें जाते हैं.

१० हरिवर्ष और रम्यक ये दोनु क्षेत्र नीचेके द्वीपमें हैं. २ क्षेत्र जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, ४ धातकीखंडमें. इन दश क्षेत्रोंके युगलियोंका देहमान दो गाउ, आयु दो पल्योपमका, दो दिनके अंतर आहार बेर प्रमाण करै और ६४ दिन बालकोंकी प्रतिपालना करै.

१० देवकुरु, उत्तरकुरुके युगलियोंका क्षेत्र, २ जंबुद्वीपमें, ४ पुष्करार्द्धमें, और

४ धातकीखंडमें हैं. इन दश क्षेत्रके युगलियोंका देहमान ३ गाउका, आयु तीन प-ल्योपमका, तीन दिनके अंतर अरहरके जितना आहार करै. [कल्पवृक्षके फलका आहार करै.] और ४९ दिवस बालकोंकी प्रतिपालना करके काल कर जाँय. और देवता होवै. ये तीसं क्षेत्रके मनुष्यकों अकर्मभूमिके मनुष्य कहेजाते हैं.

१६ अंतरद्वीपके मनुष्य सो-जंबुद्वीपकी जगतीके कोटकी नजदीक हेमवंत और शिखरी पर्वत हैं, उन दोनु पर्वतोंमेंसें दाढाएं निकलती है और वो कोटके ऊपर होंकर समुद्रमें गइ हैं. ये दाढाएं चार चार होती हैं, और एक एक दाढाके ऊपर सात सात द्वीप हैं, तो दोनु पाहाडकी ८ दाढायोंके ऊपर ५६ द्वीप हुवे. उस द्वीपोंकों अंतरद्वीप क्यौं कहाजाता है ? लवण समुद्रपर अद्धर रहे हैं उसीसें अंतरद्वीप कहेजाते हैं, और उस अंतरद्वीपपर रहनेवाले युगलियोंकों अंतरद्वीपके मनुष्य कहेजाते हैं. उन मनुष्योंका शरीरमान ८०० धनुषका, आयु पल्योपमके असंख्यातमें हिस्सेका और आहार कल्पवृक्षके फलका होता है. ये कुल्ल १०१ क्षेत्रके मनुष्य पर्याप्ता अपर्याप्ता ये दोनु भेद गर्भजके गिननेसें २०२ भेद हुवे. उसमें १०१ भेद समूर्छिम मनुष्यके दाखिल करना जिस्सें कुल ३०३ भेद मनुष्यजातिके होते हैं. समूर्छिम मनुष्य किसकों कहेजाते हैं ? मनुष्यके मलमूत्र, लींट, वमन, थूंक, रुधिर, मांस, वीर्य, चमडी वगैरः मनुष्य अंगके पदार्थमें उत्पन्न होवैं. आयु अंतर्मुहूर्तका, अपर्याप्ति अवस्थामेंही मर जावैं-पर्याप्ति पूरी करैही नहीं. शरीरमानभी अंगुलके असंख्यातवे हिस्सेका होता है, जिस्सें देखनेमेंभी न आ सकै. ये ७-८ प्राण बांधतेही मरण पावैं.

तीर्यंचके ४८ भेद हैं याने एकेंद्री सो जिसके एक स्पर्शेंद्रि है. उसकेभी भेद इस मुजब हैं कि-पृथिवीकाय सो मिट्टी, पाषाण, रत्न, सुना, धातु यें, मोती-ये पृथ्वि-काय कहेजावै. (मोतीकों अनुयोगद्वारजीकी टीकामें पृथ्विकाय और अचित्त कहे हैं.) इस बाबतमें शंका होवै कि 'सीपके बदनमें पृथ्विकाय क्यौं होवै ?' तो इसः खुलासा करते हैं कि-मनुष्यके शरीरमें पथरी-प्हाणवी होती है वो पृथ्विकाय है, उसी मुजब मोतीकाभी समझ लेना. ये पृथ्विकायके पत्थर बडे बडे नजर आते हैं तोभी ये असंख्याते जीवपिंड हैं. एक आंवलेके जितनी मिट्टी या पत्थर लिया हो उसमें असंख्यात जीव हैं. एक जीवका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका है वो सबका पिंडभूत है. ये जीवके शरीर कल्पनासें खबूतरके समान करै तो एक लाख

योजनका जंबुद्वीप हैं उसमेंभी न समाये जाँय ऐसी पृथ्विकायके शरीरकी सूक्ष्मता है. ये पृथ्विकायका उत्कृष्ट आयु २२००० वर्षका है-सो बादर पृथ्विकायका याने नजर आ सके उनका स्वरूप कहा है. सूक्ष्म पृथ्विकायके जीवको तो चर्मचक्षुवाले नहीं देख सकते हैं, फकत केवलज्ञानीजी अपने ज्ञानसें देखकर फुरमाया है. वे चौदह राजलोकमें सब जगहपर हैं. उनका आयुष्य जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तका है. ये पृथ्विकायके दो भेदकोंभी पर्याप्त, याने जिसने चार पर्याप्ति पूरी की है वो, और अपर्याप्त याने जिसने चार पर्याप्ति पूरी न की हो वो-[अपर्याप्त अवस्थामेंही मर जावे.] अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर ये पृथ्विकायके ४ भेद हुवे.

अपकायके चार भेद हैं-अपकाय सो पानीके जीव, उसमें कूपका, तालावका, समुद्रका, वर्षादका, धूमस मसुखके पानीका समावेश है. ये पानीका पिंड नजर आता है, शरीरमान अंगुलके असंख्यातवे भागका है, उसके एक बुंदमेंभी असंख्यात जीव हैं-इन जीवोंका आयु जघन्य अंतर्मुहूर्त्तका और उत्कृष्टसें ७ हजार वर्षका है. ये बादर अपकाय कहाजाय. सूक्ष्म अपकाय वो तो नजरभी न आवे. ये दो भेद हुवे, और पर्याप्त अपर्याप्त मिलानेसें ४ भेद हुवे.

तेउकायके चार भेद हैं-याने सूक्ष्म और बादर, तथा पर्याप्त, अपर्याप्त-ये चार हुवे. इनका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका, आयु उत्कृष्ट तीन दिनका. उसमेंभी सूक्ष तेउकाय अगोचर हैं.

वायुकायके चार भेद हैं याने सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार भेद हैं. वायुकायका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका, आयु बादर वायुकायका उत्कृष्ट तीन हजार वर्षका और सूक्ष्म वायुकायका अंतर्मुहूर्त्तका.

वनस्पतिकायके छः भेद हैं-उसमें प्रत्येक वनस्पति याने एक शरीरमें एकही जीव होवे सो; जैसें कि एक फलके अंदर जितने बीज हो उतने जीव हैं, फलकी छालका एक जीव, फलके मगजका एक जीव, वृक्षकी शाखाका एक जीव, मूलका एक जीव, पेडमें एक जीव, पत्रमें एक जीव-इसतरह अलग अलग जीव होवे. कोइ कहेगा कि सारे वृक्षमें एक जीव तो फलके बीजके अलग अलग जीव क्यों कहे ? इसका समाधान यही कि स्त्रीके सारे शरीरमें एक जीव है, मगर उसके शरीरमें जितने गर्भ रहेवे वे गर्भके जीव भिन्न भिन्न होवे हैं. वैसेंही बीजके जीव भिन्न भिन्न होवें.

ऐसे फल हैं उनकों प्रत्येक वनस्पति कही जावे–बडे बडे दरख्त, बड, पीपल, -नारियेली वगैरःके पेड गेंहूं प्रमुख अनाज, शाक, फल, चीभडे वगैरःके वेले आदि ये कुछ प्रत्येक वनस्पति है. ये दो प्रकार और पर्याप्ते अपर्याप्ते ये दो मिलकर चार भेद हुवे. प्रत्येक वनस्पतिकायके जीवकों चार पर्याप्ति कही हैं, वे पूरी न की हो वहांतक अपर्याप्ता, और पूरी की हो तो पर्याप्ता. अपर्याप्ति अवस्थामेंभी कितनेक मर जाते हैं. पर्याप्ति प्रत्येक वनस्पतिके वृक्ष–वेले बडेमें बडे १००० योजन अधिकके होते हैं. वो वेले–लतायें निराबाध जगहमें लंबी फैलती हैं–ऐसा ध्यान रखना. पर्याप्ताके शरीरका मान अंगुलके असंख्यातवे भागका कहा है. उत्कृष्ट आयु १०००० वर्षका और जघन्य अंतर्मुहूर्त्तका कहा है. और अपर्याप्ताका जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तका है. एक पर्याप्तेकी निश्रामें असंख्यात अपर्याप्ते रहे हैं. यह अधिकार पन्नवणाजीमें विस्तारसें कहा है. हरी वनस्पतिमें ये अपर्याप्ते संभवते हैं. साधारण वनस्पतिकाय सो–एक शरीरमें अनंत जीव रहे हैं उसकों अनंतकाय कहा जावे, और निगोदभी कहा जावे. वो निगोदकेभी दो भेद हैं याने बादर, और सूक्ष्म वनस्पतिं कि जो नजर आती है–अद्रक, मूली, गाजर, जमीकंद, रतालु, आदि कंदकी जातियें कि जो कंद काटने बादभी पुनः उगें यो और वो वृक्षमें उगते अंकुर जो जो पत्र फल प्रत्येकके योग्य न हुवे–और जिनके अंदरकी नसें बीज परव नजर न आवें, तोडनेसें समान टूटे–काटे जैसा मालूम पडे–तोड दियेकी जगह पानीके बिंदु नजर आवें–ऐसी वनस्पतिकों अनंतकाय कही जावे. और साधारण वनस्पति उसकोंही बादर निगोद कही जावे. वो जीवभी दो प्रकारसें हैं याने पर्याप्ते, अपर्याप्ते हैं. इन्होंका शरीर अंगुलके असंख्यातवे भागका है, आयु अंतर्मुहूर्त्तका होता है. सूक्ष्म निगोद सो चौदह राजलोकमें सब जगह भरी हुइ है. सूक्ष्म निगोदके सिवा कोइ जगह खाली हैही नहीं. इसकी सूक्ष्मता ऐसी है कि अंगुलके असंख्यातवे भागमें निगोदके असंख्यात गोलक हैं, उनमेंसें एक गोलकमें असंख्यात निगोद हैं. वो एक निगोदमें असंख्यात जीव हैं. और उन जीवोंकों आयु एक श्वास लेकर छोड देवै उतनी देरमें सत्तरह भवसें कुछ ज्यादे भव होते हैं–याने उतनी देरमें १७ सेंभी विशेष वक्त जन्ममरण होता है. वे जीवभी पर्याप्ते, अपर्याप्ते ऐसें दो भेदके हैं. ये दो भेद प्रत्येकके, दो बादर–निगोदके और दो भेद सूक्ष्म निगोदके–ये तीनु मिलकर वनस्पतिके जीवके छः भेद हुवे.

२ दोइंद्रिवाले जीव सो बेइंद्रि याने शंख, कौडी, कीडे, गंडोले, भूसर्प, मेहेर, सूक्ष्म कृमिजंतु, वडे कृमि वगेरः जीव कि जिनकों शरीर और मुँह ये दो इंद्रि हैं वो, और वोभी पर्याप्ते, अपर्याप्ते ऐसे दो भेदवंत हैं. वो जीवोंका शरीर वडेमें वडा वारह योजनका होवें. उस समयमें मनुष्यका शरीरभी वडा होता है. कितनेक जीवोंकों भगवंतवचनोंकी प्रतीति नहीं होती उसकों इन वातोंसें व्यामोह होता है कि इतना वडा शरीर क्यों करकें होय? मगर बुद्धिमानोंकों और प्रभुवचनकी श्रद्धावालोंकों शंका नहीं होती; कारण कि अभी एक अखवारके अंदर पढनेमें आयाथा कि एक छिपकलीकी हड्डीये सवा गजकी थी. और यहां तो ४ तसुकी नजर आती है, हड्डीयें इतनी वडी नजर आती है! कोइ वक्त ऐसी वडीभी होती होगी वैसा हड्डी देखनेसें निश्चय होवे. देशकी तफावतसेंभी वडे छोटेका तफावत नजर आता है. काकरेची वहेल जैसे वढे होते है वेसे वडे वहेल इस प्रांतमें नहीं होते है. घोडे विलायतसें आते है याने आस्ट्रेलियन, अरेवियन हॉर्स आते हैं वो इतने वडे आते हैं कि वैसे इस देशमें (गुजरातमें) पैदा नहीं होते हैं. मनुष्यभी पंजावमें कदावर मजवूत होते हैं वैसे गुजरातमें नहीं होते इसका सवव यही कि हवा पानीके तफावतसें करकें छोटा वडा और सवल निर्वल प्राणी होता है. उसी तरह समयके फेरसें तफावत हुवा होगा ऐसें समझकर बुद्धिवंतोकों शंका नहीं होती. ये वेइंद्रि जीवोंका आयु वारह वर्षका होता है.

२ तेइंद्रि जीवके दो भेद है याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते हैं. ये जीव खटमल, कीडे, चींटी, मकोरे-वगेरः समझ लैना. इन जीवोंका शरीर वडेमें वडा ३ गाउका होता है. उत्कृष्ट आयु उनपंचास (४९) दिनका कहा है, वोभी पर्याप्तेका, और अपर्याप्तेका तो अंतर्मुहूर्त्तकाही होता है.

३ चोरेंद्रि जीवभी दो प्रकारके हैं याने पर्याप्ते और अपर्याप्ते. इन जीवोंकों पांच पर्याप्ति हैं वो पूरी करें तव पर्याप्ते और उसमेंसें अपूर्ण पर्याप्ति होवे वो अपर्याप्ते मख्खी, मच्छर, विच्छु, प्रमुखजीव समझ लैना. इन जीवोंकों स्पर्शेद्रि, रसेंद्रि (जीभ), घ्राणेंद्रि (नाक), चक्षुइंद्रि [आंख]-ये चार इंद्रिये होती है. उत्कृष्टायु छः महीनेका और उत्कृष्ट शरीर एक योजनका होता है.

पंचेंद्री तिर्यंचके २० भेद है याने [१]जलचर सो-मच्छ, मच्छी, ग्राह वगेरः जलमेंही रहेनेवाले, [२]थलचर सो-गेयें, भैंस, वहेल, वकरी, हथ्थी घोडे इत्यादि. [३]खे-

चर सो-पंखी-आकाशमें ऊडनेवालोंकी जाती. ⁴उपरिसर्प सो-पेटके सहारेसें चले-वैसे-सर्प आदि. ⁵भुजपरिसर्प सो-भुजाके सहारेसें चले-वैसे नकुल, खिलकुडी वगैरः ये पांच प्रकारके तिर्यंच सो गर्भसें उपत्न्न होवै वो गर्भज-याने स्त्री पुरुषके संयोगसें पैदा होते हैं. इन जीवोंके शरीरका मान, आयुष, क्षेत्र, काल, जीव अपेक्षासें अलग अलग हैं. वो पन्नवणाजीमें, जीवाभिगमजी या जीवविचारसें जान लिजीयेजी. ये जीव कर्मभूमिमें और अकर्मभूमिमें पैदा होते हैं. दूसरा भेद समूर्छिम तिर्यंच वो स्त्रीके संयोग सिवा पैदा होते हैं; जैसें कि मेंढक मर गया हो और उसका कलेवर पडा होवै उसमें मेघवृष्टिकी बुंदें पडनेसें फिर नये मेंढक फौरन पेदा हो आते हैं. विच्छूके कलेवरसें विच्छू पैदा हो आते हैं. गोबरसेंभी विच्छू उत्पन्न होते हैं. और कितनीक वस्तुओंके प्रयोगसें [संयोगसें] जीव पैदा होते हैं, उसें समूर्छिम कहा जावै. येभी पंच प्रकारके होते है. इससें गर्भज और समूर्छिम मिलकर दस भेद हुवे. उस गर्भजके छः पर्याप्ति हैं और समूर्छिमके पांच पर्याप्ति है. उस मुजब पर्याप्ति करै उसे पर्याप्ते कहेजावें. पर्याप्ति पूर्ण न की वहांतक अपर्याप्ते कहेजाते हैं. इसतरह ये दो भेदसें गिननेसें २० भेद होवैं, वो वीस प्रकारके तिर्यंच पंचेंद्रि समझ लेना. एकेंद्रियसें लगाकर तिर्यंच पंचेंद्रि तलकके भेद इकठे करनेसें ४८ भेद कुल तिर्यंचके हुवे.

अब नरकके जीव चौदह प्रकारसें नाँव भेदसें होते हैं याने रत्नप्रभा नरकके नारकी १, शर्कराप्रभा नरकके नारकी २, वालुकाप्रभा नरकके नारकी ३, पंकप्रभा नरकके नारकी ४, धूमप्रभा नरकके नारकी ५, तमः प्रभा नरकके नारकी ६ और तमतमा प्रभा नरकके नारकी ७ इन सातों नरकोंमें जीव पैदा होवें उसें नारकी कही जावें.

पहिली नरकसें दूसरी नरकमें ज्यादे दुःख, आयुष्य और शरीर होते हैं. याने इसी तरह एकसें एक नरकका दुःख, आयु, शरीरमान ज्यादे ज्यादे होते हैं. इन नरकके दुःख ऐसें हैं कि उसके मुकाबिलेके दुःख मनुष्यलोकमें हैइ नहीं. कितनेक नरकोंमें परमाधामीकी की हुइ वेदना है, और कितनीक नरकोंमें स्वभाविक क्षेत्रप्रभावसें वेदना है. जो जो कठीन पाप किये जावै उनके फल नरकमें भुक्ते जाते हैं. ज्यादेसें ज्यादे आयुष्य तेत्तीस सागरोपमका है. उसमें असंख्याता काल चला जाता है, उतने काल तक दुःख भुक्तनेका है. और मनुष्यमें विषयका अल्पकाल सुख माना हुवा भुक्तनेका है, वस्तुतासें तो विषयमें सुख नहीं; मगर अज्ञानतासें सुख मानकर विषयसुख भुक्तता

है और उसके फलसें जीव नरकमें जाकर अकथनीय दुःख भुक्तता है, उन नरकके जीवोंके दस प्राण हैं. छः पर्याप्ति हैं. वो बांध न रहा होवे वहांतक अपर्याप्ता कहा जाय, और पूर्ण बांध लेवै तब पर्याप्ता कहाजाय. वो पर्याप्ते अपर्याप्ते मिलकर चौदह प्रकारके नारकी हुवे.

एकेंद्रिसें लगाकर पंचेंद्रि तकके कुछ भेद इकठे करलेवें तब चारोंगतिके कुछ ५६३ भेद होवै सो निम्न संख्या मुजब हैं:—

१९८	देवताके,	३०३	मनुष्यके भेद,
४८	तिर्यंचके,	१४	नारकीके.

यों सब मिलकर सामान्यतासें जीवके ५६३ भेद होते है. विस्तारसें तो जीवके भेद और जीव स्वरूप वर्णन करनेसें आयुष्यभी खतम हो जाय इतना वर्णन शास्त्रमें कहा गया है; वास्ते विस्तार समझनेके लिये रुचिवंत जीव शास्त्राभ्यास करके जान लेवें, मगर जहां तक अज्ञानकी प्रबलता है वहां तक जीवको वीतरागभाषित शास्त्र देखनेकी या सुननेकी रुचिही न हो आवेगी. यु करते जोराइसें या शरमसें सुन लेवै तो उन बचनोंमें श्रद्धा न करै; क्यों कि जो पूर्वजन्मकी विपरीत श्रद्धाकी संज्ञा चली आती है उनके जोरसें सच्ची वस्तु नहीं रुचती है. उन्मार्गकीही रुचि होवै. विपरीत वस्तुपर कल्पित न्याय जोड कर उसकी श्रद्धा करै. दूसरे, जीवोंकोंभी कुयुक्ति कर समझाके उन्मार्गमें गिरावै. और इसी तरहसें करनेके सबबसें अनेक धर्म-मत हो गये हैं. और जो मनुष्य जिस धर्मको मानता है उस धर्ममें क्या फरमाया है वोभी नहीं जानता है. आप जिसको देव मानता है वो देव किस सबबसें मानता हुं, उन देवमें देवके लक्षण हैं या नहीं, वोभी नहीं देखता. कितनेक ब्राह्मणोंनें क्रिश्चियनी धर्म अंगीकार करके वेद धर्मको छोड दिया है; लेकिन वेदमें क्या, भूल है उसको वो नहीं जानते हैं. एक क्रिश्चियनसें पूँछा गया था तो उसकी तर्फसें संतोषकारक जवाब याने भूल न बता शका था. उसका सबब इतनाही है कि स्त्री और धनके लोभसें खिस्ती धर्म स्वीकारते हैं, उसको पीछे कुछ धर्म जाननेकी जरूरत नहीं रहती है. अज्ञानके जोरसें सत्य हूंढनेका दिल नहीं होता. कितनेक ब्रह्मन जैनकी निंदा करते हैं वो इतने तकिकि वैस्याके घरमें जाना; लेकिन जैनमंदिरमें न घुसना. यह कथन कितना भूल भरा हुवा है वो नीचेकी हकीकतसें सहज समझमें आयगा.

माननीय महाभारत शास्त्रमें फरमाया है कि:—

युगे युगे महापुण्यं दृश्यते द्वारिकापुरि ॥
अवि तीर्णो हरिर्यत्र; प्रभासे शशिभूषण. १
रेवताद्रौ जिनो नेमि र्युगादि र्विमलाचले ॥
ऋषिणामाश्रमा देवः मुक्तिमार्गस्य कारणम्. २

इस मुजब कळावतार वेदव्यास विरचित महाभारतमें श्लोक हैं, इन श्लोकमें जैनका तीर्थ जो रैवतगिरि कहा है उसे आधुनिक समयमें गिरनार कहेते हैं और वहां नेमिनाथजी महाराज बाइसवे तीर्थंकर हैं उनकाही महीमा जैनी मानते हैं, वही तीर्थका और नेमिजिनका बहुतमान पूर्ण किया है. फिर विमलाचल कि जिसें अभी शत्रुंजय कहेते हैं, वहां युगादिजिन हैं याने श्रीऋषभदेवजीकों जैनमें युगादिजिन कहे हैं-ऐसाही भारतमें कहा है. ये दोनुं तीर्थोंकों मोक्षका कारण इस श्लोकमें बतलाये हैं. इन भारतकोंही माननेवालेकों ये जिनतीर्थोंकी और जिनदेवोंकी मोक्ष कारणभूत सेवना करनी चाहियें या निंदा करनी चाहियें ? भारत तो हमेशाः वांचा जाता है; तथापि ये बात निगाहमें न रखतें उलटा रस्ता पकडते हैं वो अज्ञानकी राजधानीका फल है; परंतु जिनका कुछ अज्ञान पतला पड गया होवे उसके कान खोलनेके लिये यह वार्त्ता जाहिर की है. दूसरी जगहभी कहा है कि:—

ऋग्वेदका मंत्र.

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानांतान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये.

यजुर्वेदका मंत्र.

ॐ नमोर्हतो ऋषभाय, ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहुतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परममाह संस्तुतावारं शत्रुंजयं तं सुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा.

यजुर्वेदका दूसरा मंत्र.

ॐ त्रातारमिन्द्रं ऋषभंवदंति अमृतारमिन्द्रं हवेसुगतं सुपार्श्वमिन्द्रं हवेसक्रम जितं तद्वर्द्ध पानपुरुहुतमिन्द्रं माहुतिरिति.

तीसरा मंत्र.

ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भंसनातनं उपैमिवीरंपुरुषमर्हतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात स्वाहा-

पुनः ऋक्वेद-मंत्र १, अ. १४ सू. १०

स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः

इस तरह वेदमें मंत्र हैं वो दयानंदछलकपटदर्पन नामक किताबमें मैंने पढे हुवे हैं. [पत्र २१९ वेमें हैं] उसपरसें वेदके जाननेवाले शास्त्रीकों मैंने बतलाये और पूँछा कि-'ये मंत्र तुमारे वेदमें है?' शास्त्रीजीने सत्यदशा ग्रहण कर कहा कि-' हम हमेशाः वेदाध्ययन करते हैं उसमें ये मंत्र आते हैं.' उन शास्त्रीके कथनसें प्रतीति हुइ कि वेद अंदरकेंही हैं. उससें इस किताबमें दाखिल कीये हैं. जो हठ बिगरके होंवें उसें समझा जाँय कि जैनके देवकोंभी वेदवालोंने मान्य किये हैं, तो उन्होंकी निंदा क्यौं कर करुं? फिर जैनधर्म नया है ऐसा जिनके दिलमें हो तो सोचो कि जैनके ऋषभदेवजीसें लगाकर चोइसवे महावीरस्वामी तक चोइस तीर्थंकरकों बहुत मानपूर्वक नमस्कार किया है. वो ये जैनधर्मके देव हुवे बाद वेद हुवे या पेस्तर? जो वेद अनादि होता तो इन देवोंका स्मरण न होता, [क्यौं कि ये नाम तो इन चोवीसीके देवके हैं ऐसी वो अनंत अनंत चोवीसी हुइ हैं. यदि वेद पुराना होता तो वो बात उसमें आती; मगर वो नहीं है; वास्ते इन वर्त्तमान चोइसीके पीछे वेद रचा गया होना चाहियें ऐसा प्रमाण मिलता है.] वास्ते जैन अनादि है यह वेदसेंही निश्चय हो जाता है; मगर यह बात जिनका मिथ्यात्व पतला हो गया होवै उसकोंही समझमें आयगी; परंतु जो हठवादि कदाग्रही है-अज्ञानका पूर्ण जोर है वैसे मनुष्यकों सत्य विचार करनेकी बुद्धिही जाग्रत नहीं होती, और सत्य समझनेमें आताही नहीं. 'करते आये हैं वही करना'-इतना सिर्फ समझ रक्खा है. जब अज्ञान दूर हो जायगा तब सच्चा या झूठ ढुंढनेकी बुद्धि जाग्रत हो आयगी, और सत्य अंगीकार करेगा. जो जो मनुष्य अपना देव मानते हैं और उन देवोंने धर्म बतलाया है उन मुजब वो देव धर्ममें चले हैं या नहीं? उस वास्तेही देवोंके चरित्र शास्त्रोंमें बतलाये हैं, वो देख लेने चाहियें. और उन चरित्रोंमें जिस मुजब अपनकों नीति रीति रखनेके लिये फरमाया गया है उसी मुजब वे पुरुष आपकी नीति रीति-वर्त्तन रखते थे या नहीं? और

सर्वज्ञपणा माना जाता है वो चरित्रोंके उपरसें सिद्ध-साबित होता है या नहीं? और उसकी सबूती न मिले तो पीछे उन्होंकों देव किस लिये मानने चाहियें ऐसा बिचार अज्ञान दूर हठनेसेंही आवेगा। मगर उस विगर न आवेगा. फिर गुरुपणा घराते हैं और लोगोंकों धर्मोपदेश देते हैं कि अहिंसा धर्म (दया) सभीमें मुख्य है यों समजाते हैं। मगर आप खुद हिंसाका त्याग करते नहीं. झूठा न बोलना यह बात षट्दर्शनवालोंकोंभी मान्य है; तोभी गुरु होकर झूठ बोलनेमें बिलकुल नहीं डरते हैं: चोरी करनी नहीं, किसीकों ठग लेना नहीं. क्यौं कि ये जगतमें निंदनीक हैं और उसका कुल धर्ममें निषेध किया है। तदपि गुरुनाम धारण करकें चोरी, ठगाइ, कपटके काम करते हैं. परस्त्रीका त्याग सब धर्मोंमें है और जगतमें अनिंदनीय है. तथापि गुरु होकर सेवककी स्त्री, बहन, माता और लडकीके साथ मैथुन सेवनेमें नहीं डरते हैं. साधुकों धन न रखना चाहियें, ये आर्यधर्मकी मर्यादा है। तौभी सेवकके पाससें धन लेते हैं. फिर कपट लुच्चाइ करकें धन लेते हैं. सेवकोंपर जुल्म गुजारकर धन हाथ करते हैं. ऐसी वर्त्तना करनेवालेकों गुरु मान लेवै, उनकों हजारो रुपैये दे देवै ये तमाम अज्ञानदशाकी प्रबलता है. ऐसेकों गुरु माननेका विचार नहीं वो. दूसरे सत्य असत्य धर्मकों क्या तपास लेवैगा? अज्ञानतासें ऐसे अज्ञानी गुरुसें ठगाते हैं, उतनेसेंही बस नहीं होता; मगर आगतजन्ममें सच्चे धर्मकी निंदा करनेसें जो कर्म बंधे जाते हैं उससें जन्मोजन्म दुर्गतिके दुःख भुक्तेंगे. और जो पुरुष आत्मार्थी हुवा है अगर थोडा अज्ञान दूर हो गया है उसके प्रभावसें न्यायकी बुद्धि जाग्रत होती है उससें सत्यासत्य मार्गकी परीक्षा करकें खोटा मार्ग त्याग कर सच्चा मार्ग अंगीकार करता है. जैसें गौतमस्वामीजी श्रीमन्त् महावीरस्वामीजीकी महत्त्वता सुनकर बहुतही रोष और अहंकारसें व्याप्त हुवे थे, और भगवान्‌जीके साथ वाद करनेकों समोवसरणमें आये थे; लेकिन भगवंतजीने वेदके अर्थ समझाकर सच्चा मार्ग गौतमस्वामी महाराजकों समझा दिया, वो गौतमस्वामीजीनें न्यायकी बुद्धिसें विचार करकें सत्य जानकर ग्रहण किया, और आपके असत्य धर्मका त्याग किया; और भगवान् सर्वज्ञ है ऐसा दृढ करकें आप भगवानजीके शिष्य हुवे. भगवंतजीने वासक्षेप किया उसनेमें भगवानजीके प्रभावसें करकें आवरण क्षय होनेके सबबसें द्वादशांगीके ज्ञाता हुवे. क्रमसें करकें शुक्ल ध्यानमें स्थित हो घातीकर्म खपा करकें केवलज्ञान पाये और मोक्षमें

पधारे, वैसे जो जो आत्मार्थी पुरुषोंने अज्ञान खपाकर ज्ञान प्राप्त करके अज्ञान खपानेका मार्ग दर्शाया है, वो मार्ग अंगीकार करके चलना कि सहजहीमें अज्ञान क्षय हो जायगा. जिन पुरुषकी अंदर अज्ञानका अंशभी नहीं रहा है वोही पुरुष सर्वज्ञपणा प्राप्त करता है और भगवान्जी उनीकोंही कहे जाते हैं.

१४ मिथ्यात्व नामक दोष है सो मिथ्यात्व किसकों कहा जाय उसका खुलासा करते हैं. सची वस्तुको झूंठा मान लेवे, झूंठी वस्तुकों सची मान लेवै, सत्यका असत्य मान लेवै, असत्यको सत्य मान लेवे, धर्मको अधर्म मान लेवै, अधर्मकों धर्म, देवकों अदेव, अदेवकों देव, चेतनकों अचेतन, और अचेतनका चेतन माने याने जो जो पदार्थ हैं उसके जो जो धर्म रहे हैं उससें विपरीत धर्म मान लेवै, या न्यायको अन्याय और अन्यायकों न्याय मान लेवै ऐसी विपरीत बुद्धि होवे वो मिथ्यात्वकी राजधानी है. यहांपर कोइ शंका उठावेगा कि 'अज्ञान नामक दूषण कहा गया उसमें और मिथ्यात्वमें क्या तफावत है?' उन शंकाके समाधानमें यह खुलासा है कि अज्ञानमें करके जडबुद्धि होती है और मिथ्यात्वसें करके विपरीत बुद्धि होती है—यह तफावत है. जिसकों मिथ्यात्व है उसकों अज्ञानभी है, और जिसकों अज्ञान है उसकों मिथ्यात्वभी है. यह दोनु साथही रहते हैं उससें एकत्वता मालूम होगी; मगर दो शब्दके मायने अलग हैं और भावभी भिन्न हैं ये मिथ्यात्वकी बुद्धिवालेकों बहुत प्रकारके हैं वो समझाने लिये सिद्धांतकारने पचीश भेद कहे हैं. और वो पचीश प्रकारसें श्रावकके बारह व्रत अंगीकार कर लेवै तब सम्यक्त्व अंगीकार होतेही पचीश प्रकारसें त्याग करते हैं वो स्वरूप किंचित् यहां लिखता हुं.

१ अभिग्रह मिथ्यात्व सो कुगुरु, कुदेव कुधर्मका झूंठा हठ पकडा हुवा है वो मिथ्यात्वके जोरसें गर्दभ पुंछकी तरह छोड देवै नहीं, यह दृष्टांत किसी पिताने पुत्रकों समझाया कि जो पकडना सो छोडना नहीं. उस बातका विशेष स्वरूप समझ लिये बिगर वो बात चित्तमें निश्चयतासें कायम करके पीछे कोइ वक्त बाजारमें गया वहां गद्दा दौडता हुवा आया उसकों रोकनेके वास्ते उसका पुंछ पकड लिया. जब गद्देने लातें मारनी शुरू की तब वे लातें खानीही शरु रख्खी; लेकिन पकडा हुवा पुंछ न छोड दिया. वो देखकर लोगोंकों दया आनेसें उसकों समझाया कि 'पुंछ छोड दे, नहीं तो लातें खाकर मर जायगा.' उसने एकही जवाब दिया कि-

'मेरे बापने मुजकों शिक्षा दी है कि जो कुछ पकड लिया सो कभी छोड देना नहीं; वास्ते मैं पकडा हुवा पुंछ वेहोश होनेतक न छोडुंगा.' ऐसा कहकर पुंछ न छोडा और लातें खाकर दुःखी हुवा; वोसी तरह यह मिथ्यात्वके जोरसें सद्गुरु सच्चा मार्ग बतलावे-बहुत तरहसें समझावें; तदपि सुगुरुका वचन मान्य न करे और कहवे कि जो बापदादे करते आये हैं वही करना. क्या बूढे दीवाने थे? ऐसे हठ पकडकर सच्ची बात न समझे और प्रत्यक्ष कुगुरु अपनी औरत या माता भगिनीके साथ बुरी तरहसें चालचलन करता होवे तौभी बापदादाका हठ पकडकर कुगुरुकों न छोडे सो अभिग्रहिक मिथ्यात्व कहा जाता है.

२ दूसरा अनभिग्रही मिथ्यात्व सो सच्चे देव और खोटे-झुंठे देवकों, कुगुरु सुगुरुकों, और सत्य धर्म असत्य धर्मकों-इन सबकों समान समझे. सुदेव और कुदेवकों भी नमस्कार करै, सच्चे झूठेका भेद न मानै, मुहसेंभी बोले कि सर्व देवकों नमस्कार करना; मगर उसका परमार्थ नहीं जानता है कि देवकों तो नमस्कार करना योग्य है; लेकिन देवपना नहीं और उसमें देवपना कैसें मानना चाहिये, वैसा विचार नहीं, उससें गुणी निर्गुणीकों समान मानता है. उसमें भाग्योदयसें सुगुरु मिला तो कल्यान; मगर वो मिल न सके. यादि मिले तो ऐसी बुद्धि रहवे नहीं, और एसी बुद्धि रही है तो उससें मालूम होता है कि कुगुरु मिले हैं और उसकी संगतीसें तत्त्वकों अतत्त्व मान लेवे उससें शुद्ध आत्मधर्म और आत्मधर्म प्रकट करनेके कारण न मिल सके. और भवका विस्तार होवे नहीं; वास्ते आत्मार्थी सत्य असत्यकी परिक्षा करके शुद्ध देवगुरु धर्म अंगीकार करना कि अनभिग्रहीक मिथ्यात्व दूर हो जाय.

३ अभिनिवेशिक मिथ्यात्व सो सत्य देवगुरुकों जाने; मगर मिथ्यात्वके जोरसें उसकों आदरे नहीं. कोइ समझावे तो उसकों कहवे कि बाप दादे मान्य करते हुवे आये है वो कैसें छोड दिया जावे! यदि छोड देवे तो नाककटी हो जाय, बाकी हम-जानते है कि अच्छे तो नहीं है.' ऐसा जवाब देवे और ममत्व करके असत्य प्ररुपणा करै.-खींचा तानी करैं-उन्मार्ग बतलावे, आत्माकों कर्मबंधनका भय नहीं उससें वीतरागका मार्ग सत्यजाने तौभी वोसी तरह अपने अहंकारके लिये प्ररुपणा न करै. आप वर्त्तेभी नहीं और सत्यपर द्वेष करै. ऐसें हठवादी पार्श्वनाथजीकी परंपराके साधु गोशालाके साथ रहे हुवथे उनोंकों श्रीमद् वीरपरमात्माजीके श्रावकने जाकर कहा

कि-'आपने श्री पार्श्वनाथजीका उपदेशभी श्रवण किया है और गोशालेकाभी श्रवण कीया है, उसमें सत्य क्या है?' उस वक्त उन साधुने जवाब दिया कि-महावीर स्वामीजी जैसा पार्श्वनाथजी उपदेश देतेथे वैसाही देते हैं; परंतु हमकों तो ममत्व बंधाया है उससें वीरका मरोड उतारेंगे. हम दुर्गति जानेमें नहीं डरते है.' ऐसा जवाब अभिनिवेशिक मिथ्यात्वके जोरसें दिया. वीसी तरह वर्त्तमान समयमेंभी सच्चा जान नेपरभी ऐसें आग्रहसें उत्सूत्र बोलतें नहीं डरते हैं, दूसरे जीवोंको उन्मार्गका उपदेश दे कर उनकोंभी उन्मार्गके अंदर सामिल करता है. वीतरागके सत्मार्गकी निंदा करै ऐसी दशा है सो मिथ्यात्वके प्रबलताकी है. और ऐसी दशा है वहां तक अपने आपके सहज स्वभावकोंभी न पिछान शकैगा विभाग स्वभावकों न छोडैगा और शुद्ध तत्वकी श्रद्धाभी न रहवैगी वास्ते ये मिथ्यात्वका परिहार करना.

४ संशय मिथ्यात्व सो वीतरागजीके वचनमें संशय पडे; जैसें कि शास्त्रमें ऋषभदेवजी महाराजके समयमें पांचसो धनुषके मानव शरीर थे, और आयु क्रोड पूर्वका था. ऐसा सुनकर शंका करै कि-'इतना बडा शरीर और आयुष् होवै नहीं.' ऐसा मानकर प्रभुजीके वचनकों न सद्दहै; लेकिन शोचै नहीं कि ऐसी गतसमयकी बाबतें और अरूपी पदार्थकी श्रद्धा आप्त पुरुषकी जो सर्वज्ञ उनके वचनकी प्रतीत करनेसें होती है; वास्ते आप्त पुरुषकी पेस्तर प्रतीति कर लेनी चाहियें. प्रतीति करनेका साधन अभी वो इतनाही है कि जो जो लोक जो जो देवकों मानते हैं उन देवोंकों वे सर्वज्ञ मानते हैं, तो वे देव सर्वज्ञ हैं या नहीं वो मध्यस्थ बुद्धिसें तपास करनेके वास्ते सब देवोंके चरित्र पढ देखना; उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता मालूम हो आवै या नहीं. जैसे कि महादेवजीनें पार्वतीके बनाये हुवे पुत्रकों पुत्र न जाननेसें उसकों जारपुरुष जानकर मार डाला. फिर उसका उडाया हुवा शिर कहां गया वोभी ज्ञानसें मालूम न हुवा, उस्सें हाथीका शिर ल्याकर गनपतिके धडपर कायम किया. ऐसे दृष्टांत देखनेसें सर्वज्ञ है या नहीं वो प्रतीति हो जायगी. वीसी तरह श्री महावीरस्वामीजी केवलज्ञान पाकर सर्वज्ञ हुवे पीछे सर्वज्ञताकी स्खलना किसी जगहपर नही होती है. तो जिस पुरुषमें सर्वज्ञताकी न्यूनता मालूम नहीं होती उस पुरुषके वचनमें संशय न करना चाहियें. युक्ति करनेकी शक्ति होवै तो उस युक्तिसें तपास करनी मुनासिब है. वर्त्तमान समयमेंभी हवाकी फेरफारीसें मजबूत मनुष्य

मालूम होते हैं, वीसी तरह उस समयकी हवा ऐसी अनुकूलथी उससें ऐसे बन गये ऐसा विचार करनेसें हमकों तो वीतरागजीके वचनमें कोइभी संशय होताही नहीं. और दूसरेके चरित्र देखे तो उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता नजर आइ है. आधुनीक समयमें चरित्रचंद्रिका नामक बुक छापी गइ है उसमें बहुतसें देवोंके चरित्र हैं वो मैंने अवलोकन किये हैं, वीसी तरह परीक्षक जनोंको मध्यस्थ बुद्धिसें पढनी दुरूस्त है. उस किताबमें महावीरस्वामीजीकाभी चरित्र है वो बरोवर नहीं लिखा है. तौभी उसमें सर्वज्ञताकी न्यूनता नहीं है. जैनाचार्य हेमचंद्राचार्य कृत द्विजवचनचपेटा और धर्मपरीक्षाका रास ये दो पुस्तक देखोगे तो कितनेक देवके चरित्र नजर आवेंगे और उनकी सर्वज्ञताकी न्यूनताभी मालूम हो जायगी; वास्ते जिनपुरुषमें न्यूनता नहीं है उन पुरुषके वचनमें कोइभी बाबतके वास्ते संशय हो आवै उसें संशय मिथ्यात्व जानना.

५ अनाभोगिक मिथ्यात्व सो जिसकों ये मिथ्यात्वका संग हुवा हो उसकों धर्मकर्मकी खबर नहीं होती है, उसकी खोजनाभी नहीं, और मूढतामें मस्त रहता है. धर्मके सन्मुख दृष्टिही नहीं देता; जैसे कि एकेंद्रि प्रमुख जीव अव्यक्तपणेमेंही काळ गुमावे हैं, वैसें वो काल गुमावै, उसें अनाभोगिक मिथ्यात्व कहा जावै.

अब दश प्रकारका मिथ्यात्व ठाणांगजी सूत्रमें फरमाया है तदनुसार लिखता हुं:—

१ धर्मकों अधर्म माने वो मिथ्यात्व. अब धर्म है सो दो प्रकारका है याने एक निश्चय धर्म सो आत्मस्वभावमें रहना. और उससें विपरीत जो जडधर्म है, उसमें प्रवर्त्त कर उसें धर्म मान लेना सो अधर्म. पुद्गल प्रवृत्ति दो प्रकारकी है—एक पुद्गल प्रवृत्ति आत्मधर्म प्रकट होनेके कारणरूप है, वोभी आदरणीय है, उसकों व्यवहार धर्म कहा है. निश्चय और व्यवहार इन दोनु धर्मोंकों जो जो स्वरूपसें है उसी स्वरूपसें मानना वो धर्म, और उससें विपरीत मानना सो मिथ्यात्व, व्यवहार धर्म, जो जो गुणस्थानपें गुणस्थान मर्यादा मुजब न आदरै और धर्म मानै येभी मिथ्यात्व है. हृदयमें निश्चय धर्म, धारण करना वो न करै और व्यवहार वर्त्तनाकोंही निश्चयरूप मान लेवै तो वोभी मिथ्यात्व है. जो जो अंशसें आत्मा निर्मळ होवै, कषायादिसें मुक्त होवै उसकों निश्चय धर्म कहा जाय. वो प्रकट होवै वैसे कारण अंगीकार करने चाहियें. कारणकों कारणरूप मानकर वर्त्तनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा.

२ अधर्मको धर्म मान लेवै याने अनादि कालका जीव अधर्मकों सेवन कर रहा है. फिर अधर्मीके कुलमें जन्म पाया है उससें उनकी बातें सुनकर वो रीतिकी श्रद्धा करें और हिंसा करकें धर्म मान लेवै; जैसें कि कितनेक लोग विच्छु, सांप, सेर-सिं-हादि हिंसक जीवकों मारडालनेमें धर्म है ऐसा मानते हैं. फिर बकरीदमें बकरे मारनेमें धर्म मानैते.हैः इस तरह . अज्ञानतासें जीवहिंसा करकें धर्म मान लेवै सो अधर्मकों धर्म मानते हैं ऐसाही कहा जायगा. पुनः लोगोमें आर्यलाग कहे जाय, दयालुभी कहे जाय और कितनेक बकरे घोडे वगैरः जीव यज्ञ करकें उसमें होम देवै उसकों धर्म माने, कोइभी जीवकों दुःख होवै तो उसका फल यही है कि उस पापसें अपनकों दुःख भूक्तना पडे ऐसा सब धर्म-मजहबवाले मानते हैं; तथापि ऐसे प्राणीओं कों दुःख देनेमें पाप नहीं मानते है ये अधर्मकों धर्म मान लिया कहा जायगा, वास्ते जो-जो मनुष्य कोइभी जीवकों दुःख देना, जूठ बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, धनकी तृष्णा रखना-इन वस्तुओंमेंसे कोइभी वस्तु करके धर्म माने वो अधर्म कों धर्म मान लियाही कहा जायगा यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि तुमारे जैनी घोडे गाडीपर बेठनेवाले, अच्छे आभूषण जेवरके पहननेवाले, ढोलीयेपर अच्छी शय्या बिछाकर सोनेवाले और हर हमेशां मिष्टान भोजनके करनेवाले सुखिये जीवकों संसार छुडा करकें दीक्षा दिलाकर नंगे पैरसें चलाते हो, खुले शिरसें फिराते हो, जमीनपर सुलाते हो, घर घर भीख मंगवाते हो, जैसा (लूखा सूका) आहार मिले वैसा खिलवाते हो और सुंदर विगय खानेका मना करते हो ये क्या? उसकों दुःख देकर धर्म मान लिया है ऐसा न कहा जायगा? इस विषयमें खुलासा करेंगे कि हमारे जैनी मुनि महाराज किसीकोंभी जोराइसें-जबरदस्तीसें इस तरह नही करवाते हैं. और जबरदस्तीसें इस अंदरका कुछभी किसीकों करवावें और धर्म मानें तो बेशक तुम कहते हो वैसाही होवे; मगर हमारे मुनि तो संसारमें क्या क्या, दुःख हैं, फिर संसारमें सुखकों दुःख माननेसें क्या फल होता है, मोक्षसाधन किस तरह किया जाता है उसका धर्मोपदेश देते हैं वो धर्मोपदेश आत्मार्थीजन सुनकर जड शरीरमें रही हुइ अज्ञानताकी प्रवृत्ति अनिष्ट लगती है और आते जन्ममें विषय कषायके कटुफल जाननेमें आते है वो जानकर संसारका त्याग करकें ऐसी प्रवृत्ति अपनी प्रसंन्नतासें करते है; और वैसा करनेसें संसारमें जो जो धन पैदा करनेके दुःख हैं, रसोइ बनानेके, वस्तु ल्यानें

के आभूषनका बोजा उठानेके और विषयभोगसें शरीर खराब-पायमाल करनेके दुःख दूर हो जाते हैं. (विषय सेवनके समय शरीरकों कितनी तकलीफ उठानी पडती है और सेवन कर रहे पीछेभी शरीरकी कैसी स्थिति हो जाती है? वैसे कुल दुःख दीक्षाग्रहण करनेसें दूर हो जाते हैं.) क्रोडपतिकोंभी धन संबंधी कितनी फिकर करनी पडती हैं? कुटुंब होवै तो उनके झगडेमें कितना दुःख? उनकों अज्ञानपनेसें दुःख नहीं मानते है; लेकिन बुद्धिसह शोच किया जाय तो संसारमें प्रातःकालसें उठ खडा होवै वहांसें लगाकर फिर रात्रिमें सोने तक कितने दुःख भुक्तने पडते हैं, उनमेंसे एकभी दुःख साधुपनेमें नहीं है. सदाकाल आनंदमेंही जाता है, नया नया ज्ञान प्राप्त होता है, उससें बुद्धिमान जन महान् प्रसन्नतामें रहते हैं; वास्ते जैनी लोग किसीकों दुःख देकर धर्म नहीं मानते हैं. और जो जो आत्मार्थी जन हो उनोंकों उक्त कथित पांचों अधर्ममेंसें कोइभी अधर्म प्रवृत्ति करकें धर्म नहीं मानना, और जो मानेगा तो वो अधर्मकोंही धर्म मान लिया कहा जायगा.

३ मार्ग जो मोक्षमार्ग है वो मार्ग साध्य करकें वीतरागपणेकों पाये हैं, आत्माका ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप गुण प्रकट किये हैं, केवलज्ञानसें करकें जगतके भाव एक समयमें जान रहे हैं, वैसे पुरुषोंनें बताया हुवा मोक्षमार्ग याने मोक्षसाधन उस साधनकों उन्मार्ग मानै और उसका आराधन न करै, आराधन करनेवालेकी निंदा करै उस मार्गकों उन्मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना.

४ हिंसा करनेकी बुद्धि देवै, झूंठ बोलै, लोगोंकों ठग लेनेमें न डरै, स्त्रीगमन करै, पैसेकाममत्व लोभ ज्यादे रक्खे, वैसे गुरुकी सेवा करकें धर्म मानै याने जगतके पदार्थका जिसकों ज्ञान नहीं; तदपि पदार्थका स्वरूप विपरीत बतलावे और बोलै कि यह मोक्षमार्ग है. पांच यम तो जगत्प्रसिद्ध है, वो यमकों अच्छे कहवै; मगर आप पालन न करै. विगर छाना हुवा [अनगल] पानी उपयोगमें लेवै, उसमें त्रस थावरजीवकी हिंसा होवै और नदीमें न्हानेमें पुन्य मानै. शोच करो कि महाभारतमें दुपट गलणा रखकर पानी गालनेका कहा है, तो नदीका पानी किसतरह छान लिया जायगा? न छाना जाय तो हिंसा होयगी. और पीछे कहने लगै कि नदीमें न्हानेका महा पुन्य है. यज्ञ करकें जीवहिंसा करनेका उपदेश देवें उसकों मोक्षमार्ग कहैं. फिर जैनी होकरभी संतानकी, धनकी, और परलोकमें राजा देवता होनेकी लालचसें ध-

मंकरणी करै और उसकों मोक्षमार्ग मानै, यहभी उन्मार्गकों मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व है. फिर मानके लिये, यशके लिये और लोगोंको अच्छा बतलानेके वास्ते आत्महितकी बुद्धि विगर वीतराग मार्गकी अश्रद्धानपणेसें जो धर्मकरणी करै वो उन्मार्गकों मार्ग माननेरूपही है. पुनः जो मार्ग वीतरागजीने शास्त्रमें निषेध किया है वैसी धर्मकी प्रवृत्ति करके मार्ग मानै, अविधिमें प्रवर्त्त कर दूसरेकों प्रवर्त्तना करावे वो उन्मार्गकों मार्ग माननेरूप मिथ्यात्व जानना.

५ जीवकों अजीव मानें सो मिथ्यात्व; जैसे कि कितनेक नास्तिकमति तो जीवही नहीं मानते. पांचभूत मिलकर शरीर बनता है सो जीव है, उस विगर जीव अलग नहीं. पांचभूत बिखर जाय कि कुछभी नहीं. परजीवभी नहीं, ये जीवकों अजीव माननेवाले सर्वथा प्रकारसें जानना कितनेक पंचेंद्रि तिर्यंचकों जीव मानैं; परंतु पांच थावरकों जीव नहीं मानते हैं येभी जीवकों अजीव माननेका मिथ्यात्व जानना. जैनी लोग पांच थावरकों तो जीव मानते हैं; मगर कितनीक शास्त्रके बोधकी खामीसें सचित्त वस्तुकों अचित्त माननी होती है. जैसें कि गुलाबजल कितनेक समयका हो उसकों कितनेक सचित्तके त्यागी अचित्त मानकर उपयोगमें लेते हैं. शास्त्रमें सबसें ज्यादे चूनेके पानीका काल है. चूनेके पानीसें गुलाबजलमें कुछ ज्यादे गर्मी नहीं है कि उससें ज्यादे काल तक रहनेसें सचित्त न होवे. ऐसा विचार करनेसें सचित्त होवे ऐसा मालूम होता है, तथापि अचित्त मानना योग्य नहीं. और जो जो जीव पदार्थकों अचित्त माननेसें जीवकों अजीव माननेरूप मिथ्यात्व लगे; वास्ते सर्वज्ञमहाराजजीने जिसकों जीव कहे हैं उसकों जीव कहनेसें यह मिथ्यात्व दूर होता है.

६ अजीवकों जीव मानना सो मिथ्यात्व, वो सब शरीर है सो अजीव है सो मैंही हुं, युं करके ममत्वभाव करना. पुनः वेसमझसें शास्त्रमें जिस वस्तुकों अचित्त कही हावै उसें सचित्त मानें तोभी मिथ्यात्व लगे.

७ साधुकों असाधु मानना सो मिथ्यात्व है. जो मुनीमहाराज पंचमहाव्रत पालते हैं, प्रभुजीके हुकम मुजब चलते हैं, मोक्षमार्गमें तत्पर हो रहे हैं, स्त्री धनकी ममतामें दूर हैं और सावद्य वचन मात्र नहीं बोलते हैं ऐसे मुनीराजकों असाधु मानै. आपने संसार-धन-स्त्रीके अभिलाषी गुरुवोंकासंग किया है उनोने बुद्धिकों विपरीत बना दी है, उससे सत्य साधुकों असाधु मानै ये मिथ्यात्व है. सब ढूंढेको

परीक्षा ज्ञान हुवेसें होती है, उस विगर जिस जिस मजहबमें जो जो पडे हैं-फंसे हैं वे दूसरे मजहबके साधुकों खोटे-झुठे मानते हैं, और हरएक मजहब-पंथमें रचनाभी ऐसी हो गइ है कि जिस्सें उत्तम पुरुषभी ऐसाही मानकर एकदूसरेकी निंदा करते हैं. मगर इतना विचार करें कि पांच यम तो सब दर्शनवाले मानते हैं और यथार्थ प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह यह पांचों वस्तुके संपूर्ण त्यागवाले कौनसे साधु है ऐसा जो दर्याफत करें तो जल्दी समझनेमें आ जाय, और उत्तमपुरुषकी निंदा करनी मोकूफ हो जाय.

८ असाधुकों साधु माने सो मिथ्यात्व है, याने असाधु जो साधु नाम धारण किया है; मगर धन और स्त्रीका त्याग नहीं किया है, जीवहिंसादि आरंभकों तो नहीं छोडा है, व्यापार रोजगार करते हैं, मंत्र यंत्र करके आजीविका निभाते हैं, लोगोंकों विपरीत समझाकरके पैसे लेते हैं, ऐसेकों साधु मानना सो, और कितनेक लोगोंकों ठगलेनेके लिये बाह्यसें धनका त्याग बतलाते हैं; लेकिन चित्तमें पैसेकी इच्छा होवे वोभी असाधु कहे जाय. कितनेक साधुपणा पालते हैं; परंतु वीतरागजीके वचनकी श्रद्धा नहीं. कितनेक परलोकके सांसारिक सुखकी इच्छासें साधुपणा पालते हैं; मगर मोक्षके लिये उद्यम नहीं करते हैं. पुनः कितनेक पंचांगीकों नहीं मानते हैं. जिनप्रतिमा भगवंतजीनें मान्य करनी कही है-गृहस्थीकों पूजनेके लिये फरमाया है; तथापि गृहस्थकों उपदेश करें कि जिनप्रतिमा पूजनी नहीं; पूजनेसें पाप होता है. ऐसी प्ररुपणाके करनेवालेभी असाधु कहेजाते हैं. उनोकों साधु मानें सो असाधुकों साधु माननेरूप मिथ्यात्व जानना. दूसरी रीतिसे आपकी विभाव परिणति नहीं मिटी है, विभावमें [विषयकषायमें] मग्न रहेवे और आपके मनसें "मैं अच्छा करता हुं" ऐसा मानकर आपकी प्रशंसा करें सो आपके विषें असाधुपणा है; तद्यपि आपमें अच्छापणा-साधुपणा मानना वो असाधुकों साधु माननेरूप मिथ्यात्व है.

९ सिद्धभगवान जो अष्टकर्म याने ज्ञानावरणी क्षय करकें अनंतज्ञानरूप केवलज्ञान प्रकट किया है. दर्शनावरणी कर्म क्षय करकें सामान्य उपयोगरूप केवलदर्शन प्रकट किया है. मोहनीकर्म क्षय करकें चारित्रगुण (आपके आत्मस्वभावमेंही स्थिर रहना उस रूप चारित्रगुण) तथा क्षायक समकित प्रकट किया है. अंतरायकर्म क्षय करकें अनंतवियोदिक गुण प्रकट किये हैं नामकर्म क्षय करकें अरूपीगुण प्रकट किया

है, गोत्रकर्म क्षय करकें अगुरु लघुगुण प्रकट किया है. वेदनीकर्म क्षय करकें अव्याबाधसुख प्रकट किया है. आयुकर्म क्षय करकें अक्षयस्थितिकों पाये हैं. इसतरह आठ कर्म क्षय करकें अष्टगुण प्रकट किये हैं-ऐसे सिद्धमहाराजजीकों सिद्ध न मानें-भगवंत न मानें और ऐसे पुरुषकी निंदा करै, ऐसे देवकों देव मानते होवें तो उसकों उलटा सुलटा समझाकर ऐसे देव परसें आस्ता उठावें. ये मिथ्यात्व सेवनसें आत्माके शुद्ध गुणभी कोइ दिन प्रकट नहीं होवें; सबब कि ऐसे गुणकी इच्छा होवें तो ऐसेही पुरुषके गुणग्राम करता; मगर नहीं करता है और निंदा करता है वही मिथ्यात्व जानना.

१० सिद्ध नहीं हो याने जिनके अष्टकर्म रहे हैं, नये कर्मभी बांधे रहते हैं, विषयकषायमें आसक्त हैं, वो उनके चरित्रसें सिद्ध होता है; ऐसा होनेपरभी वैसे देवोंकों सिद्ध मानना-भगवंत मानना, उनोंकी आज्ञा मुजब चलना, वही संसारवृद्धिका कारण है. वही आत्माके गुणोंका घातकारक है. वास्ते मिथ्यात्व छोडनेका इतनाही उद्यम करें कि अपनकों धर्मकरणी करनेकों बतलाते हैं वो करणी करकें देवोंने देवपणा प्राप्त किया है या अपनकोंही विषयकषायसें मुक्त होनेका कहकर आप खुद विषयकषायमें मग्न रहते है? यदि कथन मुजब वर्त्तन न हो तो एक ठगाइ जैसा काम हुवा ऐसा बुद्धिमानोंकों सहजमें समझमें आ जायगा. और जिसमें गुण प्रकट हुवे हैं वोभी समझमें आयगा. वास्ते अष्टकर्म क्षयें किये होवें वही सिद्ध-भगवान्-देव-ईश्वर माननें योग्य हैं. ऐसा करनेसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा-यह दश प्रकारके मिथ्यात्व हैं.

औरभी छः मिथ्यात्व है याने पहिला लौकिक देवगत मिथ्यात्व सो उपरके दश मिथ्यात्वकी अंदर असिद्धकों सिद्ध माननेका मिथ्यात्व लिखा है वैसे देवकों देव मानना या सांसारिक कार्यके लिये मानत-आखडी रखनी उसे लौकिकदेवगत मिथ्यात्व कहाजाता है. १,

दूसरा लौकिकगुरुगत मिथ्यात्व सो गुरुनाम धराके रातदिन पांच अव्रत सेवन करै ऐसे संन्यासी-फकीर-पादरी वगैरःकों गुरु मानना सो गुरुगत मिथ्यात्व कहाजाता है. २,

तीसरा लौकिकधर्मगत मिथ्यात्व सो जिस पर्वके दिन धर्मका परमार्थ रहा नहीं, फक्त कितनेक पाखंडीओंने उत्पन्न किये हुवे पर्व याने होली, बलेव (श्रावणी

पूर्णीमी.), नागपंचमी, रांधनछठ, शीलसप्तमी, वगैरः पर्वकों धर्मपर्व माननना, और हिंसामय, विषयकषायमय प्रवृत्तिकों धर्मप्रवृत्ति माननी, तथा पुद्गलभावकी प्रवृत्तिकों धर्मप्रवृत्ति माननी उसें लोकिकधर्मगत मिथ्यात्व कहाजाता है. ३,

लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो श्री तीर्थंकरमहाराजजीकों तो मुक्तिके वास्ते देव मानना ये तो योग्य है; क्यों कि मुक्तिके लिये माननेसें समस्त कार्यसिद्धि होती है; परंतु वो इच्छा छोडकर संसारी कामके लिये मानना याने मेरे बेटा होगा तो मै सो रुपये चढाउंगा ऐसी मानत माननेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है; सबब कि भगवंतजीकी यथार्थ श्रद्धा होवे तो सहज स्वभावसेंही होगा; लेकिन पुत्र होवेगा तो चढाउंगा ऐसा न माने. वो तो युंही जानता है कि जितनी बन सके उतनी भगवंतजीकी भक्ति करनी. भक्ति सब कार्य-सिद्धिदायक है. भगवंतजीकी भक्ति करनेपरभी कभी कार्यसिद्धि हाथ न लगै तो जानता है कि जो बनता है सो पूर्वकर्मके उदयसें बनता है और निकाचित कर्म टालने-हठानेकों कोइ समर्थ नहीं. भगवान् वीरस्वामीजीकोंभी कर्म उदय आये सो भुक्तने पडे, ऐसा शोचकर श्रद्धा भ्रष्ट न होवे. और जिनकी श्रद्धा मजबूत नहीं है उनकी विचारणा मानत माननेकीही रहती है. पूर्वके निकाचितकर्मके जोरसें कार्य न हुवा तो फिर उसकी कुछ बाबतोंमें अज्ञानताके मारे श्रद्धा उठ जाती है और धर्म भ्रष्ट होता है; वास्ते ऐसी मानत-आखडी न करनी. करनेसें लोकोत्तर मिथ्यात्व लगता है. पुनः जिनपुरुषका मिथ्यात्व नष्ट हुवा है उनोंनें तो भगवंतजीनें मोक्षमार्ग बतलाया है सो अंगीकार किया है; उससें मोक्षके सिवा पुद्गलीक सुखकी इच्छाही नहीं है. फकत आत्मतत्त्वकीही सन्मुख हुवे हैं. जो जो कर्म उदय होवे वो खुशीके साथ भुक्तते हैं कि मुझकों उदय आये हुवे कर्म समभावसें भुक्ते जाय तो नये कर्मोंका बंध न हो सके ऐसी भावना बन रही है, उससें स्वप्नमेंही ऐसी मानत की इच्छा नहीं. सिर्फ सहजसुखके कामी हैं, वे लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व सेवन नही करते हैं. ४,

लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व, सो जैन के गुरुमहाराज मोक्षमार्ग दायी हैं उनोंकों मोक्षके लिये मानने योग्य है. वो छोडकर संसारके मुतलबी काममें माने सो लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है. जैनके साधुका वेष पहनते हैं; परंतु प्रभुजीकी आज्ञासें बहार (विरुद्ध) वर्त्तन रखते हैं, उत्सूत्र प्ररुपणा करते हैं, उन्मार्ग चलाते हैं-ऐसे वेषधारी

सुफेद या पीले कपडेवाले नामधारी साधुकों गुरु मानना सो लोकोतर गुरुगत मिथ्यात्व है. ५,

लोकोत्तर धर्मगत मिथ्यात्व वा पर्वगत मिथ्यात्व, सो जैनके पर्व संसारार्थ करना; जैसें कि फल पंचमी करे तो लडके होवें, आशापुरीके आयंबिल करें तो आशा पूर्ण होवे; ऐसी इच्छासें जो जो पर्वाराधन करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है. और जो तपस्या कर्मक्षयके लिये करे तो वो निर्जरारुप फलदायक है, वो कुछ दोषित नहीं. संसारकी आशासें करना सो पर्वगत मिथ्यात्व है धर्मसाधन करकें यह लोक परलोककी इच्छा करनी वो सपस्त कर्म आनेका कारण है; क्योंकि एक मनुष्यने देवलोककी या राजा होनेकी इच्छासें संसारका त्याग किया; अब ये त्याग इच्छा सहित है. उसकों देवता या मानवसुखकी या भोगकी इच्छा है, तो ऐसी इच्छासे तप करें तो संसारकीही वृद्धि होय; वास्ते ऐसी इच्छाका त्याग करना और आत्मगुण प्रकट करनेकी इच्छासें धर्मकरणी करनी कि सहजसें ये मिथ्यात्व दूर हो जायगा, ६—ये छः मिथ्यात्व हुवे. अब तीसरी रीतिसें चार मिथ्यात्व हैं वो कहते हैं:-

१ प्रवर्चना मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वकी अंदर, प्रवर्चना रखनी याने कोइ मिथ्या सेवन करता है, उसकी सहाय्यतामें, या मिथ्यात्वीके जलसेमें,—वरघोडे -सरघसमें. वरातमें, पधरामणीमें, या अपने कुटुंबी अन्य देवकी सेवा करते होवें उनके साथ वर्त्तन रखना, या मिथ्यात्वके पर्व करना ये प्रवर्चना मिथ्यात्व है.

२ प्ररुपणा मिथ्यात्व, सो जिनेश्वर महाराजजीने आगममें-पंचांगीमें, या पूर्वाचार्यजीके ग्रंथोंमें जिस जिसतरह धर्म प्ररुपा है उससें विपरीत—अपनी मतिकल्पनासें प्ररुपणा करें; जैसें कि दिगंबर मार्ग चलानेवाले जैनी होनेपरभी वीतरागजीके आगम जो विद्यमान-प्रवर्त्तमान हैं, और कपोल कल्पित शास्त्र तैयार करकें जुदा मार्गही चलाते हैं कितनेक ग्रंथोंकी रचनामें निःकारण श्वेतांबरमतकों दोषित किया है, जैसें कि संयमसें भ्रष्ठ वर्तने वालेकों वंदन पूजन करना श्वेतांबरीभी निषेध करते हैं; तदपि असें साधु श्वेतांबरी मतके हैं, उससें ये मत झूठा है. ये लिखना कितनी और कैसी भूलसें भरपूर है? मगर जिसकों उत्सूत्र बोलनेका डर नहीं वही बोलते हैं. दिगंबर मत चलानेवालेने साधुकों वस्त्र न रखना ऐसा बतलाया है उससें क्या हुवा कि वस्त्र रहित साधु होना बंध हो गया, और साधुका मार्गही बंध हो गया,

नाम मात्र कोः [साधु नग्नपनेसें रहनेवाला] होता है तौभी वो दिगंबर साधुभी उपरसें वस्त्र ओढकर रखता है. इसमें प्ररुपा हुवा मार्ग कायम रहाही नहीं. प्रभुजीका एक अंग पूजते हैं, प्रभुजीने आभूषणका त्याग किया है वें आभूषण न चढाना; तो प्रभुजीने स्नानकाभी त्याग किया है तब प्रभुजीकी मूर्त्तिकों पखाल [प्रक्षालन] भी क्यों करते हो ? यदि पखाल करनेमें, एक अंगपूजनमें तुमारे अभिप्रायसें हरकत नहीं आती तो शोचो कि येभी निषेध किया हुवाही तुम करते हो. वैसेही सब अंगोंकी पूजा करो और आभूषण चडावो तो क्या हरकत होवे ? लेकिन विगर विचारसेंही ये बात फैलाइ है, श्वेतांबर रीत मुजब चलते हैं. जैसे मेरुशिखरपर भगवंतजीका जन्माभिषेक इंद्र महाराजने किया उस वखत आभूषण पहनाये थे वो भाव ल्याकर ये सब कर्त्तव्य करना है, भगवंतजीकी मूर्त्ति आरोपित है उन्होंकों जो जो अवस्था आरोपकर भक्ति करे वो होवे, ये विचार न करते अष्टद्रव्यसें भक्ति करनेहारेकों निंदा करता है, वही विपरीत प्ररुपणा है. फिर स्त्रीकों मुक्ति नहीं मानते हैं. और गोमटसार दिगंबरका करा हुवा है वो उन्होंने मान्य किया है. ये नामांकित ग्रंथ है, उसमें एक समयमें दश स्त्री मोक्ष जाय ऐसा कहा है; तथापि उस बाबतपर लक्ष न रखकर स्त्रीकों मुक्तिही नहीं एसी विपरित परुपणा करते हैं. दिगंबर मतकी चर्चा विशेष प्रकारसें अध्यात्ममत परिक्षामें उपाध्यायजी यशोविजयजी महाराजने दर्शाइ है उससें यहां ज्यादे नहीं लिखता हुं. ऐसेंही ढुंढीए तेरापंथी वगैरः आगमसें जितनी विपरीत प्ररुपणा करते हैं वो प्ररूपणा मिथ्यात्व जानना. ये प्ररुपणा मिथ्यात्वज्ञान हुवे विगर दूर होनेका नहीं; वास्ते वीतरागके वचनकी श्रद्धा सहित ज्ञानका अभ्यास करना कि प्ररूपणा मिथ्यात्व दूर होवे. बोध विगर ज्यों करते आये है त्योंहि करना, ऐसा करनेसें मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकता; वास्ते ज्ञान निष्पक्षपातसें करना.

३ प्रणाम मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वमोहनीका जहांतक उदय है वहांतक प्रणाम मिथ्यात्व दूर नहीं होवैगा. व्यवहारसें प्रभुपूजन प्रमुख करेगा; मगर अंतरंगमेंसें मिथ्यात्वका क्षयोपशम या उपशम हुवा नही वहांतक प्रणाम मिथ्यात्व नहीं हटैगा. ये जेवे उपशम समकित या क्षयोपशम समकित पावैगा, तब प्रणाम मिथ्यात्व दूर होवैगा. वास्ते ज्ञानमें और ज्ञानीपुरुषकी उपासनामें तत्पर रहेना. और ज्ञानीके वचन मुजब चलनेकी अति उत्कंठा रखनी. देवगुरुका अतिशय आराधन करना, उससें ये मि-

थ्यात्व दूर हो जायगा. अब ये मिथ्यात्व दूर हुवा है या नहीं उसकी परीक्षा समकितके लक्षण समकितकी सज्झायमें यशोविजयजी महाराजने कहे हैं, उस मुजब आपमें है या नहीं वो मुकावला कर लेनेसें मालूम हो सकेगा, और अनुमानसें धारण किया जायगा. निश्चय तो अतिशय ज्ञानीके वचनसेंही होवे, वो तो वर्त्तमानकालमें विरह है इससें लाइलाज हैं. और अतिशय ज्ञानीको पूंछे विगर निश्चय न होवे उनका दृष्टांत कि इशानेंद्रमहाराजने भगवंतजीको प्रश्न पूंछे कि 'मैं भवी हुं या अभवी? समकिती हुं या मिथ्यात्वी?' ऐसा तीन ज्ञानवालेसें मुकरर न हुवा, तो अपन क्या मुकरर कर सकै? तौभी शास्त्राधारसें उद्यम करना. मार्गानुसारीके गुण हरिभद्रसूरीजीने धर्मबिंदु ग्रंथमें बतलाये हैं उसके साथ मुकावला कर लेना, और मुकावला करनेमें लक्षण न मिलते आवै तो मिथ्यात्व दूर नहीं हुवा है ऐसा समझना.

४ प्रदेश मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके दलिये आत्मप्रदेशके साथ क्षीर नीरकी तरह एकत्र हो रहे हैं, वो जब क्षायकसमकित होता है तब दूर होता है. मिथ्यात्व बंध, उदय, सत्ता ये तीनुं प्रकारसें हठ जाय तब क्षायक समकित होता है; वास्ते वो समकित प्रकट करनेका भाव रखना कि प्रदेशमिथ्यात्व दूर हो जाय.

ये सब मिलकर पचीश प्रकारके मिथ्यात्व शास्त्रमें दर्शाये हैं. इसमें कितनेक भेद एक दूसरेको मिलते हैं, उसका सबब इतनाही है कि सच्ची वस्तुको झूठी कहेनी ये मिथ्यात्व है, तो अच्छी बुद्धिवालेको तो एक शब्दही बस है; मगर विषमकालमें मेरे जैसे मंदमतिवालोंको रूपांतरसें भेद दर्शाये हुवे नजर आवे तो मन सुधर जाय; वास्ते अलग अलग भेद हैं. वो समझकर हरएक प्रकारसें विभावदशा मुक्त होनेका कामी होनाही दुरुस्त है. कितनेक जैनी नाम धारण करवाते हैं, पोषध प्रतिक्रमण करते हैं, जिनभक्ति करते हैं, गुरुकी सेवा करते हैं, परदेशसें गाँवके लोगोंको धर्मबोध होनेके लिये साधुजीको बुलवाते हैं; मगर गुरुजी स्याद्वाद मार्ग दर्शाते हैं उससें कोइ भव्यजीव प्रतिबोध पाता है, और दीक्षा लेनेको तत्पर होता है. कि उसके माता पिता और सगेसंबंधी गुरुकी निंदा करनेको तैयार होते हैं, लडनको कटिबद्ध होते हैं और गाली गलुच देनेमें बेधडक हो जाते हैं किंचित्‌भी पापका भय नहीं रखते हैं. यह कैसे अन्यायकी बात है कि जिनोंको उपदेश देनेके लिये बुलानेमें आये है वो तो हर प्रकारसें संसारसें उदास होने वैसाही उपदेश देवे, उससें कोइ उत्तम जीव

दीक्षा लेनेकों तत्पर हो जाय, तो उसमें साधुजी माहाराजकी क्या कसुर कि निंदा करनेकों–लडनेकों तैयार होते हैं ? साधुजी कभी फेरफार युक्तिसें करकें बोले, तो श्रावक कहेंगे कि साधु होकर झूठ बोलते हैं. युं कहकर विचित्र प्रकारसें निंदा करने लगते हैं. ये सब जोर मिथ्यात्वका है वास्ते ऐसी वर्त्तना नहीं करनी. पुनः शास्त्रकी श्रद्धा है ऐसा सब लोग कहते हैं; परंतु आपकों स्वार्थ सिद्धिरूप बात मालूम न हुइ तो शास्त्रपरभी लक्ष नहीं देते हैं–ये किसके फल हैं ? अंतरंगमेंसें मिथ्यात्व नहीं गया उसका फल हैं. यदि मिथ्यात्व हठ गया होता तो यह दशा होतीही नहीं. साधुजी दीक्षा लेनेकों निकले उसकी कितनीक हकीकतें धर्मबिंदु ग्रंथमें हरिभद्रसूरिजीने दरशाइ है. (वो ग्रंथ बालबोध सहित टीकावाला छपगया है, उसमें दीक्षा लेनेवालेकों मातापिताकी रजा लेनेका अधिकारही कहा है.) वो किस तरहसें कहा है उसका सारांश यह है कि दिक्षा लेनेवालेनें मातापिताकों समझाकर रजा लेनी चाहिये, वे रजा न देवें तो योतिषिकों समझावे कि तुम मेरे मा बापकों कहो कि इसका आयुष कम है वास्ते इसकों रजा देदो–मना मत करो. पीछे योतिषी इस तरह झूंठ बोलै उस वास्ते वहां तर्क किया है कि–जो दिक्षा लेनेकों निकले और ऐसा झूंठ बोले सो झूंठा बोलनेमें नहीं गिना जाता है. ऐसा १७१ पत्रकी अंदर लिखा है. इसपरसें शोचो कि झूंठ बोलनेकी ऐसें मोकेपर छूट्टी है; क्यौं कि जिस काममें जावजीव झूंठ बोलनेका त्याग होता है. इस लिये ऐसी परवानगी आचार्य महाराजोंने दी है. तो श्रावक निंदा करे तो शास्त्रसें विरुद्धही है या नहीं ? वो विचार करना चाहियें. लेकिन मिथ्यात्वकी प्रकृति दूर हुइ नहीं वहांतक शुद्ध मार्गकी श्रद्धा होनेकी नहीं, और श्रद्धा बिगर आत्मतत्त्वका ज्ञानभी होनेका नहीं; क्यौं कि आत्मतत्वका ज्ञान श्रद्धा गम्य है–प्रत्यक्ष नहीं; वास्ते वीतरागजीके प्ररूपे हुवे शास्त्रपर श्रद्धा रखकर आत्मतत्त्व प्रकट करनेके कामी होना. कितनेक श्रद्धा रखते हैं, तो रागी द्वेषीकी श्रद्धा रखते हैं उससें धर्मका नाम और अनेक प्रकारके मत ममत्व करते हैं. धनादिककी, स्त्रीकी कामनामें आशक्त होते हैं–येभी मिथ्यात्वकाही जोर है. वास्ते जिनपुरुषके वचनोंसें संसारपर प्रीति वढकर शरीरादि पदार्थपर राग वढै, मोहका जोर ज्यादा होवे, काम, क्रोध आदिस होवै, ऐसें बतलाये हुवे धर्मकों धर्म नहीं मानना. जो इससें विपरित याने संसार–कुटुंब–धनादिपरसें राग दूर हठ जावे, अपना आत्मतत्त्व प्रकट करनेमें सन्मुखपणा होवे,

ज्ञानमें चित्त लीन होवे, पंचेंद्रिय वश हो जाँय, मन काबूमें आवे, अपने आत्म स्वरूपमें लीनता होवे, यथार्थ वस्तुधर्मका ज्ञान प्राप्त होय-ऐसे प्ररूपे हुवे भावपर श्रद्धा करनी दुरूस्त है. और ऐसे गुरुपर यकीन रखना वही मिथ्यात्वनाशक चिन्ह है. प्रभुजीने रा ज्यऋद्धि, कुटुंब, देहपरसे ममत्वभाव त्यागकर संयम लिया. किसीकेपर रागद्वेष नहीं, इसतरहकी वर्त्तणा करके केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट किया और मिथ्यात्व सत्ता, उदय, बंध-इन तीनु प्रकारसें नाश किया उसी तरह अपनकोंभी करना कि जिससे कल्याण होवे याने यही कल्यान है.

१५ पंदरहवा निद्रा नामक दोष है सो दर्शनावरणी कर्मके उदयमें प्राप्त होता है. निद्रा पांच प्रकारकी है. पहेली निद्रा, सो ज्यादे ऊंघ न होय और जगानेसे सुख-पूर्वक जाग उठे-दिलगीर न होवे. जगानेवालेपर गुस्सा न ल्यावे. दूसरी निद्रानिद्रा, सो जगानेमें बहुत मेहनत पडे, जगानेवालेपर गुस्सा ल्यावे और अपना मन दुःख पावे जब जागे. ये निद्रा पहेली निद्रासें ज्यादे आवरणवाली है. तीसरी प्रचला सो चलते चलते ऊंघ लेवे. घोडा है सो ऊंघताही चलता है. इसी रीतिसें मनुष्यभी निंद लेते हुए बहुतसें चले जाते हैं. आंखोंमें निंदही परभाव हुइ रहती है. ये विशेष दर्श-नावर्णीके आवर्ण होनेमें आती है. पांचवी थीनद्धिनिद्रा सो छः महीनेमें एक वक्त आती है. वो निंद लेता होय उस वक्त वर्द्धमानकालमें अपने बलसें दुगुना बल होता है. जागृतावस्थामें जो काम न किये जाँय वैसे बल स्फुरायमान करनेके काम निंदमें करता है. दिनमें जो काम चिंतन किया होय वो काम निंदमें करे. एक साधुजीको निद्रा आनेसें रात्रीमें उठकर हस्तीके दंतमूळ निकाल लायेथे. ऐसे थीनद्धिनिद्रावाले जीव नरकगामी होवे है. ये साधुभी संयमसें पतीत होकर नरकमें गये थे. यह पांचों निद्राका त्याग होवे तब मोक्ष जाता है. अज्ञानतासें निंद आनेमें सुख मानता है; परंतु सुख मानने लायक नहीं है. सुख माननेसें, आलस्यतासें और निंदकी बहुत इच्छाएं करनेसेंही ये दर्शनावरणी कर्म बंधा जाता है. निंदसें आत्माका उपयोग आच्छादित हो जाता है. जीता मनुष्य मुवे हुवेकी अवस्थाको पाता है. निद्रासक्तवालेके आगे कोइ बोले चाले या शरीरपर कुच्छ करे तोभी उसको खबर पडे. तब उपयोग आ-च्छादित हो गया ये प्रत्यक्ष नुकसान हुवा; वास्ते हरएक प्रकारसें जागृत दशा होवे ऐसी इच्छा रखनी. भगवान् श्रीमहावीरस्वामीजीको कि जिन्होंको बार वर्षमें दो घडी

निंद आइ है. बाकी सब समय अप्रमाददशामेंही गया है--आत्मतत्त्वके विचारमें गया है. उन्होंने खुद स्वाभाविक आत्मगुण प्रकट किया; वास्ते जिसतरह भगवंतजीने दर्शनावरणी कर्म क्षय किया विसतरह क्षय करनेका उद्यम करना कि जिससें अप्र-नामी दर्शनावरणी कर्म क्षय हो जावे, और केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट होवे. पुनः इस संसारमेंभी वहुत निंद लेनेवालेको दरिद्री कहते है, आपका काम करनेमेंभी श-क्तिवान नहीं होता. अभ्यास करनेवालेको ज्यादे निद्रा होय तो वो विशेष अभ्यास नहीं कर सकता है, गुरुजीके पास व्याख्यान सुननेको जाय तो वहां बैठे बैठे निंद लेवे इससें व्याख्यानकी धारणा नहीं कर सकता है और ऐसे प्रमादीके घरमें चोरभी मजेहसें चोरी कर सकता है--इतने इस लोकमें नुकसान होते हैं और परलोकके नुक-सानमें दर्शनावरणी कर्म पैदा होता है. ऐसा जानकर भगवंतजीने निद्राकी इच्छाका नाश करके केवलदर्शन प्रकट किया ह जिसमें सब दर्शनगुण रहे हैं. विसी तरह अप-नकोंभी भगवंतजीकी आज्ञा मुजवही दर्शनावरणी कर्म क्षय करनेका उद्यम करना और निद्राका नाश करना.

११ अव्रत नामक दोष सो आत्मामें रहा हुवा है उसके प्रभावसें अनेक प्रका-रकी इच्छाएं होती हैं, हिंसासें, झूंठ बोलनेसें, चोरी करनेसें, मैथुनकी वांछासें और परिग्रहकी ममतासें याने इन पांच अव्रतसें चित्त नहीं हठता है. ये पांच अव्रत कैसे हैं? एक अव्रत सेवनेसें दूसरे अव्रत सहजसेंही फैले जाते हैं. पुनः ये अव्रत सेवनके निमित्तभूत पांचों इंद्रियके तेइस विषय और मनकी चपलता जब तक पांचों इंद्रि और छट्ठा मन छुट्टा रहता है, उसकी कामना बनी हुई रहती हैं, वहांतक छः कायकी हिंसा रूकी जाती नहीं. अब ये विषय हैं वो यह लोक और परलोकमें दुःखके देनेहारे हैं: जैसें कि अपनकों कोइ सूइ बदनमें चुभका देवे तो कितनी तकलीफ होती है. और डाकतर नस्तरद्वारा व्रण वगैरः हुवा हो उसे चीरता है तो आंखोंमेंसें आंसु गिरते हैं, फिर चिल्लाताभी है कि जिससें दूसरोंकोंभी धास्ती लगै इस वातका सबकों अनुभव होनेमें इसका बयान ज्यादे करनेकी जरूरत नहीं. जैसें अपनकों दुःख होता है--पीडा होती है वैसेंही दूसरे जीवकों जब काट डाले तो उसकों क्यों दुःख न होवै? अवश्य दुःख होवे! वो दुःखसें उसके मनमें बुराभी लगे तो सरकारमें फरियादभी करे तो उससें अपनकों शिक्षाभी होवे. यावत् फरियाद न करे और जोरदार होवे तो मारभी

मार बैठे तो प्रत्यक्ष दुःख भुक्तना पडे. कोइ मनुष्यकों कोइ उस वक्त सावकारी [मददगार] न होवे तो जब मददगार मिल जाय तब उसकों हरकतमें डाल देवे. इस मुजब दूसरे जीवकों दुःख देनेसें यह लोकमें दुःख भुक्तना पडता है. और- वो जीवकी अभी शक्ति न होवे तो आते जन्मकी अंदर उस जीवकों शक्ति प्राप्त होनेसें दुःख देवैगा, या नरकादिकमें परमाधामी वगैरः दुःख देवेंगे-इस लिये एकेंद्रीसें लगाकर पंचेंद्रि तकके किसी जीवकों दुःख नहीं देना ऐसी बुद्धि प्राप्त होवैगी तो हिंसा करनेकी बुद्धि उत्पन्नही न होवैगी. झूठा बोलनेसेंभी दूसरे जीवोंकों दुःख होवैगा. चोरी करनेसेंभी उस जीवको दुःखका पार न रहवैगा; सबब कि गरीब या क्रोडपति कोइ हो; मगर सबकों धनकी इच्छा होती है; और वो धन ले जावे तो दुःख क्यों न होवे? अलबत होवे! जैसें कुमारपाल राजाने एक उंदर-मूसेकों अपने दर-बिलमेंसें सुवर्णम्होरें निकालकर उसके साथ गैल करता हुवा देखाथा. उस परसे राजाके दिलमें आया कि इस तिर्यंचकों धनपर प्रेम समझसें है या बेसमझसें है? उसका तमाशाः देखनेके लिये चुहेकी मुआम्होरें उठाली. थोडी देरके पीछे चुहा तडफडाट करकें मर गया, कि कुमारपालकों बहुत दिलगीरी पैदा हुइ, और उसके प्रायश्चितमें उंदरीआ प्रासाद बनवाया. इसपरसें ख्याल करो कि तिर्यंचकोंभी धनपर कितनी तृष्णा है? तो मनुष्यकों तो धनसेंही सब कारभार चलता है. उसका धन कोइ चुराकें ले जाय तो मनुष्यकों बेशक अपार दुःख होता है. दुनियामें शरीरकी पीडासें मनकी पीडा याने कायिक रोगसें मानसिक रोग-व्याधिसें आधि बहुत पीडाकारी है. कितनीक दफे धन चला जानेसें मनुष्यका मरण हो जाता है-शरीर सूख जाता है वो मनकी पीडासेंही होता है; वास्ते उससेंभी दूसरे मनुष्यकों तकलीफ होती है. पराइ स्त्रीके साथ मैथुन करनेसें जब उसके पतिकों खबर हो जाय या उसके मावाप आदिकों खबर हो जाय तब कितना दुःख होता है वो जगजाहिर है. किसी वक्त जारपुरुषका जान चला जाता है. अगर कोइ समय उस व्यभिचारिणीकाभी जान जोखममें फंस जाता है. अगर तो उस स्त्रीके पतिका जीव जोखममें गिरफतार होता है. कभी जीव न जाय तो रातदिन इसकी पीडा दुःख देती है. फिर अपनी स्त्रीके साथ संभोग करनेसें योनिमें सम्मूर्छिम जीव असंख्यात मर जाते है, तो उन जीवोंकों दुःख होता है. पुनः अपना शरीरभी नरम हो जाता है-शरीरमें तक-

लीफ होती है, और अंतमें रोगके भोग हो मरनके शरन हो जाता है. परिग्रहकी इच्छा होवै वहांतक हर प्रकारसें धन इकट्ठा करना—उसमें लुचाइ—ठगाइ—दगाबाजी करनेमें निडर रहते हैं झूंठ बोलनेसेंभी नहीं डरते हैं, किसीका प्राण लेनेसेंभी नहीं डरते हैं, और आप खुदभी विचित्र प्रकारसें दुःखी होते है, ये परिग्रहकी मूर्छाके फल हैं. यह पांचों अव्रत ऐसें है कि एकका सेवन करनेसें दूसरेका सेवन हो जाता है अगर तो हो जाय, उससें भगवंतजीने पांचो अव्रतका त्याग किया है. और भगवानजीका यही उपदेश है कि हरप्रकारसें अव्रतका त्याग करना चाहिये. यदि विशेष विशुद्धि होवे और सब प्रकारसें अव्रतका त्याग होवै तो वो करना, और सब तरहसें त्याग न हो सकै तो देशसें त्याग करकें श्रावकके बारह व्रत धारण कर लेना. इस तरहसें श्रावक या साधु धर्म वाह्यसें अंगीकार करकें (अंतरंग शुद्ध न हुआ तो अव्रत दूर नहीं हो सकता है वास्ते) अंतरंग शुद्धिके लिये कषायकी परिणती त्याग करनी चाहिये. वहारसें प्रवृत्ति न करै तोभी अंतरमें इच्छाएं—हुवेही करैं तो पीछे कर्मबंध होता हुवा नहीं रुकता है. पुद्गल भावसें अनादिकी इच्छाएं—हिंसाकी—झूंठकी—चोरीकी—मैथुनकी—धनकी इन पांचो पदार्थकी इच्छाएं मुक्त हो जावै तब आत्माका काम होता है. देखो, तंदुलि मच्छ है वो मत्सकी पापनमें होता है. वो जिस मत्सकी पापनमें, होता है, उस मत्सका मुंह बडा है उससें कितनेक मत्स उसके मुंहमें आते हैं और निकलते हैं वो तंदूली मत्स देखता है. देखकर शोचता है कि यदि मेरा मुंह इतना बडा होता तो एक जीवकोंभी पीछा नही जाने देता. ऐसा दुष्ट विचार करनेके सबबसें मरकर वो सातवी नरकमें जाता है. उसने कुछ खाया पिया नहीं, मगर तिव्र इच्छासें दुष्ट ध्यान ध्याता है उसके प्रभावसें नरकमें जाता है. ऐसेंही दुनियामें जो चीजें हैं सो सब अपनको प्राप्त नहीं हो सकती हैं; मगर वै चीज उपयोगमें लेनेकी इच्छा होती है. हुवाही करती हैं. कितनीक वक्त पैसेकी तंगीसें मिल नहीं सकती, अगर पैसा है पर कृपणतासें पैसे खर्चे नहीं जाते उससें नहीं मिल सकती है. कितनीक दफे शरीरकों प्रतिकूल (वो वस्तुएं) होनेसें उपयोगमें नही ले सकता है; परंतु अव्रतके उदयसें इच्छाएं हुवाही करती हैं वो अज्ञानकाही प्रभाव है. अपनी क्या वस्तु है, आपके आत्मभावमें किस तरह वर्त्तते रहना उसकाभी ज्ञान नहीं उसके मारे इच्छाएं हुवा करती हैं, दुनियामें हजाराः द्वीप हैं, वै कोइ मुंहपर थुंकनेकीभी नहीं; मगर, जो जो दृष्टिगोचर होती हैं

कि चित्त दौडै या कानोंसें सुन लेवै कि फलानी स्त्री बहुत खुबसूरत है तब चित्त दौडै परंतु ये बात अज्ञानके जोरसेंही बनती है वास्ते वो न होना चाहियें. पुनः धन जो बिलकुल न हो तो सोचै कि हजार रुप मिल जाय तो अच्छा, मगर जब हजार मिल चुके तब लाखकी इच्छा होती है. लाख मिलै तो करोडकी इच्छा होती है, करोड मिले तो अबजकी इच्छा करता है और उससेंभी ज्यादे मिलै तो राजकी इच्छा होती है, राजा हुवा तो वासुदेवके राजकी इच्छा होती है, वासुदेवपणा मिला तो चक्रीपदकी होती है, और चक्री हुवा तो इंद्र होनेकी इच्छा होती है. अब ऐसी इच्छाएं करता है उससें कुछ हाथ आता नहीं; परंतु जीवकी तृष्णा नहीं मिट सकती है-ये अव्रतकी राजधानी है. फिर कितनेकको दस बीस हजार मिलते हैं कि व्यापार बंध करते हैं क्यों कि ये मिले हुवे शायद न चले जॉय ! इसके डरकेमारे विशेष धन पैदा करनेका उद्यम नहीं करता, उससें उसकी तृष्णा रुक गइ है ऐसा न समझना, वास्ते हरतरहसें इच्छा रोक देनी योग्य है. कभी संसारका त्याग किया और चेला चेलीकी, पुस्तककी मानकी इच्छा न दूर हुइ या इंद्रियें वश न हुइ तोभी अव्रत दूर नहीं होता है. कभी इस लोकके विषय रोक दिये; मगर परलोककी इच्छा करै कि मैं मरके राजा होउं-धनवान होउं-देवता होउं-देवताकी, इंद्राणीका सुख भुक्तुं-ऐसी इच्छाएं हैं वोभी अव्रत है. उत्तराध्ययनजी महाराजनें मंडुक चूरण न्याय कहा है याने मरे हुवे मेंढकके चूर्णमें मेघजलकी बुंदे पडे तो बहुतसें मेंढक पैदा हो जॉय, किसी तरह इस भवके विषय छोड दिये और परभवके बहुत विषयकी इच्छाएं की इससें कुछ अव्रत दूर नहीं हुवा शुभ क्रिया है वो कारणरुप है, वो कारणरुप धर्म जानकर करनी; मगर उसको आत्मधर्म न समझना. आत्मधर्म तो जितनी जितनी इच्छाएं होती बंध हो जायगी-वो कर्तृम नहीं-स्वभाविक धन-स्त्री-पुत्र-शरीर किसीकाभी दरकार न रखै, और अपनेही स्वभावमें आनंदित होवै और स्थिर रहेवै. जो जो पुद्गलको होवै वो जानने देखनेका स्वभाव है सो स्वभावमें रहना, उसमें रागद्वेष न करना यही आत्माका कार्य है इस दस दशामें रहवे कि सहजहीमें अव्रत दूर हो जायगा. कषायका सर्वथा नाश होनेसें अव्रत सर्वथा दूर हो जाते है. अंशअंशसें देशविरती गुणस्थान पाता है वहांसें दूर होना शरु होता है भगवंतको सर्वथा अव्रत दूर हो गया है उससें भगवान हुवे है.-

१७ राग नामक दूषण है. ये रागके घरके माया और लोभ हैं. ये राग परिणती अनादिकालकी है. धनके ऊपर या कुटुंब, स्त्री, पुत्र, स्वजन, मकान, दुकान, बाग, बगीचेके ऊपर राग होता है. मिली हुइ वस्तुपर राग होता है और न मिली हुइ वस्तुपरभी [राग] होता है, देखी हुइ-बिन देखी हुइ, सुनी हुइ और पढनेमें आइ हुइ वस्तुपरभी राग होता है-ऐसें अनेक प्रकारसें रागदशा है. और रागदशाके प्रभावसेंही पापी जीवका संयोग मिलता है और ऐसे खराब मनुष्यका संग मिलनेसें पीछा द्वेष जाग्रत होता है. परवस्तुके ऊपर राग होनेसेंही जीव अनादिका संसारचक्रमें परिभ्रमण करता है. अनेक प्रकारसें जन्ममरण करने पडते हैं. परस्त्रीपर राग होवै तो आप मरजाय तोभी उसकी इच्छा मुक्त नहीं होती. ऐसे अधमीजीवोंको मनुष्यजन्म तो प्राप्त होवेही नहीं; मगर मनुष्य शरीरके भीतर कीडा या कृमीके भवकों प्राप्त होवै यही रागका प्रभाव है. जो जो कर्मबंध होता है वो रागद्वेषसेंही होता है और जीव संसारमें रूलता है. द्वेषभी रागसें होता है-अपनी वस्तु मानली है वो वस्तु कोइ ले जाय तो यह वस्तुपर राग है उससें ले जानेवालेपर द्वेष होता है. द्वेष करनेवालेकों कोइ कहनेवाला मिलै कि तुम सुज्ञ होकर कषाय करते हो; मगर रागकी बाबतमें मुनीमहाराजजी सिवा कोइ समझानेवाला नहीं. यह जडपदार्थपर राग करनेसें आत्माके गुणोंका राग नहीं होता, और उसके कारण जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र है उसपरभी राग नहीं होता रागके वशसें जीव लज्जाकों छोडकर निर्लज्ज कर्म करते हैं. उच्च जातिके मनुष्यकों धन-कुटुंब-रूपवती स्त्री होवै; तथापि नीच जाती-भंगीकी स्त्री पर राग हुवा होवै वो ये धन कुटुंब छोडकर उसकी साथ संबंध करता है, ये रागकी विटंबना है. जो वस्तु खानेसें शरीरकों उपाधि होती है, धर्म भ्रष्ट होता है; तोभी रागके बंधनसें वो वस्तु खाता है-और ऐसी वस्तु खानेसें कितनीक वक्त मनुष्य मरजाता है वो दिखता है तोभी ऐसे काम करता है. धनके रागसें करके लोभ होता है वो चाहे उतने पैसे मिल जाय तदपि संतोप नहीं पाता. और असंतोषसें लंबे व्यापार करनेसें असल पैसे होवैं वैभी चले जाते हैं किंतु लोभकों नहीं छोडता. और कितनेककों देवाले निकालने पडते है. कितनेक वददानतसें पैसें होवै तोभी लोगोंके पैसें नहीं देता है. वै लोक ऐसा नहीं शोचते है कि ऐसा करनेसें जन्मपर्यंत दुनियामें वेइज्जत होवैंगी, और लडकोंकोंभी कहेंगे कि तेरे बापने देवाला निकालाथा. ऐसी बाबत बनती है तोभी धनके

रागसें स्हामनेवालेका और आपके भाइका, बापका, माताका प्राणभी लेता है तो औरोंका प्राण लेवै इसमें तो कहनाही क्या ! ये विटंबना रागकी है. चोरी करते, ठगाइ करतेंभी रागसें करकें जीव डरता नहीं. विश्वासघात करनेमेंभी भय नहीं मानता कदाचित् गृहस्थपणा छोडकर दीक्षा लेता है; परंतु जडपदार्थपरसें राग गया नहीं उससें पुनः साधुके वेषमें गृहस्थकी प्रवृत्ति करता है-गृहस्थकी तरह धन मिलाता है, लडकेके रागकी तरह चेलेका राग जाग्रत रहता है. पुस्तकका राग सजग रहता है और ऐसी वर्त्तना करकें संयममें भ्रष्ट होता है आत्मभावमें नहीं रहते, शास्त्रका बोधभी निकम्मा जाता है. ज्ञानका बोध तो जैसें ज्ञानमें जाना गया वैसें वर्त्तन करै तब ज्ञानका फल होवे. जैसें कोइ मनुष्यने जान लिया कि यह ज्हेर है; परंतु खायगा तो बेशक मर जायगा, वैसें ज्ञान पढकर राग बंध तो मुक्त नहीं होता कर्मबंध हुवे विना रहते नहीं. और जिसकों निरागदशा प्रकट हुइ है उसके प्रभावसें कोइ कुछ ले जाता है तो, कोइ मारता कुटता है, पीडा देता है, निंदा करता है और किसीका वियोग होता है; तोभी आपकों खेद नहीं होता, मरनेकीभी फिकर नहीं, आपने अपना आत्मस्वरूप जान लिया है उससें जानते हैं कि मेरा आत्मा मरनेका ही नहीं ! मरता है सो जड है. आत्मा अविनाशी है. शरीरकों पीडता है सोभी पूर्वकालमें जडकी सोबतसें दूसरे जीवोंकों पीडा की है उससें पीडता है, तो जैसा जैसा जडसंगतिसें कर्म बांधा गया है वैसा वैसा भुक्तना है. कोइ वस्तु ले जावे सो मेरी नहीं है; मगर जडकी संगतिसें मेरी मानली है और मेरी मानकर पराइ वस्तु ली है तो मेरी ले जाता है. पूर्वकालमें जिसने किसीकी वस्तु ली नहीं उसकी वस्तु मार्गमें पड रही हो तोभी कोइ नहीं ले जाता है. ऐसे ज्ञानके प्रभावसें जरासाभी खेद धारण नहीं करते हैं-अपने आनंदमेंही रहते हैं. ज्ञानीजन तो समवृत्तिसें करकें जो जो सुख दुःख प्राप्त होता है, उसमें राग-द्वेष करतेंही नहीं. आत्माका जाननेका स्वभाव है सो जो जो रूप बनते हैं वो जान लेता है. कर्मका स्वरूप जान लिया गया है उससें कर्मके उदय मुजब बना हुवा रहता है-ऐसा जानकर कोइभी अनुकूल वस्तुपर रागदशा धारण नहीं करते. इसी तरह भगवंतजीने रागद्वेष क्षय करकें आत्माके अपने गुण प्रकट किये हैं. उन्होंके कदम दर कदमसें आज्ञा मुजब चलै तो अपने आत्माके गुण प्रकट करकें परमपद पावै.

१८ द्वेष नामक दूषण है-ये द्वेषकी प्रकृति जगतमेंभी निंदनीय है. द्वेषके दो पुत्र हैं. याने पहेला क्रोध और दूसरा मान. क्रोध करनेसें दूसरेकों दुःख करता हुं ऐसा मानता है; परंतु आप खुदकों प्रत्यक्ष दुःख होता है-आपकाही शरीर भिन्न रूपवंत हो जाता है याने लाल लाल हो जाता है, छातीमें घभडाहट होता है, लोहु उछल जाता है उससें खून सूख जाता है और निर्बल हो जाता है. ये बनाव क्रोधसें होता है. क्रोधी मनुष्य कहीं नौकरी रहनेकों जाय तो उसें कोइ नोकर नहीं रखता. किसीके वहां क्रोधी व्याजु पैसे लेनेकों जाय तो वोभी खुश होकर देवै नहीं. दुकान की हो तो शांत मनुष्यके वहां जितने ग्राहक आवै उतने ग्राहक क्रोधीके वहां नहीं आते. कन्याकी जरूरत हो तो खुशीसें नहीं मिलती. फिर क्रोधी मनुष्य अपनेही हाथसें अपना सिर फोडता है-कूवे वगेरः में गिरता है-जहर खाता है-फांसा डालकर जान निकालता है. अपने हाथसेंही अपना घात करता है और जगतमें अपयश पाता है. क्रोधीजन कभी संसार त्यागकर साधु होता है तो कषायसें करके उसमेंभी शोभा नहीं पाता, और आत्माकाभी कल्याण नहीं होता; मगर संसारकी वृद्धि होती है. जैसें कि चंडकोशिये सॉपने पूर्व भवमें साधुपणेकी अंदर क्रोध किया तो मरे बाद पुनः क्रोधी होनेकाही वक्त हाथ लगा. वहांभी क्रोधसें मरण पाया और सॉप होनेका वक्त रुजु हूवा. इसी तरह जो जो मनुष्य क्रोध करै उसकों यह लोकमें दुःख होवै और परलोकमें नरकगतिमें जाना पडै; वास्ते हरै प्रकारसें क्रोध दूर करनेका उद्यम करना अग्निशर्मा तापस मास मास खमणके अंतर पारणा करता था; तोभी दुर्गतिमें जानेका वक्त आया. (इसकी विस्तारसें हकीकत समरादित्यकेवलीके रासमें देखो. कितनेक भव तक द्वेष रहा और कैसे कैसे दुर्गतिके फळ मिले है!) क्रोधसें प्रत्यक्षमें मार खाता है, वक्तपर प्राणभी जानेका मोका हाथ लगता है; वास्ते ज्यौं बन सकै त्यौं क्रोधकों जीतकर समतामें रहना कि जिससें यह लोकमें सुख होवै क्रोधीकों संसारमें सुख नहीं और परलोकमेंभी सुख नहीं. नरकादिककी कठीन वेदनाएं भुकती पडेगी. फिर मान करनेसें आप ऐसा समझता है कि मेरी बडाइ होती है; परंतु वो बडाइके बदलेमें लघुता हांसिल होती है. मद करनेसें बडे बडे राजाएंभी दुःखमें पड चुके हैं तो दूसरोंका तो कहनाही क्या! इसलिये ज्यौं बन सकै त्यौं अहंकारकों त्याग देना. अहंकार क्रोधकाही बीज है अहंकार नाश पावै तो क्रोध आवैही नहीं. जगतमें जितनी

चीजें हैं उसमें जड है सो नजर आती है, तो आप चैतन है, तो जड चीज प्रिय अप्रिय करनेसें अप्रिय चीजपर द्वेष होना है; परंतु जो परवस्तु याने पराइ है उसके-पर द्वेष करनेसें फक्त कर्मबंध करने सिवा दूसरा कुछ लाभ नहीं. वास्ते जो जो वस्तुके जो जो धर्म है वो ज्ञान लैना. जो जो अवसरपर जो जो वस्तु ग्रहण करनेका उदय हुवा वो वस्तु ग्रहण करनी. उसमें द्वेषकर ग्रहण करनेसें कर्मबंध सिवा और कुछ फायदा नहीं. आत्मा मलीन होता है. मुनीमहाराजोंने और तीर्थंकरमहाराजजीने द्वेषका त्याग किया और केवलज्ञान पाये; वास्ते दूसरेभी आत्मार्थी जीव उन्हीकी रीति मुजब द्वेषका त्याग करना. खानेकी-पीनेकी-पहननेकी-ओढनेकी-बिछानकी-सोनेकी-चलनेकी कुछभी-कोइभी वस्तु प्रतिकूल मिलै उसमें द्वेष धारण नहीं करना. कोइ धन ले जावे, कोइ मारकूट कर जावे तोभी कर्मका विचार करना कि पूर्वके पुन्यकी न्यूनता होवै जब ऐसा बनता है; वास्ते रागसें जीवपर द्वेष करना वो निकम्मा है. ऐसा सोच करकें समभावदशा धारण करनी. द्वेषका अंशभी जाग्रत न होवे वैसी प्रवृत्ति करनी, और सत्ता, बंध, उदय इन तीनुं प्रकारसें नाश करना कि केवलज्ञान-केवलदर्शन गुण प्रकट होवै.

इस मुजब यह अठारह दूषण भगवंतजीने क्षय किये है, उससें आत्माके संपूर्ण गुण उत्पन्न हुवेले है कि जिससें एक समयमें तीन जगतके भाव जान सकेत हैं, ऐसी शक्ति प्राप्त हुइ हैं. एक एक द्रव्यके अंदर समय समय अनंत पर्याय परावर्त्तमान हो रहे हैं, वो एक एक द्रव्यमें पूर्वकाल याने जिस कालका अंत नहीं और आंते कालमें पर्याय होनेके वो समस्त एकही साथ जान सके ऐसा ज्ञान जिन्होंको प्राप्त हुवा है आत्माकी अनंत वीर्यशक्ति प्राप्त हुइ है-ऐसे आत्माके समस्त गुण प्रकट हुवे है. उसके प्रभावसेंही देवता स्फटिक रत्नमय समवसरणकी रचना करते हैं-तीन गढ रचते हैं-उसमें तीसरे गढमें देव सिंहासन कायम करते हैं उसपर विराजमान होकर भगवानजी देशना देते है. वो देशना कैसी है? जिसमें किसी प्रकारका आपका लाभ नहीं रहा हुवा होता है, किसी प्रकारसें स्त्री या धनकी स्वप्नमेंभी इच्छा नहीं. जिनकों धनादिककी और मान-गर्वकी इच्छा रही है वो धर्मोपदेश देते है, उसमें स्वार्थ रख देते हैं, और जहां स्वार्थ आया वहां सच्चा धर्मस्वरूपका दर्शाव होनाही नहीं तैसेंही सुननेवालेका ध्यानभी उपदेशकके स्वार्थ पर जानेसें उनका

उपदेश श्रवण करनेहारेकों लाभकारी नहीं हो सकता; सबब कि हमेशाः जो धर्मोप-देश देनेवाला जैसा उपदेश देवै उसी मुवाफिक वे खुद नही अवर्त्तते हैं, तब सुननेवाले शोचते है कि गुरुजी या भगवंतजीसेंभी इसतरह नहीं हो सकता है, तो अपन किस तरह चल सकै? ऐसा शोच करकें आप जिस स्थितिमें हैं वही स्थितिमें कायम रहवै. मगर आत्माके गुण प्रकट करनेकों उत्सुक नहीं होते हैं. और जिनोंके अढारह दूषण नष्ट हुवे हैं उन्होंकों तो वीतराग दशा प्रकट हुइ है. न किसी वस्तुपर राग है न द्वेष है. केवल जगतके जीवोंका उद्धार करनेके लियेही वसुधपर विचरकें धर्मोपदेश देते हैं, उससें श्रोताओंकाभी कल्याण होता है. सुनेके लिये बारह पर्षदा बैठती हैं.. (यह अधिकार श्राद्धशतक नामक प्रश्नोत्तरमेंसें यहांपर लिखता हुं.) केवलज्ञानीमहा-राज पूर्वद्वारसें समोवसरणकी अंदर प्रवेश करते हैं, सोभी जिनेश्वरजीकों तीन प्रद-क्षिणा कर 'नमोतीर्थ्यस्स' कहीकें पूर्व और दक्षिणके बीच बैठते हैं.. उनके पीछे मनःपर्यवज्ञानी-अवधिज्ञानी-चौदह पूर्वधर-दस पूर्वधर-नव पूर्वधर और लब्धिवंत मुनिभी पूर्वद्वारसें दाखिल होकर भगवंतजीकों तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर 'नमो-तीर्थाय, नमोगणधरेभ्यो, नमोकेवलीभ्यः' इसतरह कहकरकें केवलज्ञानीजीके पीछे बैठक लेते हैं. उस पीछे दूसरे समस्त साधुजी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें तीन प्रदक्षिणा दे 'नमस्तीर्थाय, नमोगणभृद्भ्यो, नमःकेवलिभ्यो नमो आतिशयज्ञानीभ्योः' इसतरह नमस्कार करकें-पहेले बैठे हुवे मुनिवरोंके पिछाडी बैठते हैं. तदनंतर विमानिक देवी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें प्रभुजीकों तीन परकमा देकर 'नमस्तीर्थाय, नमः सर्व, साधुभ्य.' इस तरह नमन कर साधुजीके पिछाडी बैठक लेती हैं. पश्चात् साध्वीजी पूर्वद्वारसें प्रवेश करकें भगवानजीकों तीन प्रदक्षिणा देकर नमन कर वैमानिक देवी-ओंके पिछाडी बैठक लेवें. भवनपतिकी, व्यंतरकी, ज्योतिषिकी देवीएं दक्षिण द्वारसें प्रवेश करकें वैमानिक देवीओंकी तरह भगवंतजीकों प्रदक्षिणा, नमन करकें दक्षिण और पश्चिम दिशाकी बीचमें क्रमवार बैठक लेवें. तत्पश्चात् भवनपति, ज्योतिषी, और वाणव्यंतरके सुर-देव पश्चिम द्वारसें प्रवेश कर प्रभुजीकों प्रदक्षिणा नमनादि करकें पश्चिम और उत्तरके बीच क्रमसें करकें बैठक लेवें. वैमानिकदेव और मनुष्य, मनुष्य-स्त्रीएं ये तीन उत्तर द्वारसें प्रवेश कर प्रदक्षिणा नमनादि करकें पूर्व और उत्तरके बीच बैठक लेवें. इस मुजब बारह पर्षदा समवसरणमें जिनवाणी सुनेकों बैठती हैं. वहां

भगवंतजीके अतिशय प्रभावसें तीन तर्फ भगवंतजीका प्रतिबिंब देवता बनाते हैं, उससें चारों ओर बैठे हुवे भगवंतजीकों सन्मुखही देशना देते हुवे देखते हैं, इससें चारों मुखसें देशना देते है ऐसा समझनेमें आता है. देशनाकि ऐसी खुबी है कि जिस जिसके मनमें जो जो शंका होवै या शंका पडती है वो सब प्रभुजी जान लेकरकें ज्ञानसें उत्तर देते हैं. किसीकोंभी प्रश्न करनेकी जरुरत नहीं रहती है, ऐसी जिन्होंकी शक्ति है. किसीके दिलका संदेह दूर करना मुश्कील नहीं. ऐसी भगवंतजीकी वाणी सुनकर निकट भवीजीव तो उसी वक्त प्रतिबोध पाकर संयम लेते हैं. और वैसी विशुद्धि न होवै तो वे श्रावकधर्म या सम्यक्त्व अंगीकार करते हैं और आत्माका कल्याण करते हैं ये दोनु प्रकारके धर्मका विस्तार युक्त वर्णन प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें है, इससें यहांपर लिखनेकी आवश्यक्ता नहीं; परंतु सारांश यही है कि हर प्रकारसें संसारमोहनी, स्त्री पुत्रादिककी मोहनी और धनादिककी रागदशा अनादिकी है, वो रागदशा उतार डालनी, और आत्मदशाकी सन्मुख ज्यौं ज्यौं विकल्प दूर हठ जाय वैसा उद्यम करना. और विकल्पके कारण छोड देना. जहांतक संसारमें मन है वहांतक आत्मदशा जागृत होनेकीही नहीं, उस लिये संसार छोडकर साधु होनेकी जरुरत है. साधुजी होते हैं तब व्यापारादिकके कारण दूर हो जाते हैं, स्त्री वगेरःके कारणभी अलग हो जाते हैं, उससें आत्मज्ञान किसतरह करना उसके शास्त्र देखनेका निवृत्तिसें वक्त मिल सकता है. कितनेक शास्त्र तो ऐसे है कि वांचनेसेंही मोह हठ जाता है और आत्मभाव प्रकट होता है. आत्मभाव प्रकट होवै ऐसे बहुतसे शास्त्र हैं उसके अभ्याससें प्रश्न होते हैं पीछे अनुभवज्ञान प्रकट होता है, तब तो शास्त्रकीभी जरुरत नहीं. आपके प्रबल ज्ञानसें ध्यानादिकद्वारा कर्म क्षय करते हैं और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्रकट करते हैं. इतनी विशुद्धि नहीं होवै तो मरनके बाद देवता होता है, वहां देवसुखका अनुभव करके पुनः मनुष्य होकर धर्माराधन कर मुक्ति प्राप्त करते हैं. वास्ते ऐसे अठारह दूषण रहित देवकों देव मानने चाहियें, उन्होंकी भक्ति करनी और उन्हींके हुकम मुजब चलना जो प्रभुजी मोक्ष पाये हैं उन्होंका बतलाया हुवा मार्ग अंगीकार करे तो अपनभी मोक्ष प्राप्त कर सके.

किसीकों प्रश्न होगा कि क्या जैनधर्मकेही देव अठारह दूषण रहित है? क्या दूसरे देव ऐसें नहीं है? उसका समझाना कि, हम कुछ ऐसा नहीं कहते हैं. इस संबंधमें जैनधर्म सिवाके होवै उन्होंने अपने आपसेंही आपके देवोंके चरित्र लिखे हुवे होवें वै देख लेने चाहियें, और वे चरित्र देखनेसें यदि अठारह दूषणमेंसें कोइभी दूषण न होवें तो उन्होंकों बडी खुशीके साथ देव मानने चाहियें और वैसे देवकों हमभी नमस्कार रातदिन करते हैं. बांचनेवालेकों देवका चरित्र देखनेंही जो अठारह दूषण मेंसें दूषण देखनेमें आवें तो वें दूषणवाले देवकों कौन मानेगा? जिनकों ये दूषण न छोडने होवेंगे वही मानेंगे. और जो त्याग करने होवेंगे तो सोचेगा कि जिसने आपके आत्माका उद्धार न किया तो अपने आत्माका क्या उद्धार करेगा? ऐसी विचारकरकें सहजसेंही सत्य देवकीही आज्ञा धारण करेगा.

प्रश्न—बडे बडे पंडित हो गये और बडे बडे भारी शास्त्र बनायें उन्होंने क्या देवकी पहेचान न की होगी? न्याय और व्याकरणके शास्त्र जैनीओंकोंभी ब्राह्मणके पास पढने पडते हैं; वास्ते ऐसे विद्वानने कुछ देखनेका बाकी रक्खा होगा? इस संबंधमें यही समझना कि यह बात अपना अपना मन जान सके ऐसी है. कितनेक अन्यदर्शनके विद्वानोंके साथ बात हुइ है, वै विद्वान अपने धर्मकी पुष्टि करते हैं; परंतु खानगी-गुफतगो करनेके वक्त उनोंके मुँहसें उरासें विपरीत बोल निकलते हैं; जैसें कि आचार्य महाराज श्री आत्मारामजी पेस्तर ढूंढक मतमें थे, उस वक्तमेंही ढुंढकके पास पढनेकेलिये गये थे. उस ढुंढकने शिक्षा दी कि-' प्रतिमाजीकी निंदा जो तुम करते हो, वास्ते मैं तुमें न पढाउंगा; क्यों कि आगमजीमें देखनेसें प्रतिमाजी पूजनेका व्याजवी मालूम होता है.' और उसने प्रमाणस्थल बतलाकरकें प्रतिमाजीकि श्रद्धा करवाइ. तब आत्मारामजीने कहा कि-'तुम झूठ मार्गमें क्यों पड रहे हो? जवाब दिया कि-अब निकलनेसें लज्जा आती है.' ऐसी रीति है; वास्ते दूसरेकी तर्फ देखनेका विचार करना सो व्यर्थ है. अपने आपसेंही शास्त्र देखकर निष्पक्षपातसें तपासकर लेना कि सच्चा क्या है? वो सहजसेंही समझमें आ जायगा. जैनी व्याकरण न्याय पढते हैं वो तो कक्का शीखने समान है उसमें कुछ मार्गका ज्ञान करनेका नहीं मार्गका ज्ञान किसी ब्राह्मणके पास लेनेकों नहीं जाते हैं. मार्गका ज्ञान तो मार्ग पाया हुवा मनुष्यभी बतला सक्ता है, तो मुनि महाराज तो एक संसार त्याग करनेका काम कर चुके हैं. व्याक-

रण धरानेवाला तो संसारमें पडा हुवा है वो क्या बता सके ? वास्ते यह सब पराये विचार छोडदेकर यदि अपना काम करना हो तो उसकों अपने आत्माका उद्धार करनेके वास्ते आप खुद शास्त्राभ्यास करकें देवगुरुकी तजवीज करो सोही दुरूस्त समझ लो तो बहुत फायदेमंद है. अनादिकी आदत तो ऐसी है की जिस मजहबमें पडे वही किये करना; लेकिन वो रीति छोडकर अपनी बुद्धिसें सूक्ष्म विचार करकें जो जो देव नाम धरवा कर अपनकों जो धर्म करनेका कहते हैं वो धर्ममें वो चले है ? और स्वभावमें रहकर विभावसें मुक्त रहनेका कहते हैं वैसे रहे है ? ए देखनेका मुख्य काम है और अपनकोंभी मनुष्यजन्म पाकर यही करनेका है वास्ते अंशअंशसें जडकी प्रवृत्ति कमी होवे. और आत्मस्वभावमें स्थिरता होवै ये उद्यम करना. ये उद्यमसेंही वर्त्तमान समयमें या कलांतरमें अनुक्रमसें आत्मगुण संपूर्ण उत्पन्न होवैगा; वास्ते ज्यों बन सके त्यों आत्मतत्त्वकी शुद्धिपद दर्शनमेंसें जिस दर्शनमें विशेष मिल सके उस दर्शनकों ग्रहण करकें उस दर्शनकी श्रद्धा रखकर स्वगुरु खोजनेके कामी होना.

प्रश्न—तुमारे जैनदर्शनमें व्यवहार क्रियायें वर्त्तते हैं; परंतु कोइ आत्म खोजना करनी या आत्मगुणमें वर्त्तना, वैसे तो मालूमही नहीं होते.

उत्तर—सब जीव कुछ आत्माके शोधक नहीं होते हैं, और आत्मगुणमें वर्त्तनेवालेभी नहीं होते हैं. सबब कि यह दुषम कालमें ज्ञानीओंनें पेस्तरसेंही ज्ञानमें देख लिया है कि वर्त्तमान समयमें कोइ इस क्षेत्रकी अंदरसें मोक्ष नहीं जावैगा. इससें मोक्षमें जावे वैसे ध्यानादिकके करनेवाले कहांसें होवे ? लेकिन, वर्त्तमानकालानुसार साधन कर सकें ऐसे उत्तम जीव तो अभी मिल जावै. ध्यानादिक करकें समभाव दशा ल्यानी है, विषय कषायसें मुक्त होना है, तो कोइ मारपीट कर जाय या तो पूजा सत्कार कर जाय तो उन दोनुपर तुल्य दशा करनी चाहियें. वो करनेके उद्यमी तो निकलैंगें; मगर कितनेक धर्मवाले ध्यान करनेका नाम देकर गांजेकी चिलम फूंकते हैं—भंग पीते हैं, उससें ज्ञान नष्ट हो जाता है और विषय कषाय बढते हैं. ऐसा उद्यम करकें कहवै कि—हम ध्यान करते हैं वो क्यों मान लिया जाय ? अन्य दर्शनमेंभी कितनेक वेदिये पशु कहेजाते है वो कैसे होते है ? कि जो वेदांतकी बातें करैं, उसकी कथा करै और विषयकषायमें वर्त्ते. तब कहने लगे कि जडका काम जड करता है उसमें हमकों क्या ? जो खानेका दिल होवे सो खाना; भोगकी इच्छा हुइ होवै तो भोग करना, कुछभी;

जडकर्त्तव्यमें रूकावट नहीं करनी. ऐसा धर्मपालन करकें स्वेच्छा मुजब चलै विषय-कषायमें मशगुल रहे और कहेवै कि हम ध्यानी हैं, उसें दुनियामें वेदीए पशु कहे-जाते हैं. पातांजली योगशास्त्रमें अष्टांग योग साधनेका कहा है, उसमें प्रथम योग यम है वो पांच वस्तुके त्यागसें होता है याने जीवहिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह इन पांचोंका त्याग होवै तब यम नामक योग प्रकट होवे. दूसरा योग नियम है, उसमें शौच, संतोष, तप, सज्झायध्यान और इश्वरध्यान इन पांचोंके सेवनसें नियम सिद्ध होता है. तो ये जैसें जैनमें व्यवहार कहा है वैसेंही योगशास्त्रमें कहा है. तीसरा आसन योग है-याने आसन स्थिर करना, ये तीन सिद्ध हुवे पीछे चौथा प्राणायाम योग होता है, उसमें पूरक, कुंभक और रेचक करना कहा है-ये हठ समाधि योग है. पांचवा प्रत्याहार योग है, उसमें पांचों इंद्रियके विषयोंका संवर होता है. संसा-रसें और जडभावसें विमुख होता है. तत्त्वबोध होता है, सूक्ष्म ज्ञानभी होता है. छट्ठा ध्यानयोग है. सातवा धारणायोग और आठवा समाधियोग है ये तीन योग केवल सहज समाधिकी प्राप्तिके साधन है सो होवे. अब शोचा कि अष्टांगयोगके साधनवा-लोंनेंभी प्रथमके योगमें व्यवहारशुद्धि बतलाइ है, वो व्यवहारशुद्धि न करे और कहवै कि ध्यान करते हैं वो बात ज्ञानवंत क्यों कबूल करेंगे? जैनशासनमेंभी क्रमशः चड-नेकों गुणस्थानकका क्रम बतलाया है, उस मुजब उसमेंभी योग्यता मुवाफिक ध्याना-दिक हैं, और क्रमरहित गुणस्थानमें चडनेवालाभी पीछा पडता है, वो संयमश्रेणीकी स्वाध्यायमें कहा है. पुनः बृहत्कल्पकी शाख़ी दी है; वास्ते क्रमशः जिसतरह ध्यान नादिककी रीति कही है, अष्टांगयोगकी व्याख्याभी योग्य दृष्टि समुच्चयमें हरिभद्रसूरि-जीने विस्तारपूर्वक कही है उसमें ज्यादे तफावत नजर नहीं आता है. और जैनी जानते नहीं, शोध करते नहीं, ये कहेना जैन धर्मशास्त्रके अजानपनाके लिये है. जैनमें क्रमसें गुणस्थान चडनेका कहा है, उसमें योग्य होता है तब ध्यान करता है. योग्यता न आवे वहांतक भावनाएं भावे. ये भावना ध्यानका स्वरुप ध्यान शरीक, योगशास्त्र, ध्यानमाला, षोडशकजी वगैरः ग्रंथोमें देखोगे तो अच्छी तरहसें समझा जायगा. मैंनेभी अंशमात्रसें प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें दर्शाया है. उससें यहां नहीं लिखता हुं; वास्ते उसमेंसें देख लैना. तुमारा प्रश्न इतना स्वीकारते है कि मार्गमां दर्शावे मुजब मेरेसें नही हो सकता है वो प्रमाददशा है. बाकी जो महापुरुष हुवे हैं और होनेवाले हैं वे

पुरुष तो आत्मतत्त्वकीही शोधमें वक्त व्यतीत करते हैं, निजस्वरूप शोचते हैं, आपके गुणपर्याय विचारते हैं. आपका स्वरूप शोचतें आपकी विपरीतदशा मालूम होवै उसें दूर करनेके लिये व्यवहारमें वर्त्तते है व्यवहारमें वर्त्तनेसें जितना आत्मा कर्मसें मुक्त होता है और निर्मल होता है उसकोंही धर्म मानते हैं, उसीमेंही आनंदित होते है आपके आत्माकी परीक्षा करनेकों कष्टभी सहनकर देखते हैं; सबब कि वातें करनेरूप जडपदार्थ मेरा नहीं ऐसा कहते है; परंतु ज्ञानी तो कष्ट सहन करनेके वक्त परीक्षा करते हैं कि जो शरीरकों कष्ट पडता हे तब वो कष्ट मुझकों हुवा माना जाय या नही? जो दुःखमें चित्त खिन्न होता है तब तो कथनरूप हुवा, और जो शरीरकों कष्ट होता है उसमें समभाव रहते हैं तब सच्चा ज्ञान हुवा स्वीकारते हैं, ऐसी स्वाभाविकदशाही स्वस्वरूप परस्वरूप ज्ञान होनेसें हुई है, उसके प्रभावसें जो जो दुःख होता है उसमें किंचित्भी खेद नही पाते हैं, आपआपने आनंदमें रहते हैं. कर्मफलकी प्रतीत होती जाती है कि पूर्वसमयमें पाप किये है, उसका यह फल भुक्तता हुं. अबभी पाप करुंगा तो उसके फल भुक्तने पडेंगे, ये विचार जम गये हैं उससें कर्म क्षय करनेके प्रभुजीने जो जो उद्यम कहे हैं उससें व्यवहारमें प्रवर्त्तते हैं, निश्चय स्वरूप हृदयमें चिंतन करते हैं, उसकी विचारणा कर रहे हैं. विशेष विशुद्धिवंत ध्यानादिमें लीन होते हैं, और ऐसे उद्यमसें पुरुष मोक्ष पावेंगे यह निश्चय वार्त्ता है; परंतु जिसने उद्यम छोड दिया उसकों तो कुछभी होनेका नहीं.

प्रश्नः—धर्मका उद्यम तो सब धर्मवाले अपने अपने विचार मुजब करते हैं तो जैनधर्ममें क्या विशेष है?

उत्तरः—जैनधर्मके मार्गमें निश्चय और व्यवहार ऐसें दो प्रकारका मार्ग है, उससें करकें वस्तुधर्मका यथार्थ निर्णय होता है, और यथार्थ प्रवृत्तिभी कर सकते हैं. जैन होकरकेंभी कितनेक अकेला निश्चय ग्रहण करते हैं. कितनेक अकेला व्यवहार ग्रहण करते हैं और निश्चयपर दृष्टिही नहीं देते. इन दोनुमें यथार्थ जैनपना ही नहीं. इस वास्ते यशोविजयजीने कहा है कि—'स्याद्वाद पूरण जो जाने, नयगर्भित जस वाचा; गुणपर्याय द्रव्य जो बूझे, सोइ जैन है साचा.' इसतरह कथन है. और इसी मुजब चले उसीकोंही जैनी कहना दुरुस्त है. तो जैसे जैन नाम धारण करकें एक पक्ष ग्रहण करे तो उसें जैनीकी गिनतीमें नहीं गिना जावै; सबब कि वो यथार्थ आ-

त्मसाधन न कर सके. किसी तरह अन्यदर्शनमेंभी एकांत पक्ष ग्रहण करे उसें वस्तुधर्मका यथार्थ ज्ञान न हो सकैगा. और वस्तुधर्मके बोध सिवा आत्मधर्मको आत्मधर्मके स्वरूपसें न जान सकै; जडधर्मको जडधर्मके रूपसें न जान सके, जैसा आत्माका लक्षण है वैसा लक्षण न जान सकै, परमात्माका जैसा लक्षण है वैसा न जान सके, वो कदाचित् परमात्माका ध्यान धरै तोभी सफल किसतरह होवे ? कितनेक कहते हैं कि-' इश्वर सिवा कोइ पदार्थ हैंही नहीं. जडपदार्थ है ऐसा कहते हैं सो भ्रांति है. अब प्रत्यक्ष पदार्थको भ्रांती कहते हैं वे मनुष्य उसके अनुसार ध्यान धरै तो आत्मकार्य किस प्रकारसें हो सके ? वास्ते जो जो वस्तु जिस जिस रूपसें रही है उस उस स्वरूपका ज्ञान करकें ध्यान धरे तो कल्याण होवे; बाकी जिस जिस जीवोंको अपने आत्माका कल्याण करनेकेही बुद्धि है और वो बुद्धिसें जो उद्यम करते हैं वो परंपरासें हितकारी है; सबब कि आत्मधर्म पानेके सन्मुख हुवे हैं, उनोंको सद्गुरुका योग मिल जाय तो ज्ञान होनेमें देर न लगै. वास्ते सन्मुख भाव करना ये अच्छा हैं. उससें परंपरासें कल्याण होवेगा, और एक पक्षकी बुद्धि छोडकर निश्चय दृष्टि हृदयमें स्थापन कर निश्चय प्रकट होवै वैसे कारण सेवन करने चाहियें कि उससें कल्याण होवे, और परंपरासें इच्छित सुख होवैगा. उसमें मुख्य शास्त्रज्ञान करनेका विशेष उद्यम रखना, उस ज्ञानानुसारके परभावसें मुक्त होनेके साधन करने चाहियें कि उससें सर्व श्रेय होवैगा.

प्रश्नः--जैनमें कितनी वस्तु कही हैं ?

उत्तरः--जड और चेतन दो पदार्थ है, इनकी व्याख्या पेस्तर बहुतसी की है, इससें यहांपर नही लिखता हुं. अब इतनाही लिखनेका है कि जड जो शरीर-घर-हवेली-कपडे-आभूषण वगैरः प्रकट पदार्थ हैं, उसको अद्वैतवादी कहते हैं कि भ्रांति है, पदार्थ नहीं. अविद्याके प्रभावसें मानते हो. यह जो कहा हुवा है इस विषयके बहुतसें ग्रंथभी लिखाये गये हैं और न्यायभी रचे गये हैं; परंतु मेरे विचारसें सर्वज्ञ पुरुषने क्या बतलाया है:-यह जडपदार्थ हैं, उससें ये पदार्थ मेरे नहीं, इन पदार्थोंमें मेरापना मानता हुं सो भ्रांति है-अविद्या है, आत्माका चेतन स्वभाव है वास्ते परस्वभावको मेरा कहना सो भ्रांति है और यही भ्रांतिसें अनंतकाल हुवा संसारमें परिभ्रमण किया; वास्ते जिसको संसारमें भटकना न होवे उसको इन पदार्थोंपरसें मेरेपणेका ममत्व छोड देना, इसतरह परमात्माका कथन है, उसका रुपांतर

हो गया है. फिर जैनमत स्याद्वाद है, उसकों अंजानपनेसें युं जानता है कि हा और ना ये किस तरह बन सकै? परंतु जो जो पदार्थ रहे है उसमें दो दो धर्म रहे हैं तो वै न माननेसें कार्यकी सिद्धि किस प्रकारसें हो सके? उसका दृष्टांत कि-औरतकों लडके होते हैं. अब एक पक्ष पकडकर कहैं कि औरतकों लडके होतेही है, तो क्या दूषण आता है कि वंध्याओंकों लडके नहीं होते हैं. अब वंध्याकों होवेही नहीं ऐसा मानते है उसमेंभी दोष आता है; क्यौं कि वंध्याकों औषध देनेसें वंध्यादोष मिटता है और लडके होते हैं. अब युं कहै कि औषधसें वंध्यादोष दूर होता है तो वोभी झूंठा है; सबब कि कितनीक औरतोंकों औषधसेंभी वंध्यादोष नहीं मिटता है, तो एकांतसें युंभी कहैं तो दूषण आयगा. शरीरकी निरोगता अच्छी मावजत रखनेसें रहती है ऐसा यदि एकांतसें कहेंगे तो महाराणी साहबाकों मंदगी भुक्तनी पडी और शरीर त्याग करनेका समय आया, क्या उन्होंने मावजत करनेमें कुछ कमी रक्खी होगी? मगर पूर्वकृत कर्म जोर करे वहां मनुष्यका कुछ नहीं चल सकता है. अब यहांपर ऐसा सवाल होवैगा कि शरीरकी मावजत रखनेके लियें कुछ जरूरत नहीं, कर्मसें होता है सोही होवैगा, येभी एकांत पक्ष नहीं. हिफाजतसेंभी बचाव होता है; जैसें कि जानबूझकर विष खायेंगे तो फिर क्योंकर जिया जायगा-जीवन कुशल रहवैगा? महामारी वगैरःकी हवा चलती होवै वहांसें दूर जाना चाहियें, युं करनेसें बचाव होता है-येभी एकांत नहीं. अब दाक्तरकोंभी भग जाना चाहिये ये सवाल ऊठैगा; क्यौं कि दूसरे भगें तब दाक्तर क्यों न भग जाय? तब हम कहेंगे कि भाग जानेका एकांत नहीं. दाक्तर महामारी लागु न हो सकै ऐसे बंदोबस्तसें रह करकें लोगोंकी सलामती समालै-दाक्तर भग न जाय. दूसरे जन दूसरी जगह चले जाय तो हरकत नहीं. इसी तरहसें धन पैदा करना, सो महेनत करनेसें धन पैदा होता है और नहींभी होता. बुद्धिवंत बुद्धिसें धन पैदा करता है, वोभी एकांतसें नहीं कहा जायगा, बुद्धिवंत देवालेभी निकालते हैं. और मूर्ख होते है सो धन समालकर रखते है, वोभी एकांत नहीं; बुद्धिकी न्यूनतासें बहुत नुकशान होता है. खाना वो अच्छा है मगर वोभी एकांतसें नहीं क्यौ कि शरीरमें खाया हुवा हजम नहीं हुवा और फेर और खाय लेवै तो अजीर्णादिक रोग होवै, वास्ते उसकों न खाना, उसमेंभी एकांत नहीं; सहज पदार्थ संतोषके लियें-निभावके लिये, खोराक लिया पाचन होनेके लियें खाना चाहिये.

घी बहुत उत्तम पदार्थ है, खाने लायक है; मगर निरोगीके वास्ते है, रोगीके लिये नहीं. रोगीकोंभी न खाना ऐसा एकांत नहीं, औषधके अनुपानमें-रोगपर या शरीरस्थितिपर विचार करके वैद्य-डाक्तर खानेकों कहें तो खानाभी चाहियें. दान देना उत्तम है; मगर एकांत नहीं. अपने सिरपर करजे होवै वो न देवै, और दान देवै, उस प्रकारसें दान न देना येभी एकांत नहीं आपके खानेके वास्ते दो रोटी बनाइ है उ-समेंसें आधी या एक रोटी देकर बाकी रही हुइ रोटीसें आपका गुजारा चला लेवै सो उत्तम है. दान न देता तो आप खाता; मगर आपने खाया नही और दान दिया सो महा फलदायी है. किसीकों दुःख न देना ये शब्द एकांत है तोभी वो एकांत नहीं. किसी उत्तमपुरुषकों रोग हुवा है, वो रोग मिटानेके लिये दुःख देवै तो वो लाभकारी है; जैसें कि वर्ण व्रण गया हो और नस्तर देवै तो उससें दुःख होता है सही; परंतु शाता करनेके वास्ते दुःख देना है तो वो दुःख देना निषेध नहीं. लड़-कोंकों पढानेके लिये शिक्षक आदि विद्यार्थियोंकों मारते हैं-दुःख देते हैं वो दुःख देना निषेध नहीं. सोभी एकांत नहीं. मारनेसें हाथपाँव टूट जाय, जखम हो जाय, खून निकलै, कोइ भारी इजा होवै ऐसा मार वगैरःभी न मारना चाहियें. फिर कोइ कोमल अंगका होवै वैसेकों बिलकुल न मारना चाहियें. फिर कोइ शिष्य अयोग्य होवै तो न मारना चाहिये. इसतरह सब विद्या पढनी यह साधारण नियम है; परंतु वो एकांत नहीं. मंत्र-विद्या वगैरः विद्या सिद्ध करनेकी जिसमें शक्ति न होवै उसकों वो विद्या पढनीही न चाहियें. और तप करना सो लाभकारी है, वोभी एकांत नहीं; जिसकी शक्ति होवै वो तो सुखसें तप करै; मगर ताकत न हो तो तप करनेसें परि-णाम बिगड जाता है. वैसेकों तप न करना वोभी एकांत नहीं अंतिम मरण समय है और उस वक्त शक्ति हो या न हो तोभी चारों आहारकों त्याग करनाही दुरुस्त है. वोभी एकांत नहीं, जिनके भाव अच्छे न रहै और परिणाम बिगड बैठे तो उसकों त्याग करना व्याजबी नहीं. धर्मोपदेश देना ये अच्छी बात है; मगर एकांतसें नहीं. जिसने यथा प्रकारसें शास्त्रका ज्ञान मिलाया है वो उपदेश देवै; परंतु जिसने वैसा ज्ञान न मिला लिया हो वै और उपदेश देने लगै तो प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध देनेमें आ जाय, वास्ते ज्ञान रहित हो उसे उपदेश न देना. ज्ञानवंत है वोभी श्रोता उपदेशके लायक न होवै तो उपदेश न देवै-सोभी एकांत नहीं.

वर्त्तमानकालमें लायक श्रोता नहीं है, मगर उपदेश देनेमें लायक बनेगा ऐसा मालूम हो सके तो देना. अयोग्यका जवाब न देनेसें शासनकी लघुता होती हो तो लघुता दूर करनेके लिये उपदेश देना यह स्याद्वाद रीति है अपेक्षा अपेक्षाके वचन भिन्न भिन्न हैं. अब ऐसी अपेक्षाएं न समझै और एकही रीतिकी बात कहवै वो ज्ञानी कि अज्ञानी ? सरकारके कायदामेंभी अपवाद हैं. विसी तरह जैनशासनमेंभी उत्सर्ग अपवाद मार्ग बतलाया है. विगर अपेक्षासें हा उसकी ना ऐसा जैनमार्ग नहीं. जिस तरहसें जैनमार्ग समझ लिये विगर किसी जगह शास्त्रमें उत्सर्ग मार्गकी बात होवै और किसी जगह अपवाद अपेक्षासें होवै, वो विचार ध्यानमें लिये विगर कहते है कि जैनमें एक जगह कुछ कहा है और दूसरी जगह और कुछ कहा है-ऐसा कहेनेवाले केवल मूर्खताका उपयोग करकें कहते हैं. जैनशासनकी सुज्ञता प्राप्त हुइ होती तो कभी ऐसा न कहेते. जैनमें जो सात नय सप्त भंगी आदि बतलाइ है वो ऐसा अपेक्षा ज्ञान होनेके लियेही है. वो नयादिकका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो समस्त जगह जो जो नयका वचन है वो वो नयकों उसी जगह स्थाप लेवै तो किसी बातका संदेह रहवेही नहीं. परंतु वो ज्ञान विगर जैनशासननी स्याद्वाद बातके संबंधमें विपरीत बोलै-भाषण करै ये अपने मजहब-पंथका हठ है. जो जो पदार्थ रहे हैं उसका निर्णय स्याद्वाद ज्ञानसेंही होता है. दुनियामें कोइभी वस्तुका स्वभाव स्याद्वाद सिवाका नहीं है; जैसें कि जीव है सो अविनाशी है ये सत्य है, किसी रोज जीवका विनाश होताभी नहीं. यही पक्ष पर अेकांतसें रहवै तो जो जो जीव संसारमें परिभ्रमण करते है वे एक शरीर छोडकर दूसरी जातिका दूसरा शरीर धारण करते हैं. तो पेस्तर हाथी था तब आपके आत्मप्रदेश हाथीके सारे बदनमें फैलकर रहे हुवे थे, वो हाथीभी मर गया और मख्खी हुइ तो जो हाथीमें फैलाव था उसका संकोच कर मख्खी जितनेमें समाया-इसी तरह आत्मप्रदेश हुवे तो हाथीवाली अवगाहनाका नाश हुवा, और हाथीकी-बोलने-चलने खाने-पीने वगैरः जो जो प्रवर्त्तनायी वो बंध हो कर मख्खीपणेकी हुइ तो हाथीपणा नाश हुवा, उस अपेक्षासें जीवमें नाश धर्म भी रहा है. जो नाश धर्म न मानै तो विपरीत कि कैसा ? परमाणु पदार्थ अविनाशी है; मगर एक दूसरे मिलजाना, अलग हो जाना ये धर्म रहा है, -सो विनाशी धर्म है. इसी तरह मिट्टीके अनेक घाट होते हैं, वो विनाश होते हैं, मिट्टी अविनाशीपणेसें है, तो इसी-

मेंभी दो धर्म रहे है, विसी तरह दो दो धर्म सबमें मौजूद हैं. आत्मामें स्वभाव धर्म और विभावधर्म-ये दोनु दोनु अपेक्षासें रहे हैं. स्वभावधर्म कर्तृम नहीं, स्वभावधर्म जडमें रहेनेका; मगर जडकी साथ वर्त्तनेका नहीं. मुँह नहीं उससें बोलनेका नहीं, चलनेका नहीं; फकत जानना-देखना-स्वभावमें स्थिर रहना ये स्वभाव आत्माका है. अब एकांत मानै तो जडप्रवृत्ति करता है सो कौन करता है ? वेदांतीलोग ऐसा कहते है कि मायासें अविद्या होती है तो उस रीतिसेंभी परसंयोगसें वर्त्तनातो हुइ. तो जीवमें स्वभाव न होवै तो किसतरहसें वर्त्तना करै ? अब वर्त्तनेका स्वभाव मानै तो इससें रहित होवै नहीं. ऐसें एकस्वभाव माननेसें कुछभी वस्तु निर्णय नहीं हो सकैगा. जैनशास्त्रकारें स्वाभाविकधर्ममें कुछभी जडप्रवृत्ति नहीं ऐसा कहते है सो सत्य है. वैसा न होवै तो संसारसें मुक्त होकर कोइ शुद्ध हो सकेही नहीं. वास्ते शुद्ध निश्चयनयके पक्षसें निजस्वभावमें रहना यही धर्म है. अशुद्ध निश्चयनयके पक्षसें जडकी संगतके जोर कर्म बंधे हुवे हैं. वो कर्मके संयोगसें जडकी प्रवृत्ति होती है. जड ज्यौं वर्त्तता है त्यौं आत्मा वर्त्तता है. अब वो प्रवृत्ति छोडनेके वास्ते व्यवहारमें धर्मसाधन करना है और जो जो कर्म बांधे हुवे हैं वो क्षय होवै वैसा उद्यम करना. कर्म क्षय करनेकाही यथार्थ उद्यम किये विगर आत्मा निर्मल होनेकाही नहीं और कर्मक्षय होनेकेही नहीं. ऐसे वस्तुओंमें स्वाभाविक विभाविक धर्मोंका ज्ञान विगर ध्यान करै तो विपरित ध्यान होवैगा. वास्ते पदार्थोंके धर्मका दर्शाव जैनशास्त्रकी अंदर बहुत विस्तारपूर्वक है, वो जानकर पीछे दया दानादिक करै तो सफल होवै, और मोक्षसाधनभी उसें कहा जावै. स्वभाव धर्मकों स्वभावपणेसें श्रद्धा करके विभाव धर्ममें वर्त्तना है वो दूर करनेमें पेस्तर विभाव वर्त्तना करनी पडेगी; जैसें कि गृहस्थपणेकी प्रवृत्ति विभाविक छोडकर साधु धर्मकी प्रवृत्ति करनी. अब निश्चयनयकी अपेक्षासें येभी विभाव है. परंतु ये विभाव कैसा है ? स्वभावकों आवरण लगा हुवा होवै उसे हठानेवाला है-वीतराग आज्ञासें साधुपणा आता है सो तो विभावके अंश क्षय होनेसेंहीं आता है, वो ज्यौं ज्यौं संयममें तत्पर होवै और संयम स्थानमें चडता जाय त्यौं त्यौं विभावदशा हठती जावै और आत्मशुद्धि होवै. अनुक्रमसें गुणस्थान चडता जाय सो सर्वथा विभावसें मुक्त होवै और स्वभावधर्ममें प्रकट होवै उससें अनंत ज्ञानशक्ति प्रकट होवै और एक समयमें तीनलोकके भाव जाननेमें आवै. अनंतदर्शन प्रकट होवै उससें

सामान्य उपयोग रूप बोध होवै. अनंत चारित्रगुण प्रकट होवैं उससें स्वभावमें स्थिर रहवै. अव्याबाधसुख वेदनीकर्मके क्षयसें प्रकट होवै. नामकर्मके क्षयसें अरूपिगुण प्रकट होवै. गोत्रकर्मके क्षयसें अगुरु लघुगुण प्रकट होवै. अंतरायकर्मके क्षयसें अनंत-वीर्य प्रकट होवै आयुकर्मके क्षयसें अक्षयस्थिति प्रकट होवैं इसतरह अनंत आत्माके गुण प्रकट होवैं और लोकाग्रमें सिद्धिके अंदर बिराजमान होवै.

प्रश्नः—सिद्ध स्थान कहां है और वहीं किस लिये रहना ?

उत्तरः—सिद्ध स्थान चौदह राजलोककी उंचाइ है उसके अंत भागमें अलोक-कों छूके रहे है. अलोक याने वहां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पु-द्गलास्तिकाय, काल ए पांचों पदार्थ नहीं उससें अलोक कहाजाता है. वो अलोकके नीचे रहे हैं; सबब कि धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं उसकी सहायता विगर चला नहीं जाता वास्ते वहां रहे हैं. वहां कैसें रूपसें रहे है ? देह नहीं उससें वर्ण नहीं. गंध नहीं, स्पर्श-फर्स नहीं, रस नहीं, अरूपीपणेसें रहे हैं. सो सदाकाल अवस्थितपणेसें रहे हैं कोइभी दिन पुनः चलित होनेकाही नहीं—अचल स्वभावी [संसारी सुख अस्थिर है वैसा अस्थिर सुख नहीं] स्थिर सुख है, जन्म मरण करनेके दुःख दूर हो गये हैं, संसारमें विकल्पकाही दुःख है, जब विकल्प न होवै तब संसारमें सुख होता है उससें सिद्ध महाराज सदा विकल्प रहित हैं—कोइभी वक्त कोइभी कारणका विकल्प नहीं उससें सदा काल सुखमयी रहते हैं. संसारमें इच्छाएं प्रवर्त्तती है वैसी इच्छाएं पूरी न होवै उसका दुःख है; परंतु सिद्ध महाराजकों कोइभी संसारी चीजकी इच्छा नहीं उससें दुःख नहीं जिससें सदा सुखमयी है जो जो पदार्थ देखनेमें जाननेमें आते हैं उस संबंधी रागी जीवकों राग होता है. पीछे वो मिलता नहीं उसका दुःख होता है. और महाराजजी वीतराग दशाकों पाये है उससें उन्होंके जानने देखनेमें चौदहराज लोकके पदार्थ समय समयमें आते हैं; परंतु वीतराग दशाके लिये जो आपके आत्माके स्वभावसें मालूम होते हैं उसमें कुछभी चित्त नहीं, विकल्प नहीं, मगर स्वभावानंदमें वर्त्तते हैं. जितने जितने संसारमें दुःख हैं उस अंदरका एकभी दुःख सिद्ध महाराजजी कों नहीं. पुनः संसारके जो जो सुख है वो दुःखमयी हैं—अनित्य हैं, मात्र सुख मानते हैं इतनाही है. ज्ञानदृष्टिसें शोचै तो सुख नहीं है; सबब कि जगतके जीव स्त्रीके भोगसें करके आनंद मानते है; परंतु इसी वक्त शरीरकों कितनी तकलीफ होती हैं उसपर

लक्ष नहीं देते हैं. उसकों दुःख न मानते सुख मानते हैं विषयसें आयुष्यकी हानी-पैसेकी खराबी होती है, वो सब बात बाजुपर रखकर सुख मानते हैं. किसी तरह तमाशे खेल देखनेकों जाय वहां रात्री जागरण करता है, खडाही खडा रहता है, उसें दुःख नहीं मानता. जेवर पहनकर खुशी होता है, उसका बोजा उठाना पडता है और शरीरकों पीडा देता है परंतु उसपर लक्ष नहीं. मुंही खानेके विषयमें कितनीक ऐसी चीजें है कि खानेसें रोगकी उत्पति होती है; मगर उसकी तरफ लक्षही नहीं. कितनेक पदार्थ शरीरकों अरुची करै ऐसें नहीं है तोभी वे प्रमाणसें खावै तो. यदि प्रमाणपर लक्ष न रख्खै और पशुकी तरह अतिशय खावै तो अजीर्ण होवै और मर जाय या बीमार होवै, उसकाभी बिचार विषयके आगे बेमालूम रहेता है. यदि प्रमाणसें खावै तोभी उसमें कितने दुःख भुक्तने पडते हैं, जैसें कि जीवकों दुग्धपाक खानेका दिल हुवा है और दुग्धपाक खाकर खुश होता है, मगर दुग्धपाक बनातेही कितना पसीना निकला जब तैयार हो सका उसका कोइ विचार नहीं करता. इसतरह संसारी सुख दुःख गर्भित है. स्त्रीयोंकों विषयके लिये पुरुषका दासपणा करना पडता है. यदि विषयकी इच्छाही न होवै तो पाणीग्रहण करनेकी जरूरतही न पडै; परंतु विषय सेवनकी इच्छासें पाणीग्रहण करती है. पीछे पुरुष मारे पीटे-गालीयां देवै-सारा दिन घरका काम करावै-इतना दुःख भुक्ते तब विषयके पहननेके सुख मिलते हैं. वास्ते वस्तुपणेसें संसारीसुख सुख माननेरूपभी दुःखमयी हैं. और सिद्धमहाराजजीकों इनमेंसे एकभी दुःख नहीं. केवल सुखही है, और सादि अनंत भांगे हैं याने सिद्धिमें गये तबसें आदि है; परंतु ये सुखका अंत नहीं आनेका. इसका स्वरूप अकल है-किसीसें पार लिया जावै नहीं ऐसा अगम है. त्युं ये सुख मुँहसें कहा जा सकै वैसा नहीं. शास्त्रमें एक दृष्टांत दिया है कि-एक राजपुरुष वक्रशिक्षित अश्वपर आरुढ हुवा और पीछे ज्यों ज्यों उसकी लुगाम खीचता गया त्यों त्यों खडे रहनेके बदलेमें घोडा दौडता चला गया और कही जंगलमें ले गया. अपने मनुष्य सब पीछे रह गये और राजा अकेला जंगलमें भटकने लगा. राजाकों डर लगनेसें लुगाम छोड दी कि फौरन घोडा खडा हो रहा. पीछे अश्वपरसें नीचे उतरा. राजाकों बडी प्यास लगीथी, परंतु पास जलपात्र कुछभी न था. इतनेमें एक भील वहांपर आ चढा, उसकी पाससें राजाने पानी मांगा तो उसने दया ल्याकर पत्तेके

दडियेमें जल ल्याकर पिलाया, और पानी पीकर राजा प्रसन्न हुवा. उस पीछे भीलने फल वगैरः ल्याकर दिये वो राजाने खाये उससें राजा बहुतही खुश हुवा. उतनेमें प्रधान वगैरः सब आ पहुंचे. तब राजाने कहा कि इस भीलने मेरे प्राण बचाये हैं. पीछे राजा भीलकों अपने साथ ले गया. वहां विविध मेवा मिठाइ खिलाइ, उससें भीलभी खूब रांजी हुवा, और कितनेक रोज वहां रहकरकें राजाकी रजा मांग अपने घर गया. तब औरतनें पूंछा कि 'नगरमें कैसा सुख था?' जवाब दिया 'बहुत सुख था.' औरतने कहा-'उसका ठीक ठीक बयान कर बतलाओ.' मगर वो कुछ बयान न कर सका. विसी तरह सिद्धमहाराजजीका सुख मुंहसें कहा जावे ऐसा नहीं है. सब कि उस सुखका बरोबर मुकाबला कर बतलावे वैसी चीज सुख पूर्ण संसारमें हेही नहीं; वास्ते सच्ची रीतिसें तो वो सुख वैसी दशा पावे सोही जान सके. कितनेक सुख लिखनेमें आये हैं वे दृष्टांतरूप हैं. उससें बुद्धिवंत कितनाक समझ सके. ऐसा सिद्धमहाराजजीका सुख अठारह दूषण त्याग करनेसें होता है. वास्ते हरएक दूषण भगवंतजीने दूर किये, उसका स्वरूप वे दूषण नाम मात्रसें बतलाया है. विस्तारसें शास्त्रोंमें है, वहांसें देखकर भगवंतजीने दूषण त्याग करनेका उद्यम द्रव्य भावसें कहा है विसतरह करना कि आत्माका कल्याण होवै, और सिद्धमहाराजजीके बीच भेद है वो दूर करकें सिद्धमहाराजजीके समान गुणवाला आत्मा होवै, यही मनुष्य जन्म पायेका फल है.

प्रश्नः—आत्माके गुण आत्माकों देना उसें दान कहा और आत्माके गुणकी प्राप्तिकों लाभ वगैरः बतलाया वो कौनसें आधारसें?

उत्तरः—देवचंदजी कृत चौवीसीमें सुपार्श्वनाथजीके स्तवनकी अंदर दर्शाया है. पुनः आनंदघनजीकी चौवीसीमें भी वैसा दर्शावेहै उसके आधारसें लिखा है.

प्रश्नः—वर्त्तमान समयमें महापुरूषोंके किये हुवे ग्रंथोंके और सूत्रोंजी-सिद्धांतजीके भाषांतर होते हैं सो योग्य है या नहीं?

उत्तरः—अभी जो भाषांतर होते है वे भाषांतर कोइ मुनी महाराजजी तो करते नहीं. पेस्तरके किये हुवे बालावबोध मुनि महाराजजी और आचार्यजीके बनाये हुवे हैं, उसमेंभी टीकाके जितना विश्वास विद्वान नहीं रखते हैं-टीका देखकर मिलता हुवा और यानें टीका के साथ मिलता होवे तो उसें मान्य करते हैं. अभी तो ऐसे

पुरुष कोइ ग्रंथका भाषांतर करते हुवे मालूम नहीं होते. फक्त अपनी आजीविकाके वास्ते जैनी गृहस्थ या ब्राह्मणपंडित करते हैं. जो मनुष्य अपनी आजीविकाके वास्ते करते हैं उन्होंने जैनशासनकी रीति पेस्तरसेंही लुप्त कर दीहै; सबब कि यह लोकार्थ प्रभुजीका पूजन करै उसें लोकोत्तर मिथ्यात्व कहा है. तो ज्ञानका अर्थकर या ज्ञान (पुस्तक) बेचकर पैसे पैदा करना सो इस लोकका लाभ है, तो प्रथम हीसें मिथ्यात्व हुवा, सो मिथ्यात्व लगता है, ऐसा शास्त्रसें जाने; परंतु आपकों मिथ्यात्व लगता है वो नहीं मानते हैं. ऐसी दशावाले जैनी या मिथ्यात्वी हैं, ऐसे जीवोंकों यथार्थ सिद्धांतका बोध किसतरहसें हो सके? और यथार्थ बोध विगर अर्थका अनर्थ हो जाय; वास्ते ये कार्य आत्मार्थीकों करना योग्य नहीं. कदाचित् आजीविका-गुजरानके लिये काम करते हैं उन्होंकों शुद्ध क्षयोपशम नहीं होता है. फिर विशेषावश्यकजीमें तो ऐसा कहा है कि सामायक अध्ययन गुरुके पाससें पढना; मगर "ननु पुस्तक चौर्यात्" अपने आपसें पुस्तककी अंदरसें पढना नहीं. तो ये तो सिद्धांतके अर्थ करनेके हैं. पुनः पयन्नादिक विगर दूसरे आगमजी (अंगउपांगादि) श्रावककों साधुजी पढावे तो प्रायश्चित निशिथजीमें कहा है. तो पढानेकी तो मनाही होवे, और ये तो अपने आपसेंही अर्थ कर लेते हैं, उसमें गुरुमहाराजजीके आशय नहीं आसकते हैं उससें पूर्णपणेसें अर्थ न हो सकैगा; वास्ते आत्माका डर रखकर ऐसे काम करनेमें समता रखनी. और जो जीव भय न रक्खै और ऐसे काममें प्रवर्त्ते तो उसके किये हुवे बालावबोधपर आत्मार्थी विश्वास न रक्खेंगे. और जिसकों मार्गका ज्ञान नहीं, मार्गके ज्ञानवंतकी अनुयायीसें चलना नहीं वो तो अपनी मरजी मुजब चलेगा उसमें तो कोइ इलाज नहीं-लाइलाज हैं.

प्रश्नः—तुमारे लिखे हुवे प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणिमें जिनपूजनकी अंदर अल्प हिंसा लिखी है, और दूसरे शास्त्रोंमें तो अल्पहिंसाभी नहीं लिखी उसका क्या सबब है?

उत्तरः—पूर्वपुरुष अनुबंध हिंसा नहीं कहते सो कहना व्याजबी है. पूजामें अनुबंध तो कुशलानुबंधी है इससें मोक्षमें मिला दे सके वैसा अनुबंध है; वास्ते अनुबंध हिंसा नहीं. स्वरूप हिंसा है. वो कथनमात्र है, फल नहीं त्यौं हमारा कथन शब्द भेद है, आशय एकही है. हम अल्प जिसकों मुक्तिसुखकी देनेहारी जिनपूजा है याने जिनपूजा मोक्षसुखदायक है-अल्पहिंसाका फल नहीं होवे. अल्पशब्द अभा-

वचावींभी हैं, वैसाही समजना. इसतरह कहनेसें पूर्वपुरुषोंके कहने मुजबही है. पूर्वपुरुषसें हमारी विरुद्ध श्रद्धा नहीं. किसी जगह हमारी भूल हो जावे; परंतु महंतपुरुषोंकी भूल होवेंही नहीं–यही हमारीभी श्रद्धा है. हमारी बुकमें जहां जहां पूर्वपुरुषसें विरुद्ध लेख देखनेमें आवै इसकी श्रद्धा न करनी. वहां वहां पूर्वपुरुषकीही श्रद्धा करनी. वो हमकों भी मालूम करना कि हम हमारी भूल सुधार सकें.

प्रश्नः—प्रश्नोत्तर रत्नचिंतामणीमें पत्र १९७ की अंदर क्षायकसमकित शुद्ध अशुद्ध भेदके लिये तत्त्वार्थकी साखी दी है वो तत्त्वार्थमें है?

उत्तरः—तत्त्वार्थमें तो सादि सपर्यवसान, सादि अपर्यवसान–इसतरह दो भेद कीये हैं. सो पहेले भेदके स्वामी श्रेणीकादि छद्मस्थ कहे हैं और केवलज्ञानीका क्षायकसम्यक्त्व सादि अपर्यवसान है ऐसें दो भेद हैं. यही भेद नवपद प्रकरणकी टीकामें शुद्ध अशुद्ध कहे हैं वे दोनु साखी एकत्रकी लीखी हैं. शुद्ध अशुद्ध भेदके अक्षर नवपद प्रकरण टीकाके पत्र ४९ में और नयसुंदरजी कृत प्रश्नकी अंदर है वहांसें देख लेना.

प्रश्नः—दिगंबरमत पहेला है या श्वेतांबरमत पहेला?

उत्तरः—दिगंबरमतके वास्ते शास्त्रमें बहुत जगह कहा है कि भगवंत चर्म तीर्थंकरजी वीरस्वामीजीके निर्वाण बाद ६०९ वर्ष पश्चात् शिवभूति आचार्यने दिगंबरमत प्रकट किया है. वो बात दिगंबरी नहीं मानते है; क्योंकि उन्होंने नये शास्त्र रचे हैं. एकादश अंग, द्वादश उपांगादिक प्रकट है; मगर कहते हैं कि विच्छेद हुवे हैं. और अपने मतके निकालनेवालेकेही ग्रंथ हैं. उसीके आधारसें चलते हैं. इससें उन्होंको शास्त्रसें समजावे सो कबूल रखेंही नहीं; मगर न्यायसें समझानें चाहिये. वो आत्मार्थी तो सहजसेंही समझ सकै वैसा है. जो न्यायकी बुद्धि जाग्रत हुइ होवै तो वर्त्तमानसमयमें संप्रति राजाके भराये हुवे हजारों जिनबिंब हैं. वो संप्रति राजा श्रीवीरनिर्वाणके पीछे करीब ३०० वर्ष परही हुवा है. उन प्रतिमाजीकों लिंगका आकार नहीं. फिर कच्छदेशमें भद्रेश्वरकी अंदर महावीरस्वामीजीकी प्रतिमाजी है वहां तांबेपत्रपर लेख है–उन प्रतिमाजीकों २५०० वर्ष हुवे हैं. पुनः महुवामें जीवितस्वामीजीकी प्रतिमाजी है, वो महावीरस्वामीजीकी प्रतिमा वीरप्रभुजीके विद्यमान समयमें भरी हुइ है. इत्यादि दिगंबर मत पहलेकी जिनप्रतिमाजी बहुतसी जगहपर विद्यमान

है. उन प्रतिमाजीके लिंगका आकार नहीं, और उस पीछेकेभी श्वेतांबरमंदिर बहुतसें हैं और जिनबिंबभी हैं वे सब लिंगाकार विगरके हैं. और दिगंबरके मंदिरमें लिंगवाले जिनबिंब हैं, तो शोचो कि श्रीवीरप्रभुजीसें चलता आया हुवा धर्म दिगंबरका होता तो पुराणी प्रतिमाजी लिंगवालीही होती, या श्वेतांबरमत नया होता तोभी पुराणी प्रतिमाजी लिंगवाली होती; परंतु वैसी कहीं नजर नही आइ. इसलिये श्वेतांबरमत वीरनिर्वाणके समयसेंही चला आता है. दिगंबर प्रश्न करते हैं कि-'हमारे जिनबिंब पुराणे हैं.' उसका खुलासा यही कि वे पुराणे हैं ऐसा कोइ सबूतीवाला पूरावा नहीं; और श्वेतांबरके पुराणे हैं ऐसे पूरावे मौजूद हैं. भद्रेश्वरका लेख है, सांप्रतिराजा कब हुवे वोभी लेख है; वास्ते पूरावा बलवान् है. आबुजी, तारंगाजी, समेतशिखरजी, गिरनारजी और सिद्धाचलजी इन बडे तीर्थोंपर पुराणे मंदिर किसके हैं? कब्जा किसका है? असलसेंही श्वेतांबरीका कब्जा है. फक्त श्वेतांबरी श्रावकोंने महेरबानीके खातिर कहीं कहीं दिगंबरी मंदिर बनाने दिये मालूम होते हैं. सबब कि मुख्य जगहपर तो श्वेतांबरीकेही मंदिर हैं. और दिगंबरीके अभी थोडे वक्तमें हुवे हैं. ये देखनेसें श्वेतांबरीधर्म श्रीमत् वीरस्वामिजीसें चला हुवा आया है वही है. अभी कहीं कहीं श्वेतांबरीकी वस्ती कम है और दिगंबरीकी ज्यादे है, वैसी जगहपर मालिकीका पदप्रवेश करते हैं. उसमें श्वेतांबरीओंने दया ल्याकर मंदिरमें पैठने दिये और दिगंबरी प्रतिमाजीकों कितनीक जगह पधराने दी उस दयाके बदलेमें अपकार करकें मालिकीका दावा संबंधी तकरारें कितनीक जगहपर उठाइ हैं. मगर श्वेतांबरीका उपकार नहीं शोचते यह दिगंबरीकी ज्ञानदशाकी न्यूनता है. परंतु मंदिरोंके कब्जे और मंदिरोंसें सबूत होता है कि श्वेतांबरी अव्वलसेंही है यह निश्चय वार्त्ता है. दिगंबरमतका वाद अध्यात्ममत परीक्षामें बहुत है, इससें यहांपर लिखनेकी जरूरत नहीं; मगर कितनाक न्याय विचारमें आता है वो लिखता हुं. दिगंबरीने वस्त्ररहित मुनिमार्ग प्रकाशित किया, और श्वेतांबरीका सिद्धांत स्थविरकल्पी साधु वो वस्त्ररहित होवे, यह विधि चलता हुवा आया सो चलता है, उससे श्वेतांबरीके हजारो साधुजी त्यागी विरागी आत्मार्थी नजर आते हैं और दिगंबरोंके साधुजीका लोप हुवा है. शायक क्वचित क्वचित होते हैं, वे वस्त्र ओढते हैं, तो नाम दिगंबर धारण करकें पीछे वस्त्र पहननेकी जरूरत पडी तब वस्त्र पहन लिये और नाम दिग्-अंबर रख्खके

ये कैसी वाल ख्यालके जैसी बात है ! यहांपर कोइ दिगंबरी प्रश्न करेगा कि-"सिकं-दरबादशाहकी तवारीखमें है कि जैनके नग्न साधु गाँव बहार थे. तो असल वस्त्र नही ऐसा सबूत होता है.' ऐसा कहने लगे उसें समझादेना कि श्वेतांबर साधु हरदम कपडे रखते हैं ऐसा नहीं समझना. एकांतमें ध्यानादिक करें तब वस्त्ररहित होवे; क्यों कि श्वेतांबरी एकासणे, पच्चख्खाण करते हैं उसमे 'चोलपटा आगारेण' ऐसा आगार है याने एकासणा करनेको मुनिमहाराजजी बेठे हैं और उस वक्त गृहस्थी आ गया तो उठकर चोलपटा पहन लेवे तो एकासणाका भंग न होवे-ऐसा अर्थ है. मगर ये आगार गृहस्थके वास्ते नहीं. यह देखनेसें गृहस्थीकी रूबरु वस्त्र पहने हुवे होवे ये समझनेमें आता है. वास्ते सिकंदरबादशाहने देखे हुवे श्वेतांबर साधु जंगलमें काउस्सग्ग ध्यानमें वस्त्ररहित देखे होवेंगे, उससें कुछ दिगंबरी साधु नहीं हो गये. वास्ते मार्ग वस्त्रसहितका श्वेतांबर चलनेसेंही साधु साध्वीका मार्ग कायम रहा है. फिर दिगंबरमत निकालनेवालेकोंभी साध्वी वस्त्ररहित रहवे ये अच्छा मालूम न हुवा उससें साध्वी होनेका मार्गही नष्ट होगया. और श्वेतांबरमतमें हजारों साध्वीजी हो गइ हैं, होती है, और होवेंगी, और उस्से आत्माका कल्याण करेंगी. और दिगंबरीस्त्रीओंका तो आत्म कल्याण नष्ट होगया. ये दिगंबरीबाइयोंको फायदा किया या केवल धर्मसाधन करनेमेंही अंतराय किया ! फिर दिगम्बरीओंने स्त्रीओंको मुक्तिही नहीं ऐसा मतदर्शाया; परंतु उन्होंकेही गोतमसार ग्रंथमें स्त्री लिंगसें मुक्ति जानेका कहा है. उस ग्रंथका अपमान करते हैं और स्त्रीओंका मोक्ष साधन अटका देते हैं. तो जितना जितना नया मार्ग कथन किया है उसमें फायदेका तो नामही नहीं. उन्होंने अपने ग्रंथमें श्वेतांबरी साधुजीकी कितनीक निंदा की है, वैसा मार्ग श्वेतांबरी साधुका है नहीं और विस तरह साधु चलतेही नहीं. कोइ संयमसें भ्रष्ट होकर चले तो उसें कोइ श्वेतांबरी साधु मानता नहीं. ऐसा होने परभी श्वेतांबरी साधुजीकी निंदा कीहै, उस्सें आपकाही आत्मा बिगडता है. साधुजीकों कुछ हरकत होनेकी नहीं. आपके साधुजीकी महत्ता करते हैं; परंतु पंच महाव्रतकों दूषण लगे ऐसाही व्यवहार कायम किया गया है. मुनिकों सावद्य प्रवृत्ति कुछभी न करनी और न करवानी चाहिये; तथापि दिगंबरी साधु आहार लेनेकों आवे तो दो मनुष्य वहां परदा पकडकर खडे रहते हैं, और आहारभी उन्होंकों काम लगे वैसा कर रखते है. एक मनुष्य थाली बजाता है. ये रीति कुछ असंयमीसंयमी

वास्ते करै तो असंयमी निरवद्य काम किस तरह करेंगे? सावद्यही करेंगे. और वो सावद्य मुनीकों लगेगा तो पंचमहाव्रत किस तरहसें पाले जायेंगे वो विचार दिगंबरीओंकों करनेका है श्वेतांबरी साधु असंयमीके पाससें कुछ भी नहीं करवाते हैं. आपके लिये किया गया भी काममें नहीं लेते है. गृहस्थनें आप खुदके लिये किया होवै उसमेंसें थोडासा आहार अंगीकार करते हैं. दुबारा गृहस्थकों रसोइ बनानी पडे वैसा आहार ग्रहण नहीं करते हैं, थोडा थोडा जगह जगहसें अंगीकार करते हैं. इससें किसीकों तकलीफ नहीं. इस सबबसें श्वेतांभरी साधुजीकों कोइभी तरहसें सावद्य नहीं लगता है. दिगंबरी साधुजीके लिये जो बनाया गया हो वही आहार काममें आता है इससें सावद्य लगता है तब संयम कहां कायम रहा? ये होनेका सबब इतनांही है कि भगवंतजीके प्ररूपे हुवे आगम विद्यमान होनेपरभी उसें न मानना और अपनी मरजी मुजब [स्वकपोल कल्पित] शास्त्र मानना उस कल्पनाकी अंदर सर्वज्ञजीके समान ज्ञान कहांसें हो सके? ये साफ मालूम होता है. फिर दिगंबरी गृहस्थ प्रभुजीकी पूजा एकअंगकीही करते हैं. और कहते है कि श्वेतांबरी भगवानजीकों आभूषण चडाते हैं वो योग्य नहीं; परंतु वै सोचते नहीं कि आप खुद कचे पानीसें प्रतिमाजीकों पखाल करते हैं वोभी गृहस्थावस्थाका आरोप करते हैं. फिर एक अंगमें केसर वगैरः चडाते हैं वोभी साधुपणेका आरोप नहीं. परंतु जिस वक्त इंद्रमहाराजने भगवंतजीकों राज्याभिषेक किया उस वक्त युगलियोंने एक अगूठेपें पखाल वगैरः किया, वैसा हेतु धारण करते होवै तो येभी राज्यावस्थाका है, या मेरूशिखरपर इंद्रने अभिषेक किया वो अवस्था ग्रहण करते होवै तो ये दोनु अवस्थामें सब अंगोंपे केसर--चंदन--वस्त्र--आभूषण हैं. तो एक अंग पूजनेकी कौनसी अवस्था है वो सोचेंगे तो आपकी भूल मालूम हो जायगी. यदि केवली अवस्था कहोगे तो उस वक्त ठंडा पानी चडानेका हैही नहीं, वास्ते वुः अवस्था स्थापित न की जायगी. और वो नहीं स्थापित करोगे तो जन्मअवस्था या तो राजअवस्था विगर दूसरी अवस्था स्थपायगीही नहीं. और वो स्थापोगे तब तो सब अंग पूजो, आभूषण धारण करावो फिर दिगंबरके तेरापंथियोंने तो ऐसा तर्क आनेसें एक अंग पूजनाभी छोड दिया है; फकत पखालही करते हैं. तो वो पखाल वक्तमेंभी कौनसी अवस्था विचारोगे? पुनः अरिहंतजीके आगे नैवेद्य रख्खोगे तब कौनसी अवस्था विचारोगे? उन्होंसेंभी दूसरी अवस्था स्था-

ये कैसी बाल ख्यालके जैसी बात है ! यहांपर कोइ दिगंबरी प्रश्न करेगा कि-'सिकंदरबादशाहकी तवारीखमें है कि जैनके नग्न साधु गाँव बहार थे. तो असल वस्त्र नही ऐसा सबूत होता है.' ऐसा कहने लगे उसें समझादेना कि श्वेतांबर साधु हरदम कपडे रखते हैं ऐसा नहीं समझना. एकांतमें ध्यानादिक करैं तब वस्त्ररहित होवैः क्यौं कि श्वेतांबरी एकासणे, पच्चख्खाण करते हैं उसमे 'चोलपटा आगारेणं' ऐसा आगार है याने एकासणा करनेकों मुनिमहाराजजी बैठे हैं और उस वक्त गृहस्थी आ गया तो उठकर चोलपटा पहन लेवें तो एकासणाका भंग न होवै-ऐसा अर्थ है. मगर ये आगार गृहस्थके वास्ते नहीं. यह देखनेसें गृहस्थीकी रुवरु वस्त्र पहने हुवे होवै ये समझनेमें आता है. वास्ते सिकंदरबादशाहने देखे हुवे श्वेतांबर साधु जंगलमें काउस्सग्ग ध्यानमें वस्त्ररहित देखे होवैंगे, उससें कुछ दिगंबरी साधु नहीं हो गये. वास्ते मार्ग वस्त्रसहितका श्वेतांबर चलनेसेंही साधु साध्वीका मार्ग कायम रहा है. फिर दिगंबरमत निकालनेवालेकोंभी साध्वी वस्त्ररहित रहवै ये अच्छा मालूम न हुवा उससें साध्वी होनेका मार्गही नष्ट होगया. और श्वेतांबरमतमें हजारों साध्वीजी हो गइ हैं, होती है, ओर होवेंगी, और उससे आत्माका कल्याण करेंगी. और दिगंबरीस्त्रीओंका तो आत्म कल्याण नष्ट होगया. ये दिगंबरीबाइयोंको फायदा किया या केवल धर्मसाधन करनेमेंही अंतराय किया ? फिर दिगम्बरीओंनें स्त्रीओंकों मुक्तिही नहीं ऐसा मतदर्शायाः परंतु उन्होंकेही गौतमसार ग्रंथमें स्त्री लिंगसें मुक्ति जानेका कहा है. उस ग्रंथका अपमान करते हैं और स्त्रीओंका मोक्ष साधन अटका देते हैं. तो जितना जितना नया मार्ग कथन किया है उसमें फायदेका तो नामही नहीं. उन्होंने अपने ग्रंथमें श्वेतांबरी साधुजीकी कितनीक निंदा की है, वैसा मार्ग श्वेतांबरी साधुका है नहीं और जिस तरह साधु चलतेही नहीं. कोइ संयमसें भ्रष्ट होकर चले तो उसें कोइ श्वेतांबरी साधु मानता नहीं. ऐसा होने परभी श्वेतांबरी साधुजीकी निंदा कीहै, उससें आपकाही आत्मा बिगडता है. साधुजीकों कुछ हरकत होनेकी नहीं. आपके साधुजीकी महत्ता करते हैं, परंतु पंच महाव्रतकों दूषण लगै ऐसाही व्यवहार कायम किया गया है. मुनिकों सावद्य मदाथि कुछभी न करनी और न करवानी चाहियेः तथापि दिगंबरी साधु आहार लेनेकों आवे तो दो मनुष्य वहां परदा पकडकर खडे रहते हैं, और आहारभी उन्होंकों काम लगे वैसा कर रखते है. एक मनुष्य थाली बजाता है. ये रीति कुछ असंयमीसंयमी

वास्ते करे तो असंयमी निरवद्य काम किस तरह करेंगे? सावद्यही करेंगे. और वो सावद्य मुनीकों लगेगा तो पंचमहाव्रत किस तरहसें पाले जायेंगे वो विचार दिगंबरीओंकों करनेका है श्वेतांबरी साधु असंयमीके पाससें कुछ भी नहीं करवाते हैं. आपके लिये किया गया भी काममें नहीं लेते है. गृहस्थनें आप खुदके लिये किया होवै उसमेंसें थोडासा आहार अंगीकार करते हैं. दुबारा गृहस्थकों रसोइ बनानी पडे वैसा आहार ग्रहण नहीं करते हैं, थोडा थोडा जगह जगहसें अंगीकार करते हैं. इससें किसीकों तकलीफ नहीं. इस सबबसें श्वेतांभरी साधुजीकों कोइभी तरहसें सावद्य नहीं लगता है. दिगंबरी साधुजीके लिये जो बनाया गया हो वही आहार काममें आता है इससें सावद्य लगता है तब संयम कहां कायम रहा? ये होनेका सबब इतनांही है कि भगवंतजीके प्ररूपे हुवे आगम विद्यमान होनेपरभी उसें न मानना. और अपनी मरजी मुजब [स्वकपोल कल्पित] शास्त्र मानना उस कल्पनाकी अंदर सर्वज्ञजीके समान ज्ञान कहांसें हो सके? ये साफ मालूम होता है. फिर दिगंबरी गृहस्थ प्रभुजीकी पूजा एकअंगकीही करते हैं. और कहते है कि श्वेतांबरी भगवानजीकों आभूषण चढाते हैं वो योग्य नहीं; परंतु वै सोचते नहीं कि आप खुद कच्चे पानीसें प्रतिमाजीकों पखाल करते हैं वोभी गृहस्थावस्थाका आरोप करते हैं. फिर एक अंगमें केसर वगैरः चढाते हैं वोभी साधुपणेका आरोप नहीं. परंतु जिस वक्त इंद्रमहाराजने भगवंतजीकों राज्याभिषेक किया उस वक्त युगलियोंने एक अंगूठेपें पखाल वगैरः किया, वैसा हेतु धारण करते होवै तो येभी राज्यावस्थाका है, या मेरुशिखरपर इंद्रने अभिषेक किया वो अवस्था ग्रहण करते होवै तो ये दोनु अवस्थामें सब अंगोंपें केसर-चंदन-वस्त्र-आभूषण हैं. तो एक अंग पूजनेकी कौनसी अवस्था है वो सोचेंगे तो आपकी भूल मालूम हो जायगी. यदि केवली अवस्था कहोगे तो उस वक्त ठंडा पानी चढानेका हैही नहीं, वास्ते वो अवस्था स्थापित न की जायगी. और वो नहीं स्थापित करोगे तो जन्मअवस्था या तो राजअवस्था विगर दूसरी अवस्था स्थपायगीही नहीं. और वो स्थापोगे तब तो सब अंग पूजो, आभूषण धारण करावो फिर दिगंबरके तेरापंथियोंने तो ऐसा तर्क आनेसें एक अंग पूजनाभी छोड दिया है; फकत पखालही करते हैं. तो वो पखाल वक्तमेंभी कौनसी अवस्था विचारेंगे? पुनः अरीहंतजीके आगे नैवेद्य रक्खेंगे तब कौनसी अवस्था विचारेंगे? उन्होंसेंभी दूसरी अवस्था स्था-

पिन न की जा सकेगी; परंतु आपकी भूल आत्मार्थी समझेंगे ये भूल होनेके सबब आगमोंकों नहीं मानते वही है, दूसरी नहीं. भगवंतजी आहार करतेही नहीं ऐसा मानते हैं और नैवेद्य धरते हैं वो उनकों विचार करनेका है. हम तो 'आहार करते हैं' ऐसा मानते हैं, इससें श्वेतांबरीकों तो सब सुलटा है. दिगंबरीकृत समयसार नाटकमें तो कहते हैं कि ज्ञानीपुरुषका भोग है सो तो निर्जराका हेतु है, तो भगवंतजी ओछे ज्ञानी हैं? कि कर्मबंधका हेतु होवेगा! ऐसा विचार करै तो आहार करनेसें भगवंतजीकों दोष लगता है वो कहना झुठा है ऐसा समझमे आयगा. इन बातोंका विशेष विस्तार अध्यात्ममत परीक्षामें है, उससें यहांपर जियादा लिखना मोकूफ रखता हुं. [उस ग्रंथमेंसें देख लैना.] आत्मार्थीजीवकों श्वेतांबर दिगंबरमतकी परीक्षामें इतनाही देखनेका है कि आत्माका जो स्वभाव है वो प्रकट होनेका साधन कोंनसे मार्गमें है वो देखना. जो जो आत्म निर्मल होनेके सबब दोनु मजहबमें बतलाये हैं, उसमेंसें निकट कौनसे मार्गमें है वो देखना चाहिये.

कितनेक अध्यात्म ग्रंथ दिगंबर मार्गमें है. उसें पढकर बहुतसें जीव संसारमें पड जाते हैं, उसका सबब इतनाही है कि जैसें यशविजयजी उपाध्यायने अध्यात्मके शास्त्र बनाये हैं उसमें एक ढाल निश्चयकी है. और एक ढाल व्यवहारकी है, उससें उसें पढकर कोइ मार्गमेंसें उन्मार्गी या वक्री नहीं होते है, और वैसा दिगंबरके ग्रंथमें नहीं, इस सबबसें दिगंबरके ग्रंथ पढनेसें निश्चय नहीं पाते हैं, और व्यवहार नहीं पालते हैं, उसके मारे जीव दोनु मार्गसें भ्रष्ट होते हैं. उसका सबब इतनाही है कि आगम नहीं माननेसें. आगममें तो इस समयमें विशेष चार नयकीही व्याख्या करनेकी कही है, उसका सबब, व्यवहारमार्गमें पुष्ट नहीं हुवे, वो जीव निश्चय एकांत पढनेसें संसारमें लीन हो जाते हैं. और जो व्यवहारमार्गमें मजबूत हुवेले होवे, उसकों निश्चय मार्गका ज्ञान होनेमें व्यवहारमार्ग पालते होवे उसका अहंकार नष्ट हो जाता है. ज्यों प्रभुजीने आत्मतत्त्वमें रमना कहा है त्यों रमण नहीं किया जाता; वास्ते निज स्वभावमें रमुंगा वो दिन पूर्ण धर्म किया गिनायगा. उस मार्गकी मेरेमें न्यूनता मिटानेके लिये साधन करना. वो साधनमें वरवक्त नये शास्त्र वो तत्त्वज्ञानके जाननेवाले पुरुषकी संगति करे ऐसा सोचकर निश्चय धर्म पानेके उद्यमी होवे कि गुणकी वृद्धि होवे. मगर जो सख्स ऐसा सोचे कि ज्ञान विगर क्रिया काया क्लेश है; वास्ते क्रिया करनीही नहीं युं वि-

चारके क्रियापरसें विमुख होते हैं वे क्या करते है ? तप न करै. तव खाकर पुद्गलकी पुष्टि करैं, विषयकषायकी वृद्धि करै, फरसुदके वक्तमें निंद लेवै या लडकोंको रम्मतगम्मत करावै या गप्पे मारै, ऐसा निकम्मा वक्त जानें और ऐसे गप्पे मारनेकी आदत पडनेसें पढनेका अभ्यासभी छूट जाता है, पीछे संसारमें मग्न हुवे नजर आते हैं: वास्ते पूर्व पुरुषोंने " ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः " ये पाठ रख्खा है. इस लिये आत्मार्थीकों अध्यात्मज्ञानका अभ्यास करके संसारी विषय कषायकी क्रियासें मुक्त होना चाहियें और कुशलानुबंधी अनुष्ठान है सो आदरना चाहियें. और जो जो गुणस्थानमें जो जो क्रियाएं मुक्त करनेकी है उसें छोड देवै और ग्रहण करनेकी हो उसें ग्रहण कर लेवै-तभी गुणस्थान चडनेका वक्त आ मिलता है, और आत्मविशुद्धि होवै. वैसी वैसी प्रवृत्ति होनेसें अध्यात्मज्ञान पक्का हुआ गिना जाय. नाम ध्यात्म, ठवण अध्यात्म और द्रव्य अध्यात्म तो आनंदघनजी छांडनेका कहते हैं-उन अध्यात्मोंसें कार्य सिद्ध होनेका नहीं. भाव अध्यात्मही आत्माका कार्य फतेह करनेवाला हैं. वो अध्यात्म दिगंबरी श्वेतांवरीका अलग नहीं; परंतु सामान्य रीतिसें ठीक है; मगर वस्तुधर्मके ज्ञानमें फेर न होवै. फेर होवै उसकों जिनागममें भाव अध्यात्म नहीं कहते हैं. प्रभुजीके फरमाये हुवे वस्तु धर्मकी यथार्थ श्रद्धा करके ध्यानादिक करते हैं तो सफल होता है परंतु वो विपरीततासें श्रद्धा करके ध्यान करै सो सफल नहीं होता है. अरूपीपदार्थज्ञान और रूपीपदार्थके वस्तु धर्मका ज्ञान सर्वज्ञता आये विगर यथार्थ नहीं होता; वास्ते उसकी श्रद्धा आगमानुसारसें करै तभी वन सके, और उन आगम मुजव न करै तो यथार्थ श्रद्धा कहांसें हो सके ? और वो न होवै वहांतक भाव अध्यात्म नही आ सकता और आत्मकार्य हो सकता नहीं. वो आगमकी श्रद्धा श्वेतांवरधर्ममें है; वास्ते यही कल्याण करनेवाला है.

प्रश्नः—तुम यूं कहते हो कि आगमकी श्रद्धासेंही भाव ध्यात्म आ सकै तो जैनागममें पंद्रह भेदसें सिद्ध हुवे है वो क्यौं करके माना जायगा ?

उत्तरः—पंद्रह भेदसें सिद्ध कहे हैं वो प्रमाण है और उनमें कितनेक भेद तो आगम माननेवालेकीही हैं. फक्त अन्यलिंगसें सिद्ध कहे हैं वे आगम माननेवाले न होवै; परंतु वे जिस पक्षकों मानते होवें उसमे आगमसें विरुद्ध वार्ता होवै उसपर सहजमेंही अश्रद्धा होती है. जैसें कोइ मनुष्यको विगर उद्यमसें जमीनमें पांव घुस जाय

और निशान नजर आ जाय, वैसें वे जीवोंको सिद्धांत मुजब श्रद्धा आपके क्षयोप-शमके जोरसें जागृत होती है, उससें जो जो उसके आगममें जैनागमसें विपरीत है वो विपरीत आ जाय और जैनागम देखे बिगर जैनागममें कहे हुवे मुजब श्रद्धा होवे उसें भाव अध्यात्म प्रकट होता है. इसी तरहसें दिगंबरकोंभी होवे उसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है. वीतरागधर्म केवल कुछ लिंगमें नहीं; मगर यथार्थ नी तत्वका और परद्रव्यका ज्ञान जिसकों होवे उसकों भाव अध्यात्म प्रकट होवे; वास्ते वस्तुधर्म यथार्थ ढूंढनेका उद्यम करना जिस्सें कार्य हो जायगा.

प्रश्नः—जैनमें रोने पीटनेकी रीति है सो योग्य है ?

उत्तरः—जिन याने रागद्वेषकों जीत लेवे उसें जिन कहेजाय, उन्होंके श्रावक-सेवककों जैनी कहेजाते हैं; तो जिनजीका उपदेश रागद्वेष जीत लेनेका है. उपदेशके सुननेवाले राग धारण करकें रुदन करे, छाती कूटे-शिर कूटे तो उससें प्रभुजीकी आज्ञाका उल्लंघन होता है, फिर रोनेसें और मरनेवालेकी फिकर करनेसें कितनेक मनुष्य मरभी जाते है देखो, लक्ष्मणजीका संबंध ! लक्ष्मणजी और रामचंद्रजीके बीच जो स्नेह था उसकी प्रशंसा इंद्रमहाराजने की है, वो किसी देवसें सहन न हो सकी उससें परीक्षा देखनेकों आया. मनुष्यलोकमें आकर लक्ष्मणजी सुने ऐसा सीताजीका रूप लेकर रामचंद्रजी मर गये, इस संबंधमें रोने लगा. और लक्ष्मणजीकों पूज्यभ्राताके अंतकी बात सुनी कि मनमें अत्यंत शोक प्राप्त हुवा और उस अनावधि शोकके मारे तुरंत लक्ष्मणजीका मरण हो गया. ऐसी हानी वासुदेव जैसे पुरुषकों हुइ, तो उन्होंके वीर्यकी अपेक्षासें अपनेमें कुछभी बल-शक्ति-वीर्य नहीं है, तो अपने शरीरकों कितनी हानी पहुंचे ? कभी उन्हमें भाइका राग था, उससें कमी राग होवे तो मरण न होवे; मगर ताकत तो कम होवेही होवे, रोगादिकभी आपद हो आवें. और फिकरकेमारे इन्सान दिवाने-भ्रमित-बुद्धिभ्रष्ट हो जाते हैं-ये बडा भारी नुकसान है. फिर जगतमेंभी इज्जत नहीं बढती. राज्यकर्त्ता यवनराजा है, तदपि ये रोने पीटनेकी रीतिकों धिक्कारता है. अपनी जगतमें उच्च कोम कही जाती है, उसकी नीच कोम हांसी करे ये बात अपनी इज्जतकों कितना बुरा लगानेवाला है. बाजारके बीच रोना पीटना होता हो उसें देखकर राहदारी लोगभी तकलीफ पाते है और दिल्लगी करते हैं. फिर कितनेक मुल्कमें घुंघट निकालनेवाली औरतें-होनेपरभी शिरपरका पल्ला ऊ-

मरपर बांधकर कूटते पीटते हैं. कमरके उपरका शरीर सब खुल्लाही रहता है ये कैसा हंसी लायक है ? ये रीति नीच कोमके जैसी है या नहीं सो विचारसें देखो तो समझमें आ जायगी. हमेशाः मनुष्यकों छातीका जोर अच्छा होगा तो बुद्धि अच्छी रहती है, और छातीपर जोरसें कूटने पीटनेसें छातीमें कमजोर हो जाता है उससें बुद्धिभी कम हो जाती है, और उससें हार्टडिसीझ-हृदयरोग हो जाता है. वो रोग ऐसा है कि उसका दर्दी एकदम मरजाता है, काम करनेमें अशक्त हो जाता है और वैसे छातीके दर्दवाले लोग बहुतसे नजर आते हैं. उन मनुष्योंकों तप-संयम-ज्ञान वगैरःका अभ्यास करनेमें वडी हरकत आती है. गुजरात अहमदावादमें पेस्तर रोने पीटनेका बहुतही रिवाज था, मगर अब कुछ सुधारा हुवा सुननेमें आया है; परंतु अहमदावादके जितना सुधारा और शहेरोंमें नहीं हुवा है. मगर मेरी समझ मुजब और ज्ञानीपुरुष हो गये हैं उन्होंके विचार मुजब रोने पीटनेका रिवाज बंध करने लायकही है. अपने देव वीतराग है और उन्होंका हुकमभी वीतरागदशा लानेका है, तो मनुष्य मर गया उसें देखकें शोचना कि ये मनुष्य छोटी उमरमें मर गया, तो मैं कब मर जाउंगा वो खबर नहीं, अगर मैं बुड्ढा होकर मर जाउंगा येभी किसीकों मालुम नहीं-निश्चय नहीं. उससें धर्ममें तत्पर रहना सोही सर्वोत्तम है. ऐसी मेरी आत्माकी स्वभावदशा है वो प्रकट करनेका मुख्य सबब रागद्वेष है उसें मुक्त हो जाना, या तो दिन-प्रतिदिन रागद्वेष कम होते जावे वेसा मार्ग ग्रहण करना. प्रभुजीने रागद्वेषकी न्यूनता हो जानेके लिये योग-वैराग्य शास्त्र फरमाये हुवे हैं उसका अभ्यास करुं कि जिससें मेरी रागदशा कम हो जावे-ऐसें विचार करना चाहियें, वो न करतें उलटा रोश वढे वैसा करना वो अयोग्य है, और मुँहसें कहता है कि मेरे मेरे भाइके साथ बहुत स्नेह था सो याद आता है उस्सें रोता हुं; मगर उस वास्ते कोइ नहीं रोता. ऐसा कहता है सो लोगोंमें मान पानेके वास्ते; लेकिन चित्तमें तो अपना स्वार्थ जो भाइसें होताथा वो मोकूफ हो गया उसके वास्ते रोता है. परंतु उस स्वार्थके लिये रोनेसें वो कार्य होनेका नहीं. कर्मका विचार करना चाहियें. आपने जो कुछ उसके पास ल्हेना रखखा था वो ले चूके अब वो कहांसें दे सके ! मगर पुन्य वलवान होवेगा तो भाइसें विशेष काम करनेवाला आपही आप मिल जायगा. मगर ऐसे रोनेपीटनेके विकल्पकरनेसें नाहक बुद्धि भ्रष्ट होजाती है और जो कामकरनेके हैं वे नहीं हो सकते.

फिर कितनेक रोनेका ढोंगभी करते है याने लोगोंके देखते रोते हैं और भतीजे या भोजाइ या भाइकी मिलकत होवे वो खा जाते हैं और उन्ह लोगोंके वास्ते बराबर खानेपीनेकाभी बंदोबस्त नहीं करते हैं. या तो सब मिलकत हजम करजाते है. या तो भोजाइकेसाथ बदचलन चलानेमें भाइका स्नेहभी शोचते नहीं वैसे मनुष्यका रोनापीटना वो ढोंगसोंमें नहीं तो क्या है ? फिर सगे प्यारे या ज्ञातीके लोग आते हैं उन्होंका काम यही है कि इस मनुष्यका भाइ मर गया है सो हम जाकर उसें संतोष देआवें; मगर संतोषके बदलेमें आपखुद रोते हैं और वे रोते बंध हुवे होवे उसें फिर रोना शुरु करवाते हैं. पुनः बाइ लोगोंको पीटनेके वक्त उपदेश देते है कि ऐसा क्या कूटते-पीटते हो ? जोरसें कूटो-पीटो-एसी मतलबका उपदेश करते हैं, उससें कोइ समझदार कम कूटता होवे तो उसें जोरसें कूटना-पीटना पडता है. परंतु ये उपदेशसें क्या फळ होवेगा वो अज्ञानतासें नहीं जान सकते है कि रोना पीटना ये रोद्रध्यानका आलंबन है याने इससें रोद्रध्यान होवै और रौद्रध्यानका फळ ज्ञानीजीने नरक प्राप्ति बतलाया है. तो नरकके दुःख कैसे कहे हैं वो जीवयावला ग्रंथ या सुयगडांगजी सूत्र सुननसें हृदय कांप उठे वैस नरकके दुःख इन उपदेशसें मिलते हैं कोइ सुज्ञ मनुष्य ऐसें सुंदर विचार करकें कम रोवै पीटे या बिलकुल न रोवै पीटे, उसकी अज्ञानतासें निंदा करते हैं. ऐसी निंदाके करनेवालेकों दुर्गति सिवाय क्या फायदा हांसिल होवे ? वास्ते जो वीतरागी धर्मवंत ऐसा नाम धारण करते है वो नामका महात्म्य पालन करनेकी फिकर रखकर ज्यों बन सके त्यों वैसी निंदाका त्याग करना, और रोना पीटना बंध करनेवालोंको धन्यवाद देना. और अपनी शक्ति मुजब उपदेश देकरकें रोनेपीटनेका कुचाल बंध पडते जाय वैसा मार्ग हाथ धरना-और वैसी शक्ति न होवै तो जो लोग अच्छे काम करनेकी इच्छा रखते होवै उन्होंकों मदद देनी और उनके संपमें कायम रहकर ये काम बंध करनेमें जैसी वो सलाह देवै वैसा करना तो उससें कल्याण है. फिर पैसेका जोर होवै तो पैसोंकी लालच देकर ये काम बंध करवा देनेके जैसा मोका होतो बंध करवानेका इलाज करना. ज्ञातीके शेठसें हो सके वैसा हो तो ज्ञातिके जोरसें बंध करवा देना. मतलबमें जो जो उद्यम करनेसें ये काम बंध हो सके वैसा प्रयत्न करना चाहियें. कदाचित् हठीले मनुष्य होवै तो मध्यस्थ रहकरकें ये कामसें आप मुक्त रहवै. अगर अनुकूल मनुष्य होवै तो उससें समझाकरकें रोने पीटनेसें छुड-

वा देवै कि जिससें आर्तरौद्रध्यान न हो सकै और नरकादि गतिके मेहेमान न होना पडे. सब मनुष्योंका वाद करनेकी जरूरत नहीं. अपने अपने वहां सुधारा करना चाहियें और पीछे धीरे धीरेसें दूसरेभी सुधरें वैसा उद्यम करना चाहियें कि जिससें बेशक सुधारा हो सके. "आप न जावै सासरै, औरनकों सिख देत"–ऐसा न करना चाहियें; क्यों कि स्हामनेवालेके दिलमें युं करनेसें पूरी असर नहीं होती वास्ते पहेले आप कर बतलाके पीछे औरोंको वैसा करनेका बोध देवै कि फौरन असर हो जाय और सच्च कहें तो युं करनेसें कितनेक जगहपर सुधारा हुवाभी है. वास्ते बुद्धिमानोंको लाजिम है कि पेस्तर अपनेही मकानसें रोने पीटनेका कुचाल बंधकर देना चाहियें. बंध करनेसें निंदा होवै उसका डर रखना नहीं चाहियें. ऐसा भय रखनेसें अपन धर्मध्यान नहीं कर सकते हैं. मैंने मेरे माजी गुजर गयेथे तब ये खानाखराबी रिवाज बंध करनेका मुकरर किया, उस वक्त मेरे पूज्य पिताजीभी विद्यमान थे और वेभी बडे धर्मचुस्त थे, उन्होंने मेरी बातमें सामिलगिरीकी और कहने लगे कि बेशक ऐसाही करना दुरुस्त है. इस वक्त ये खराब रिवाज बंध हो जायगा तो मेरेमरने बादभी बंध रहेगा तो मुझकोंभी बहुत लाभ मिलेगा. ऐसा शोचकर मेरे पिताने वीर्य स्फुरायमान करकें वो बुरा रिवाज मोकूफ कर दिया, उससें बेसमझदारोंने निंदाकी और समझदारोंने धन्यवाद दिया. पीछे मेरे पिताजी कालधर्मको प्राप्त हुवे उस वक्तभी वैसाही किया, मगर मेरी मातुश्रीके वक्त जितनी निंदा करते थे उतनी न हुइ. मतलब कि शुरुमें अज्ञानीजन कुछभी बकते हैं उसपर निगाह न रखकर समभावसें काम कियेही करना; क्यों कि पेस्तर युंही कियेसें फतेहमंदी हाथ लगती है. सब चीज उद्यमके आधीन है, और अपने घरके आप राजा है वास्ते आपके वहांसें अपनीही मुनासफीसें रोना पीटना न करे तो कुछ ज्ञातीवाले ज्ञातवहार नहीं छोडनेके ? इस लिये हिम्मत पकडकर ऐसे कुचालोंको रोकने चाहियें. रोकनेका काम ऐसा है कि एक मनुष्य रोता होगा वो बात शांतपुरुषके सुननेमें आनेसें उसके दिलमेंभी राग पैदा होनेसें आंसु आते हैं, उसका निमित्तभूत रोनेवाला है; वास्ते ज्यों बन सकै त्यों ये बुरा रिवाज सुज्ञपुरुषोंको कम करना चाहिये, उसके बदलेमें ये वहीवट हुवा है कि अपन दूसरेके वहां रोने पीटनेको न जायेंगे तो अपने वहां कौन आवेंगे ? इससे ये मुद्दा नीकलाके जीते हुवे मनुष्यभी रोवे पीटें उसमें शोभा मुकरर की–ये कैसी अज्ञानताकी राजधानी है !! मरनेके बाद खुद

तो देखनेकों आनेवाला नहीं, या रोवेंगे पीटेंगे कि नहीं उसकीभी उसें खबर न मिलेगी, तथापि नाहक कर्म बांध लेते है ये अज्ञानताहीं है. याने जीसके लिये रोते है उसकों तो दरकार नहीं और मुफत रोना उसें क्या फायदा ? वास्ते ये अज्ञानता आत्मार्थीकों अवश्य दूर करदेनीही लाजिम है. रोने पीटनेकी इच्छा तो न रखनी; मगर आपके मरने बाद कुटुंबी न रोवे वोभी पेस्तरसें समझाकरकें बंध करवा देना चाहियें कि मरनेके बाद कर्मबंध न हो सके. कर्म बांधनेका भय लगा यही शुभ परिणामसें शुभ कार्य उपार्जन होवे; वास्ते ऐसा ठहरावही करना कि मेरे मरनेके बाद रोना पीटना नहीं. शायद कुटुंबी वो हुकम अमलमें न लेकर रोवेंगे पीटेंगे, तोभी मरनेवालेकों कर्मबंध न होगा. इस लिखानसें ऐसा न समझना कि मैयत होवे वहां जानाही नहीं. जाना तो बेशक; क्यों कि स्नेही या ज्ञातिके मनुष्यको दुःख पडा तो जरुर जाकरकें संतोष-दिलासा देना, और उसका कामकाज कर देना यदि ऐसा न करें तो निर्दयता मालूम होवे वास्ते जुरुर जाना चाहियें, और दिलासा प्राप्त होकर दिलगीरी दूर होवे वेसी वातें करनी चाहियें, कि जिससें शांत चित्त हो जाय. फिर मरनेवालेके स्थूल शरीरकों मरघटमें पहोंचानेमें मदद करनी ये जुरुरी काम है स्नेहीकों मदद करनी और ज्यादा वक्त लगनेसें मुर्देमें जीवकी उत्पत्ति होवेगी ये फिकर रखकर जुरुर जाना चाहिये और उसका कामकाज करना चाहियें. रोने पीटनेका विकल्प बंध कराना या कमती करवाना येभी जुरुरी काम है. कितनेक मुल्कमें अबीभी हिंदुवर्गमें मरनेके वक्त रोते पीटते नहीं; मगर ढोल वगैरः बाजे बजाते-गाते-भजन करते हैं, तो उन लोगोंकों मरनेवाले शख्सपर राग नही होगा ? रागसें आंखमें आंसु आवे ये स्वाभाविक नियम है; मगर थोडे वक्तमें शांत हो जाय; परंतु मरनेवालेके काम रूप वगैरः यादीमें लाकर रोवे उसका पार नहीं आता है और बुरा ध्यानभी ज्यादे होवे फिर स्त्रीएं पतिका सुख याद करकें रोवें उससें कामदेवभी दिप्त हो आता है और कुलक्षण सेवन करनेकी कुबुद्धिभी पैदा हो आनेका संभव रहता है. ऐसे नुकसानकारक कुरिवाजोंकों सुधार लैना ये बडे पुरुषोंकी फर्ज है. हमेशां रोना पीटना शुरुही रहनेसें पतिकों स्त्रीसंबंधी विकार जागृत होनेका साधन होता है; वास्ते इसके बदलेमें उतना समय धर्मसाधनमें व्यतीत करना यही मुकरर किया जाय तो वैराग्यदशा जागृत होवे, और विकल्पकी शांति होवे, खोटे मार्गकी वृद्धि होवे नहीं-और होय सो नष्ट हो जाती है; वास्ते ऐसे

समयमें वैराग्यकी कथा वगैरः श्रवण करनेमें वक्त व्यतीत करना-यही जुरूरी बात है. मगर वर्त्तमानसमय जैनीओंमें जैसी रीति प्रचलित हो रही है वैसी रीति पेस्तर होगी, ऐसा संभवही नहीं. यहांपर कोइ प्रश्न करेगा कि जिस वक्त मरुदेवी माताजी निर्वाणपद पाये उस वक्त भरतमहाराजजीने जोरसें रोना शुरु कियाथा-ये बात शास्त्रमें हैं, मगर यह कुछ धर्मरीति नहीं, संसारकी रीति है, ऐसा रोनेसें लोगोंके जाननेमें आवे जिससें लोग इकठे हो जॉय-ये तो मरनके समयकी एक क्रिया है; परंतु ऐसा बाजारके बीच बेअदबीसें चिल्लाके रोना पीटना दिवानेके जैसे ढोंगसोंग करना, हमेशाःरोना शुरु रखना ये कुछ इससें साबित नही होता. उस वक्त रागके बंधनसें रोना आ जाय, लोगोंको मैयत हुवेकी खबर होनेके लिये पुकार वाचक शोकेद्गार जाहिर करै ये कृत्य संसारनीतिका है; परंतु उसके पीछे जो विशेष कृत्य किया जाता है वो धर्मीष्टको करने योग्य नहीं. धर्मीष्टको तो रागादिक कमी होवें वोही करना यही सार है.

प्रश्नः—जैनकोमकी चडती दशा किसतरह होवें ?

उत्तरः—यह प्रश्नका जवाब तो अतिशय ज्ञानी विगर दूसरा कोइ देनेको समर्थ नहीं, और वो अपने तकदीरकी न्यूनतासें अतिशय ज्ञानीका विरह पडा है, इससें प्रतीतिपूर्वक जवाब देनेमें अशक्त हुं. पुनः मैं जवाब लिखता हुं उस करतेभी मेरेसें ज्यादे बुद्धिमान ज्यादे बता सकैं; वास्ते जिसका विशेष होवै सो अंगीकार करना.

१ पेस्तर तो अन्यायकी प्रवृत्ति जैनमें जो धनाढ्यपणेसें शोभायमान होवैं वैसे पुरुष या शेठीएका नाम धारण करनेवाले हो या धर्मी गिनाये जाते होवैं उन्होंको बंध करनी चाहियें; सबब कि यथाराजा तथाप्रजा-याने ऐसे बडे पुरुषोंकी ऐसी सुंदर प्रवृत्ति देखकरकें छोटेजनभी न्यायमें प्रवर्त्तने लगें. ऐसे वर्त्तनेके वास्ते मार्गानुसारीके गुण योगशास्त्रमें-धर्मबिंदुमें और श्राद्धगुण वर्णनमें बतलाया हैं उसपरसें पूर्व पुस्तक प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणिकी अंदर वे गुण दाखिल किये हैं उसें देखोगे तो मालूम हो जायगा. ये पैंतीसें मार्गानुसारिके गुणोंमें जैनकोम प्रवर्त्तने लगैं ऐसा उपदेश मुनिमहाराजुकोंभी शुरु रखनेकी अत्यावश्यक्ता है. और रात्रीभोजन वगैरःके नियम करवानेमें उद्यम करते हैं वैसा उपदेशके उद्यममें प्रवर्त्तना शुरु रक्खे तो विशेष लाभ होवें. ऐसा उपदेश नहीं देते हैं ऐसा मेरे कहेनेका मतलब नहीं; मगर देनेवाले महापुरुषोका उत्साह बढानेके लिये और कोइ सामान्यपणेसें देते होवैं वै विस्तारसें देवे ये हेतुसें लिखा है. गृहस्थोंको ऐसी प्रवृत्ति रोककरकें

अपने स्नेही अन्याय त्याग करदें वैसी प्रेमयुक्त ताकीद दियेही करनी चाहियें. कदाचित कोइ उसका अमल न करै तोभी उदास होकर वैसा उपदेश मोकूफ न करना. हमेशां शुरु रखनेसें कुछ न कुछ सुधारा होताही रहैगा. अन्यायका धन कायम नहीं रहेता है ऐसा श्राद्धविधिमें और दूसरेभी ग्रंथोमें जगह जगह लिखा है. वास्ते न्यायकी प्रवृत्तिसें धन मिलता है वही कायम रहता है, और जैन कोमका दूसरी कोममें बहुतही विश्वास पडे उससें व्यापार करनेकों पैसे चाहियें वोभी मिल सकते हैं. फिर नौकरी करनेकों जाय तो तुरंत नौकरी अच्छे पगारकी मिल सकती है. दलाली करनेकों जाय तो उस धंदेमें पैसा पैदा करता है, हरकोइ माल बेचनेकी दुकान खोलै तो बहुतसें ग्राहक उसकी दुकानपर सौदा लेनेकों आते हैं. सुरतमें कल्याणभाइ करके एक उत्तम श्रावक थे, उन्हकी साख ऐसी पडीथी कि जिससें टोपीओंके व्यापारमें दो तीन हजार रुपै हरवर्ष पैदा करते थे. उन्हके पिताके पास धन नहीं था तोभी स्वोपार्जीत धन १०००० दम नकद पैदा कियाथा, वो तीन भाइयोंने और पिताने धन बांटलिया. उस बाद आपने व्यापार करना छोड दिया; मगर भाइ वैसी दुकान न चला सकै और पैदास न होनेसें दुकान बंध करनेका वक्त आया. भरूचमें एक पारसीकी दुकान है वो एकही तरहका भाव रखता है उसमें उसके वहां बहुत खरीदी होती है बंबइमें ऑफिसेंवाले बडे व्यापारी एकही रीति रखते हैं तो उसमें वे सुखी भये हुवे दिखते हैं; वास्ते व्यापारमें जो अन्याय बंध किया जाय तो वेशक अच्छी छाप पड जाय और पुन्यानुसारसें अच्छी पैदासभी हो सकै. गतकालमें सत्यवादी श्रावक हो गये हैं वे इतनी छाप लगाकर गये हैं कि श्रावक गैरन्याजबी रीतिसें नहीं चलै. उससें इस समयमें श्रावक लुचाइ बुरा काम करते हैं उतने अर्थमें श्रावक लुचाइ न करै ये छाप चली हुइ आती है. उसके बदलेमें वर्त्तमानसमयमें धर्मी नाम धारण करकेभी कितनेक ठगाइ करते हुवे नजर आनेसें दूसरे धर्मीश्रावकके वहां कोइ प्रतीतिवचन कहता है तो धनवान गृहस्थों उनका विश्वास नहीं करते और धर्मठगकी उपमा देते हैं; वो मेनेभी सुनी है. ऐसा होनेमें धनवानकी भूल नहीं; परंतु धर्मी होकरके ठगाइका धंदा करै तब लोगमें सबी धर्मीकी निंदा होवै और व्यापाररोजगारमें विश्वास उठनेसें पैदास नहीं होवै और सुखी होनेका वक्तभी न मिल सकै; वास्ते ज्यों बन सकै त्यों श्रावकोंकों अच्छी छाप बैठानी चाहियें. कितनेक व्यापारी व्यापार करते हैं उसमें

नुकशान लगता है तब देवेमेंसें छूटनेके लिये सरकारके पास जाते हैं और लाभ लेते हैं—नादार बनते हैं याने कायदेका फायदा मिलाकरके कर्जेसें मुक्त होते हैं, उसमें पैसा छुपा रखते हैं यह खुल्ली तरहसें अन्यायही है. शायद किसीने न रख्खा ओर पीछे पैसे पेदा किये तोभी पेस्तरके लहेनदारोंकों कुछभी न देवे, तो जगतमें जैनकोमकी सुंदर छाप किस तरह पडे ? सो विचारना चाहिये. और ऐसा पैसा रखकर शासनकी प्रभावना करै—संघकों जिमावै उसमें अन्यायके पैसे आवै तो जीमनेवालोंकी बुद्धि क्युं करकें सुधर सकै ? साधारण मनुष्यभी दृष्टांत लेवे कि देनेवाले तो ऐसे धनवान होते हैं. शासनके स्थंभ समान कहे जाते हैं वे नहीं देते हैं तो अपने क्यों करकें देवे ? ऐसें विचार फैलानेसें लोगोंके दिलमें ऐसा आया कि पैसा होवेगा तो इज्जत मुरतबा कायम रहेगा. देनदारकों सब पैसा दे देवेंगे तो प्रतिष्ठा नहीं पावेंगे—ये बुद्धि फैला गइ है. इस विषयमें संघका या ज्ञातीका ऐसा अंकुश चाहियें कि देनदार हो जाय तो लहेनदारोंके सब पैसे देने चाहिये और उस बाद बडे ज्ञातीभोजन, स्हामीवत्सलके खर्च करनेकी परवानगी देनी चाहियें. ऐसीचीज करनेकों कोइ तैयार हुवा कि फौरन—तुरंत ज्ञातीवाले खूब हितरुप कथन करें कि तुनें नादारी ली है उस वक्त पैसें देनदारोंकों कम दिये हैं—बाकीका देना रह गया है सो दे दो और उसके बाद मरजी मुजब ज्ञातीभोजन वगेरः करो. ऐसा अंकुश ज्ञातवाले आगेवान रख सकें तो जैनकी बडी इज्जत वढै और ऐसी छापसें श्रावकोंको धीरधार करनेमें कोइभी दिल न चोरै, उससें सबसें शिरोमणी कोम हो जाय. परंतु अभीके वक्तमें तो श्रावक प्रथम देवद्रव्यका पैसा खानेवालोंपर ऐसा अंकुश नहीं रख सकते हैं और उससें लोग दुःखी हुवे बिगर नहीं रहते है. कितनेक गाँवोंमें ऐसीभी रीति है कि देवद्रव्यका देना होवै वहां तक श्रावक उसके घर ज्ञातीभोजन करनेकों नहीं जाते हैं, उससें वैसे गाँवोंमें देवद्रव्यके लहेनेका तुरंत निकाल—फैसला आ जाता है; परंतु ऐसा रिवाज तमाम शहर और गाँवोंमें हो जाय तब जैन कोमकों खुशी होनेका साधन है. फिर किसीने नादारी ली नहीं, अपनी रीतिमें हे मगर पैसा पदरमें नहीं, वो मनुष्य कर्ज करकें ज्ञातीभोजन वगैरः करै उसका ज्ञातीभोजन न स्वीकारनार. पुनः लुचाइ ठगाइका व्यापारही करता है तो उसकों ज्ञातीकी तर्फसें सिक्षा होनी चाहिये. ऐसी रीति हो जायतो ज्ञाती सुखी होवै. अगर इस लोकमें व्यापार रोजगार अच्छा चले. जगतमें इज्जत मान वढै, सुखी

होवे और उसके पुन्यसें परलोकमेंभी सुखी होवे. विद्याभ्यास करकें हुशियार होकर अन्यायका चालचलन न सुधरै तो उससें कोमकी इज्जत न वढैगी. इज्जत वढनेका सबब यही है कि अन्यायका त्याग करना, और वो पेस्तर बडे पुरुषोंको करकें दिखलाना चाहियें, जब बडे लोग वैसा करेंगे तब साधारण लोग वैसाही करना मंजूर रखेंगे; मगर वडेलोगही चालचलन न सुधारै तो फिर औरोंको क्या कह सकें? वास्ते आगेवान गृहस्थ पेस्तर करकें दिखलाना यही सर्वोत्तम है और देवद्रव्य-साधारण द्रव्य-ज्ञानद्रव्य ऐसें द्रव्यका श्रावकके वहां विशेष व्याज पैदा होता होवै तदपि न देना चाहियें, ए विषयमें श्राद्धविधि और द्रव्यसित्तरी वगैरः शास्त्रोंमें मना की है और विस्तारसें उसमें दूषण वतलाये हैं वो अवलोकन करना चाहियें 'देवादिकद्रव्य जिसने खाया-हजम किया उसकी सातपेढी तक उसका वंश सुखी नहीं होता है वास्ते धीरधारका रस्ताही बंध करना चाहियें और रखनेवालोंको व्याजसें तो न लैना; मगर धीकी टीपके पैसे देनेके होवें वोभी रखने न चाहियें. रखनेसें शास्त्रकी अंदर बहुत सा नुकशान वतलाया है; वास्ते इस वातपर खूब लक्ष रखनेसें सुखी होनेका साधन है. मंदिर संवधीके पैसेमें आपके पैसेका कुछभी संवध न करना, उससें यह लोक और परलोकके सुखभाजन होवेगा.

२ दूसरा, जैनकोमके शेठियोंको जो सट्टेका व्यापार अपनी कोमवाले करते होवे उसे मना करवा देनेका अवश्य ध्यान देना चाहिये; क्यों कि सट्टेके व्यापारसें मनुष्यकों बहुत तरहके नुकसान होते हैं-पेस्तर सट्टेका व्यापारी आलसु-सुस्त हो जाता है, तमाम व्यापारकी शोध करनेकी या शीखनेकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, व्यापारकी रीतिकीभी खबर उसें न पड सकती है, नामा लिखनेकी या समझनेकी रीतिभी वो नहीं शीख सकता है, दूसरे व्यापारकीभी उसें माहेती नही हो सकती; उससें कदाचित् सट्टेमें नुकसान गया तो फिर सुखी होनेका वख्तभी मुश्कीलीसें मालूम होता है. सट्टेके धंदेसें मनुष्य वक्र बोलना-बोल पलट देना, लुचाइ करनी, मुखस्वादको वढा देना इत्यादि बहुतसी बुरी आदते शीखता है. कोइ भाग्यवंत ऐसी आदत न शीखे तो उसें ये लेख लागु नहीं है. मगर ये कारण ऐसाही है. सटोरियेके पास ५०० रुपे देनेकी शक्ति होवे और पांच हजारकी नुकसानी जावे ऐसा व्यापार करै तब नुकसानी कहांसें देवेंगा ये फिकर तो रहतीही नहीं; क्यों कि नुकसानी होवै तो ना-

दारी लेनी पडे. कभी फिर पैसेदार हो जाय तोभी कर्जा देनेकी दानत नहीं रहती ये अन्याय नहीं तो क्या है? सट्टेका धंदा लंबा क्यों चला सकता है कि व्यापारमें पैसे रोकने नहा पडते हैं. जो रोकने पडते होवे तो सहजसेंही लंबा व्यापार न हो सके. फिर जुगार और सट्टेमें कुछ तफावत नहीं—फकत नाममें फेर है. जुगारमेंभी पैसेकी जरूरत नहीं—फकत एकी बेकी—दोमेंसें एक बोलनेमें आवे वो सच्चा हो जाय तो जीतता है. आंकके धंदेमेंभी ऐसाही है. कलकत्तेसें मिलता हुवा आंक आ जाय सो जीतता है और नफा लेता है—ये दोनु रीति एकही जैसी है. अभी सुरतमें वाइलोगनेभी सट्टेका व्यापार करना शुरु कीया है—अफसोस! अपनी श्रावक कोम इस स्थितिपर पहोंच गइ है!! अब सुखी क्यों करके हो सके? सट्टेमें एक पैदा करे और एक गुमावे, इससें एक श्रावक सुखी हुवा और दूसरा दुःखी हुवा. उसमें कुछ बहारसें पैसा आया नहीं. दूसरे व्यापारमें तो माल देशावर चढाना पडता है या मंगवाना पडता है उसमें फायदा होता है. कोइ कहेगा कि—'क्या श्रावक सिवाय और' ज्ञातीके लोग सट्टेका धंदा नहीं करते हैं?' तो कहेंगे कि सबी कोम करती है; तोभी श्रावककी वस्तीके प्रमाणमें वहुतसे श्रावक सट्टेका धंदा करनेवाले निकलते हैं. बडे शहरोंमें दलाल और सट्टेका धंदा करनेवाले विशेष मालूम होते हैं, उसमें हम दलालीके धंदेवालोंको बुरे नहीं कहते हैं या उन्होंकी टीका नहीं करते है; क्यों कि दलालीका धंदा विगर जोखमका है—नुकसानका नामही नहीं—वो पैसा कमानेकाही धंदा है; मगर जो सट्टेके दलाल हैं वे दलालीपर संतोष करके रहवे तो जरूर दलालीमें अच्छे पैसे पैदा कर सके; परंतु वे दलाल तो फिर सट्टा करनेकाभी शोख रखते हैं उससें दलालीसें पैदा किया हुवा धन सट्टेमें गुमाते है, इससें करके दलालोकोंभी सुखी होनेका वक्त नहीं मिलता है. फिर जिसका बाप सट्टा करता होवे उसके बेटेभी वही धंदा पसंद करते हैं, उसके मारे पढने गुननेमें वे दिल नहीं देते हैं, और मावापकोंभी लडकोंको जास्ती पढानेकी फिकर नहीं रहती है; वास्ते सट्टेका व्यापार जैनकोमकों न करना ऐसा ज्ञाती या संघ तर्फसें बंदोबस्त किया जाय तो जैनकोमको दूसरे व्यापार ढूंढनेकी जिज्ञासा होवे, मावाप और लडकोंको ज्यादा इल्म शीखाने और शीखनेकी बुद्धि जागृत होवे और लडके विद्वान होवे तो न्याय अन्याय सहजसेंही समझने लगे उससे अन्यायका त्याग होवे; इस लिये हरएक प्रकारसें सट्टेका

धंदा छूट जाय वैसे लेक्चर-भाषण अगर मुनीमहाराजजीका उपदेश शुरु करके म-नुष्योंके दिलमें सट्टेकी नुकसानीकी वातें ठसा देकर पीछे ज्ञाती तर्फसे बंदोवस्त हो-जाय तो अच्छी तरहसे सुधारा होनेका स्थान है.

१ तीसरा कि, जैनकोममें विद्याभ्यासकी बहुतही न्यूनता है; वास्ते जैनोंको विद्याभ्यासमें सामेल करदेनेकी कोशिश करनी चाहियें. लेकिन वो काम धनाधीन हैं. धन विगर नहीं बन सकता है. अब धन इकट्ठा करनेमें ऐसा होना चाहिये कि जो पैसे खर्च किये जाते हैं उनमेंसे बचाकर वैसे कामके लिये रकम निकालना चा-हियें, जिससे कोम खर्चके बोजेमें न आवे. उसके वास्ते ऐसा होना चाहिये कि लग्न-सीमंत-मरणके पिछाडी हजाराः रुपै खर्च किये जाते हैं. कितनीक ज्ञातीमें-कितनेक शहरोंमें लग्नकी अंदर एक एक लडका पाणीग्रहण करता है तब पैसे बांटनेका रिवाज है सोभी सौ देडसो रुपै वरवाद किये जाते हैं, वो रिवाज बंध करके वे बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमें ले लिये जाय. जिस ज्ञातीमें लग्न और गर्भाधान संस्कारका ज्ञातीभोजन एकसे ज्यादे वक्त करनेका रिवाज है उस ज्ञातीमें वो रिवाज बंध करके दुसरी वक्तके ज्ञातीभोजनके बचे हुवे पैसे विद्याभ्यासके फंडमें लिये जावें. और उ-सके वास्ते ऐसा अंकुश चाहिये कि जहांतक ठहराये हुवे पैसे फंडमें न देवे वहांतक हस्तमिलाप वगेरः न हो सके. यह ठहराव पसार हो अमलमें आ जाय तो हरवर्ष कितनीही आपदनी हो आवे फिर मरणके पिछाडी कितनीक ज्ञातीमें ज्ञातिभोजन करवानेका रिवाज है, ये रिवाज बहुतही दिलगीरीभरा हुवा है, ये रीति बहुत करके अन्यदर्शनीओंकी जैनमें दाखिल हुइ मालूम होती है. ये ज्ञातीभोजन कितना निर्दय-तावंत है उस संबंधमें कुछ इसारा करता हुं. कितनेक मुल्कोंमें जिस दिन ज्ञातीभोजन होवे उसी रोज परदेशके मनुष्य रोनेकों आते हैं, वे बहुत करके जिस वक्त भोजन करनेकों बैठे उस वक्त रोने पीटनेका शुरु करते हैं. अब जिस मनुष्यके वहां मरण हुवा हो उसके दिलमें कितनी दिलगीरी होगी वो सबके जाननेमेंही है. जहां ऐसी दिलगीरी फैल रही होवे वहां भोजन, वोभी मिष्टभोजन खानेका काम वज्र जैसी कठोर छातीवालोंसेंही हो सकता है दयालु मनुष्यसे ऐसा निर्दयतावाला काम कभी न हो सकेगा. और हो सके तो निर्दयता सावित होती है; क्यों कि एक बाजुपर रोने पीटनेसे दिलगीरी छा रही होवे और छातीयेंसे पीटनेके सबबसे खून वहन होता

नजर आता है, और दूसरी बाजुपर मसब्रतासें मीठे भोजन उडाते है ये कैसी निर्दयता ? फिर कितनेक वृद्ध मनुष्य मोतके बिछोनेमें पडे होवे और उसकों देखनेके लिये आवै वै बोलते है कि अब तो लड्डु सही हो जायगे, [वृद्धोंका मरण विवाहके जैसा है.] पीछे वो मनुष्य मरजाता है, तब खुशी होते है कि अब लड्डु खानेकों मिलेंगे. वो लड्डु खानेके बदल खुश होते हैं उसमें गर्भित पंचेंद्रिके मरणकी अनुमोदना होती है. ये पाप कितना है वो ज्ञानी फरमावें सो सही; मगर खानेकी तृष्णाके लिये मनुष्य नहीं विचारते है और ये रिवाज चलाये जाते हैं; वास्ते ये रिवाज बंध होवै तो पैसेभी बच जॉय और पाप मिश्रित अनुमोदनाका पापभी दूर हो जाय. इसलिये ये रिवाज बंध करकें बचे हुवे पैसे विद्याभ्यास फंडमें ले लेवें. फिर मरण पिछाडी शुभ मार्गमें हजारों रुपे निकालते हैं उनमेंसें कुछ हिस्सा इस खातेमें लेनेका प्रबंध रखना चाहियें. और बडे गृहस्थोंकों लाजिम है कि खुशीसें बडी रकमकी मदद इस कार्यमें देनी चाहियें. ऐसा होनेसें व्यय होते हुवे पैसे इन फंडमें आवेंगे उससें विशेष बोजा न उठाना पडेगा, और विद्याभ्यासके कार्यमें इन फंडमेंसें अच्छी मददभी मिल सकेगी. कदाचित् इतने पैसेसें बस न हो सकेगा तो आमदनीपर सेंकडे एक रुपया या आधा रुपया याने हजार रुपेकी पैदासवालोंके पाससें सेंकडे आधा रुपया और हजारसें ज्यादे पैदा करनेवालोंके पाससें एक रुपया लेना मुकरर करना चाहियें. बडी पैदासवालेकों कुछ भारी पडे ऐसा नहीं, सबब कि शास्त्रमें तो हेमचंद्राचार्यजीने पैदासमेंसें चौथा हिस्सा शुभमार्गमें व्यय करनेका कहा है, तो यह तो एक रुपया है वो कुछ भारी पडनेका नहीं. इस सिवा ज्ञातीमें कितनेक दंड लिये जाते हैं वो दंडके पैसे इस फंडमें लेना चाहियें. ऐसा होनेसें पैसेकी उत्पत्ति अच्छी होनेका संभव है और हमेशां उसमेंसें जो जो काम करने होवेंगे वो हुवेही करेंगे. अभी हरएक ज्ञातीमें ज्ञातीकी पुंजी (धन) है वो इस फंडमें जो दि जाय तो कामकी शुरुआत सहजसें हो जाय और किसीकों घरमेंसें पैसाभी न निकालना पडे तथा हमेसांकी आमदनी शुरु रहे. पैदासमेंसें लेनेका अनुकूळ न आवे तो बहुतरसी जातके माल व्यापारके लिये आता है उन हरएकपर कुछ लेनेका ठहराव कीया जाय तो मुरादबर आनेका वक्त आवे. ऐसा ठहराव पींजरापोलके लिये है तो वो खाता सुखपूर्वक चलता है; मगर वस्तुतासें पैदासका ठहराव उत्तम है. व्यापारपर डालनेसें व्यापारमें कितनीक हरकतें पडनेकों

संभव है; वास्ते पैदाशपर किया जाय तो अच्छा, अगर ज्यों लोगोंकों अच्छा लगै वेसें करना सबकी प्रसन्नतासें ऐसे काम अच्छी तरहसें होते हे; वास्ते किसीकों अप्रीति पैदा न होवै त्यों करना योग्य है. ये काम करनेसें जेसें आपकी ज्ञातीके मनुष्यकों भोजन करनेका मिलता है वो अपने लडके हुशियार होवेंगे तो विशेष भोजन करनेका मिलेगा. भोजन करनेका बंध नहीं होवेगा. फंडमें पैसे देवेंगे तो लडकोंकों पढानेके लिये स्कूलोंमें ज्यादे फी देनी पडेगी वोभी बच जायगी. वास्ते तमाम भाइ अवश्य ये बात दिलमें शोचकर विद्याभ्यासके वास्ते पैसे इकठे करनेका फंड खोलनेका यत्न करै तो बहुतही फायदा हांसिल होवेगा. पैसे विगर कुछ काम होनेकाही नहीं.

४ ये पैसे खर्च करनेमें पेस्तर गुजराती, इंग्रेजी, संस्कृत और जैनधर्मका शिक्षण दिया जाय वैसी स्कूल ओपन करनी चाहियें, और वहां अन्यायमेंसें दिल हठ जाय वैसा उत्तम शिक्षण देना चाहियें. संस्कृत पढनेवालोंकों बहुत वर्ष तक अभ्यास करना पडता है, वहांतक उनके कुटुंबका पोषण हो सकै वैसा बंदोवस्त करनेकी जरूरत है; उसकी न्यूनतासें करकें अभीके वक्तमें संस्कृतशालाओंमें लडके अभ्यास करते है; मगर वे पूरा संस्कृत ज्ञान नहीं मिला सकते हैं; क्यों कि धनवानके लडके तो बहुत करकें अभ्यास नहीं करते हैं और करनेवाले विरलेही निकलेंगे. साधारण स्थिति के लडके २५-३० वर्षकी उमर तक अभ्यास करै. तब संस्कृतज्ञान पूर्ण प्राप्त हो सके, और उतनी उमर तक उनके कुटुंबका निर्वाह क्यों करकें हो सकै? धनकी तृष्णा धनवानोंकों लखो रुपै हाथ लगै जाय तोभी शांत नहीं होती, तो साधारण मनुष्यकी तृष्णा क्यौं शांत हो सकै? वास्ते पंद्रह वर्षकी उमर होवे तबसें कुटुंबके निर्वाहकी फिकर, होती है वो फिकर, पढानेवालोंकी तर्फसें न होनेका बंदोबस्त हुवा होवै तो सुखसें करकें अभ्यास पूर्ण हो सकता है; इस वास्ते व्याकरणका अभ्यास करै उसकों माहावारी पांच रुपै देनेका शुरू करना. पीछे ज्यों ज्यों अभ्यास बढता जाय त्यौं त्यौं परीक्षा लेकर पगार बढाना चाहियें. अंतमें न्यायशास्त्र पूर्ण करने तक अभ्यास करै तो माहावारी ५० रुपैका महिना देना. ऐसा आशा होवै तो संस्कृतका अभ्यास करनेवाले उमेदवार लडके निकलेंगें; वास्ते ऐसे नियम बांधनेसें जैनमें संस्कृत पढे हुवे विद्वान प्राप्त होवेंगे. फिर ब्राह्मणोंके पास साधुजीओंकों पढना पडता है वो नहीं पढना पडेगा, उसी श्रावकभाइओं संघ पगार दे करकें रख लेगा कि आवक्के पैसे

दूसरी कोममें हरवर्षमें कमसेंकम करीब पचीश हजार पगारके दिये जाते होंगे वो जैन कोमकों प्राप्त होवेंगे. वास्ते ये फंड होवे तो ये प्रबंध करनेकी आवश्यक्ता है. कोइ सुखी मनुष्य होगा वो स्वात्मार्थके वास्ते पढेगा तो वो माहावारी पगार नहीं भी लेगा परंतु ऐसी शालाओंमें बडेमेंबडी ५० रुपिये माहावारी तनख्वाहकी आशा देनेकी जरूरत है. ५० का पगार एक वर्षसें ज्यादा इस फंडमेंसें देना न पडेगा; मगर उस पठित लडकेकों ५० का पगार देनेवाले बहुतसें गृहस्थ मिल जायेंगे. फिर संस्कृतके भाषांतर वगेरः में दूसरी शालाओंमें ऐसी पैदाश हो सकेगी और जैनोंकी विद्वत्ता प्रशंसापात्र होवेंगी और उनके साथ वाद करनेकोंभी कोइ शक्तिवान् हो सकेगा, इनसें बडी प्रभावना होवेंगी. अभी सुरत और अहमदावादमें धर्मके ज्ञानका अभ्यास जैसें एक एक कलाक कराया जाता है, वेसें करतेही रहेंगे तो बहुतही शोभिता होगा.

जो मनुष्य विनरोजगारी और दुःखी है उसके वास्ते हरएक बडे शहरोंमें उद्योगशाला करनेकी जरूरत है. उस शालामें उन्होंकों दाखिल किये जाँय और उन्होंकों लायक काम सुपरद किये जॉय. याने जो काम जिस मनुष्यसें बन सके वो काम उसकोंही सुपरद करना, जिस्सें जैनकोमका भूखमरा बंध हो जावै. ये शालाओंमें कुछ मालभी वेचनेमें नुकशान होवै सो इस फंडमेंसें देना चाहियें. बहुतसी जातके व्यापार हाथोंसें करनेके हैं और जो. आ सके ऐसे काम उद्योगशालामें रखने चाहियें, जिससें वे सहजसें हो सके; वास्ते नमुने मुवाफिक बतलाया है. जो चीज जैनोमें हजारो मन उपयोगमें आती है, वो बनानेका काम औरतोंका है और वै सरलतासें शीख सकै. दशीएं बनानेका कामभी कर सकै. बालाकुंचीयें बांधनेका काम शीख सकै वैसा है. निर्बल स्थितिकी बाइयेंकों दाल बिननेका काम आदि सोंप देना, और भाइयोंकों बीडीएं वालनेका, सूतके दडे बनानेका, डोरीएं बुनने-गुंथनेका, और कितनेक सूखे पदार्थकी गोलीएं दवाके लिये बनाके बेचनेका काम कर सकै ऐसे है वे सोंप देना योग्य है. मीलोंमें काम कर सकै वेसे होवै वैसेकों धंदेमें सामिल कर देवै. और बिलकुल अशक्त मनुष्य होवै उसें गुप्त मदद देनी योग्य है. ऐसा होनेसें जैनकोममें निराधार विशेष न रहेंवेंगे. यह उद्योग तो एक नाम मात्र लिखे गये है. जगतमें बहुतसी तरहके व्यापार हैं, उनमेंसें जो बन सकै और उसमेंभी जिसमें नफा विशेष और नुकशान कम हो वैसे देखकर दाखिल करने चाहियें. बनाइ हुइ वस्तु बेचनेका कामभी उसें सुपरद करना कि जिससें गाँवमें चक्कर लगाकर बेच लेवै.

५ जैनकोमकी लडाइयें सरकारमें जाती हैं, या ज्ञातीमें फांटे पडते हैं और उ-ससें एकदूसरांमें द्वेषबुद्धि रहती है-एकसंप नहीं रहता और उन एकदूसरेके बीच बहुत मुदततक फिसाद चलता है और उस बदल हरएक बावतोंमें तकरारें पैठ जाती है उससें सरकारमें हजारो रुपे जैनकोमके नाहक बिगडते हैं. मन भिन्न होनेसें एकदू-सरेका काम बिगाडनेकेही तदबीर चलाते हैं; वास्ते वैसा बंदोबस्त किया जाय कि जैनकी हरएक गाँवमें लवाद कोरटे कायम करनी और जो तकरारें होवें वो लवाद कोरटमेंही रुजु की जावें ऐसा ज्ञाती तर्फसें ठहरावही हो जाना चाहियें. मगर उसमें मुकरर करना कि उस गाँवकी लवादके फेंसलेसें नाराज होवे तो वडे शहरोंकी ल-वादमें अपील करे. अहमदावाद और बंवइ जैसेमें तीन तीन कोरटें रख्खें, लंबर पहेले-दूसरे-तीसरेकी रख्खें उसमें लंबरवार एकसें एक बडी रखनी चाहियें याने अव्वल दर्जेकी अव्वल लंबरकी, उसमें जो तीसरे कलासकी कोरटसें नाराज होवे वो दूसरे लंबरकी और अंतमें पहेले लंबरकी कोरटमें अपील करे कि जिससें पक्षपातका शक रहने न पावे; और हरएक टंटा फिसाद टूंकेमें बंध पड जाय. मारामारीकी तक-रारें वगैरःके तोफान करनेवालोंको लायक शिक्षाभी करनी चाहियें कि जिससें को-रटके सिपाइ वगैरःका पगारभी वसूल होता रहेवे. ऐसा ठहराव होनेसें बहुतसें टंटे तकरार कम हो जावेंगे, और ज्ञातीमें कुसंप न रह सकेगा. ज्ञातिके रिवाजके कायदे ज्ञातिमें अनुकूल होवे वो बांध रखने चाहियें, उसमें एक दो वर्ष होवे कि बहुतसें म-तसें सुधारा करना चाहियें; मगर हमेशां चल सके वैसें करने चाहियें. ऐसा हो जाय तो बहुत फायदा हांसिल हो सके. वारिसनांवेकी तकरारेंभी बडी रकमकी हो उस-काभी फेंसला मिलता रहवें. लाख रुपैसें ज्यादे रकमके फेंसलेके लिये एक दस बीस मनुष्योंकी सभा करनी चाहियें, उसमें सब देशके वडे गृहस्थ लिवादमें कायम करने चाहियें, और अंतके फेंसले उन्हीकों सुपरद करने चाहियें कि अपक्षपातसें इन्साफ मिल सके. और जैनकोमकी ऐसी तकरारोंमें धनका नाश होता है वो बंध पड जाय.

६ वीसाश्रीमालीकी ज्ञाती बहुतसें गॉवोंमें है; तथापि एक दूसरेकों उंच नीच गिनते हैं वो न गिनना चाहियें. वस्तुतासें तमाम श्रावकोंमें भेदही न होना चाहियें, लेकिन वो भेद भांग देनेका अभि योग-समय मालूम नहीं होता है. शायद एकदम हो जाय तो बहुतही अच्छा. और कभी, वैसा न हो सके तो अपनी

ज्ञातिका मनुष्य कोइभी शहरमें होवै उसकों कन्या देनेमें या लेनेमें भेद न रखना चाहियें, और कन्या देकर पैसे लिये जाते है वो न लेने चाहियें, उसके बंदोबस्तकीभी वडी जरूरत है, उसमें वो गाँववालोंका वडा हिस्सा समान होवै वहां ज्ञातिका जोर नहीं चल सक्ता है, वास्ते उन्हको रोक देनेके लिये दूसरे शहरवालोंको रस्ता निकाल देना चाहियें. वहुत करकें वडे शहरवालें पैसे देते हैं, वे देनेवालोंके उपरभी जवरदस्त अंकुश रखना चाहियें, तो कन्याविक्रयका मार्ग बंध सहजसेंही हो जाय, और अयोग्य स्थानमें कन्या जाकर दुःख न पावें; वास्ते पैसे लेने देनेवालोंको याने दोनुकों मनाकी जाय तो ये काम सुधर जाय. श्रीमाली, पोरवाड, ओशवाल, वगैरः जो जो ज्ञाती जो जो देशमें होवे उन्ह सबके साथ संपसें लेने देनेका वहीवट करनेमें रुकावट है वो निकाल देनी चाहियें. दसा वीसेका भेद है वोभी दूर हो जाय. तो विशेष अच्छा हो जाय. इनमेंसें ज्यौं वहुत मतसें बंदोवस्त हो सके वैसा है. फिर जैनधर्मके पालक कितनीक ज्ञातिके हैं वे सब अपने धर्मीभाइ हैं, उन्हीके साथ इकठे बेठकर भोजन करनेका रिवाज नहीं है वोभी खराब है, सबब कि अन्यधर्मी बनिये वहमनका खाते है, वो खानेमें हरकत है; क्यौं कि वै लोक जिसकों अपने अभक्ष कहते हैं वो चीजें खाते हैं; वास्ते उन्होंका बनाया हुवा भोजन न खाना चाहिये. ये खानेकी प्रवृत्ति है वो रोक देनेसें श्रावकके व्रतमें दूषण नहीं लगेंगे इतना फायदा है. जो जैनी है, छाना हुवा जल पीते हैं और अभक्षकाभी त्याग करते हैं उसके वहां न खाना पीना ये अच्छी वात है ? इससें प्रभुजीकी आज्ञाका लोप होता है—स्वामीभाइयोंका तो वहुत मान [सत्कार] करना ये समकितका आचार है, उसके वदलेमें उनकों नीच कहे; उससें समकित मलीन क्यौं न होवैगा ? यहांपर मुझकों कोइ सवाल करैगा कि तुम खुद एसा समझनेपरभी क्यौं नहीं करते हो ? उस विषयमें मेरा जवाव यही है कि वहुतसें लोग वैसी प्रवृत्ति नहीं करते हैं वो प्रवृत्ति मैं करुं तो वहुतसें लोगोंके साथ विरोध हो जाय; वास्ते वो विरोध अपनी ज्ञातिके साथ न होवै वैसा मैं चलता हुं; मगर मेरी श्रद्धा तो दूसरे कोमके श्रावकोंके साथ भेद न रखना यही है. और मेरे जैसी जिनकी श्रद्धा होती है उनको तो मैं यही विचार दृढाता हुं कि एकके साथ संप करकें एकके साथ विरोध करना उससें कुच्छ फायदा नहीं है. और वर्त्तमान समयमेंभी सब लोग, जैनधर्मकी क्या मर्यादा है, वो नहीं जानते हैं वहांतक ये वात मान्य नहीं करेंगे; कितनेक शहरोंमें

भिन्न ज्ञातिके जैनीओंका सीधा (भोजन सामग्री) लेकर खाते है और कितनेक शह-रोंमें ऐसा ममत्व बंधा गया है कि वैसाभी नहीं करते हैं, और कहते हैं कि लाडवे श्रीमाली पीछेसें जैनधर्मी हुवे हैं. पीछेसें हुवे कि नहीं उसका कहीं प्रतीतिवंत लेख नजर नहीं आता है; तथापि उनके साथ खानेपीनेका संबंध अभी नहीं रखते हैं-उससें मालूम होता है कि वे पीछेसें हुवे होवेंगे; सबब कि ओशवाल, पोरवाड वगेरः ज्ञातिभी आचार्य महाराजनीनें प्रतिबोध करकें स्थापितकी हैं और स्थापित करनेके वक्त जिस जिसने आचार्य महाराजजीकी आज्ञा पालनकी उन सबको ओशवाल बनाये, उसमें ज्ञाति-भेद रहा नहीं. और हरिभद्रसूरिजीने पोरवाड बनाये सोभी इसी तरहसें आज्ञावंत हुवे. वे सब ओशवाल-पोरवाड-श्रीमाली वगेरः इकठे बैठकें जीमते हैं. विसी त-रह लाडवे श्रीमालीकोंभी किसी आचार्यने प्ररुपणा की होगी और जैनधर्म पानेसें एक ज्ञाति हुइ मालूम होती है. तथापि उनके पैसेसें खरीद कीये हुवे. सीधे की रसोइ बनवाकर खानेका कहवे तोभी ओशवाल श्रीमाळी वगेरः जीमनेकी ना कहते हैं-ये किसी तरहका असल हठ बंधा गया हुवा मालूम होता है; मगर ये हठ छोडने लायक है; सबब कि किस लिये हठ बंधा गया वोभी किसीकों मालूम नहीं. और वैसा हठ पकडकर बैठ रहना सोभी भूलभरित है. कितनेक शहरोंमें कुनबी, छींपे पैसे या सीधा देते हैं तो पोरवाड ओशवाळ वगेरः खुशीसें जीमते हैं, और वहीवट चला हुवा आया सोही चला जाता है, तो विसी तरहसें लाडवे श्रीमालीके साथ ऐसा वहीवट नहीं चलता है सो चलाना चाहियें. वे लोग अपना पैस्तरं खाते थे; मगर अपन उनके साथ खाना बंध किया जिससें उनकों बुरा मालूम होने लगा, तब उन्होंनेभी अपने साथ खाना मोकूफ कर दिया-इससें शासनमें भेद पड गया. यह जैनीभाइयोंमें भेद पडनेसें कितनेक शासनके कामोंमें बहुत हरकत आ पडी. वे लोग अपने विचार मुजब नहीं चलते हैं. यदि उनके साथ ऐक्यता होती तो वेभी अपने विचारसें भिन्न न पड सकें, और परस्पर धर्म पानेका सुलभ पडे अगर औरभी सब सुगमता पडे; वास्ते इकठे होना-खाना पीना वही उत्तम है. वो न बन सके तो उनके पैसेंसें भोजनसामग्री लेकें भोजन बनाकर खानेका प्रबंध शुरु करना चाहियें-ये भेद दूर होगा तो बहुत गुण प्राप्ति होवैगी. सा-डेतीनसो गाथेके स्तवनमें गच्छके अंदर भेद न पाडनेके वास्ते साधुजीके लिये कहा गया है, उसी वचनानुसार श्रावकोंमेंभी भेद न पाडने चाहियें. बेदिलीसें शासनकों

बहुत नुकशान है. फिर ममत्ववंत ओशवाल श्रीमाली वगैरः है वे कहते हैं कि हम उच्च हैं और वे नीच हैं. ऐसा बोलकर उनकी निंदा करते हैं उससे नीचगोत्र बंधा जाता है. सबबं कि श्रावकका धर्म पांचवे गुणस्थानकका है, वो गुणस्थानमें मनुष्यकों नीचगोत्रका उदयही नहीं; तथापि श्रावककों नीच कहना ये वडी भूल है; कर्मबंधका कारण हं और वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध कथन हं. विचारसारकी टीकामें प्रश्न हुवा है कि हरीकेशी चंडालने दीक्षा ली हं वो छहे सातवे गुणस्थानकमें वर्त्तते हैं और छहे सातवे गुणस्थानकमें नीचगोत्रका उदय नहीं. इसके जवाबमें देवचंद्रजी महाराजने कहा हं कि जिसकों चक्रवर्त्ती और सौधर्मेंद्र महाराज नमस्कार करते हैं उसकों उचगोत्रकाही उदय कहा जावै. नीचगोत्रका उदय होता वो पूजनीक होताही नहीं- पूजनीकपणा उच्चगोत्रके उदयसेंही होता है. बारहव्रतकी पूजामेंभी श्रावकके बहुतमान्यके इसारेमें कहा है कि, 'विरतीने परणाम करीने, इंद्रसभामां बेसे मेरे प्यारे.' गुणस्थानवंत श्रावककों इंद्रमहाराजभी नमस्कार करते हैं, वैसे व्रतवंत, ओशवाल श्रीमाली पोरवाड वगैरः सिवाकी ज्ञातोमें क्या नहीं होवेंगे? अलबत्त होवेंगे. युं होनेपरभी ऐसा भेद रखनेकी पद्धती होवै तो व्रतवंत लाडवेश्रीमाली प्रमुखकी निंदा होवे वो क्या प्रभुजीकी आज्ञाके बहार (विरुद्ध) का कथन नहीं है? वास्ते प्रभुजीकी आज्ञाके आराधक होना यही उत्तमपुरुषोंका या उत्तमपुरुष होना होवै उसका कार्य है; क्यों कि कर्मग्रंथकी ५६ वी गाथामें मिथ्यात्वमोहनी उपार्जन करनेमें उन्मार्गकी देशना वगैरः बहुतसे बोल कहे हैं, उसमें संघका प्रत्यनीकपणाभी गिना गया है और उस गाथाके अर्थमें श्रावककी निंदा वगैरः करनेसें मिथ्यात्व उपार्जन करै ऐसा कहते हैं; वास्ते परज्ञातीके धर्मीष्ठकों नीच कहनेसें उसी गाथामें फल वतलाये है वो प्राप्त करते हैं और उन्हींके साथ भेद भग्न करकें एकत्र हो जावै तो समकित निर्मल होवै; इस लिये अपन तमाम मित्र मनमेंसें ये भिन्नभाव निकालदेकें अभेदपणा होवै वैसा उद्यम करैं तो बहुतही अच्छा होवे जैनधर्मका पालन करनेवालेके और प्रशंसा करनेवालेका ज्यों बन सके त्यों बहुतमान करना चाहियें, शक्ति मुजब मदद देनी चाहियें; नहीं कि उनकेपर द्वेष इर्ष्याभाव ल्याना या नीचज्ञाती है ऐसा कलंक देना! ये रीत बिलकुल गैरलाभकारी है. अभी अपन रजपूत-क्षत्रीओंकी रोटी नहीं खाते हैं और ओशवाल प्रमुख उसी ज्ञातीमेंसें हुवे हैं, त्रिसी तरह लाडवेश्रीमाली वगैरः

धर्म पालनेसें एक ज्ञाती हुइ है. अपन जो असल ज्ञातीके थे उस ज्ञातीकी याद नहीं करते हैं, उसी मुजब उनकीभी क्या ज्ञाती थी वो तपासनेकी कुछ जरुरत नहीं. महावीरस्वामीजी आदि तीर्थंकरमहाराजजीके गुणग्रामके करनेवाले और प्रभुप्ररुपित मार्गका सेवन करनेवाले हैं; वास्ते वो गुणकी बहुतमान्यता अपनेसें जितनी बन सके उतनी करनी चाहियें, मगर उनकी लघुता करनी ये महान् दूषण समझता हुं; वास्ते समस्त भ्राताओंकों ये प्रयास करने योग्य है.

७ जैनमें ज्ञातीकी रीत रसमके कायदे करने चाहियें और जैनी मात्रकी एकही रीति नीति होनी चाहियें. रीतभातका-लेनेदेनेकाभी कायदा बंधाजाय तो बातबातमें ज्ञातीमें फाटे पड जाते हैं और लडाइएं होकर ऐक्यताका भंग होता है वो न हो सके. उन कायदाके आधार मुजब चलनेका होवे तो रीतिभांतिका भंग हो सकेही नहीं. हमेशां कायदे भंगका डर रहता है. भंग करे उसके प्रायश्चितकी व्यवहारिक मर्यादा चाहियें और एक गाँवके लडपरे तब उसका समाधान, कायदेमें देशविदेशके अध्यक्ष बनाये होवे वे कर देवे इस्सें उसका चुकादा हो जावे-लंबी तकारार न पहुंचने पावे-सबब कि थोडे थोडे मनुष्यमें पक्षपात-हो सकता है; मगर बहुत मनुष्यमें वो नहीं हो सकता. सारा जैनमंडल एकही होवे और उनके रीत रसमके कायदे मुकरर कीये गये होवें, वो कानूनका भंग करे उसके साथ देशदेशका जैनमंडल विरुद्ध हो जाय तो जैनका कायदा तोडनेमें भय रहेवे; क्यों कि सबके साथ विरुद्धता हो जाय तो फायदा क्यों चल सके ! कायदे अमलमें लिये बादभी उसमें हरकत जैसा मालूम हो आवे तो सारा जैनमंडल हरसाल एकत्र होवे तब कायदेमें सुधारा करता रहवे-यूं करनेसेंभी जैनकोमकों सुखी होनेका साधन है.

८ इस सिवा सुधारेके काम करनेके बहुत हैं; लेकिन वो काम करनेवालोंकी न्यूनता मालूम होती है. वो न्यूनता कब दूर होवे कि जैनमंडलमेंसें परोपकारी मनुष्योंकों ऐसे काम करनेकी खुशी बतलानी चाहिये और उसमेंभी दो बातकी खुशी बतलानेकी जरुरत है याने आप जितना काम कर सके उतना काम करनेकी खुशी बतलानी चाहिये, और जितने पैसेकी जो मदद देनी चाहते होवे उतने पैसेकी मदद देनेको वे तत्पर भय हुवे गृहस्थोंकों जाहिर करना चाहिये कि फलाने काममें हम ये मदद कर सकेंगे. अब वो किसकों जाहिर करना चाहिये ! इस वास्ते परोपकारी

अग्रेश्वरमंडल मुकरर करनेकी आवश्यक्ता है याने वैसे अग्रेश्वरोंको जाहिर करना चाहियें, और पैसेकी मददमेंसें श्रावकोंको कार्यभारी बनाने चाहियें, और उन कार्यभारीओंसें, तथा परोपकारी अग्रेसर महेनतवंत भाइयोंकी महेनतसें जितना जितना बन सके उतना काम करना चाहियें. यु करते करते किसी वक्त सब सुधारा होनेका समय प्राप्त हो जायगा. अकेली वातें करनेसें ये काम नहीं बन सकता है. चतुर्विध संघमैसें कोइभी धनवान गृहस्थ अग्रेश्वर होवै तो ये काम बन सकै; वास्ते जिसने पूर्वमें पुन्य उपार्जन किया है वो पुन्यात्माके हित लिये उपार्जन किया है इस लिये उस पुण्यके फल यही है कि धन्याढ्य गृहस्थ अच्छे गुमास्ते-मुनीम रक्खें, अपने व्यापारका काम उन्होंको सुपरद करके आप खुद परमार्थके काममें कटिबद्ध हो रहेवै कि जिससें शासन शोभावंत होवै. मगर मुकाम अफशोसका है. कि वैसे धनवंत तो कहते हैं कि-हमकों तो ऐसे काम करनेकी फुरसद नहीं. तब साधारण मनुष्यकों तो फुरसद होवेंही कहांसें? पुन्यवंत ऐसा करैं उससें धन प्राप्तिके शुभ फलका स्वादानुभव नहीं कर सकते हैं. और जो शख्स जितना जितना कार्य करते हैं उतने उतने फलका स्वादानुभव ले सकते हैं. भगवंतजीका शासन एकवीश हजार वर्षतक जयवंत कहा है; वास्ते कोइभी भाग्यशाली शासनके कार्य करनेमें कटिबद्ध रहेंगे और शासन जयवंत प्रवर्त्तेगा. जो जो भव्यप्राणी शासन जयवंत रखनेकी महेनत करते हैं वे बहुतसा पुण्य उपार्जन करते हैं ये निःसंदेह वार्त्ता है-इस लिये ये लेख पढकर कोइभी भाग्यशाली शासनोन्नतिमें तत्पर रहवै यही हमारा उद्देश है. जहांतक कोइ भाग्यशाली जागृत न होवेगा वहांतक तो चलता है वैसाही चला जायगा; तथापि अभी कुछ भाग्यशालीजन कहीं कहीं जागृत हुवे मालूम होते हैं और वे शासनकी उन्नतिका उद्यम करते हैं. उन्होंकों मेरे लिखानसें कुछ अच्छा लगै तो वे विशेष जागृतिवंत होकर तन मन धनका सदुपयोग करने लगें; इस वास्ते इतना लिखा गया है. या आगामिक कालोंमेंभी जैनकोम सुधारनेके कामी होवै उनकोंभी मेरी बालबुद्धिके विचारमें कुछ अच्छा विचार होवै और पसंद पडे तो इस वाक्यानुसार चलन रक्खें. इस लिये ये मेरा इसारा है. कदाचित ये लिखान प्रवृत्तिका है उसमें किसीकों बुरा लगै वैसा लेख तो नहीं है; तथापि मेरी भूलसें किसीकों बुरा लगने जैसा लिखान हुवा होवै तो उनके पाससें मै पेस्तरसेंही क्षमा करनेकी वीनती करता हुं. और मुझकों लिख अक्षरे

तो मै माफी मांग लुंगा. यदि प्रभुजीकी आज्ञा विरुद्ध लिखान हो गया होवै तो प्रभु-जीके आगे त्रिकरण शुद्धिसें मिच्छामिदुक्कड देता हुं.

प्रश्नः—जिस तरह जैनमें अभक्ष्य पदार्थ-मांस, मदिरा, सहत, मख्खन, मूली वगैरह अनंतकाय, द्विदल, वेंगन, रात्रीभोजन अभक्ष्य कहे है तिस तरह अन्यदर्शनी-योंने कहा है?

उत्तरः—श्रीचंद्रकेवलीके रासमें पुराणांतर्गत श्लोक लिखे गये हैं वो श्लोक मै लिखता हुं, उससें प्रतीति होयगी. जो जो आत्मार्थी मनुष्य हैं वे तो शोचेंगे,। मगर जो विषयी जीव हैं वे तो जो धर्म मानते हैं उसके शासनपरभी विश्वास नहीं रखते हैं इससें लाइलाज हुं. अन्यदर्शनीओंके धर्म प्रकाशनेवालेहां आपके शास्त्रमें अभक्ष्य कहा है सो पढकरकेंभी उसका त्याग नहीं करते हैं और श्रोताओंको त्याग करनेका उपदेशभी यथास्थित न दे सकते हैं, इससें अभी ऐसा हुवा है कि श्रावक रात्रिभोजन न करै तिसी तरह कोइ दयालु ब्राह्मन रात्रिको न खावे तो उसें दूसरे वैश्नव कहने लगै कि क्यौं श्रावकधर्म स्वीकार लिया है कि ऐसी दशा बन गइ है? ये सब योग्य गुरुके वियोगकेही फल हैं; वास्ते जैनीभाइयोंको वैसोंकी दयाचिंतवन करनी सोही उत्तम है मुकाम अफशोसका है कि कितनेक शहरोंमें पानीके नल हो गये हैं वहां जैनी हो करकेंभी नलके मुंहपे एक चीथडा बांध दिया कि पानी छाना गया ऐसा मानने लगे हैं. संखाराभी नहीं समाला जाता है ये बडे अफशोसकी बात है। क्यौं कि अन्यदर्शनी तो कहते है कि जैनी पानी छानकर उपयोगमें लेते हैं और खुद जैनी भाइ ऐसा करकें मुहेकी बात छोडते चले जाना है, और चिंता होती है कि दीर्घ समय जानेसें अन्यदर्शनी जैसाही हो जावेगा. कितनेकको कहते है कि नलमेंसें पानी लेकर उसें छानकर उसका जीवाणी-संखारा यदि नल तालावमेंसें लिया गया हो तो तालावमें, नदीमेंसें या कूवेमेंसें नल लिया गया हो तो नदी-कूवेमें डाल दे; मगर कोन सुनता है। वैसा करनेवाले थोडे हैं, वास्ते जैनीभाइ जीवदया प्रतिपाल कहे जाय सो वो नॉव सच्चा कब होवै कि जब जीवकी जतना कि जावे तब. वास्ते जीवरक्षणके लिये पानी छान लैना और उसका संखारा तालाव, कूवेमें जहांका पानी हो वहां डाल दैना. बाइस अभक्ष्य है उसका त्याग करना. उन बाइसमेंसें कितनेक तो अन्यदर्शनीमेंभी त्याग करनेका फरमान है; लेकिन उन अन्यदर्शनीकाभी पूर्णप-

णेसें मालूम नहीं है कि हमारेही शास्त्रोंका क्या फरमान है ! इस लिये लिखता हुं, और अन्यदर्शनी जिस चीजकों त्याग करनेका कहते है तो जैनीओंको वेशक विसका त्याग करनाही मुनासिब है वैसी श्रद्धा होंनेके वास्ते दर्शाता हुं किः—

माहाभारतमें कहा है किः—

घातकश्चानुमन्ता च भक्षकः क्रयविक्रयी ॥
लिप्यंते प्राणिघातेन पंचेतेपि युधिष्ठिर ॥ १
यावन्तीपशुरोमाणी पशुगात्रेषु भारत ॥
तावद्वर्षसहस्राणी पच्यते पशुघातकाः ॥ २

अर्थ—हे युधिष्ठर ! जीवोंकों प्राणघातसें करके मारनेवाला, उसें खानेवाला, उसें वेचनेवाला, वेचाउ लेनेवाला और सम्मती देनेवाला ये पांचो जन पापसें लिप्त होते हैं और पशुके शरीरपर जितने वाल है उतने हझार वर्षतक वे नरकमें दुःख पाते हैं. १-२

शांतिपर्वमें लिखा है किः—

यू पंछित्त्वा पशुन् हत्वा कृत्वा रुधिर कर्दमान् ॥
यद्येवं गम्यते सर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३

अर्थः—[महाभारतांतर्गत शांतिपर्वमें कहा है कि] यज्ञ स्तंभकों और पशुओंकों छेदकरकें पृथिवीपर लोहुका कीचड कर स्वर्गमें जावे तो फिर नरकमें जानेवाले कौन वाकी में रहे ? याने यज्ञकर और पशु वगैरः जीवोकों मारनेवालाही नरकमें जाता है; वास्ते पशुघात और यज्ञ होमादि करनेसें ऐसे फल होते है. ३

मार्कंडपुराणमें कहा है किः—

जीवाना रक्षणं श्रेष्ठं जीवाः जीवितकांक्षिणः ॥
तस्मात् समस्तदानेभ्योभयदानं प्रशस्यते, ॥ ४ ॥

अर्थः—जीवोंका रक्षण करना यही उत्तम है. जीवभी अपने जीवितकी इच्छा करते हैं; वास्ते सव दानोंसें जीवोंकों अभयदान देना ये अधिक है. अभयदानकी कितनी महत्ता वतलाइ हैं ? युं फरमान होनेपरभी पशुका होम करना ये कितनी वालचेष्टा है ? वास्ते तमाम धर्ममें किसीकों दुःख न होवै ऐसा चलन रखना वही सच्चा धर्म हैं. ४

पुनः उसी पुराणमें अष्ट पुष्प कहे हैः—

अहिंसा परमपुण्यं पुष्पं इंद्रिये निग्रहम् ॥
सर्व भूत दया पुष्पं क्षमा पुष्प विशेषतः ॥ ५ ॥
ध्यान पुष्पं तपः पुष्पं ज्ञान पुष्पं तु सप्तमम् ॥
सत्ये चैवाष्टमं पुष्प तेन पुष्यंति देवता. ॥ ६ ॥

अर्थः--उसी पुराणमें 'जीवानां रक्षणं श्रेष्ठं' ऐसा कहा है वहांही अष्टपुष्पका कथन है कि-हिंसा न करनी ये प्रथम पुष्प है, इंद्रियोंकों वश्य करनी ये दूसरा पुष्प है, सर्व जीवोंपर दया रखनी ये तीसरा पुष्प है, शांति रखनी ये चौथा पुष्प है, ध्यान करना ये पांचवा पुष्प है, तप करना ये छठा पुष्प है, ज्ञान मिलाना ये सातवा पुष्प है, और सत्य भाषन करना ये आठवा पुष्प है कि ये पुष्पोंसें देवता प्रसन्न रहते हैं. ५-६

फिर महाभारतमें लिखा है किः—

यूकामत्कुनदंशीमसात् जंतुश्च तुदंति तनूं ॥
पुत्रवत् परिरक्षंति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ७ ॥
आत्मपादौ च ये घ्नंति ते वै नरकगामिनः ॥
सर्वत्रकार्या जीवानां-रक्षाचैवापराधिनाम्. ॥ ८ ॥

अर्थः—जु, खटमल, मछर वगैरः जंतु जो शरीरकों काटते है, उसकों पुत्रकी तरह रक्षण करता है वो प्राणी स्वर्गमें जाने योग्य है. और जो मनुष्य जीवोंके शरीर या पांवकों छेदता है वो नरकमें जाता है; वास्ते अपराधी जीवोंकोभी सर्व प्रकारसें रक्षा करनी यही मुख्य धर्म है. ७-८

पुनः महाभारतमें कहा है किः—

विंशत्यंगुलमानंतु त्रिंसदंगुलमायतम् ॥
तद्वस्त्रं द्विगुणिकृत्य गालयित्वापिबेत् जलम् ॥ ९ ॥
तस्मिन्नवस्त्रेस्थितान् जीवान् स्थापयेत् जलमध्यतः ॥
एवं कृत्वा पिबेत् तोयं स याति परमांगतिम्. ॥ १० ॥

अर्थः—वीस अंगुल विशाल, और तीस अंगुल लंबा वस्त्र हो उसें दुपट करकें पानी छानकर पीना और उस वस्त्रकी अंदर रहे हुवे जीवोंकों कुवे वगैरःमें डाल देना. इसतरह करकें जो मनुष्य पानी पीता है वो उत्तमगतिकों पाता है. ९-१०

इस तरह महाभारतके वचन हैं; तथापि संन्यासी पुराणी होकर अनछाना जल पीते है या न्हाने धोनेके काममें लेते हैं उनकी क्या गति होवेगी? वो महाभारत पढने सुनेवाले लक्ष नहीं देते हैं वो कैसी वालदशा है? आत्मार्थीयोंको अवश्य दया करनीही योग्य है.

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेत् जलम् ॥
सत्यपूतं वदेत् वाक्यं मनः पूतं समाचरेत् ॥ ११ ॥

अर्थः—आंखोंसें देखकर पांव रखना, कपडेसें छानकर पानी पीना, सत्यसें वचन बोलना और मन पवित्रसें आचरना.

पुनः महाभारतमें कहा है किः—
संग्रामेण यत् पापं अग्निना भस्मसात्कृतम् ॥
तत्पापं जाय ते तस्य मधुबिंदु प्रभक्षणात् ॥ १२ ॥

अर्थः—महान् युद्ध करनेसें जितना पाप होता है और अग्निसें गाँव वगैरः जलानेसें जितना पाप होता है, उतना पाप सहतका बिंदु खानेसें होता है. सहत खानेमें ऐसा पाप है तोभी शास्त्र पढानेवाले सहतका त्याग नहीं करते हैं सुनेवाले तो सहतका त्याग करेंही कैसें? वास्त प्रथम कथा वांचनेवालोंको दयालुतासें सहत खानेका त्याग करना कि जिससें श्रोताजनभी सुधारा कर सकै. १२

विष्नुपुराणमें कहा है किः—
ग्रामाणां सप्तके दग्धे यत् पापं समुपद्यते॥
तत् पापं जायते पार्थ जलस्यागलिते घटे ॥ १३ ॥
संवत्सरेण यत् पापं, कैवर्त्तस्यैव जायते ॥
एकाहेन तदाप्नोति अपूतजल संग्रही. ॥ १४ ॥

अर्थः—हे पार्थ! सात गाँव जलादेनेसें जितना पाप होता है उतना पाप घडेमें छाने विगरका पानी भरनेसें होता है. मच्छीमार वर्ष दिनतक जाल डालनेसें जितना पाप होवै उतना पाप एक दिन छाने विगरका जलका उपयोग करनेवालोंको होता है. १३—१४

पुनः उसी पुराणमें कहा है किः—
यःकुर्यात् सर्वकार्याणी वस्त्रपूतेन वारिणा ॥
स मुनिः स महासाधु स योगी स महाव्रती. १५

अर्थः—जिस कपडेसें छाने हुवे पानीसें करकें सब काम करता है वोही मुनी, वोही बडा साधु, वोही योगी और वोही बडा व्रतवाला जानना. १९

पुनः इतिहास पुराणमें कहा है किः—

अहिंसा परमंध्यानं अहिंसा परमंतपं ॥
अहिंसा परमंज्ञानं अहिंसा परमंपदम् ॥ १६ ॥
अहिंसा परमंदानं अहिंसा परमोदमः ॥
अहिंसा परमोजाप अहिंसा परमंशुभम् ॥ १७ ॥
तमेवमुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मरक्षणम् ॥
ये चरन्ति महात्मानः विष्णुलोकं व्रजन्ति ते. ॥ १८ ॥

अर्थः—अहिंसा यही उत्तम ध्यान है, अहिंसा वही उत्तम तप है, अहिंसा वही उत्तम ज्ञान है. अहिंसा वही उत्तम पद है, अहिंसा वही उत्तम दान है, अहिंसा वही उत्तम दम है, अहिंसा वही उत्तम जाप है, अहिंसा वही उत्तम शुभ है और अहिंसा रूप धर्म करना यही उत्तम धर्म है. उस धर्मका जो महात्मा आचरण करते है वे विष्णुलोकमें जाते हैं. १६–१८

नागपडल ग्रंथमें श्रीकृष्णजीने युधिष्ठिरसें कहा है किः—

अभक्ष्याणि न भक्ष्याणि कंदमूलानी भारत ॥
नूतनोद्‌गमपत्राणि वर्जनीयानी सर्वतः ॥ १९ ॥

अर्थः—हे भारत! कंदमूल अभक्ष्य हैं वे न खाने चाहियें और नये पैदा हुवे अंकुरादिके पत्र वगेरःभी त्याग करने चाहियें. इसतरह कहे हुवे परभी कंदमूल, जमींकंद–सक्करकंद पटाटे रतालु वगेरः एकादशीके रोज याने एकादशीव्रत करकें खावे है उसका कितना पाप है वो बुध्धिमानकोंही विचार कर लेना योग्य है.

मदिराके लिये कहा है किः—

मधुपाने मतिभ्रंशो नराणां जायते खलु ॥
धर्मंणतेभ्योदातृणां न ध्यान न च सत्क्रिया. ॥ २० ॥
मद्यपाने कृतेक्रोधो मान लोभश्च जाय ते ॥
मोहश्च मत्सर श्चैव दुष्टभाषणमेवच ॥ २१ ॥
मद्यमांसे मधुनि च नवनीते बहिःकृते ॥
उत्पद्यंते विलीयंते सु सूक्ष्मजंतुराशयः ॥ २२ ॥

अर्थः—दारु पीनेसें मनुष्योंकी बुद्धिका भ्रंश होता है उससें पापाचरण करते हैं; वास्ते वैसेकों कोइ वस्तु देनेसें धर्म नहीं होता है. मदिरा पीनेवालोंको ध्यान और सत्क्रिया फल रहित होती है. मदिरा पीनेसें क्रोध, मान, लोभ, मोह, मत्सर होता है और दुष्ट भाषणका उपयोग किया जाता है. औरभी कहा है कि मदिरा, मांस, सहत ओर छासमेंसें बहार निकाला गया मख्खनमें सूक्ष्म जंतुका समूह पैदा होता है और नाशभी होता है. मख्खनका दोष कहा है तोभी अन्यदर्शनी उसका कुछ दोष नहीं गिनते हैं और कहते है कि शास्त्रसें विरुद्ध नहीं हैं, इस वास्ते न्यायीकों इस श्लोकसें शोचनेकी जरूरत है. २०-२१

अभक्ष्य भक्षणके दोष संबंधमें कहा है किः—

पुत्रमांस वरम्भुक्तं न तु मूलकभक्षणम् ॥
भक्षणात् नरकं यांति वर्जनात्सवर्गमाप्नुयात् ॥ २१ ॥

अर्थः—पुत्रका मांस खाना सो अच्छा, परंतु मूला खाना बुरा है. मूला खानेसें प्राणी नरकमें जाता है और उसका त्याग करनेसें स्वर्गमें जाता है. २२

इतिहास पुराणमेंभी लिखा है किः—

यस्तु वृंताक कालिंग मूलकानां च भक्षकः ॥
अंतकाले स मूढात्मा न स्मरिष्यति मां प्रिये. ॥ २४ ॥

अर्थः—हे प्रिये ! बेंगन, कलिंगड और मूले खानावाला प्राणी अंतकालमेंभी मुझकों याद न कर सकेगा याने ये चीज खानेवाला अधर्मी होता है उससें अंतसमय मुझकों याद न करनेसें वो दुर्गतिमें जाता है. २४

शिवपुराणमेंभी कहा है किः—

यस्मिन् गृहे सदा नाथ, मूलकं पचति जनः ॥
श्मशान तुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥ २५ ॥
मूलकेन समं भोज्यं यस्तु भुंक्ते नराधमः ॥
तस्यबुद्धि र्न चैषेत चांद्रायण शरीरीण. ॥ २६ ॥
भुक्तं हलाहलं तेन कृतं चा भक्ष्य-भक्षणम् ॥
वृंताक भक्षणाच्चापि नरायांत्येव रौरवम् ॥ २७ ॥

अर्थः—हे नाथ! जिसके मकानमें हमेशां मूलेका शाख या उसके साहित भाजी तैयार की जाती है उसका मकान श्मशान (मरघट) के समान है, और उस मकानका पि-

तूलोगोंने त्याग किया है. मूलेके साथ जिस चीजका जो भोजन करता है वो मनुष्य अधम गिना जाता है—और उसकी बुद्धि चांद्रायणादि व्रतोंसें करकेंभी शुद्ध नहीं होती. जिसने अभक्ष्य—मूले, वेंगन वगैरः खाया होवे उसने हलाहल झहर पीया है ऐसा समझना और वो प्राणी अंतमें रौरव नामक नरकमें जाता है. २५-२७

पद्मपुराणमें कहा है किः—

गोरसं माषमध्ये तु मुद्गादिके तथैव च ॥
भक्षयेत्त भवेत् नूनं मांसतूल्यं युधिष्ठिर. ॥ २८ ॥

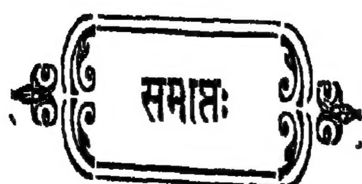
अर्थः—हे युधिष्ठिर! दूध, दहीं, छास ये उर्दसें मुंगमें या दाल होनेवाले द्विदलमें डालनेसें वो मांस तूल्य हो जाते हैं; वास्ते ये खाना और मांस खाना ये दोनु बरोबर है. २८

रात्रीभोजनके बारेमेंभी कहा है किः—

अस्तंगते दिवानाथे आपोरूधिर मुच्यते ॥
अन्नमांससमंप्रोक्तं मार्कंडेन महर्षिणा. ॥ २९ ॥
चत्वारो नरकद्वारः प्रथमं रात्रिभोजनम् ॥
परस्त्रिगमनं चैव संधानानन्तकायिका. ॥ ३० ॥

अर्थः—सूर्य अस्त हुवे बाद पानी पीना सो लोहीके समान है, और अन्न मांसके समान है. नरकके चार द्वार हैं उसमें प्रहेला रात्रिभोजन, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा आ्चार वगैरः खाना और चौथा मूले वगैरः अनंतकाय भक्षण करना सो हैं.

इस श्लोकमें रात्रीभोजन, परस्त्रीगमन, धूप वतलाये हुवे विगरका आचार कि जिसमें जंतु पड जाते हैं, और अनंतकाय याने मूले विगरमें अनंतजीव है इन चारोंका सेवन करनेहारा नरकगामी है; ऐसा बतलाया है वास्ते इन्होंका त्याग करना. २९-३०



अठारह दूषण निवारककी भूमिका.

इस ग्रन्थमें प्रथम आस्तिक मतकी सिद्धता बतला करकें नास्तिक मतका खंडन किया गया है, उससें पाठक महाशयोंकों यह पुस्तक पढनेसें आस्तिकमतकी दृढ श्रद्धा हो सकेगी. तत्पश्चात् अठारह दूषण सहित जीव हैं उसका वर्णन किया गया है और उन्ह दूषणोंसें क्यौं करकें लिप्त हुआ जाय ? अगर क्यौं करकें मुक्त हुआ जाय वोभी बतलानेमें आया है. उक्त बाबतोंका स्वरूप किसि ग्रन्थमें अलग दर्शाया गया न होनेके सबब, कितनेक धर्मप्रिय बान्धवोंकी प्रेरणासें मैंनें विविध प्रमाणिक शास्त्रोंके आधार युक्त भव्यजीव हितार्थ यह पुस्तक लिखा है. पिछाडीके विभागमें जैनसमुदायका कैसे सुधारा होय उसका वर्णन किया गया है; तथापि मेरी मतिके दोषसें करकें कभी कुछ शास्त्र विरुद्ध लिखा गया हो तो परमगुणग्राही पाठकगणकों मेरी नम्र प्रार्थना है कि शास्त्र देखकर शुद्ध करनेकी कृपा करें.

इस ग्रन्थका कितनाक गुजराती लिखान आचार्यजी श्रीमान् विजयानंदसूरिजी महाराजजीके शिष्यानुशिष्य परमपूज्य मुनि महाराज श्री हंसविजयजी महाराजने संशोधन कर सुधार लिया था, और कितनाक लिखान शुद्ध करनेकी महेनत ले कर अहमदाबाद निवासी स्वधर्मभ्राता धर्मज्ञ हीराचंद ककलभाइ शाहने सुधार लिया था जिससें हिंदि भाषामें सुगमता प्राप्त हुइ; वास्ते मैं वे दोनु महाशयोंका उपकार मानता हुं. पुनः मुझकों जिन जिन महाशयोंने सम्यक्त्व बोध किया है, और श्रीमान् हरिभद्रसूरीजी वगेरः तत्त्वज्ञ आचार्य महाराजजीके ग्रंथावलोकनसें करकें जो विमल बोध हुवा है कि जिससें यह ग्रन्थ लिखा गया–वास्ते वो तमाम उपकार उन्ही महान् पुरुषोंका है. महाशय ! इसमें किसी समज फेरसें श्री वीतरागजीकी आज्ञा विरुद्ध जो कुछ लिखा गया हो तो में त्रिविध मिच्छामिदुक्कडं देता हुं. एवंः